श्रीपरमात्मने नमः

वृहज्जैनवाणी-संग्रह

संपादक—

अजितवीर्य शास्त्री

प्रकाशक—

शारदा पुस्तकालय

१२, विश्वकोष लेन, पो० बाघबाजार

कलकत्ता

वीर निर्वाण संवत् २४५७ ईस्वी सन् १९३१

न्यौछावर सवा रुपया

प्रकाशक—
जीवंधर देवकुमार जैन
मालिक—शारदा पुस्तकालय
१२ विश्वकोषलेन पो० बागबाजार
कलकत्ता

प्रिंटर—जीवंधर जैन
"शारदा प्रेस"
१२, विश्वकोषलेन बागबाजार
कलकत्ता

विषय-सूची।

प्रथम अध्याय।

प्रातःकालीन क्रिया।

द्वितीय अध्याय।

स्तुतिविनतीसंग्रह।

तृतीय अध्याय।

स्तोत्रसंग्रह।

चतुर्थ अध्याय।

नित्यपूजासंग्रह।

पंचम अध्याय।

पर्वपूजासंग्रह।

छठा अध्याय ।

शास्त्रसारसमुच्चय ।

ग्यारहवां अध्याय।

कथासंग्रह।

बारहवां अध्याय।

उपदेशसंग्रह।

तेरहवां अध्याय

भजनसंग्रह।

चौदहवां अध्याय।

फुटकरसंग्रह।

पंद्रहवां अध्याय।

बारहमासादि संग्रह।

वृहत

जैनवाणीसंग्रह

प्रथम अध्याय।

प्रातःकालीन क्रिया

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय कृतपंचनमस्कृतिः।
कोऽहं को मम धर्मः किं व्रतं चेति परामृशेत्॥

प्रत्येक श्रावकको ब्राह्ममुहूर्त अर्थात् रात्रि समाप्त होनेसे दो घड़ी प्रथम उठकर पंचनमस्कार मंत्रका पाठ करके मैं कौन हूं? क्या मेरा धर्म है? मेरा व्रत क्या है? यह विचार करना चाहिये।

१—णमोकार मंत्र

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥
ओं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्योनमः।

२—णमोकार मंत्रका माहात्म्य।

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा। ध्याये-

त्पंचनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यंतरे शुचिः। अपराजितमंत्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः। मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥ ३ ॥ एसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो। मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलं ॥ ४ ॥

३—सामायिक करनेकी विधि।

मोक्षप्राप्तिका सामायिक एक मुख्य उपाय है। सामायिकके विना अष्ट कर्म नष्ट नहीं हो सकते इसलिये आचार्योंने इसका निरूपण चार स्थानोंपर किया है। १—श्रावकके १२ व्रतोंमें पहिला शिक्षाव्रत। २—श्रावककी ११ प्रतिमाओंमें तीसरी प्रतिमा। ३—पांच प्रकारके चारित्रोंमें पहला चारित्र। ४—षडावश्यकोंमें प्रथम आवश्यक।

इसलिये प्रत्येक श्रावकको प्रति दिन सवेरे ही एक बार, द्वितीय प्रतिमाधारीको सुबह शाम दो बार और तीसरी प्रतिमाधारीको सुबह, दुपहर, शाम तीन बार सामायिक करना चाहिये।

सामायिकका काल जघन्य दो घड़ी (४८ मिनट), मध्यम ४ घड़ी, उत्कृष्ट ६ घड़ी है। जो प्रतिमाधारी नहीं हैं उनकेलिये कोई नियम नहीं है, वे यथावकाश कम ज्यादा भी कर सकते हैं। सामायिक सवेरे ब्राह्म मुहूर्तमें अर्थात् ४ बजे उठ हाथ पैर धो शुद्ध हो कपड़ा बदल एकांत स्थानमें उत्तर या पूर्व मुख कर करना चाहिये। मंदिरजीमें उत्तर या पूर्वमुख बैठनेका कोई नियम नहीं है।

सामायिक करनेवाला पहले दर्भासन अथवा चटाईपर सीधा खड़ा

होकर पांवके अग्रभाग चार अंगुलके अन्तरसे रख, दोनों हाथ लटका दृष्टि नासाके अग्रभागपर रख यह प्रतिज्ञा करे कि 'मैं इतने समय तक सामायिक करूंगा सो जबतक सामायिककी क्रिया करूं तबतक मैं संपूर्ण परिग्रहका त्याग करता हूं और इस स्थानको छोड़कर दूसरे स्थानपर नहीं जाउंगा।' पश्चात् नौ अथवा तीन बार णमोकार मंत्रका उच्चारण करके साष्टांग नमस्कार करै। इसके बाद खड़े खड़े ही या बैठकर तीन बार णमोकार मंत्र पढ कर हाथ जोड़कर तीन आवर्त देकर मिले हुये हाथोंपर एक बार शिरोनति करै बादमें इसीप्रकार दाहिने हाथकी दिशामें फिर पीठ पीछेकी दिशामें और फिर बायें हाथकी दिशामें करै। इसप्रकार चारों दिशाओंमें चार शिरोनति और बारह आवर्त करना चाहिये। सो ही रत्नकरण्डश्रावकाचारमें सामायिक प्रतिमाके प्रकरणमें कहा है:—

चतुरावर्तत्रितयश्चतुःप्रणामस्थितो यथा जातः।
सामायिकोद्विनिषद्यास्त्रियोगशुद्धास्त्रिसंध्यमभिवन्दी॥१२९॥

अर्थ—चारों दिशाओंमें तीन तीन आवर्त और चार प्रणाम सहित तथा बाह्य और आभ्यन्तर उपाधि रहित दो आसन (पद्मासन तथा खड्गासन) सहित मन वचन कायरूप योगत्रय शुद्ध तीनों संध्याओंमें वंदना करनेवाला सामायिक प्रतिमाधारी श्रावक है।

इसप्रकार चार शिरोनति और बारह आवर्त करनेके बाद शांतचित्त होकर आगे दियेहुये संस्कृत अथवा भाषा सामायिकका पाठ धीरे धीरे करना चाहिये।

सामायिक पाठमें प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, सामायिक, स्तवन वंदन और कायोत्सर्ग ये छह आवश्यक कर्म हैं। इनका वर्णन हिंदी सामायिक

पाठसे जानना चाहिये। इसप्रकार सामायिकके अन्तमें भी वारह आवर्त और चार शिरोनति करना चाहिये। इसप्रकार करनेसे सबसे थोड़े समयका सामायिक करना तो पूरा हो जाता है किन्तु इतना पाठ पढ़ने व सामायिक करनेमें बहुत थोड़ा समय लगा इसलिये अधिक समयतक शांतपरिणाम रखनेकेलिये एक वा दो नमस्कार मंत्रकी माला फेर लेना चाहिये तथा वारह भावनाका पाठ अथवा अन्यान्य पाठ भी पढ़ लेना चाहिये। इसके सिवाय सामायिक धारण करनेसे पहिले आलोचना पाठ भी जो प्रतिक्रमण कर्म ही है पढ़ लेना चाहिये। नमस्कार मंत्रकी माला फेरनेमें ज्यादा समय लगता हो तो उसकी जगह 'अरहंत सिद्ध' ऐसे छह अक्षरोंके मंत्रकी अथवा 'अरहंत' ऐसे चार अक्षरोंके मंत्रकी अथवा 'सिद्ध' एसे दो अक्षरोके मंत्रकी अथवा (ओं) ऐसे एक अक्षरके मंत्रकी माला जप लेना चाहिये।

जब कि सामायिक पाठ पढ़नेके बाद माला फेरना तथा वारह भवना आदि और और पाठ पढ़ना हो तो इन सबको अन्तके कायोत्सर्गके पहले करे। अन्तमें कायोत्सर्ग और आवर्तादि किया करके सामायिक पूर्ण करना चाहिये।

इसप्रकार नित्य एक वार दो वार अथवा तीन वार आलोचना पाठ सहित सामायिक करनेसे परिणामोंमें वड़ी शांति होती है, प्रमाद छूट जाता है जो कि महादुखका कारण है।

४—सामायिक पाठ (संस्कृत)

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव॥१॥

शरीरतः कर्त्तुमनंतशक्ति विभिन्नमात्मानमपास्तदोषं। जिनेंद्र कोषादिव खड्गयष्टिं तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ॥ २ ॥ दुःखे सुखे वैरिणि बंधुवर्गे योगे वियोगे भुवने वने वा। निराकृताशेषममत्वबुद्धेः समं मनो मेस्तु सदापि नाथ ॥३॥ मुनीश लीनाविव कीलीताविव स्थिरौ निखाताविव बिंबिताविव। पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव ॥ ४ ॥ एकेंद्रियाद्या यदि देव! देहिनः प्रमादतः संचरता इतस्ततः। क्षता विभिन्ना मिलिता निपीड़िता-स्तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ॥५॥ विमुक्तिमार्गप्रतिकूलवर्त्तिना मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया। चारित्रशुद्धेर्यदकारि लोपनं तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ॥ ६ ॥ विनिंदनालोचनगर्हणैरहं, मनोवचःकायकषायनिर्मितं। निहन्मि पापं भवदुःखकारणं भिषग्विषं मंत्रगुणैरिवाखिलं ॥ ७ ॥ अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं जिनातिचारं सुचरित्रकर्म्मणः। व्यधामनाचारमपि प्रमादतः प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥ ८ ॥ क्षतिं मनःशुद्धिविधेरतिक्रमं व्यतिक्रमं शीलव्रतेर्विलंघनं। प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं वदंत्यनाचारमिहातिसक्ततां ॥ ९ ॥ यदर्थमात्रापदवाक्यहीनं मया प्रमादाद्यदि किंचनोक्तं। तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी सरस्वती केवलबोधलब्धिं ॥ १० ॥ बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः। चिंतामणिं चिंतितवस्तुदाने त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देवि ॥ ११ ॥ यः स्म-

यंते सर्वमुनींद्रवृंदैर्यः स्तूयते सर्वनरामरेंद्रैः। यो गीयते वेद-पुराणशास्त्रैः स देवदेवो हृदये ममास्तां ॥१२॥ यो दर्शन-ज्ञानसुखस्वभावः समस्तसंसारविकारबाह्यः। समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः, स देवदेवो हृदये ममास्तां ॥ १३ ॥ निषूदते यो भवदुःखजालं, निरीक्षते यो जगदंतरालं। योतर्गतो योगिनिरीक्षणीयः स देवदेवो हृदये ममास्तां ॥ १४ ॥ विमुक्तिमार्गप्रतिपादको यो, यो जन्ममृत्युव्यसनाद्यतीतः। त्रिलोकलोकी विकलोऽकलंकः स देवदेवो हृदये ममास्तां ॥ १५ ॥ क्रोड़ीकृताशेषशरीरिवर्गाः, रागादयो यस्य न संति दोषाः। निरिंद्रियो ज्ञानमयोऽनपायः, स देवदेवो हृदये ममास्तां ॥ १६ ॥ यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः, सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबंधः। ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स देवदेवो हृदये ममास्तां ॥ १७ ॥ न स्पृश्यते कर्मकलंकदोषैः यो ध्वांतसंघैरिव तिग्मरश्मिः। निरंजनं नित्यमनेकमेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥ विभासते यत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासि। स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ १९ ॥ विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तं। शुद्धं शिवं शांतमनाद्यनंतं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ २० ॥ येन क्षता मन्मथमानमूर्च्छा, विषादनिद्राभयशोकचिंता। क्षयोनलेनेव तरुप्रपंचस्तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥ न संस्तरोऽश्मान तृणं न मेदिनी विधानतो नो फलको विनिर्मितः।

यतो निरस्ताक्षकषायविद्विषः सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः ॥२२॥ न संस्तरो भद्र ! समाधिसाधनं, न लोकपूजा न च संघमेलनं । यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं, विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनां ॥ २३ ॥ न संति बाह्या मम केचनार्था भवामि तेषां न कदाचनाहं । इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र मुक्त्यै ॥२४॥ आत्मानमात्मान्यवलोक्यमानस्त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः । एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र स्थितोपि साधुर्लभते समाधिं ॥ २५ ॥ एकः सदा शाश्वतिको मामात्मा विनिर्मलः साधिगमस्वभावः । बहिर्भवाःसंत्यपरे समस्ता न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः ॥ २६ ॥ यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्ध तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः । पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः कुतो हि तिष्ठंति शरीरमध्ये ॥ २७ ॥ संयोगतो दुःखमनेकभेदं, यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी । ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनां ॥ २८ ॥ सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं संसारकांतारनिपातहेतुं । विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे ॥ २९ ॥ स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा फलं तदीयं लभते शुभाशुभं । परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥३०॥ निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो न कोपि कस्यापि ददाति किंचन । विचारयन्नेवमनन्यमानसः परो ददातीति विमुच्य शेमुषीं ॥ ३१ ॥ यैः परमात्माऽमितगतिवंद्यः सर्वविविक्तो भृशम-

नवद्यः। शश्वदधीतो मनसि लभंते, मुक्तिनिकेतं विभववरं ते ॥३२॥ इति द्वात्रिंशतिवृत्तैः, परमात्मानमीक्षते। योऽनन्यगतचेतस्को, यात्यसौ पदमव्ययं ॥ ३३ ॥

७-सामायिक पाठ भाषा।

१ प्रतिक्रमण कर्म।

काल अनंत भ्रम्यो जगमें सहिये दुख भारी। जन्ममरण नित किए पापको ह्वै अधिकारी। कोटि भवांतरमाहिं मिलन दुर्लभ सामायिक। धन्य आज मैं भयो योग मिलियो सुखदायक॥ हे सर्वज्ञ जिनेश! किये जे पाप जु मैं अब। ते सब मन-वच-काय-योगकी गुप्ति विना लभ॥ आप समीप हजूर माहिं मैं खड़ो खड़ो[1] सब। दोष कहूं सो सुनो करो नठ दुःख देहिं जब॥ २॥ क्रोधमानमदलोभमोहमायाबशि प्रानी। दुःखसहित जे किये दया तिनकी नहिं आनी॥ विना प्रयोजन एकेंद्रिय वितिचउपंचेंद्रिय। आप प्रसादहिं मिटै दोष जो लग्यो मोहि जिय॥ ३ ॥ आपसमें इकठौर थापकरि जे दुख दीने। पेलि दिये पगतलैं दाविकरि प्राण हरीने॥ आप जगतके जीव जिते तिन सबके नायक। अरज करूं मैं सुनो दोष मेटो दुखदायक॥ ४ ॥ अंजन अदिक चोर महा घनघोर पापमय। तिनके जे अपराध भये ते क्षमा क्षमा किय॥ मेरे जे अब दोष भये ते

[1] स्त्री सामायिक करे तो खड़ी खड़ी सब, ऐसा पाठ बोलना चाहिये।

क्षमहु दयानिधि। यह पडिकोणो कियो आदि षटकर्ममांहिं विधि॥ ५॥

२। द्वितीय प्रत्याख्यान कर्म।

इसके आदि वा अंतमें आलोचना पाठ बोलकर फिर तीसरे सामायिककर्मका पाठ करना चाहिये।

जो प्रमादवशि होय विराधे जीव घनेरे। तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे॥ सो सब झूठो होउ जगतपतिके परसादै। जा प्रसादतै मिलै सर्व सुख दुःख न लाधै॥६॥ मैं पापी निर्लज्ज दयाकरि हीन महाशठ। किये पाप अघढेर पापमति होय चित्त दुठ॥ निंदूं हूं मै वारवार निज जियको गरहूं। सब विधि धर्म उपाय पाय फिर पापहि करहूं॥ ७॥ दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावककुल भारी। सतसंगति संजोग धर्मजिनश्रद्धा, धारी॥ जिनवचनामृत धार समावर्तै जिनवानी। तोहू जीव संघारे धिक धिक धिक हम जानी॥८॥ इद्रियलंपट होय खोय निज ज्ञान जमा सब। अज्ञानी जिमि करै तिसी विधि हिंसक ह्वै अब॥ गमनागमन करंतो जीव विराधे भोले। ते सब दोष किये निंदूं अब मन वच तोले॥९॥ आलोचनविधिथकी दोष लागे जु घनेरे। ते सब दोष विनाश होउ तुम तैं जिन मेरे॥ वारवार इसभांति मोह-मद दोष कुटिलता। ईर्षादिकतै भये निंदिये जे भयभीता॥१०

३। तृतीय सामायिक भावकर्म।

सब जीवनमें मेरे समताभाव जग्यो है। सब जिय मोसम

समता राखो भाव लग्यो है ॥ आर्त्त रौद्र द्वय ध्यान छांड़ि करिहूं सामायिक। संजम मो कब शुद्ध होय यह भाववधायक ॥ ११ ॥ पृथ्वी जल अरु अग्नि वायु चउकाय वनस्पत। पंचहि थावरमाहिं तथा त्रस जीव बसैं जित॥ वेइंद्रिय तिय चउ पंचेंद्रियमांहि जीव सब। तिनतैं क्षमा कराऊं मुझपर छिमा करो अब ॥ १२ ॥ इस अवसरमें मेरे सब सम कंचन अरु तृण। महल मसान समान शत्रु अरु मित्रहिं सम गण॥ जामन मरण समान जानि हम समता कीनी। समायिकका काल जितै यह भाव नवीनी ॥१३॥ मेरो है इक आतम तामें ममत जु कीनो। और सबै मम भिन्न जानि समतारसभीनो॥ मात पिता सुत बंधु मित्र तिय आदि सबै यह। मोतैं न्यारे जानि जथारथ रूप करयो गह ॥१४॥ मैं अनादि जगजालमांहि फसि रूप न जाण्यो। एकेंद्रिय दे आदि जंतुको प्राण हराण्यो॥ ते सब जीवसमूह सुनो मेरी यह अरजी। भवभवको अपराध छिमा कीज्यो कर मरजी ॥ ५॥

४ चतुर्थ स्तवनकर्म।

नमों ऋषभ जिनदेव अजित जिन जीति कर्मको। संभव भवदुखहरण करण अभिनंद शर्मको॥ सुमति सुमति दातार तार भवसिंधु पार कर। पद्मप्रभ पद्माभ भानि भवभीति प्रीति धर॥१६॥श्रीसुपार्श्व कृतपाश नाश भव जास शुद्धकर।श्रीचंद्रप्रभ चंद्रकांतिसम देहकांतिधर॥ पुष्पदंत दमि दोषकोश भविपोष रोषहर। शीतल शीतल करण हरण भवताप दोषकर

॥ १७ ॥ श्रेयरूप जिनश्रेय ध्येय नित सेय भव्यजन । वासुपूज्य शतपूज्य वासवादिक भवभयहन ॥ विमल विमलमति देन अंतगत है अनंत जिन । धर्मशर्मशिवकरण शांतिजिन शांतिविधायिन ॥ १८ ॥ कुंथ कुंथुमुख जीवपाल अरनाथ जालहर । मल्लि मल्लसम मोहमल्लमारन प्रचार धर । मुनिसुव्रत व्रतकारण नमत सुरसंघहिं नमि जिन । नेमिनाथ जिन नेमि धर्मरथमांहि ज्ञानघन ॥१९॥ पार्श्वनाथ जिन पार्श्व उपलसम मोक्ष रमापति । वर्द्धमान जिन नमूं वमूं भवदुःख कर्मकृत ॥ या विधि मैं जिन संघरूप चउवीस संख्यधर । स्तवूं नमूं हूं बार बार वंदूं शिव सुखकर ॥ २० ॥

५ पंचम वंदनाकर्म ।

वंदूं मैं जिनवीर धीर महावीर सु सनमति । वर्द्धमान अतिवीर वंदि हूं मनवचतनकृत ॥ त्रिशलातनुज महेश धीश विद्यापति वंदूं । वंदौं नितप्रति कनकरूप तनु पापनिकंदूं ॥२१॥ सिद्धारथ नृपनंददुंददुख दोष मिटावन, दुरित दवानल ज्वलित ज्वाल जगजीव उधारन ॥ कुंडलपुर करि जन्म जगत जिय आनँदकारन । वर्ष बहत्तर आयु पाय सब ही दुख टारन ॥ २२ ॥ सप्तहस्त तनु तुग भंगकृतजन्ममरणभय । बालब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय ॥ दे उपदेश उधारि तारि भवसिंधु जीवघन । आप बसे शिवमांहि ताहि वंदौं मन वच तन ॥ २३ ॥ जाके वंदनथकी दोष दुखदूरिहि जावै । जाके वंदनथकी मुक्तितिय सन्मुख

आवै ॥ जाके वंदनथकी वंद्य होवें सुरगनके। ऐसे वीर जिनेश वन्दि हूं क्रमयुग तिनके ॥ २४ ॥ सामायिक षट-कर्ममांहि वंदन यह पंचम। वंदों वीरजिनेद्र इंद्रशतवंद्य वंद्य मम ॥ जन्म मरणभय हरो करो अघशांति शांतिमय। मैं अघकोष सुपोष दोषको दोष विनाशय ॥ २५ ॥

६ छठा कायोत्सर्ग कर्म।

कायोत्सर्ग विधान करूं अंतिम सुखदाई। कायत्यजनमय होय काय सबको दुखदाई ॥ पूरब दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तर मैं। जिनगृह वंदन करूं हरूं भवपापतिमिर मैं ॥२६॥ शिरोनती मैं करूं नमूं मस्तक कर धरिकै। आवर्तादिक क्रिया करू मन वच मद हरिकैं। तीनलोक जिनभवनमाहिं जिन हैं जु अकृत्रिम। कृत्रिम हैं द्वय अर्द्धद्वीप माहीं वन्दों जिमि ॥ आठकोडि परि छप्पन लाख जु सहस सत्यानूं। च्यारि शतकपरि असी एक जिनमंदिर जानूं ॥ व्यंतर ज्योतिषिमांहि संख्यरहिते जिनमंदिर। ते सब वंदन करूं हरहु मम पाप संघकर ॥ २८ ॥ सामायिकसम नाहिं और कोउ वैरमिटायक। सामायिकसम नाहिं और कोउ मैत्रीदायक ॥ श्रावक अणुव्रत आदि अंत सप्तम गुणथानक। यह आवश्यक किये होय निश्चय दुखहानक ॥२९॥ जे भवि आतमकाज-करण उद्यमके धारी। ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी। राग रोप मदमोहक्रोध लोभादिक जे सब। बुध महाचन्द्र विलाय जाय तातैं कीज्यो अब ॥ ३० ॥

६–सुप्रभास्तोत्रम् ।

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जन्माभिषेकोत्सवे यद्दीक्षाग्रहणोत्सवे यदखिलज्ञानप्रकाशोत्सवे । यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद्भवैः संगीतस्तुतिमंगलैः प्रसरतां मे सुप्रभातोत्सवः ॥१॥ श्रीमन्नतामरकिरीटमणिप्रभाभिरालीढपादयुग ! दुर्धरकर्मदूर । श्री नाभिनंदन ! जिनाजित शंभवाख्य ! त्वद्ध्यानतोस्तु सततं मम सुप्रभातं ॥ २ ॥ छत्रत्रयप्रचलचामरवीज्यमानदेवाभिनंदन मुने सुमते जिनेंद्र । पद्मप्रभारुणमणिद्युतिभासुरांग, त्व० ॥ ३ ॥ अर्हन् सुपार्श्व कदलीदलवर्णगात्रप्रालेयतारगिरिमौक्तिकवर्णगौर । चंद्रप्रभ स्फटिक पांडुर पुष्पदंत ! त्व० ॥४॥ संतप्तकांचनरुचे जिनशीतलाख्य श्रेयान्विनष्टदुरिताष्टकलंकपंक बंधूकबंधुररुचे जिनवासुपूज्य, त्व० ॥ ५ ॥ उद्दंडदर्पकरिपो विमलामलांग स्थेमन्ननंतजिदनंतसुखांबुराशे । दुष्कर्मकल्मषविवर्जित धर्मनाथ, त्व० ॥६॥ देवामरीकुसुमसन्निभ शांतिनाथ कुंथो दयागुणविभूषणभूषितांग । देवाधिदेव भगवन्नर तीर्थनाथ, त्व० ॥७॥ यन्मोहमल्लमदभंजन मल्लिनाथ क्षेमं करावितथशासनसुव्रताख्य। यत्संपदा प्रशमितो नमिनामधेय, त्व० ॥ ८ ॥ तापिच्छगुच्छरुचिरोज्ज्वल नेमिनाथ घोरोपसर्गविजयिन् जिनपार्श्वनाथ । स्याद्वादसूक्तिमणिदर्पण वर्द्धमान, त्व० ॥ ९ ॥ प्रालेयनीलहरितारुणपीतभासं यन्मूर्तिमव्ययसुखावसथं मुनींद्राः । ध्यायंति सप्ततिशतं जिनवल्लभानां,

स्त्व० ॥१०॥ सुप्रभातं सुनक्षत्रं मांगल्यं परिकीर्तितं। चतुर्विंशतितीर्थानां सुप्रभातं दिने दिने॥ ११ ॥ सुप्रभातं सुनक्षत्रं श्रेयः प्रत्यभिनंदितं। देवता ऋषयः सिद्धाः सुप्रभातं दिने दिने ॥ १२ ॥ सुप्रभातं तवैकस्य वृषभस्य महात्मनः। येन प्रवर्तितं तीर्थं भव्यसत्त्वसुखावहं ॥ १३ ॥ सुप्रभातं जिनेंद्राणां ज्ञानोन्मीलितचक्षुषां। अज्ञानतिमिरांधानां नित्यमस्तमितोरविः ॥१४॥ सुप्रभातं जिनेंद्रस्य वीरः कमललोचनः॥ येन कर्माटवी दग्धा शुक्लध्यानोग्रवह्निना ॥ १५ ॥ सुप्रभातं सुनक्षत्रं सुकल्याण सुमंगलं। त्रैलोक्यहितकर्तॄणां जिनानामेव शासनं ॥१६॥ इति ॥

७–आलोचना पाठ।

यह आलोचनापाठ सामायिक कालमें प्रथमकर्म प्रतिक्रमण कर्म है इस कर्मके आदि वा अन्तमें बोलना चाहिए।

दोहा–वंदो पांचों परम गुरु, चौबीसों जिनराज।
करूं शुद्ध आलोचना, शुद्धि करनके काज ॥१॥

सखी छंद चौदह मात्रा।

सुनिये जिन अरज हमारी। हम दोष किये अति भारी॥ तिनकी अब निर्वृत्ति काज। तुम सरन लही जिनराज॥२॥ इक वे ते चउ इंद्री वा। मनरहित सहित जे जीवा॥ तिनकी नहिं करुणा धारी। निरदइ ह्वै घात विचारी॥३॥ समरंभ समारंभ आरंभ। मनवचतन कीने प्रारंभ॥ कृत कारित

मोदन करिकैं। क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं ॥ ४ ॥ शत आठ जु इमि भेदनतैं। अघ कीने परछेदनतैं ॥ तिनकी कहुं कोलों कहानी। तुम जानत केवलज्ञानी ॥५॥ विपरीत एकांत विनयके। संशय अज्ञान कुनयके॥ वश होय घोर अघ कीने। वचतैं नहिं जात कहीने ॥६॥ कुगुरनकी सेवा कीनी। केवल अदयाकरि भीनी। याविधि मिथ्यात भ्रमायो। चहुंगति मधि दोष उपायो ॥७॥ हिंसा पुनि झूठ जु चोरी। परवनितासों दृग जोरी ॥ आरंभपरिग्रह भीनो। पनपाप जु या विधि कीनो ॥८॥ सपरस रसना घ्राननको। चखु कान विषयसेवनको॥ वहु कर्म किये मनमानी। कछु न्याय अन्याय न जानी ॥९॥ फल पंच उदंबर खाए। मधु मांस मद्य चित-चाहे ॥ नहिं अष्टमूलगुणधारी। विसनन सेये दुखकारी॥१० दुइवीस अभख जिन गाये। सो भी निशदिन भुंजाये ॥ कछु भेदाभेद न पायो। ज्यों त्योंकरि उदर भरायो ॥ ११ ॥ अनंतानु जु बंधी जानो। प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो ॥संज्वलन चौकरी गुनिये। सब भेद जु षोडश मुनिये ॥१२॥परिहास अरतिरति शोग। भय ग्लानि तिवेद संजोग॥ पनवीस जु भेद भये इम। इनके वश पाप किये हम ॥ १३ ॥ निद्रावश शयन कराई। सुपनेमधि दोष लगाई। फिर जागि विषयवन धायो। नानाविध विषफल खायो ॥ १४ ॥ कियेऽहार निहार विहारा। इनमें नहिं जतन विचारा ॥ विन देखी धरी उठाई। विन शोधी वस्तु जु खाई ॥ १५ ॥ तब ही परमाद

सतायो। बहुविधि विकलप उपजायो ॥ कछु सुधिबुधि नाहिं रही है। मिथ्यामति छाय गयी है ॥ १६ ॥ मरजादा तुम-ढिग लीनी। ताहूमें दोष जु कीनी ॥ भिन भिन अब कैसें कहिये। तुम ज्ञानविषै सब पइये ॥ १७ ॥ हा हा! मैं दुठ अपराधी। त्रसजीवनराशिविराधी॥ थावरकी जतन न कीनी। उरमें करुना नहिं लीनी ॥ १८ ॥ पृथिवी बहु खोद कराई। महलादिक जागां चिनाई ॥ पुन त्रिनगाल्यो जल ढोल्यो। पंखातैं पवन विलोल्यो ॥१९॥ हा हा! मै अदयाचारी। बहु हरितकाय जु विदारी ॥ तामधि जीवनके खँदा। हम खाये धरि आनंदा ॥ २० ॥ हा हा! परमाद वसाई। विन देखे अगनि जलाई ॥ तामधि जे जीव जु आये। ते हू परलोक सिधाये ॥ २१ ॥ बीध्यो अनराति पिसाया। ईंधन विन सोधि जलायो झाड़ू ले जागां बुहारी। चिवटि आदिक जीव विदारी ॥२२॥ जल छानिजिवानी कीनी। सो हू पुनि डारि जु दीनी ॥ नहि जलथानक पहुंचाई। किरिया विन पाप उपाई ॥ २३ ॥ जल मल मोरिन गिरवायो। कृमिकुल बहुघात करायो॥ नदियन विच चीर धुवाये। कोसनके जीव मराये ॥ २४ ॥ अन्नादिक शोधकराई। तामें जु जीवनिस-राई ॥ तिनका नहिं जतन कराया। गरियालें धूप डराया ॥ २५ ॥ पुनि द्रव्य कमावन काज। बहु आरँभ हिंसा साज कीये तिसनावश भारी। करुना नहि रंच विचारी ॥ २६ ॥ ताको जु उदय अब आयो। नानाविध मोहि सतायो ॥

फल भुंजत जिय दुख पावै। वचतैं कैसें करि गावै॥ २७॥ तुम जानत केवलज्ञानी। दुख दूर करो शिवथानी॥ हम तो तुम शरण लही है। जिन तारनविरद सही है॥ २८॥ जो गांवपती इक होवै। सो भी दुखिया दुख खोवै। तुम तीन-भुवनके स्वामी। दुख मेटहु अंतरजामी॥ २९॥ द्रोपदि-को चीर वढायो। सीताप्रति कमल रचायो॥ अंजनसे किये अकामी। दुख मेटचो अंतरजामी॥ ३०॥ मेरे अवगुन न चितारो। प्रभु अपनो विरद समारो॥ सब दोषरहित करि स्वामी। दुःख मेटहु अंतरजामी॥ ३१॥ इंद्रादिक पदवी न चाहूं। विषयनिमें नाहिं लुभाऊं॥ रागादिक दोष हरीजे। परमातम निजपद दीजै॥ ३२॥

दोहा—दोषरहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोय।
सब जीवनके सुख बढै, आनँद मंगल होय॥
अनुभवमाणिक पारखी, 'जौहरी' आप जिनंद॥
ये ही वर मोहि दीजिये, चरनशरन आनंद॥ इति॥

८—तीर्थंकरोंकी स्तुति प्रभाती।

बन्दौं जिनदेव सदाचरण कमलतेरे। जा प्रसाद सकल कर्म छूटत अघ मेरे॥टेक॥ ऋषभ अजित संभव अभिनन्दन केरे। सुमति पद्म श्रीसुपार्श्व चन्दाप्रभु मेरे॥ १॥ पुष्प-दंत शीतल श्रीयांस गुण घनेरे। बासपूज्य विमल अनन्त धर्म जग उजेरे॥२॥ शांति कुन्थ अरह मल्ल मुनिसुव्रत केरे।

नमि नेमि पार्श्वनाथ महावीर मेरे ॥ लेत नाम अष्ट याम छूटत भव फेरे । जन्म पाय जादोराय चरननके चेरे ॥४॥

९–जवाहरकृत प्रभाती ।

उठि प्रभात सुमिरन कर श्रीजिनेन्द्र देवा ॥टेक॥ सिंहासन झिलमिलात, तीन छत्र शिर सुहात, चमर फहरात, सदा भवि जन भजेवा ॥१॥ भेंटे पार्श्व जिनेन्द्र, कर्मके कटेजु फंद, अस्वसेनके जु नन्द, वामा सुखदेवा ॥२॥ वानी तिहुंकाल खिरे, पशुवनपर दृष्टि परे, नमत सुरनर मुनीन्द्रादिक, चरन शीश नेवा ॥३॥ प्रभुके चरणारविन्द, जपत हैं 'जवाहरचंद्र' कर जोरें ध्यान धरै चाहत नित सेवा ॥ ४ ॥

१०–दौलतकृत प्रभाती ।

पारस जिन चरण निरखि हरख यों लहायो । चितवन चन्दा चकोर ज्यों प्रमोद पायो । पारस० ॥टेक॥ ज्यों सुनि घनघोर शोर, मोर हर्षको न ओर रंकनिधि समाजराज पाय मुदित थायो । पारस० ॥१॥ ज्यों जन चिर क्षुधित होय, भोजन लखि मुदित होय, भेषज गदहरन पाय आतुर हरषायो । पारस० ॥२॥ वासर धन्य आज, दुरित दूर परे आज, शान्ताकृति देखि महा मोहतम विलायो ।पारस०॥३॥ जाके गुन जानन जिमि, भानन भवकानन इमि, जान 'दौल' सरन आय शिवसुख ललचायो । पारस० ॥४॥

११–दौलतकृत प्रभाती ।

निरखत जिनचंद्र वदन, स्वपर सुरुचि आई ॥टेक॥ प्रगटी

निज आनकी, पिछान ज्ञान भानकी, कला उद्योत होत काम-यामिनी पलाई ॥१॥ सारस्वत आनन्द स्वाद, पायो विनश्यो विषाद, आनमें अनिष्ट इष्ट, कल्पना नसाई ॥२॥ साधी निजसाधकी, समाधि मोहव्याधिकी उपाधिको विराधिकै अराधना सुहाई॥३॥धन दिन छिन आज सुगुनि, चिन्ते जिनराज अब, सुधरे सब काज 'दौल' अचल रिद्धि पाई ॥४॥

१२—भागचन्द्रकृत प्रभाती ।

परणति सब जीवनकी तीन भांति वरणी। एक पुण्य एक पाप एक राग हरणी ॥ टेक ॥ जामें शुभ अशुभ बन्द वीत-राग परणित सब भव समुद्र तरणी ॥१॥ छांड़ अशुभ क्रिया कलाप मत करो कदाचि पाप शुभमें न मगन होय अशु-द्धता विसरणी ॥२॥ यावत ही शुभोपयोग तावत ही मन उद्योग तावतही करणयोग कही पुण्य करणी ॥३॥ 'भाग-चन्द' जा प्रकार जीव लहे सुख अपार याको निरधार स्या-दवादकी उचरणी ॥ ४ ॥

१३—जैनदासकृत प्रभाती ।

उठि प्रभात पूजिये श्रीआदिनाथ देवा। आलसका त्याग जागि पूजा विधि सेवा ॥ टेक ॥ जल चन्दन अक्षत प्रीति सम लेवा। पुष्प सुवास होय काम जरि जेवा ॥ १ ॥ नैवेद्य उज्ज्वल करि दीप रतन लेवा । धूपते सुगन्ध होय अष्ट कर्म खेवा ॥२॥ श्रीफल बदाम लौंग डोंड़ा शुभ मेवा।

उज्ज्वल करि अर्घ पूजि श्रीजिनेन्द्र देवा ॥ ३ ॥ जिनजी तुम अर्ज सुनो भवदधि उतरेवा। जैनदास जन्म सुफल भगति प्रभू एवा ॥४॥

१४--भवानीकृत प्रभाती

ताण्डव सुरपतिने जहां हर्ष भाव धारी ॥टेक॥ रुनु रुनु रुनु नूपुर ध्वनि ठुमकि ठुमकि पेंजन पग झुन झुन झुन कीन छवि लगति अति प्यारी ॥ १ ॥ अ न न न न सारदानि स न न न न न किनरान अ घ घ घ गंधर्व सर्व देत जहां तारी ॥ २ ॥ पं पं पं पग झपटि फं फं फ फ न न न न न वं व मृदंग वाजे वीना धुन सारी ॥ ३ ॥ अ द् द् द् द् द् विद्याधर दि दि दि दि दि दि देव सकल दास भवानी ज्यों कहें जिन चरनन वलिहारी ॥४ ॥

१५--प्रभाती (राग भैरों)

उठोरे सुज्ञानी जीव, जिनगुन गावोरे ॥उठोरे०॥टेक॥ निशि तो नशाय गई, भानुको उद्योत भयो, ध्यानको लगावो प्यारे, नींदको भगावोरे ॥ उठो रे० ॥ १ ॥ भवबन-चौरासी वीच, भ्रमतो फिरत मीच, मोहजाल फंद फंस्यो, जन्म मृत्यु पावोरे ॥ उठो रे० ॥ २ ॥ आरज पृथ्वीमें आय, उत्तम नरजन्म पाय, श्रावककुलको लहाय, मुक्ति क्यों न जावोरे ॥ उठो रे० ॥३॥ विषयनि राचि राचि, बहुविधि पाप सांचि, नरकनि जाय क्यों, अनेक दुःख पावोरे ॥ उठो रे० ॥ ४ ॥ परको मिलाप त्यागि, आतमके काज लागि,

सुबुधि बतावै गुरु, ज्ञान क्यों न लावोरे ॥ उठो रे० ॥५॥

१६-प्रभाती (राग वसंत)

भोर भयो भज श्रीजिनराज, सफल होहिं तेरे सब काज ॥ टेक ॥ धन संपति मनवांछित भोग । सब विधि जान बने संजोग ॥ भोर० ॥ १ ॥ कल्पवृक्ष ताके घर रहै । कामधेनु नित सेवा वहै । पारस चिंतामनि समुदाय, हितसौं आय मिलै सुखदाय ॥ भोर० ॥ २ ॥ दुर्लभतैं सुलभ्य ह्वै जाय, रोग शोग दुख दूर पलाय । सेवा देव करै मनलाय, विघन उलटि मंगल ठहराय ॥ भोर० ॥ ३ ॥ डायनि भूत पिशाच न छलै । राजचोरको जोर न चलै ॥ जस आदर सौभाग्य प्रकाश, द्यानत सुरगमुकतिपदवास ॥ भोर० ॥

१७-प्रभाती (राग भैरों)

भोर भयो सब भविजन मिलकर, जिनवर पूजन आवो (जावो), अशुभ मिटावो पुण्य बढावो नैनन नींद गमावो ॥ भोर० ॥ टेक ॥ तनको धोय धारि उजरे पट, शुद्ध जलादिक लावो । वीतराग छवि हरखि निरखिकै, आगमोक्त गुन गावो ॥ भोर भयो० ॥ १ ॥ शास्तर सुनो भनो जिनवानी, तपसंजम उपजावो । धरि सरधान देवगुरु आगम, सात तत्त्व रुचि लावो ॥ भोग भयो० ॥ २ ॥ दुःखित जनकी दया ल्याय उर, दान चारविधि द्यावो । रागदोष तजि भजि जिनपदको, 'बुधजन' शिवपद पावो ॥ भोर० ॥

१८–आराधना पाठ

(स्नान करते समय बोलना चाहिये)

मैं देव नित अरहंत चाहूं, सिद्धका सुमिरन करौं। मै सूर गुरुमुनि तीनिपद ये, साधुपद हिरदय धरौ॥ मै धर्म करुणामय जु चाहूं, जहां हिंसा रंच ना। मै शास्त्र ज्ञान विराग चाहूं, जासुमें परपंचना॥ १॥ चौबीस श्रीजिनदेव चाहू, और देव न मन वसै। जिन वीस क्षेत्रविदेह चाहूं, वंदिते पातक नसै॥ गिरनार शिखर समेद चाहूं, चंपापुर पावापुरी। कैलाश श्रीजिनधाम चाहूं, भजत भाजै भ्रमजुरी॥ २॥ नव-तत्त्वका सरधान चाहूं, और तत्त्व न मन धरौ। षट्द्रव्यगुन परजाय चाहूं, ठीक तासों भय हरों॥ पूजा परम जिनराज चाहूं, और देव न हूं सदा। तिहुंकालकी मै जाप चाहूं, पाप नहिं लागै कदा॥ ३॥ सम्यक्त दर्शन ज्ञान चारित, सदा चाहूं भावसों। दशलक्षणी मै धर्म चाहूं, महा हरख उछावसों। सोलह जु कारन दुख निवारण, सदा चाहूं प्रीतिसों। मैं चितअठाई पर्व चाहूं, महामंगल रीतिसों॥ ४॥ मैं वेद चारों सदा चाहूं, आदि अन्त नियाहसों। पाये धरमके चार चाहूं, अधिक चित्त उछाहसों॥ मै दान चारों सदा चाहूं, भवनवशि लाहो लहूं। अराधना मै चारि चाहूं, अन्तमें ये ही गहूं॥ ५॥ भावना बारह जु भाऊं, भाव निरमल होत हैं। मै व्रत जु बारह सदा चाहूं, त्याग भाव उद्योत हैं॥ प्रतिमा दिगंबर सदा चाहूं, ध्यान आसन सोहना। वसु-

कर्मतै मैं छुटा चाहूं, शिवलहूं जहँ मोह ना ॥ ६ ॥ मैं साधु-जनको संग चाहूं, प्रीति तिनहीसों करों। मैं पर्वके उपवास चाहूं, अवर आरंभ परिहरों। इस दुक्ख पंचमकालमाहीं, कुल शरावक मैं लह्यो। अरु महाव्रत धरिसकों नाहीं, निबल तन मैंने गह्यो ॥ ७ ॥ आराधना उत्तम सदा, चाहूं सुनो जिनरायजी। तुम कृपानाथ अनाथ 'द्यानत' दया करना न्याय जी ॥ वसुकर्मनाश विकाश ज्ञानप्रकाश मोको कीजिये। करि सुगतिगमन समाधिमरन सुभक्ति चरनन दीजिये ॥ ८ ॥

१९-दृष्टाष्टकस्तोत्र

(दर्शनार्थ जातेहुये जबसे जिनमंन्दिर दीखने लगै तबसे इसका पाठ करना प्रारंभ कर दे)

दृष्टं जिनेंद्रभवनं भवतापहारी भव्यात्मनां विभवसंभव-भूरिहेतुः। दुग्धाब्धिफेनधवलोज्ज्वलकूटकोटीनद्धध्वज-प्रकरराजिविराजमानं ॥१॥ दृष्टं जिनेंद्रभवनं भुवनैकलक्ष्मी-धामर्द्धिवर्द्धितमहामुनिसेव्यमानं। विद्याधरामरवधूजनमुक्त-दिव्यपुष्पांजलिप्रकरशोभितभूमिभागं ॥ २ ॥ दृष्टं जिनेन्द्र-भवनं भवनादिवासविख्यातनाकगणिकागणगीयमानं। नानामणिप्रचयभासुररश्मिजालव्यालीढनिर्मलविशालगवा-क्षजालं ॥३॥ दृष्टं जिनेंद्रभवनं सुरसिद्धयक्षगंधर्वकिन्नरकरा-र्पितवेणुवीणा। संगीतमिश्रितनमस्कृतधारनादैरापूरितांबर-तलोरुदिगंतरालं॥४॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विलसद्विलोलमाला-

कुलालिललितालकविभ्रमाणं। माधुर्यवाद्यलयनृत्यविलासनीनां लीलाचलद्वलयनूपुरनादरम्यं ॥५॥ दृष्टं जिनेंद्रभवनं मणिरत्नहेमसारोज्ज्वलैः कलशचामरदर्पणाद्यैः। सन्मंगलैः सततमष्टशतप्रभेदैर्विभ्राजितं विमलमौक्तिकदामशोभं ॥६॥ दृष्टं जिनेद्रभवनं वरदेवदारुकर्पूरचंदनतरुष्कसुगंधिधूपैः। मेघायमानगगने पवनाभिघातचंचचलद्विमलकेतनतुंगशालं ॥७॥ दृष्टं जिनेंद्रभवनं धवलातपत्रच्छायानिमग्नतनुयक्षकुमारवृन्दैः। दोधूयमानसितचामरपंक्तिभासं भामंडलद्युतियुतप्रतिमाभिरामं ॥ ८ ॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विविधप्रकारपुष्पोपहाररमणीयसुरत्नभूमिः। नित्यं वसंततिलकाश्रियमादधानं सन्मगलं सकलचंद्रमुनींद्रवंद्यं ॥ ९ ॥ दृष्टं मयाद्यमणिकांचनचित्रतुंगसिंहासनादिजिनबिंबविभूतियुक्तं। चैत्यालयं यदतुलं परिकीर्तितं मे सन्मंगलं सकलचंद्रमुनींद्रवंद्यं ॥१०॥इति॥

२०—मंदिरजीमें प्रवेश करनेकी विधि

मंदिरजीके वेदीगृहमें प्रवेश करते ही "ओं जय जय जय, निःसहि निःसहि निःसहि" इसप्रकार उच्चारण कर नीचे लिखा अद्याष्टक स्तोत्र बोलकर दर्शनपाठादि बोले।

२१—अद्याष्टक स्तोत्र।

अद्य मे सफलं जन्म नेत्रे च सफले मम। त्वामद्राक्षं यतो देव हेतुमक्षयसंपदः ॥ १ ॥ अद्य संसारगंभीरपारावारः सुदुस्तरः। सुतरोऽयं क्षणेनैव जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ २ ॥ अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमले कृते। स्नातोहं धर्मती-

र्थेषु जिनेंद्र तव दर्शनात्॥२॥अद्य मे सफलं जन्म प्रशंस्तं सर्व-मंगलं। संसारार्णवतीर्णोऽहं जिनेंद्र तवदर्शनात्॥४॥अद्यकर्माष्ट-कज्वालं विधूतं सकषायकं। दुर्गतेर्विनिवृत्तोहं जिनेंद्र तव दर्शनात् ॥५॥अद्य सौम्या ग्रहाः सर्वे शुभाश्चैकादशस्थिताः। नष्टानि विघ्नजालानि जिनेंद्र तव दर्शनात्॥६॥अद्य नष्टो महाबंधः कर्मणां दुःखदायकः। सुखसंगं समापन्नो जिनेद्र तव दर्शनात् ॥७॥अद्य कर्माष्टकं नष्टं दुःखोत्पादनकारकं। सुखांभोधि-निमग्नोऽहं जिनेंद्र तव दर्शनात् ॥८॥ अद्य मिथ्यांधकारस्य हंता ज्ञानदिवाकरः। उदितो मच्छरीरेस्मिन् जिनेन्द्र तव-दर्शनात् ॥९॥ अद्याहं सुकृती भूतो निर्धूताशेषकल्मषः। भुवनत्रयपूज्योऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ १० ॥ अद्याष्टकं पठेद्यस्तु गुणानंदितमानसः। तस्य सर्वार्थसंसिद्धिर्जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ११ ॥ इति ॥

२२—नमस्कारमंत्र और दर्शनपाठ।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

चत्तारि मंगलं—अरहंत मंगलं। सिद्ध मंगलं। साहू मंगलं। केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥ १ ॥ चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंत लोगुत्तमा। सिद्ध लोगुत्तमा। साहू लोगुत्तमा। केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ॥२॥ चत्तारि शरणं पव्वज्जामि—अरहंतसरणं पव्वज्जामि। सिद्धशरण पव्व-

ज्जामि। साहुसरणं पवज्जामि। केवलिपण्णत्तो धम्मोसरणं पव्वज्जामि। ओं ह्रौ ह्रौं स्वाहा॥

वर्तमान चौबीस तीर्थंकरोंके नाम (कवित्त)

ऋषभ अजित संभव अभिनंदन, सुमति पद्म सुपास प्रभुचंद। पुहपदंत शीतल श्रेयांस प्रभु, वासुपूज्य प्रभु विमल सुछंद॥ स्वामि अनंत धर्मप्रभु शांति सु, कुंथु अरह जिन मल्लि अनंद। मुनिसुव्रत नमि नेमि पास, वीरेश सकल वंदों सुखकंद॥ १॥ श्रीऋषभः १अजितः२संभवः३ अभिनंदनः४सुमतिः५पद्मप्रभः६सुपार्श्वः७चंद्रप्रभः८पुष्पदंतः ९शीतलः१०श्रेयांसः११ वासुपूज्यः१२ विमलः १३ अनंतः १४धर्मः१५ शांतिः१६ कुंथुः१७अरः१८मल्लिः १९ मुनिसुव्रतः २० नमिः २१नेमिः २२पार्श्वनाथः २३ महावीरः २४ इति वर्तमानकालसंबंधिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमोनमः॥

इसप्रकार बोलकर साष्टांग नमस्कार करना चाहिये। नमस्कारके पश्चात् पूजनकेलिये चावल चढ़ाना हो, तो नीचे लिखे पद्य तथा मंत्र पढ़कर चढ़ावे।

यह भवसमुद्र अपार तारण,के निमित्त सुविधि ठई। अति दृढ परमपावन जथारथ भक्तिवर नौका सही॥ उज्ज्वल अखंडित सालि तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूं। अरहंत श्रुत सिद्धांत गुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं॥१॥ तंदुल सालि सुगंध अति, परम अखंडित बीन। जासों पूजों परमपद, देवशास्त्रगुरु तीन॥ १॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

यदि पुष्पोंसे पूजन करना हो तो नीचे लिखे पद्य और मंत्र पढ़कर चढ़ावे ।

जे विनयवंत सुभव्य उर अंबुज-प्रकाशन भान हैं ॥ जे एकमुखचारित्र भाषत, त्रिजगमाहिं प्रधान हैं । लहि कुंद-कमलादिक पहुप, भव भव कुवेदनसों बचूं । अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥ २ ॥ विविधभांति परिमलसुमन, भ्रमर जास आधीन । तांसों पूजौं परमपद, देवशास्त्रगुरु तीन ॥ २ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

यदि किसीको लौंग, बादाम इलायची या कोई प्रासुक फल चढ़ाना हो तो नीचे लिखे पद्य और मंत्र पढ़कर चढ़ावे ।

लोचन सुरसना घ्राण उर उत्साहके करतार हैं । मोपै न उपमा जाय वरणी, सकल फल गुण सार हैं ॥ सो फल चढ़ावत अर्थपूरन, सकल अम्रतरस सचूं । अरहंत श्रुत सिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥ ३ ॥ जे प्रधान फलफलविषै, पंचकरण रसलीन । जासौं पूजौं परमपद, देवशास्त्रगुरु तीन ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

यदि किसीको अर्घ चढ़ाना हो, तो नीचे लिखे पद्य व मंत्र बोलकर चढाना चाहिये।

जल परम उज्वल गंध अक्षत पुष्प चरु दीपक धरूं। वर धूप निर्मल फल विविध, बहु जनमके पातक हरूं। इह भांति अर्घ चढ़ाय नित भवि करत शिवपंकति मचूं। अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥ ४ ॥ वसुविधि अर्घ सँजोयके, अतिउछाह मनकीन। जासों पूजौं परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

२३—दर्शनदशक

छप्पय

देखे श्रीजिनराज, आज सब विघन नशाये। देखे श्रीजिनराज, आज सब मंगल आये ॥ देखे श्रीजिनराज काज करना कछु नाहीं। देखे श्रीजिनराज, हौंस पूरी मनमांही ॥ तुम देखे श्रीजिनराज पद, भौजल अंजुलिजल भया। चिंतामनिपारसकल्पतरु, मोहसबनिसों उठि गया ॥ १ ॥

देखे श्रीजिनराज, भाज अघ जाहिं दिसंतर। देखे श्रीजिनराज, काज सब होंय निरंतर ॥ देखे श्रीजिनराज, राज मनवांछित करिये। देखे श्रीजिनराज नाथ. दुख कबहुं न भरिये ॥ तुम देखे श्रीजिनराजपद, रोमरोम सुख पाइये। धनि आज दिवस धनि अब घरी, माथ नाथकों नाइये ॥२॥

धन्य धन्य जिनधर्मकर्मकौ छिनमें तोरै। धन्य धन्य

जिनधर्म परमपदसौ हित जोरै ॥ धन्य धन्य जिन-धर्म भर्मको मूल मिटावै। धन्य धन्य जिनधर्म शर्मकी राह बतावै ॥ जग धन्य धन्य जिनधर्म यह, सो परगट तुमने किया। भविखेत पापतपतपतकौ, मेघरूप ह्वै सुख दिया ॥ ३ ॥

तेजसूरसम कहूं, तपत दुखदायक भानी। कांति चंदसम कहूं कलंकित मूरति मानी। वारिधिसम गुण कहूं, खार-में कौन भलप्पन ॥ पारससम जस कहूं, आपसम करै न परतन ॥ इन आदि पदारथ लोकमें, तुमसमान क्यों दीजिये। तुम महाराज अनुपमदसा, मोहि अनूपम कीजिये ॥ ४ ॥ तब विलंब नहिं कियो, चीर द्रोपदिको वाढ्यो। तब विलंब नहिं कियो, सेठ सिंहासन चाढ्यो ॥ तब विलंब नहिं कियो, सीय पावकतै टारयो। तब विलंब नहिं कियो, नीर मातंग उवारयो ॥ इहिविधि अनेकदुख भगतके, चूर दूर किय सुख अवनि। प्रभु मोहि दुःख नासनिविषै, अब विलंब कारण कवन ॥ ५ ॥

कियो भौनतै गौन, मिटी आरति संसारी। राह आन तुम ध्यान, फिकर भाजी दुखकारी। देखे श्रीजिनराज, पाप मिथ्यात विलायो। पूजा श्रुति बहुभगति, करत सम्यकगुन आयो। इस मारवाडसंसारमें कल्पवृक्ष तुम दरश है। प्रभु मोहि देहु भौ भौ विषै, यह वांछा मन सरस है ॥ ६ ॥

जै जै श्रीजिनदेव, सेवतुमरी अघनाशक। जै जै श्रीजिन-

देव भेव षटद्रव्य प्रकाशक ॥ जय जय श्रीजिनदेव, एक जो ध्यानी ध्यावै। जै जै श्री जिनदेव, टेव अहमेव मिटावै। जै जै श्रीजिनदेव प्रभु, हेय करमरिपु दलनकौ। हूजै सहाय सँघ-रायजी, हम तयार सिवचलनकौ ॥

जै जिनंद आनंदकंद, सुरवृंदवंद्यपद। ज्ञानवान सब जान, सुगुन मनिखान आनपद ॥ दीनदयाल कृपाल, भविक भोजाल निकालक। आप बूझ सब सूझ, गूझ नहिं बहुजन पालक। प्रभु दीनबंधु करुनामयी, जगउधरन तारनतरन। दुखरासनिकास स्वदासकौं, हमैं एक तुमही सरन ॥८॥

देखनीक लखिरूप, वंदिकरि वंदनीक हुव। पूजनीक पद पूज, ध्यानकरि ध्यावनीक ध्रुव ॥ हरष बढाय बजाय, गाय जस अंतरजामी। दरब चढाय अघाय, पाय संपति निधि स्वामी ॥ तुमगुण अनेक मुख एकसों कौन भांति बरनन करौं। मनवचनकायबहुप्रीतिसौं, एक नामहीसौं तरौं ॥९॥

चैत्यालय जो करै, धन्य सो श्रावक कहिये। तामैं प्रतिमा धरै, धन्य सो भी सरदहिये ॥ जो दोनों विस्तरै, संघनायक ही जानौ। बहुत जीवकौ धर्म,-मूलकारन सरधानौ ॥ इस दुखमकाल विकरालमें, तेरो धर्म जहां चलै। हे नाथ काल चौथो तहां, ईति भीति सबही टलै ॥ १० ॥

दर्शन दशक कवित्त, चित्तसों पढै त्रिकालं। प्रीतम सन-मुख होय, खोय चिंता गृहजालं॥ सुखमें निसिदिन जाय, अंत सुरराय कहावै। सुर कहाय शिव पाय, जनम मृति

जरा मिटावै ॥ धनि जैनधर्म दीपक प्रगट, पाप तिमिर छयकार है। लखि साहिबराय सुआँखसों, सरधातारनहार है ॥ ११ ॥ इति।

२४-दर्शनस्तुति

छप्पय

तुव जिनेन्द्र दिट्ठियो, आज पातक सब भज्जे। तुव जिनंद दिट्ठियो, आज वैरी सब लज्जे ॥ तुव जिनंद दिट्ठियो, आज मैं सरवस पायो। तुव जिनेंद्र दिट्ठियौ आज चिंतामणि आयौ ॥ जै जै जिनंद त्रिभुवन तिलक आज काज मेरो सरचो। कर जोरि भविक विनती करत, आज सकल भवदुख टरचो ॥ १ ॥ तुव जिनंद मम देव सेव मैं तुमरी करिहौं। तुव जिनिंद मम देव, नाथ तुम हिरदै धरिहौं। तुव जिनंद मम देव, तुही साहिब मै बंदा। तुव जिनंद मम देव, मही कुमुदनि तुम चंदा ॥ जै जै जिनंद भवि कमल रवि, मेरो दुःख निवारिकै। लीजै निकाल भव जालतैं, अपनो भक्त विचारकै ॥ २ ॥ इति ॥

२५-श्रीदर्शनपच्चीसी

तुम निरखत मुझको मिली, मेरी संपति आज। कहां चक्रवर्तिसंपदा, कहां स्वर्ग साम्राज ॥ १ ॥ तुम वदत जिनदेवजी, नित नव मंगल होय। विघ्न कोटि ततछिन टरै, लहहिं सुजस सब लोय ॥ २ ॥ तुम जाने विन नाथजी, एक स्वासके माहिं। जन्ममरण अठदश किये, साता पाई

नाहिं ॥ ३ ॥ अन्य देव पूजत लहे, दुःख नरकके वीच। भूखप्यास पशुगति सही, करयो निरादर नीच॥ ४॥ नाम उचारत सुख लहै, दर्शनसों अघ जाय। पूजत पावै देव पद, ऐसे हैं जिनराय ॥ ५ ॥ वंदत हूं जिनराज मैं, धर उर समताभाव। तनधनजन—जगजालतै, धर विरागताभाव ॥ ६ ॥ सुनो अरज हे नाथ जी, त्रिभुवनके आधार। दुष्टकर्मका नाशकर, वेगिकरो उद्धार ॥ ७ ॥ जाचत हूं मैं आपसों मेरे जियके माहिं। राग रोषकी कल्पना, क्यों हू उपजै नाहिं॥ अति अद्भुत प्रभुता लखी, वीतरागतामाहिं। विमुख होहिं ते दुख लहैं, सन्मुख सुखी लखाहिं ॥९॥ कलमल कोटिक नहिं रहैं, निरखत ही जिनदेव। ज्यों रवि ऊगत जगतमें, हरै तिमिर स्वयमेव ॥ १० ॥ परमाणू पुद्गलतणी, परमातमसंजोग। भई पूज्य सब लोकमै, हरै जन्मका रोग ॥११॥ कोटि जन्ममै कर्म जो, बांधेहुते अनंत। ते तुम छवी विलोकितैं, छिनमै हो है अंत ॥ १२ ॥ आन नृपति किरपा करैं, तब कछु दे धन धान। तुम प्रभु अपनें भक्तको, करल्यो आप समान ॥१३॥ यंत्र मंत्र मणि औषधि, विषहर राखत प्रान। त्यों जिनछवि सब भ्रम हरै, करै सर्व परधान ॥१४॥ त्रिभुवनपति हो ताहितैं, छत्र विराजै तीन। अमरा नाग नरेशपद, रहैं चरन आधीन ॥ १५ ॥ भवि निरखत भव आपने, तुव भामंडल वीच। भ्रम मेटै समता गहै, नाहिं लहै गति नीच ॥१६॥ दोइ ओर ढोरत अमर,

चौसठ चमर सफेद । निरखत भविजनका हरै, भव अनेक-का खेद ॥१७॥ तरु अशोक तुव हरत है, भवि जीवनका शोक। आकुलता कुल मेटिकैं, करै निराकुल लोक ॥१८॥ अंतर बाहिर परिगहन, त्यागा सकल समाज । सिंहासनपर रहत हैं, अंतरीक्ष जिनराज ॥१९॥ जीत भई रिपुमोहतैं, यश सूचत है तास। देव दुंदुभिनके सदा, बाजे बजैं अकाश ॥२०॥ विन अक्षर इच्छारहित, रुचिर दिव्यध्वनि होय। सुरनरपशु समझैं सबै, संशय रहै न कोय ॥२१॥ बरसत सुरतरुके कुसुम, गुंजत अलि चहुं ओर । फैलत सुजस सु-वासना, हरषत भवि सब ठौर ॥२२॥ समुद बाघ अरु रोग अहि, अर्गल बँध संग्राम । विघ्न विषम सबही टरैं, सुमरत ही जिननाम॥२३॥ सिरीपाल चंडाल पुनि, अंजन भील-कुमार । हाथी हरि अहि सब तरे, आज हमारी बार ॥२४॥ बुधजन यह विनती करै, हाथ जोड शिर नाय । जबलों शिव नहिं होय तुव, भक्ति हृदय अधिकाय ॥२५॥

इसप्रकार एक या दो कोई भी स्तुति पढकर पुनः साष्टांग नमस्कार करना चाहिये। तत्पश्चात् नीचे लिखा श्लोका पढकर गंधोदक मस्तकपर डालना तथा ललाट हृदयादि उत्तम अंगोंमें भी लगाना चाहिये।

२६-गंधोदक लेनेका मंत्र।

निर्मलं निर्मलीकरं, पवित्रं पापनाशकं। जिन गंधोदकं वंदे, कर्माष्टकविनाशकं ॥ १ ॥ निर्मलसे निर्मल अती, अघना-शक सुखसीर। बंदू जिनअभिषेककृत, यह गंधोदक नीर॥२॥

२७–आशिका लेनेका दोहा।

श्रीजिनवरकी आशिका, लीजै शीश चढाय।
भव भवके पातक कटैं, दुःख दूर हो जांय॥

तत्पश्चात् नीचे लिखे दो कवित्त पढकर जहां शास्त्रजी विराजमान हों वहां शास्त्रजीको (जिनवाणीको) साष्टांग नमस्कार करके शास्त्रजी सुनना चाहिये अथवा थोड़ी बहुत किसीभी शास्त्रकी स्वाध्याय करना चाहिये।

२८–शास्त्रजीको नमस्कार करनेके कवित्त।

वीर हिमाचलतैं निकरी, गुरु गौतमके मुखकुंड ढरी है। मोहमहाचल भेद चली, जगकी जडतातप दूर करी है॥ ज्ञान पयोधिनिमाहिं रली, बहु भंगतरंगनिसों उछरी है। ता शुचि शारद गंगनदी प्रति, मैं अंजुलिकर शीश धरी है ॥१॥ या जगमंदिरमें अनिवार अज्ञान अंधेर छयो अति भारी। श्रीजिनकी धुनि दीपशिखासम, जो नहिं होत प्रकाशन हारी॥ तो किसभांति पदारथ पांति, कहां लहते, रहते अविचारी। या विधि संत कहैं धनि हैं, धनि हैं जिनवैन बडे उपकारी॥ २॥

२९–धूप खेनेका मंत्र।

दुष्टाष्टकर्मेन्धनपुष्टजालसंधूपने भासुर धूमकेतून्।
धूपैर्विधूतान्यसुगंधगंधैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं॥ २॥

दोहा-अगनिमांहि परिमलदहन, चंदनादि गुण लीन।
जासौं पूजूं परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

३०-दौलतरामकृत स्तुति।

दोहा-सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्दरसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरिरज रहसविहीन॥

जय वीतराग विज्ञानपूर। जय मोहतिमिरको हरनसूर॥ जय ज्ञान अनन्तानन्तधार। दृग सुख बीरजमण्डित अपार ॥१॥ जय परमशांति मुद्रा समेत। भविजनको निज अनुभूति हेत॥ भविभागनवसजोगेवशाय। तुमधुनि ह्वै सुनि विभ्रम नसाय ॥३॥ तुम गुण चिंतत निजपरविवेक। प्रगटै विघटै आपद अनेक॥ तुम जगभूषण दूषणवियुक्त। सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त ॥४॥ अविरुद्ध शुद्ध चेतनस्वरूप। परमात्म परम पावन अनूप॥ शुभअशुभविभाव अभाव कीन स्वाभाविकपरिणतिमयअछीन ॥ ५ ॥ अष्टादशदोषविमुक्त धीर। सुचतुष्टयमय राजत गभीर॥ मुनिगणधरादि सेवत महंत। नवकेवललब्धिरमा धरंत ॥ ६ ॥ तुम शासन सेय अमेय जीव। शिव गए जाहिं जैहैं सदीव। भवसागरमैं दुख छार वारि। तारनको अवरन आप टारि ॥ ७ ॥ यह लखि निज दुखगदहरणकाज। तुमही निमित्तकारण इलाज, जाने तातैं मैं शरण आय। उचरों निज दुख जो चिर लहाय

॥८॥ मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप। अपनाये विधिफल पुण्य पाप। निजको परको करता पिछान। परमें अनिष्टता इष्ट ठान ॥९॥ आकुलित भयो अज्ञान धारि। ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि॥ तनपरणपतिमें आपो चितार। कवहूं न अनुभयो स्वपदसार ॥ १० ॥ तुमको विन जाने जो कलेश। पाये सो तुम जानत जिनेश। पशुनारकनरसुरगतिमझार। भव धर धर मर्यो अनंत बार ॥११॥ अब काललब्धिवलतैं दयाल। तुम दर्शन पाय भयो खुश्याल ॥ मन शांत भयो मिटि सकल द्वंद। चाख्यो स्वातमरस दुखनिकंद ॥१२॥ तातै अब ऐसी करहु नाथ। विछुरै न कभी तुअ चरण साथ॥ तुम गुणगणको नहिं छेव देव। जग तारनको तुअ विरद एव ॥१३॥ आतमके अहित विषय कषाय। इनमें मेरी परिणति न जाय॥ मै रहूं आपमें आप लीन। सो करो होउ ज्यों निजाधीन ॥१४॥ मेरे न चाह कछु और ईश। रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश ॥ मुझ कारजके कारन सु आप। शिव करहु, हरहु मम मोहताप ॥१५॥ शशि शांतकरन तपहरन हेत। स्वयमेव तथा तुम कुशल देत॥ पीयतपीयूष ज्यों रोग जाय। त्यों तुम अनुभवतें भव नशाय ॥१६॥ त्रिभुवन तिहुंकाल मंझार कोय। नहिं तुम विन निज सुखदाय होय ॥ मो उर यह निश्चय भयो आज। दुखजलधि उतारन तुम जिहाज॥१६॥

दोहा--तुमगुणगणमणि गणपती, भणत न पावहिं पार।
'दौल' स्वल्पमति किम कहै, नमूं त्रियोग संभार॥

३१–बुधजनकृत स्तुति।

प्रभु पतितपावन मैं अपावन, चरण आयो शरणजी। यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरनजी॥ तुम ना पिछान्या आनमान्या, देव विविध प्रकारजी। या बुद्धिसेती निज न जाण्या, भ्रम गिण्या हितकारजी ॥ १ ॥ भवविकट वनमें करम वैरी, ज्ञानधन मेरो हरयो। तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्टगति धरतो फिरयो॥ धन घड़ी यो धन दिवस योही, धन जनम मेरो भयो। अब भाग मेरो उदय आयो, दरश प्रभुको लखि लयो ॥२॥ छवि वीतरागी नगनमुद्रा, दृष्टि नासापै धरै। वसु प्रातिहार्य अनन्त गुणयुत, कोटि रवि छविको हरै॥ मिटगयो तिमिर मिथ्यात मेरो, उदयरवि आतम भयो। मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रङ्क चिन्तामणि लयो ॥३॥ मैं हाथ जोड़ नवाय मस्तक, वीनऊं तव चरनजी सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनो तारन तरनजी॥ जाचूं नहीं सुरवास पुनि नरराज परिजन साथजी। "बुध" जाचहूं तुव भक्ति भव भव दीजीये शिवनाथजी ॥ ४ ।'

३२–भागचन्द्रकृत स्तुति (१)

दोहा—विश्वभाव व्यापी तदपि, एक विमल चिद्रूप।
ज्ञानानंदमयी सदा, जयवंतो जिनभूप ॥ १ ॥

छंद चाल। (१४ मात्रा)

सफली मम लोचनद्वंद। देखत तुमको जिनचंद॥

मम तन मन शीतल एम । अम्रतरस सींचत जेम ॥ २ ॥ तुम बोध अमोघ अपारा। दर्शन पुनि सर्व निहारा ॥ आनंद अतिंद्रिय राजै ॥ बल अतुल स्वरूप न त्याजै ॥ ३ ॥ इत्यादिक स्वगुन अनंता। अंतर्लक्ष्मी भगवंता ॥ बाहिज विभूति बहु सोहै । वरनन समर्थ कवि को है ॥ ४ ॥ तुम वृच्छ अशोक सुस्वच्छ । सब शोकहरनको दच्छ॥ तहँ चंचरीक गुंजारै । मानो तुव स्तोत्र उचारै ॥ ५ ॥ शुभरत्न मयूष विचित्र । सिंहासन शोभ पवित्र ॥ तहँ वीतराग छवि सोहै । तुम अंतरीक्ष मनमोहै ॥६॥ वर कुन्दकुन्द-अवदात। चामर व्रज सर्व सुहात ॥ तुम ऊपर मघवा ढारैं । धरि भक्ति-भाव अघटारैं ॥ ७ ॥ मुक्ताफल माल समेत । तुम ऊर्ध्व छत्रत्रयसेव ॥ मानो तारान्वित चंद । त्रयमूर्तिधरी दुतिवृन्द ॥८॥ शुभ दिव्य पटह बहु बाजै । अतिशयजुत अधिक विराजै ॥ तुमरौ जस घोकै मानौ । त्रैलोक्यनाथ यह जानौ ॥९॥ हरिचंदन सुमन सुहाये । दशदिशि सुगंध महकाये ॥ अलि-पुंज विगुंजत जामैं । शुभ वृष्टि होत तुम सामैं ॥ १० ॥ भामंडलदीप्ति अखंड । छिप जात कोटिमार्तंड ॥ जग-लोचनको सुखकारी । मिथ्यातमपटल निवारी ॥ ११ ॥ तुमरी दिव्यध्वनि गाजै । विन इच्छा भविहितकाजै ॥ जीवादिक तत्त्व प्रकाशी । भ्रमतम-हर सूर्यप्रकाशी ॥ १२ ॥ इत्यादि विभूति अनंत । वाहिज अतिशय अरहंत ॥ देखत मम भ्रमतम भागा । हित अहित

ज्ञान उर जागा ॥ १३ ॥ तुम सब लायक उपगारी । मैं दीन दुखी संसारी ॥ तातैं सुनिये यह अरजी । तुम शरन लियौ जिनवरजी ॥ १४ ॥ मै जीवद्रव्य विन अंग । लाग्यौ अनादि विधि संग ॥ तास निमित पाय दुख पाये । हम मिथ्यातादि महाये ॥ १५ ॥ निजगुन कबहूं नहिं भाये । सब परपदार्थ अपनाये ॥ रति अरति करी सुखदुख मैं ॥ ह्वैकरि निजधर्मविमुख मैं ॥१६॥ परचाह दाह नित दाह्यो । नहिं शांतिसुधा अवगाह्यो ॥ प्रभु नारकनरस्वरतिगमें । चिर भ्रमत भयौ भ्रममतमें ॥ १७ ॥ कीने बहु जामन मरना । नहिं पायौ सांचौ शरना ॥ अब भाग उदय मो आयौ । तुम दर्शन निर्मल पायौ ॥ १८ ॥ अति शांत भयो उर मेरो । बाढ्यो उछाह शिवकेरो ॥पर विषयरहित आनंद । निज रस चाख्यो निरद्वंद ॥ १९ ॥ मुझ काजतने कारन हो । तुम देव तरन तारन हो ॥ तातै ऐसी अब कीज्यो । तुम चरन भक्ति मोहि दीज्यो ॥ २० ॥ दृगज्ञान चरन परिपूर । पाऊं निश्चय भवचूर ॥ दुखदायक विषय कषाय । इनमै परनति नहिं जाय ॥२१॥ सुरराज समाज न चाहौं । आतम समाधि अवगाहौं ॥ अरु इच्छा हो मनमानी । पूरौ सब केवलज्ञानी ॥ २२ ॥

दोहा—गनपति पार न पावहीं, तुमगुनजलधि विशाल ।
'भागचंद' तुव भक्ति ही' करै हमें वाचाल ॥ २३ ॥

३३—भागचन्द्रकृत स्तुति (२)

हरिगीतिका (२८ मात्रा)

तुम परमपावन देव जिन अरि,-रजरहस्य विनाशनं। तुम ज्ञान-दृग जलवीच त्रिभुवन, कमलपत प्रतिभासनं॥ आनंद निजज अनंत अन्य, अचिंत संतत परनये। वल अतुलकलित स्वभावतैं नहिं, खलितगुन अमिलित थये॥ सव रागरुषहन परम श्रवन, स्वभाव घननिर्मल दशा॥ इच्छारहित भविहित खिरत वच, सुनतही भ्रमतमनशा। एकांतगहनसुदहन स्यात्पद, वहनमय निज परदया। जाके प्रसाद विषाद विन, मुनिजन सपदि शिवपद लहा॥ २॥ भूषनवसनसुमनादिविनतन, ध्यानमयमुद्रा दिपै। नासाग्र-नयन सुपलक हलय न, तेज लखि खगगन छिपै॥ पुनि वदननिरखत प्रशमजल, वरखत सुहरखतउर धरा। बुधि स्वपर परखत पुन्य आकर, कलिकलिल दरखत जरा॥३॥ इत्यादि वहिरंतर असाधारन, सुविभव निधान जी। इंद्रा-दिवंदपदारविंद, अनिंद तुम भगवान जी॥ मैं चिरदुखी परचाहतैं, तपधर्म नियत न उर धरयो॥ परदेव सेव करी बहुत, नहिं काज एकहु तहँ सरयो॥ ४॥ अब (भागचंद) उदय भयो मैं, शरन आयो तुम-तनी। इक दीजिये वरदान तुम जस, स्वपददायक बुधमनी॥ परमाहिं इष्ट-अनिष्ट-मति-तजि, मगन निजगुनमें रहौं। दृग-ज्ञान-चरन समस्त पाऊं, भागचंद, न पर चहौं॥ ५॥

३४–भूधरकृत स्तुति ।

त्रिभुवनगुरुस्वामीजी, करुनानिधिनामीजी। सुनि अंतर-जामी, मेरी वीनतीजी ॥ १ ॥ मैं दास तिहाराजी दुखिया बहु भाराजी। दुख मेटनहारा तुम जादौपतीजी ॥ २ ॥ भरम्यों संसाराजी, चिरविपति-भंडाराजी। कहिं सार न सार, चहूंगति डोलियाजी ॥ ३ ॥ दुखमेरु समानाजी, सुख सरसों-दानाजी। अब जान धरि ज्ञानतराजू तोलियाजी ॥४॥ थावर-तन पायाजी, त्रस नाम धरायाजी। कृमि कुंथु कहाया, मरि भंवरा हुवाजी ॥ पशुकाया सारीजी, नाना-विधधारीजी। जलचारी थलचारी, उडन पखेरुवाजी ॥६॥ नरकनके माहींजी, दुखओर न काहींजी। अति घोर जहां हैं, सरिता खारकीजी ॥ ७ ॥ पुनि असुर संहारैंजी, निज वैर विचारैंजी। मिल बांधै अरु मारैं, निरदय नारकीजी ॥ ८ ॥ मानुष अवतारैंजी, रह्यो गरभ मझारैंजी। रटि रोयो जनमत, विरियां मैं घनोजी ॥ ९ ॥ जोवन तन रोगीजी, कैं विरह वियोगी जी। फिर भोगी बहुविध, विरधपनाकी वेदना जी ॥ १० ॥ सुरपदवी पाईजी, रंभा उरलाईजी। तहां देखि पराई, संपति झूरियोजी ॥ ११ ॥ माला मुरझा-नीजी, जब आरति ठानी जी। थिति पूरन जानी, मरत विसूरियोजी ॥ १२ ॥ यौं दुख भव केरा जी, भुगते बहु-तेराजी। प्रभु! मेरे कहते पार न है कहीं जी ॥ १३ ॥ मिथ्यामदमाताजी, चाही नित साताजी। सुखदाता जग-

त्राता, तुम जाने नहीं जी ॥ १४ ॥ प्रभु भागनि पायेजी, गुन श्रवण सुहाये जी । तकि आया सब सेवककी, विपदा हरौंजी ॥ १५ ॥ भववास बसेराजी, फिर होय न फेराजी । सुख पावै जन तेरा, स्वामी सो करौंजी ॥ १६ ॥ तुम शरन सहाईजी, तुम सज्जन भाई । तुम माई तुम्हीं बाप दया मुझ लीजियेजी ॥१७॥ भूधर करजोरै जी, ठाढो प्रभु ओरै जी निजदास निहारौ, निरभय कीजियेजी ॥ १८ ॥

३५—भूधर कृत दर्शन स्तुति

पुलकंत नयन चकोर पक्षी, हँसत उर इंदीवरो। दुर्बुद्धि चकवी विलख विछुरी, निविड मिथ्यातम हरो ॥ आनंद अंबुधि उमगि उछरयो, अखिल आतप निरदले । जिनवदन पूरनचंद्र निरखत, सकल मनवांछित फले ॥१॥ मम आज आतम भयो पावन, आज विघ्न विनाशिया । संसारसागर नीर निवड्यो, अखिल तत्त्व प्रकाशिया ॥ अब भई कमला किंकरी मम, उभय भव निर्मल थये । दुख जरयो दुर्गति वास निवरयो, आज नव मंगल भये ॥२॥ मनहरन मूरति हेरि प्रभुकी, कौनउपमा लाइये।मम सकल तनके रौम हुलसे, हर्षओर न पाइये ॥ कल्याणकाल प्रतच्छ प्रभुको, लखैं जे सुरनर घने । हित समयकी आनंद महिमा, कहत क्यों मुखसों बने ॥३॥ भर नयन निरखे नाथ तुमको. और वांछा ना रही । मन ठठ मनोरथ भये पूरन, रंक मानों निधि लही ॥

अब होऊ भव भव भक्ति तुम्हरी, कृपा ऐसी कीजिये। कर जोर भूधरदास विनवै, यही वर मोहि दीजिये ॥४॥

३६—दुःखहरण विनती

(शैरकी रीतिमें तथा और और रागगिनियोंमें भी बनती है)

श्रीपति जिनवर करुणायतनं, दुखहरन तुमारा वाना है। मत मेरी वार अवार करो, मोहि देहु विमल कल्याना है ॥ टेक ॥ त्रैकालिक वस्तु प्रत्यक्ष लखो, तुमसौ कछु बात न छाना है। मेरे उर आरत जो वरतै, निहचै सब सो तुम जाना है ॥ अवलोक विथा मत मौन गहो, नहिं मेरा कहीं ठिकाना है। हो राजिवलोचन सोचविमोचन, मैं तुमसौ हित ठाना है ॥ श्री० ॥ १ ॥ सब ग्रन्थनिमें निरग्रंथनिने, निरधार यही गणधार कही। जिननायक ही सब लायक हैं, सुखदायक छायक ज्ञानमही ॥ यह बात हमारे कान परी, तब आन तुमारी सरन गही। क्यों मेरी वार विलंब करो, जिननाथ कहो वह बात सही ॥ श्री० ॥ २ ॥ काहूको भोग मनोग करो, काहूको स्वर्गविमाना है। काहूको नागनरेशपती, काहूको ऋद्धि निधाना है ॥ अब मोपर क्यों न कृपा करते, यह क्या अंधेर जमाना है। इनसाफ करो मत देर करो, सुखवृन्द भरो भगवाना है ॥ श्री० ॥३॥ खल कर्म मुझे हैरान किया, तब तुमसों आन पुकारा है। तुम ही समरत्थ न न्याव करो, तब वंदेका क्या चारा है ॥ खल घालक पालक बालकका नृपनीति यही जगसारा

है । तुम नीतिनिपुन त्रैलोकपती, तुमही लगि दौर हमारा है ॥ श्री० ॥४॥ जबसे तुमसे पहिचान भई, तबसें तुमहीको माना है । तुमरे ही शासनका स्वामी, हमको शरना सरधाना है ॥ जिनको तुमरी शरनागत है, तिनसौं जमराज डराना है । यह सुजस तुम्हारे सांचेका, सब गावत वेद पुराना है ॥ श्री० ॥ ५ ॥ जिसने तुमसे दिलदर्द कहा, तिसका तुमने दुख हाना है । अघ छोटा मोटा नाशि तुरत, सुख दिया तिन्हें मनमाना है ॥ पावकसों शीतल नीर किया, औ चीर बढा असमाना है । भोजन था जिसके पास नहीं, सो किया कुबेर समाना है ॥ श्री० ॥ ६ ॥ चिंतामन पारस कल्पतरू, सुखदायक ये परधाना है । तब दासनके सब दास यही, हमरे मनमें ठहराना है ॥ तुम भक्तनको सुरइंदपदी, फिर चक्रपतीपद पाना है । क्या बात कहों विस्तार बडी, वे पावै मुक्ति ठिकाना है ॥ श्री० ॥ ७ ॥ गति चार चुरासी लाखविषैं, चिन्मूरत मेरा भटका है । हो दीनबंधु करुणानिधान, अबलो न मिटा वह खटका है ॥ जब जोग मिला शिवसाधनका, तब विघन कर्मने हटका है । तुम विघन हमारे दूर करो सुख देहु निराकुल घटका है ॥ श्री० ॥८॥ गजग्राहग्रसित उद्धार लिया, ज्यों अंजन तस्कर तारा है । ज्यों सागर गोपदरूप किया, मैनाका संकट टारा है ॥ ज्यों सूलीतें सिंहासन औ, बेडीको काट बिडारा है । त्यों मेरा संकट दूर करो, प्रभु मोकूं आस तुम्हारा है ॥ श्री०

॥ ९ ॥ ज्यों फाटक टेकत पांय खुला, औ सांप सुमन कर डारा है। ज्यों खड्ग कुसुमका माल किया, बालकका जहर उतारा है ॥ ज्यों सेठ विपत चकचूरि पूर, घर लक्ष्मीसुख विस्तारा है। त्यों मेरा संकट दूर करो प्रभु, मोकूं आस तुमारा है ॥ श्री० ॥ १० ॥ यद्यपि तुमको रागादि नहीं, यह सत्य सर्वथा जाना है। चिनमूरति आप अनंतगुनी, नित शुद्धदशा शिवथाना है ॥ तद्पि भक्तनकी भीति हरो, सुख देत तिन्हे जु सुहाना है। यह शक्ति अचिंत तुम्हारी का, क्या पावै पार सयाना है ॥श्री० ॥११॥ दुखखंडन श्रीसुख-मंडनका, तुमरा प्रन परम प्रमाना है। वरदान दया जस कीरतका, तिहुंलोकधुजा फहराना है, कमलाकरजी! कमलाकरजी! करिये कमला अमलाना है। अब मेरि विथा अवलोकि रमापति, रंच न बार लगाना है ॥ श्री० ॥१२॥ हो दीननाथ अनाथहितू, जन दीन अनाथ पुकारी है। उद-यागत कर्मविपाक हलाहल, मोह विथा विस्तारी है ॥ ज्यों आप और भवि जीवनकी, ततकाल विथा निरवारी है। त्यों 'वृंदावन' यह अर्ज करै। प्रभु आज हमारी बारी है ॥१३॥

३७—अरहंतस्तुति ।

दोहा—जासु धर्मपरभावसों, संकट कटत अनंत ।
मंगलमूरति देव सो, जैवंतो अरहंत ॥ १ ॥
हे करुणानिधि सुजनको, कष्टविषै लखि लेत ।
तजि विलंब दुख नष्ट किय, अब विलंब किह हेत ॥२॥

षट्पद—तब विलंब नहिं कियो, दियो नमिको रजताचल।

तबविलंब नहिं कियो,मेघवाहन लंका थल ॥ तव विलंब नहिं कियो, सेठसुत दारिद भंजे। तव विलंब नहिं कियो, नाग-जुग सुरपद रंजे ॥ इहि चूरि भूरि दुख भक्तके, सुख पूरे शिवतियरवन। प्रभु मोर दुःखनाशनविषै, अब विलंब कारन कवन ॥३॥ तव विलंब नहिं कियो, सिया पावक जलकीन्हौं। तब विलंब नहिं कियो, चंदना श्रृंखल छीनहौ ॥ तव वि-लंब नहिं कियो, चीर द्रोपदिको बाढ्यौ। तव विलंब नहिं कियो, सुलोचन गंगा काढ्यौ ॥४॥ तव विलंव नहिं कियो, सांप कियकुसुम सुमाला। तव विलव नहिं कियो, उर्मिला सुरथ निकाला ॥ तव विलंब नहिं कियो, शीलबल फाटक खुल्ले। तव विलंब नाहिं कियो, अंजना वन मन फुल्ले ॥ इमि०॥५॥ तव विलंब नहिं कियो, शेठ सिंहासन दीन्हों। तब विलंब नहिं कियो, सिंधु श्रीपाल कढीन्हों ॥ तव विलंब नहिं कियो, प्रतिज्ञा वज्रकर्ण पल। तव विलंब नहिं कियो, सुधन्ना कढ़ि वापि थल ॥ इमि० ॥६॥ तब विलम्ब नहिं कियो, कंस भय त्रिजग उवारे। तब विलम्ब नहिं कियो, कृष्णसुत शिला उतारे ॥ तब विलम्ब नहिं कियो, खड्ग मुनिराज बचायो। तव विलम्ब नहिं कियो, नीरमातग उ-चायो ॥ इमि० ॥ टेक ॥७॥ तब विलम्ब नहिं कियो, सेठ सुत निरविष कीन्हौं। तब विलम्ब नहिं कियो, मानतुंगबंध हरीन्हौ ॥ तब विलम्ब नहिं कियो, वादि मुनिकोढ मिटायो। तब विलम्ब नहिं कियो, कुमुद जिन पास मिटायो ॥इमि०॥

॥ टेक ॥८॥ तब विलंब नहिं कियो, अंजना चोर उबारे। तब विलंब नहिं कियो, सूरवा भील सुधारे॥ तब विलंब नहिं कियो, गृद्धपक्षी सुंदर तन। तब विलंब नहिं कियो, भेक दिय सुरअद्भुतधन॥ इमि ॥९ ॥ टेक ॥ इह-विधि दुख निरवार, सारसुख प्रापति कीन्हौ। अपनो दास निहारि। भक्तवत्सल गुन चीन्हौ॥ अब विलम्ब किहि हेत, कृपाकर इहां लगाई। कहा सुनो अरदास नाहिं, त्रिभुवनके राई॥ जनवृंद सुमनवचतन, अबै गही नाथ तुम पद शरन। सुधि ले दयाल मम हालपै, कर मंगल मंगलकरन॥ १०॥

३८—जिनवचनस्तुति

हो करुणासागर देव तुमी, निरदोष तुमारा वाचा है। तुमरे वाचामें हे स्वामी, मेरा मन सांचा राचा है॥ टेक॥ बुधि केवल अप्रतिछेदविषैं, सब लोकालोक समाना है। प्रतु ज्ञेय गरास विकाश अटंक, झलाझल जोत जगाना है॥ सर्वज्ञ तुमी सबव्यापक हो, निरदोष दशा असलाना है। यह लच्छन श्रीअरहंत विना, नहिं और कहीं ठहराना है॥ हो करु० ॥१॥ धर्मादिक पंच बसै जहंलौं, वह लोकाकाश कहावै है। तिस आगें केवल एक अनंत, अलोकाकाश रहावै है॥ अवकाश अकाशविषैं गति औ, थिति धर्म अधर्म सुभावै है। परिवर्तन लच्छन काल धरै, गुणद्रव्य जिना-गम गावै है॥ हो करु० ॥२॥ इक जीवा धर्माधर्म दरब ये, मध्य असंख्यप्रदेशी है। आकाश अनंतप्रदेशी है, ब्रहमंड

अखंड अलेशी है ॥ पुग्गलकी एक प्रमाणू सो, यद्यपि वह एकप्रदेशी है। मिलनेकी सकत स्वभावीसों, होती बहु-खंध सुलेशी है ॥ हो करु०॥३॥ कालाणू भिन्न असंख अणू, मिलनेकी शक्ति न धारा है। तिसतैं कायाकी गिनतीमें नहिं काल दरबको धारा है ॥ हैं स्वयंसिद्ध पट्द्रव्य यही, इनहीका सर्व पसारा है। निर्बाध जथारथ लच्छन इनका, जिनशासनमें सारा है ॥ हो करु० ॥४॥ सब जीव अनंत-प्रमान कहे, गुन लच्छन ज्ञायकवंता है। तिसतैं जड़ पुग्गल-मूरतकी, है वर्गणरास अनंता है ॥ तिसतैं सब भावियकाल समयकी, रास अनंत भनंता है। यह भेद सुभेदविज्ञान विना, क्या औरनको दरसंता है ? ॥हो०॥५॥ इक पुग्गलकी अविभाग अणू, जितने नभमें थिति कीना जी। तितनेमहँ पुग्गल जीव अनंत, वसै धर्मादि अछीना जी ॥ अवगाहन शक्ति विचित्र यही, नभकी वरनी परवीना जी। इसही विधिसों सब द्रव्यनिमें, गुन शक्ति वसै अनकीना जी ॥ हो० ॥६॥ इक काल अणूपरतें दुतियेपर, जाति जवै गत मंदी है। इक पुग्गलकी अविभाग अणू, सो समय कही निर द्वंदी है ॥ इसतै नहिं सूच्छमकाल कोई, निरंअंश समय यह छंदी है। यातैं सब कालप्रमान बंधा, वरनी श्रुति जैति जिनंदी है ॥ हो०॥७॥ जब पुग्गलकी अविभाग अणू, अति-शीघ्र उताल चलानी है। इक समयमाहिं सो चौदह राजू। जात चली परमानी है ॥ परसै तहँ सर्वपदारथकों, क्रमसौं यह

भेद विधानी है। नहिं अंश समयका होत तहाँ यह गतिकी शक्ति बखानी है॥ हो०॥८॥ गुन द्रव्यनिके आधार रहैं, गुनमें गुन और न राजै है। न किसी गुनसों गुन और मिलै, यह और विलच्छनता जै है॥ ध्रुव वै उतपाद सुभाव लिये, तिरकाल अबाधित छाजै है। षट हानिरु वृद्धि सदीव करै, जिनवैन सुनै भ्रम भाजै है॥हो०॥९॥ जिम सागरबीच कलोल उठी, सो सागरमाहि समानी है। परजै करि सर्व पदारथमें, तिमि हानि रुवृद्धि उठानी है॥ जब शुद्ध दरब-पर दृष्टि धरै, तब भेदविकल्प नशानी है। नयन्यासनतैं बहु भेद सु तौ, परमान लिये बैमानी है॥ हो० ॥१०॥ जितने जिनवैनके मारग हैं, तितने नयभेद विभाखा हैं। एकांत-की पच्छ मिथ्यात वही, अनेकान्त गहैं सुखसाखा है॥ परमागम है सर्वग पदारथ, नय इकदेशी भाषा है। यह नय परमान जिनागमसाधित, सिद्ध करै अभिलाषा है॥हो०॥११॥ चिन्मूरतके परदेशप्रति, गुन है सु अनंत अनंता जी। न मिलै गुन आपुसमें कबहूं, सत्ता जिन भिन्न धरंताजी॥ सत्ता चिनमूरतकी सबमें, सब काल सदा वरतंताजी। यह वस्तु-सुभाव जथारथको, जिय सम्यकवंत लखंताजी॥ हो० ॥१२॥अविरोधविरोधविवर्जित धर्म,धरै सब वस्तु विराजै है। जहं भाव तहां सु अभाव वसै, इन आदि अनंत सु छाजै है॥ निरपेच्छित सो न सधै कबहूं, सापेक्षा सिद्ध समाजै है। यह अनेकांतसों कथन मथन करि, स्यादवाद धुनि गाजै

है ॥हो०॥१४॥ जिस काल कथंचित अस्ति कही, तिस काल कथंचितताहीं है। उभयातमरूप कथंचित सो, निरवाच कथंचित नाहीं है॥ पुनि अस्तिअवाच्य कथंचित त्यों, वह नास्तिअवाच्य कथाही है॥ उभयातमरूप अकथ्य कथंचित, एक ही काल सुमाही है॥ हो० ॥१४॥ यह सात सुभंग सुभावमयी, सब वस्तु अभंग सुसाधा है। परवादि विजय करिवे कहँ श्रीगुरु, स्यादहिवाद अराधा है॥ सरवज्ञप्रतच्छ परोच्छ यही, इतनो इत भेद अबाधा है। 'वृन्दावन' सेवत स्यादहिवाद, कटै जिसतैं भवबाधा है॥ हो करुणासागर देव तुमी, निर्दोष तुमारा वाचा है। तुमरे वाचामें हे स्वामी, मेरा मन सांचा राचा है॥ १५॥

३९--संकटमोचन विनती

शैर—हो दीनबंधु श्रीपति करुणानिधानजी। यह मेरी विथा क्यों न हरो बार क्या लागी॥टेक॥ मालिक हो दो जहांनके जिनराज आपही। ऐबो हुनर हमारा कुछ तुमसे छिपा नहीं॥ बेजानमें गुनाह मुझसे बन गया सही। ककरीके चोरको कटार मारिये नहीं॥ हो० ॥ १॥ दुखदर्द दिलका आपसे जिसने कहा सही। मुश्किल कहर बहरसे लिया है भुजा गही॥ जस वेद और पुरानमें प्रमान है यही। आनंदकंद श्रीजिनंद देव है तुही॥ हो० ॥ २॥ हाथीपै चढ़ी जाती थी सुलोचना सती। गंगामें ग्राहने गही गजराजकी गती॥ उस वक्तमें पुकार किया था तुम्हें सती। भय टारके

उबार लिया हे कृपापती ॥ हो० ॥ ३ ॥ पावक प्रचंड कुंडमें उमंड जब रहा। सीतासे शपथ लेनेको तब रामने कहा ॥ तुम ध्यान धार जानकी पग धारती तहां। तत्काल ही सर स्वच्छ हुआ कौल लहलहां ॥हो०॥४॥ जब चीर द्रोपदीका दुःशासनें था गहा। सबही सभाके लोग थे कहते हहा हहा ॥ उस वक्त भीर पीरमें तुमनें करी सहा। परदा ढका सतीका सुजस जक्तमें रहा ॥ हो० ॥ ५ ॥ श्रीपालको सागरविषै जब सेठ गिराया। उनकी रमासों रमनेको आया वो बेहया ॥ उस वक्तके संकटमें सती तुमको जो ध्याया। दुखदंदफंद मेटके आनंद बढाया ॥ हो० ॥ ६ ॥ हरिषेनकी माताको जहां सौत सताया। रथ जैनका तेरा चलै पीछैं यों बताया ॥ उस वक्तके अनसनमें सती तुमको जो ध्याया। चक्रीस हो सुत उसकेने रथ जैन चलाया ॥हो०॥७॥सम्यक्त- शुद्ध शीलवती चंदना सती, जिसके नगीच लगतीथी जाहिर रती रती। बेरीमें परी थी तुम्हें जब ध्यावती हती। तब वीर धीरने हरी दुखदंदकी गती ॥हो० ॥ ८ ॥ जब अंजना सतीको हुआ गर्भ उजारा। तब सासने कलंक लगा घरसे निकारा ॥ बन वर्गके उपसर्गमें तब तुमको चितारा। प्रभु भक्तव्यक्ति जानिके भय देव निवारा ॥हो०॥९॥ सोमासे कहा जो तू सती शील विशाला। तो कुंभतैं निकाल भला नाग जु काला ॥ उस वक्त तुम्हें ध्यायके सती हाथ जब डाला। तत्काल ही वह नाग हुआ फूलकी माला ॥ हो०

॥ १० ॥ जब कुष्ट रोग था हुआ श्रीपालराजको । मैना सती तब आपको पूजा इलाजको ॥ तत्काल ही सुंदर किया श्रीपाल राजको । वह राजरोग भाग गया मुक्तराजको ॥ हो० ॥ ११ ॥ जब सेठ सुदर्शनको मृषा दोष लगाया । रानीके कहे भूपने सूलीपै चढाया ॥ उस वक्त तुम्हें सेठने निज ध्यानमें ध्याया । सूलीसे उतारुस्को सिंहासनपै बिठाया ॥ हो० ॥ १२ ॥ जब सेठ सुधन्नाजीको वापीमें गिराया । ऊपर से दुष्ट फिर उसे वह मारने आया ॥ उस वक्त तुम्हे सेठने दिल अपनेमें ध्याया । तत्कालही जंजालसे तब उसको बचाया ॥ हो० ॥१३॥ इक सेठके घरमें किया दारिद्रने डेरा । भोजनका ठिकाना भि न था सांझ सबेरा ॥ उस वक्त तुम्हे सेठने जब ध्यान में घेरा । घर उसकेमें तब कर दिया लक्ष्मीका बसेरा ॥ हो० ॥१४॥ बलि वादमें मुनिराज सों जब पार न पाया । तब रातको तलवार ले शठ मारने आया । मुनिराजने निजध्यानमें मन लीन लगाया । उसवक्त हो प्रत्यक्ष तहां देव बचाया ॥ हो० ॥१५॥ जब रामने हनुमंतको गढलंक पठाया । सीताके खबर लेनेको सहसैन्य सिधाया ॥ मगबीच दो मुनिराजकी लख आगमें काया । झट वारि मूशलधारसे उपसर्ग बुझाया ॥ हो० ॥१६॥ जिननाथहीको माथ नवाता था उदारा । घेरेमें पडा था वह कुलिश करण विचारा । उस वक्त तुम्हें प्रेमसे संकटमें चितारा । रघुवीरने सब पीर तहां तुरत निवारा ॥ हो० ॥ १७ ॥ रणपाल कुंवरके पडीथी

पांव में बेरी। उस वक्त तुम्हें ध्यानमें ध्याया था सवेरी॥ तत्काल ही सुकुमालकी सब झड पडी बेरी। तुम राजकुँवर-की सभी दुखदंद निवेरी॥ हो०॥ १८॥ जब सेठके नंद-नको डसा नाग जु कारा। उस वक्त तम्हें पीरमें धर धीर पुकारा॥ ततकाल ही उस बालका विष भूरि उतारा॥ वह जाग उठा सोके मानों सेज सकारा॥हो०॥ १९॥ मुनि मानतुंगको दई जब भूपने पीरा। तालेमें किया बंद भरी लोहजँजीरा। मुनिईशने आदीशकी थुति की है गंभीरा। चक्रेश्वरी तब आनिके सब दूरकी पीरा॥हो०॥२०॥ शिव-कोटिने हट था किया सामंतभद्रसों॥ शिवपिंडकी बंदन करौं शंकों अभद्रसों॥ उस वक्त स्वयंभू रचा गुरु भावभद्र-सों। जिनचंद्रकी प्रतिमा तहां प्रगटी सुभद्रसों॥हो०॥२१॥ सूवेने तुम्हें आनिके फल आम चढाया। मेंढक ले चला फूल भरा भक्तिका भाया॥ तुम दोनोंको अभिराम स्वर्ग-धाम बसाया। हम आपसे दातारकों लख आज ही पाया॥ हो०॥ कपि स्वान सिंह नेवला अज बैल विचारे! ति-र्यंच जिन्हें रंच न था बोध चितारे। इत्यादिको सुरधाम दे शिवधाममें धारे। हम आपसे दातारको प्रभु आज निहारे।॥ हो०॥ २३॥ तुमही अनंत जंतुका भयभीर निवारा वेदोपुरानमें गुरू गणधरने उचारा॥ हम आपकी सरनागतीमें आके पुकारा। तुम हो प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष इच्छिताकारा॥हो०॥२४॥ प्रभु भक्त व्यक्त भक्त जक्त मुक्त-

के दानी । आनंद कंद वृंदको हो मुक्तके दानी ॥ मोहि दीन जान दीनबंधु पातक भानी । संसार विषम खार तार अंतरज्ञानी ॥ हो० ॥२५॥ करुणानिधान बानको अब क्यों न निहारो । दानी अनंत दानके दाता हो सँभारो॥ वृषचंद नंद वृन्दका उपसर्ग निवारो । संसार विषम खारसे प्रभु पार उतारो ॥ हो० ॥२६॥

४०—श्रीपतिस्तुतिः

दुमिला तथा द्वितोटक ।

जस गावत शारद शेष खरो, अघवंत उधारनको तुमरो । तिहिंते शरनागत आन परो, विरदावलिकी कछु लाज धरो ॥ दुखवारिधिते प्रभु पार करो, दुरितारि हरो सुखसिंधु भरो । सब क्लेश अशेष हरो हमरो, अब देख दुखी मत देर करो ॥१॥ तुमते कछु हे जिनराज गनी, नहिं दुर्लभ ऋद्धि सुसिद्धि घनी । सुरईश तथा नरईशतनी, भुवि पावत आनंद वृंद वनी ॥ अब मो दिशि देख दया करनी, अपनी विरदावलिपालि तनी । इहि वार पुकार सुनो इतनी, तजि नार उवार त्रिलोक धनी ॥२॥ अभिअंतरश्री चतुरंतरश्री, बहिरंतरश्री समवस्तृतश्री । यह श्रीपतिश्री अतिही पतिश्री, मनुजासुरश्री लखि लाजतश्री ॥ पदपंकजश्री मुनिध्यावतश्री, श्रुतशारदश्री यशगावत श्री । अब मो उर श्रीपतिराजहुश्री, चितचिंतितश्री सुखसाजहुश्री ॥ ३ ॥

४१—जिनेंद्रस्तुति।

चौपाई (१६ मात्रा)

जे जगपूज परमगुरु नामी। पतितउधारन अंतरजामी॥ दासदुखी तुम अति उपगारी। सुनिये प्रभु! अरदास हमारी ॥१॥ यह-भव-घोर-समुद्र महा है। भूधर-भ्रम-जल-पूर रहा है। अंतर दुख दुःसह बहुतेरे। ते बडवानल साहिब मेरे ॥२॥ जनमजरागदमरन जहां है। ये ही प्रबल तरंग तहां है॥ आवत विपति नदीगन जामें। मोह महान मगर इक तामें ॥३॥ तिहमुख जीव परयो दुख पावै। हे जिन! तुम विन कौन छुडावै॥ अशरनशरन अनुग्रह कीजे। यह दुख मेटि मुकति मुहि दीजे॥४॥ दीरघकाल गया विललावै। अब ये सूल सहे नहिं जावै॥ सुनियत यों जिनशासनमाहीं। पंचमकाल परमपद नाहीं॥५॥ कारन पांच मिलै जब सारे। तब शिव सेवक जाहिं तिहारे॥ तातैं यह विनती अब मेरी। स्वामी! शरण लई हम तेरी ॥६॥ प्रभु आगे चित चाह प-कासौ। भव भव श्रावककुल अभिलासौ॥ भवभव जिन आगम अवगाहौं। भवभव भक्ति चरणकी चाहौं॥७॥ भव भवमें सत संगति पाऊं। भव भव साधनके गुन गाऊं॥ परनिंदा मुख भूलि न भाखूं। मैत्रीभाव सबनसौं राखूं॥ ॥८॥ भव भव अनुभव आतमकेरा। होहु समाधिमरण नित मेरा॥ जबलों जनम जगतमें लाधौं। काल लब्धिबल लहि शिवसाधौं॥ ९॥ तबलों ये प्रापति मुझ हूजो, भक्ति प्रताप

मनोरथ पूजों ॥ प्रभु सब समरथ हम यह लोरैं । 'भूधर' अरज करत कर जोरैं ॥१०॥

४२-भूधरकृत स्तुति।

ढाल परमादी

अहो जगतगुरु एक, सुनिये अरज हमारी। तुम प्रभु! दीनदयाल, मै दुखिया संसारी ॥ इस भववनके मांहि, काल अनादि गमायौ। भ्रमत चहूं गतिमांहि, सुख नहिं दुख बहु पायो ॥ कर्म महारिपु जोर, एक न कान करैं जी। मनमानौ दुख देहिं, काहूसौं न डरैं जी ॥ कबहूं इतर निगोद, कबहू नरक दिखावैं। सुर नर पशुगतिमाहिं, बहुविधि नाच नचावैं ॥ प्रभु! इनके परसंग, भव भवमाहिं बुरे जी। जो दुख देखे देव! तुम सौं नहिं दुरे जी ॥ एक जनमकी बात, कहि न सकौं सुनि स्वामी। तुम अनंत परजाय, जानत अंतरजामी ॥ मैं तो एक अनाथ, ये मिलि दुष्ट घनेरे। कियौ बहुत बेहाल सुनियौ साहिब मेरे ॥ ज्ञान महानिधि लूटि, रंक निबल करि डारयो। इनहीं तुम मुझमाहिं, हे जिन! अंतर पारयो ॥ पाप पुण्यकी दोय, पांयनि बेडी डारीं। तनकाराग्रहमाहि, मोहि दियो दुख भारी ॥ इनको नेक बिगार, मै कछु नाहिं कियो जी। बिन कारन जगवंध, बहुविधि बैर लियोजी ॥ अब आयो तुम पास, सुन जिन सुजस तिहारौ। नीति- निपुन महाराज, कीजै न्याव हमारौ ॥ दुष्टनि देहु निकास साधुनिकौ रखि लीजै। विनवै 'भूधरदास' हे प्रभु ढील न कीजै ॥

४३—करुणाष्टक।

करुणा ल्यो जिनराज हमारी, करुणाल्यो०॥टेक॥ अहो जगतगुरु जगपतीजी, परमानंदनिधान। किंकरपर कीजै दयाजी, दीजै अविचल थान॥ हमारी०॥ १॥ भव दुखसौं भयभीत हौजी, शिवपद वांछासार। करौ दया मुझ दीनपैजी, भवबंधन निरवार॥ हमारी०॥ २॥ पर्यो विषम भवकूपमेंजी, हे प्रभु! काढौ मोहि। पतित उधारण हो तुम्हीं जी, फिर फिर विनऊँ तोहि। हमारी०॥३॥ तुम प्रभु परम दयाल होजी, अशरनके आधार। मोहि दुष्ट दुख देत हैंजी, तुमसों करहुं पुकार। हमारी०॥ ४॥ दुःखित देखि दया करैजी, गांवपती इक होय। तुम त्रिभुवनपति कर्मतैंजी क्यों न छुडावै मोय। हमारी०॥ ५॥ भव आताप तबै बुझैजी, जब राखूं उर धोय। दया सुधारक सीयराजी, तुम पद पंकज दोय॥हमारी०॥ ६॥ येहि एक मुझ वीनतीजी, स्वामी! हर संसार। बहुत धज्यौ हूं त्रासतैंजी, विलख्यो बारंबार॥ हमारी०॥ ७॥ पदमनंदिको अर्थ लैजी, अरज करी हितकाज। शरणागत भूधरतणीजी, राखहु जगपति लाज॥ हमारी०॥ ८॥

४४—जिनेंद्र स्तुति।

गीता छंद—मंगलसरूपी देव उत्तम तुमशरण्य जिनेशजी तुम अधमतारण अधम मम लखि मेट जन्मकलेशजी॥टेक॥

तुम मोह जीत अजीत इच्छातीत शर्मामृत भरे। रजनाश तुम वर भासदृग नभ ज्ञेय सब इक उडुचरे॥ रटरास क्षति अति अमितिवीर्य सुभाव अटल सरूप हो। सब रहित दूषण त्रिजगभूषण अज अमल चिद्रूप हो ॥१॥ इच्छा विना भवि भाग्यतैं तुम, ध्वनि सु होय निरक्षरी। षटद्रव्यगुणपर्यय अखिलयुत, एकछिनमें उचरी ॥ एकांतवादी कुमत पक्ष-विलिप्त इम ध्वनि मद हरी। संशय तिमिरहर रविकला भविशस्यकों अमिरत झरी ॥२॥ वस्त्राभरण बिन शांतिमुद्रा सकल सुरनरमन हरै। नाशाग्रदृष्टि विकारवर्जित निरखि छवि संकट टरै ॥ तुम चरणपंकज नखप्रभा नभ कोटिसूर्य प्रभा धरै। देवेंद्र नाग नरेंद्र नमत सु, मुकुटमणिद्युति विस्तरै ॥३॥ अंतर बहिर इत्यादि लक्ष्मी, तुम असाधारण लसै। तुम जाप पापकलापनासै, ध्यावते शिवथल बसै ॥ मैं सेय कुदृग कुबोध अव्रत चिर भ्रम्यो भववन सबै। दुख सहे सर्व प्रकार गिरिसम, सुख न सर्षपसम कबै ॥४॥ परचाहदाह-दह्यो सदा कबहूं न साम्यसुधा चख्यो। अनुभव अपूरव स्वादुबिन नित, विषय रसचारो भख्यो॥ अब बसो मो उरमें सदा प्रभु, तुम चरण सेवक रहों। वर भक्ति अति दृढ होहु मेरे, अन्य विभव नहीं चहों ॥ ५ ॥ एकेंद्रियादिक अंत-ग्रीवक, तक तथा अंतरघनी। पर्याय पाय अनंतवार अपूर्व, सो नहिं शिवधनी। संसृतिभ्रमणतैं थकित लखि निज, दा-सकी सुन लीजिये। सम्यकदरश वरज्ञानचारितपथ 'विहारी' कीजिये ॥६॥

४५-पार्श्वनाथ स्तुति ।

सोरठा—पारसप्रभुको नाऊं, सार सुधारस जगतमैं।
मैं वाकी बलिजाऊं, अजर अमरपदमूल यहं ॥१॥

हरिगीता (१८ मात्रा)

राजत उतंग अशोक तरुवर, पवन प्रेरित थरहरै। प्रभु निकट पाय प्रमोद नाटक, करत मानौ मन हरै॥ तस फूल गुच्छन भ्रमर गुंजत, यही तान सुहावनी। सो जयो पार्श्व जिनेंद्र पातकहरन जग चूडामनी॥ २॥ निज मरन देखि अनंग डरप्यो, सरन ढूढत जग फिरचो। कोई न राखै चोर प्रभुको, आय पुनि पायनि गिरचौ॥ यौं हार निज हथियार डारे, पुहुपवर्षा मिस भनी। सो जयो० ॥ ३ ॥ प्रभुअंग-नीलउतंगगिरितैं, वानि शुचि, सरिता ढली। सो भेदि भ्रमगजदंतपर्वत, ज्ञानसागरमें रली॥ नय सप्तभंग-तरंग-मंडित, पापतापविध्वंसनी। सो जयो० ॥ ४ ॥ चंद्रार्चिचय-छवि चारु चंचल, चमरवृन्द सुहावने। ढोलै निरंतर यक्ष-नायक, कहत क्यों उपमा बनै॥ यह नीलगिरिके शिखर मानों, मेघझरि लागी घनी। सो जयो०॥ ५॥ हीरा जवा-हिर खचित बहुविधि, हेमआसन राजये। तहँ जगत जन-मनहरन प्रभु तन, नील वरन विराजये। यह जटित वारिज-मध्यमानौं, नील मणिकलिका बनी। सो जयो० ॥ ६ ॥ जगजीत मोह महान जोधा जगतमें पटहा दियो। सो शुकल-ध्यान-कृपानवल जिन, निकट वैरी वश कियो॥

ये बजत विजयनिशाल दुन्दुभि, जीत सूचै प्रभुतनी। सो जयो० ॥ ७ ॥ छद्मस्थपदमें प्रथम दर्शन, ज्ञानचारित आदरे। अब तीन तेई छत्रछलसों, करत छाया छवि भरे॥ अति धवल रूप अनूप उन्नत, सोमबिंबप्रभा हनी। सो जयो० ॥ ८ ॥ दुति देखि जाकी चंद सरमै, तेजसों रवि लाजई। तव प्रभामंडलजोग जगमें, कौन उपमा छाजई॥ इत्यादि अतुल विभूति मंडित, सोहिये त्रिभुवनधनी। सो जयो० ॥ ९ ॥ यौं असम महिमा सिंधु साहब, शक्र पार न पावहीं। ताही समय तुम दास 'भूधर' भगतिवश यश गावहीं॥ अब होउ भवभव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहौं। कर जोरि यह वरदान मागौं, मोखपद जावत लहौं॥

४६—भूधरकृत पार्श्वनाथस्तुति।

दोहा—कर जिनपूजा अष्टविधि, भावभक्ति जिन भाय।
　　अब सुरेश परमेश थुति, करौं शीश निज नाय॥

प्रभु इस जग समरथ ना कोय। जासों तुम यश वर्णन होय॥ चार ज्ञानधारी मुनि थकैं। हमसे मंद कहा कहि सकैं॥ १ ॥ यह उर जानत निश्चय कीन। जिनमहिमा वर्णन हम हीन॥ पर तुम भक्तिथकी वाचाल। तिस वश हो, गाऊँ गुणमाल॥ २ ॥ जय तीर्थंकर त्रिभुवनधनी। जय चंद्रोपम चूड़ामनी॥ जय जय परम धरमदातार। कर्मकुलाचल-चूरनहार॥३॥ जय शिवकामिनिकंत महंत।

अतुल अनंत चतुष्टयवंत ॥ जय जय आश-भरन बडभाग। तपलछमीके सुभग सुहाग ॥ ४ ॥ जय जय धर्मध्वजाधर धीर। स्वर्ग-मोक्षदाता वर वीर · जय रत्नत्रय रतनकरंड। जय जिन तारन-तरन तरंड ॥ ५ ॥ जय जय समवसरन-श्रृंगार। जय संशयवन-दहन तुषार ॥ जय जय निर्विकार निर्दोष। जय अनंतगुणमाणिककोष ॥ ६ ॥ जय जय ब्रह्मचर्यदलसाज। कामसुभटविजयी भटराज ॥ जय जय मोहमहातरु करी। जय जय मद कुंजर केहरी॥७॥क्रोधमहानत-मेघ प्रचंड। मानमहीधर दामिनिदंड ॥ मायावेलि धनंजय दाह। लोभसलिलशोषण-दिननाह ॥ ८ ॥ तुम गुणसागर अगम अपार। ज्ञान-जहाज न पहुंचै पार ॥ तट ही तटपर डोले सोय। कारज सिद्ध तहां नाहिं होय, तुम्हरी कीर्ति वेल वहु बढ़ी। यत्न विना जगमंडप चढी ॥ और कुदेव सुयश निज चहैं। प्रभु अपने थल ही यश लहैं ॥१०॥ जगत जीव घूमै विन ज्ञान। कीनौ मोहमहाविषपान ॥ तुम सेवा विषनाशक जरी। यह मुनिजन मिलि निश्चय करी ॥ ११ ॥ जन्मलता मिथ्यामत मूल। जनम मरण लागै तहँ फूल ॥ सो कबहूं विन भक्ति कुठार। कटै नहीं दुखफलदातार ॥१२॥ कल्पतरूवर चित्रावेलि। कामपोरषा नवनिधि मेलि ॥ चिंता-मणि पारस पाषान। पुण्य पदारथ और महान॥१३॥ये सब एक जन्म संजोग। किंचित सुखदातार नियोग ॥ त्रिभुवन-नाथ तुम्हारी सेव। जन्म जन्म सुखदायक देव ॥ तुम जग-

बांधव तुम जगत्रात । अशरण शरण विरद विख्यात ॥ तुम सब जीवनके रखवाल । तुम दाता तुम परम दयाल ॥ तुम पुनीत तुम पुरुष प्रमान । तुम समदर्शी तुम सब-ज्ञान ॥ जय जिन यज्ञ पुरुष परमेश । तुम ब्रह्मा तुम विष्णु महेश ॥ तुम जगभर्ता तुम जगजान । स्वामि स्वयम्भू तुम अमलान ॥ तुम विन तीन काल तिहूं लोय । नाहीं शरण जीवको कोय ॥ यातैं अब करुणानिधि नाथ । तुम सम्मुख हम जोड़ैं हाथ ॥ जबलौं निकट होय निर्वान । जगनिवास छूटैं दुखदान ॥ तबलौं तुम चरणाम्बुज वास । हम उर होऊ यही अरदास ॥ और न कुछ वांछा भगवान । हो दयाल दीजे वरदान ॥१९॥

दोहा—इहिविधि इंद्रादिक अमर, कर बहु भक्ति विधान
निज कोठे बैठे सकल, प्रभु सन्मुख सुख मान ॥ २० ॥
जीत कर्मरेपु जे भये, केवल लान्दी निवास ।
सो पार्श्वप्रभु सदा करो विघ्नघन नास ॥ २१ ॥

४७—जिनवाणीमाताकी स्तुति ।

शास्त्रजी वांचनेके बाद बोलनेकी । शिखरिणी छंद ।

अकेला ही हूं मैं, करम सब आये सिमटिकें । लिया है मैं तेरा, शरण अब माता सटकिकें ॥ भ्रमावत है मोकों, करम दुख देता जनमका । करों भक्ति तेरी, हरो दुख माता भ्रमनका ॥ १ ॥ दुखी हूआ भारी, भ्रमत फिरता हूं जगतमें । सहा जाता नाहीं, अकल घबरानी भ्रमनमें ॥ करों क्या मा मोरी, चलत वश नाहीं मिटनका । करों भक्ती तेरी, हरो

दुख भ्रमनका ॥४॥ सुनो माता मोरी, अरज करता हूं दरदमें। दुखी जानों मोकों, डरप कर आयो शरनमें। कृपा ऐसी कीजे, दरद मिट जावै मरनका। करों भक्ती तेरी, हरो दुख माता भ्रमनका ॥३॥ पिलावै जो मोकों, सुबुधिकर प्याला अमृतका। मिटावै जो मेरा, सरब दुख सारा फिरनका। परों पावां तेरे, हरो दुख सारा फिकरका। करों भक्ती तेरी, हरो दुख माता भ्रमनका ॥ ४ ॥

सवैया—मिथ्यातम नांशवेको ज्ञानके प्रकाशवेको, आपा-पर-भासवेको भानुसी बखानी है। छहों द्रव्य जानवेको बंध-विधि भानवेको स्वपर पिछानवेको परम प्रमानी है ॥५॥ अनुभौ बतायवेको जीवके जतायवेको, काहू न सतायवेको भव्य उर आनी है। जहांतहां तारवेको पारके उतारवेको, सुख विसतारवेको येही जिन-वानी है ॥ ६ ॥

दोहा—यह जिनवानीकी थुती, अलपबुद्धि परमान। पनालाल बिनती करें, दे माता मोहि ज्ञान ॥ ७ ॥ हे जिन-वानी भारती, तोहि जपों दिनरैन। जो तेरा शरना गहै, सो पावै सुखचैन ॥ ८ ॥ जा वानीके ज्ञानतै, सूझै लोकालोक। सो वानी मस्तक चढ़ो, सदा देत हों धोक ॥ ९ ॥

४८–शारदाष्टक।

नमो केवल नमोकेवल रूप भगवान। मुख ओंकार धुनि सुनि अर्थ गणधर विचारैं। रचि रचि आगम उपदिसैं, भविक जीव संशय निवारैं॥ सो सत्यारथ शारदा, तासु

भक्ति उर आन। छंद भुजंगप्रयातमें, अष्टक कहौं बखान ॥ १ ॥ जिनादेश जाता जिनेन्द्रा विख्याता। विशुद्धप्रबुद्धा नमों लोकमाता ॥ दुराचार दुर्नैहरा शंकरानी। नमों देवि वागीश्वरी जैनवानी ॥ २ ॥ सुधाधर्मसंसाधनी धर्मशाला। क्षुधातापनिर्नाशिनी मेघमाला ॥ महामोहविध्वंसनी मोक्षदानी। नमों देवि० ॥ ३ ॥ अखै वृक्षशाखा व्यतीताभिलाषा। कथा संस्कृता प्राकृता देशभाषा ॥ चिदानन्दभूपालकी राजधानी। नमो० ॥ ४ ॥ समाधानरूपा अनूपा अछुद्रा। अनेकांतधा स्याद्वादांकमुद्रा ॥ त्रिधा सप्तधा द्वादशांगी बखानी। नमो देवि० ॥ ५ ॥ अकोपा अमाना अदंभा अलोभा। श्रुतज्ञानरूपी मतिज्ञान शोभा ॥ महापावनी भावना भव्यमानी। नमो देवि० ॥६॥ अतीता अजीता सदा निर्विकारा। विषै वाटिका खंडिनी खड्गधारा ॥ पुरापापविक्षेपकर्त्री कृपाणी। नमो देवि० ॥७॥ अगाधा अबाधा निरंध्रा निराशा। अनंता अनादीश्वरी कर्मनाशा ॥ निशंका निरंका चिदंका भवानी। नमो देवि० ॥८॥ अशोका मुदेका विवेका विधानी। जगज्जंतु मित्रा विचित्रावसानी ॥ समस्ता विलोका निरस्ता निदानी ॥ नमो देवि० ॥ ९ ॥

वास्तुछंद—जैनवानी जैनवानी सुनहिं जे जीव। जे आगमरुचि धार, जे प्रतीत मनमांहिं आनहिं। अव धारहिं जे पुरुष समर्थ पद अर्थ जानहिं ॥ जे हितहेतु बनारसी, देहिं धर्म उपदेश। ते सब पावहिं परमसुख, तज संसारकलेश ॥ १० ॥

४९–शारदास्तवन प्रभाती।

केवलिकन्ये वाङ्मय गंगे,जगदंबे अघ नाश हमारे। सत्य स्वरूपे मंगलरूपे, मनमंदिरमें तिष्ठ हमारे ॥ टेक ॥ जंबू-स्वामी गौतम गणधर, हुये सुधर्मा पुत्र तुम्हारे। जगतैं स्वयं पार ह्वै करके, दे उपदेश बहुत जन तारे ॥१॥ कुंदकुंद अकलंकदेव अरु, विद्यानंदि आदि मुनि सारे। तव कुलकुमुद चंद्रमा ये शुभ, शिक्षामृत दे स्वर्ग सिधारे ॥२॥ तूने उत्तम तत्त्व प्रकाशे, जगके भ्रम सब क्षय कर डारे। तेरी ज्योति निरख लज्जावश, रवि शशि छिपते नित्य विचारे ॥ भवभय पीडित व्यथित चित्त जन,जब जो आए सरन तिहारे! छिन भरमें उनके तब तुमने, करुणाकरि संकट सब टारे ॥४॥ जबतक विषय कषाय नशै नहिं,कर्मशत्रु नहिं जांय निवारे। तब तक 'ज्ञानानंद' रहै नित, सब जीवनतैं समता धारे ॥५॥

५०–गुर्वावलि।

शैर–जैवंत दयावंत सुगुरु देव हमारे। संसारविषम खा-रसों जिनभक्त उधारे ॥टेक॥ जिनवीरके पीछैं यहां निर्वा-नके थानी। वासठ वरषमें तीन भये केवलज्ञानी। फिर सौ वरषमें पांच श्रुतकेवली भये। सर्वांग द्वादशांगके उमंग रस लये ॥ जैवंत० ॥१॥ तिस बाद वर्ष एकशतक और तिरासी। इसमें हुये दशपूर्व ग्यारै अंगके भाषी ॥ ग्यारै महामुनीश ज्ञानदानके दाता। गुरुदेव सोई देहिंगे भविवृंदको साता ॥

जैवंत०॥२॥ तिस बाद वर्ष दोय शतक बीसके माहीं। मुनि पांच ग्यारै अंगके पाठी हुये ह्यांहीं॥ तिसबाद वरष एकसौ अठारमें जानी। मुनि चार हुये एक आचारांग के ज्ञानी॥ जैवंत०॥३॥ तिस बाद हुये हैं जु सुगुरु पूर्वके धारक। करुणानिधान भक्तको भवसिंधु उधारक॥ करकंजतै गुरु मेरे ऊपर छांह कीजिये। दुखद्वंदको निकंदके आनन्द दीजिये॥ जैवंत० ॥४॥ जिनवीरके पीछेसों, वरष छहसौ तिरासी; तब तक रहे इक अंगके गुरुदेव अभ्यासी॥ तिस बाद कोई फिर न हुये अंगके धारी। पर होतेभये महा सुविद्वान उदारी॥ जैवंत० ॥५॥ जिनसों रहा इस कालमें जिन धर्मका शाका। रोपा है सात भंगका अभंग पताका॥ गुरुदेव नयंधरको आदि दे बडे नामी। निरग्रंथ जैनपंथके गुरुदेव जो स्वामी॥ जैवंत० ॥ ६ ॥ भाषों कहां लों नाम बडी बार लगैगा। परनाम करों जिससे बेडा पार लगैगा॥ जिसमेंसे कछुइक नाम सूत्रकारके कहों। जिन नामके प्रभावसे परभावको दहों॥ जैवंत० ॥७॥ तत्त्वार्थसूत्र नामि उमास्वामी किया है। गुरुदेवने संक्षेपसे क्या काम किया है॥ जिसमें अपार अर्थने विश्राम किया है। बुधवृंद जिसे ओरसे परनाम किया है जैवंत०॥८॥ वह सूत्र है इस कालमें जिनपंथकी पूजी। सम्यक्त्व ज्ञानभाव है जिस सूत्रकी कूंजी॥ लडते हैं उसी सूत्रसों परवादके मूंजी। फिर हारके हट जाते हैं इक पक्षके लूंजी॥ जैवंत० ॥९॥ स्वामी समंतभद्र महाभाष्य रचा है।

सर्वंग सात भंगका उमंग मचा है ॥ परवादियोंका सर्व गर्व जिससे पचा है। निर्वान सदनका सोई सोपान जचा है जैवंत० ॥१०॥ अकलंकदेव राजवारतीक बनाया। परमान नयनिक्षेपसों सब वस्तु बताया ॥ श्लोकवारतीक विद्यानंद-जी मंडा। गुरुदेवने जडमूल सों पाखंडको खंडा ॥जै० ॥११॥ गुरु पूज्यपादजी हुये मरजादके धोरी। सर्वार्थसिद्धि सूत्र-की टीका जिन्हों जोरी ॥ जिसके लखेसों फिर न रहे चित्तमें भरम। सब जीवको भाषै है स्वपरभावका मरम ॥ जैवंत० ॥१२॥ धरसेन गुरुजी हरो भविवृंदकी व्यथा। अग्रायणीय पूर्वमें कुछ ज्ञान जिन्हें था ॥ तिनके हुये दो शिष्य पुष्पदंत भुतवली। धवलादिकोंका सूत्र किया जिस्से मग चली ॥ जैवंत० ॥१३ ॥ गुरु औरने उस सूत्रका सब अर्थ लहा है। तिन धवल महाधवल जयसुधवल कहा है ॥ गुरु नेमि-चंद्रजी हुये धवलादिके पाठी। सिद्धांतके चक्रीशकी पदवी जिन्हों गांठी ॥ जैवंत०॥ तिन तीनोंही सिद्धांतके अनुसार-सों प्यारे। गोमट्टसार आदि सुसिद्धांत उधारे॥ यह पहिले सुसिद्धांतका विरतंत कहा है। अब और सुनो भावसों जो भेद महा है ॥ जैवंत०॥१५॥ गुणधर मुनीशने पढा था तीजा पराभृत। ज्ञानप्रवाद पूर्वमें जो भेद है आश्रित। गुरु हस्ति-नागजीने सोई जिनसों लहा है। फिर तिनसों यतीनायकने मूल गहा है ॥ जैवंत० ॥ १६ ॥ तिन चूर्णिका स्वरूप तिस्से सूत्र बनाया। परमान छै हजार यों सिद्धांतमें गाया ॥ ति-

सका किया उद्धरण समुद्धरण जु टीका । वारह हजारके प्रमान ज्ञानकी टीका ॥ जैवंत०॥१७॥ तिसहीसे रचा कुंदकुंदजीने सुशासन । जो आत्मीक पर्म धर्मका है प्रकाशन ॥ पंचास्तिकाय समयसार सारप्रवचन । इत्यादि सुसिद्धांत स्यादवादका रचन ॥जैवंत०॥१८॥सम्यक्त ज्ञान दर्श सुचारित्र अनूपा । गुरुदेवने अध्यात्मीक धर्म निरूपा ॥ गुरुदेव अमीइंदुने तिनकी करी टीका ॥ झरता है निजानंद अमीवृंद सरीका ॥ जैवंत० ॥१९॥रचनानुवेद भेद के निवेदके करता । गुरुदेव जे भये हैं पापतापके हरता ॥ श्रीवट्टकेरदेवजी वसुनंदजी चक्री । निरग्रंथग्रंथपंथके निरग्रंथके शक्री ॥ जैवंत० ॥२०॥ योगींद्रदेवने रचा परमात्माप्रकाश । शुभचंद्रने किया है ज्ञान आरणव विकाश ॥ की पदनंदजीने पद्मनंदिपच्चीसी । शिवकोटिने आरधना सुसार रचीसी ॥जैवंत० ॥२१॥ दोसंध तीनसंध चारसंध पांचसंध । षट्संध सात संधलों गुरु रचा है प्रबंध ॥ गुरु देवनंदिने किया जैनेन्द्रव्याकरन । जिस्से हुवा परवादियोंके मानका हरन ॥ जै० ॥२२॥ गुरुदेवने रची है रुचिर जैनसंहिता । वरनाश्रमादिकी क्रिया कहैं हैं जु सीहिता ॥ वसुनंदि वीरनंदि यशोनंदि संहिता । इत्यादि बनी हैं दशोंप्रकार संहिता ॥ जै० ॥२३॥ प्रमेयकमलमारतंडके हुये कर्ता । प्रभेन्दु माणिक्यनंदि नयप्रमाणके भर्ता ॥ जैवंत सिद्धसेन सुगुरु देव दिवाकर । जै वादिसिंह देवसिंह जैति यशोधर ॥ जैवंत० ॥२४ ॥ श्रीदत्त

काणभिक्षु और पात्रकेशरी। श्रीवज्रसूर महासेन श्रीप्रभाकरी॥ शिरीजटाचार गुरु वीरसेन हैं। जैसेन शिरीपाल मुझे काम-धेन हैं ॥जैवंत०॥२५॥ इन एक एक गुरुने जो ग्रंथ बनाया। कहि कौन सकै नाम कोइ पार ना पाया ॥ जिनसेन गुरूने महापुराण रचा है। मरजाद क्रियाकांडका सब भेद खचा है ॥ जैवंत० ॥२६॥ गुणभद्र गुरूने रचा उत्तरपुरा-नको। सो देव गुरूदेवजी कल्यानथानको॥ रविषेण गुरूजीने रचा रामका पुरान। जो मोहतिमर भाननेको भानुके समान॥ जैवंत०॥२७॥ पुन्नाटगणविषै हुये जिनसेन दूसरे। हरि-वंशको बनाके दास आसको भरे॥ इत्यादि जे वसुवीस सुगुण मूलके धारी। निर्ग्रंथ हुये हैं गुरू जिनग्रंथके कारी॥ जैवंत०॥२८॥ वंदौ तिन्हैं मुनि जे हुये कवि काव्य करैया। वंदामि गमक साधु जो टीकाके धरैया॥ वादी नमों मुनि-वादमें परवाद हरैया। गुरु वागमीकको नमो उपदेश करैया ॥ जैवंत० ॥२९॥ ये नाम सुगुरु देवका कल्याण करै है। भविवृंदका ततकाल ही दुखद्वंद हरै है॥ धनधान्य ऋद्धि सिद्धि नवों निद्धि भरै हैं। आनंद कंद देहि सबी विघ्न टरै हैं ॥ जैवंत०॥३०॥ इह कंठमें धारै जो सुगुरु नामकी माला। परतीतसों उरप्रीतिसों ध्यावै जु त्रिकाला। इहलोकका सुख भोग सो सुरलोकमें जावै। नरलोकमें फिर आयके निरवान-को पावै॥ जैवंत० ॥ ३१ ॥

५१-अथ भूधरकृत गुरुस्तुति ।

बंदौं दिगंबर गुरुचरन जुग, तरन-तारन जान । जे भरम भारी रोगको हैं,राजवैद्य महान ॥ जिनके अनुग्रह विन कभी, नहिं कटै कर्मजँजीर । ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर ॥१॥ यह तन अपावन अथिर है, संसार सकल असार । ये भोग विषपकवानसे, इहभांति सोच विचार ॥ तप विरचि श्रीमुनि वनवसे सब छांड़ि परिगह भीर । ते साधु० ॥ २ ॥ जे काच कंचनसम गिनहिं, अरि मित्र एक सरूप । निंदा बड़ाई सारिखी, वनखंड शहर अनूप ॥ सुख दुःख जीवनमरनमें, नहिं खुशी नहिं दिलगीर ॥ ते साधु०॥ ॥ ३ ॥ जे बाह्य परवत वनवसैं, गिरिगुफा महल मनोग । सिल सेज समता सहचरी, शशिकिरनदीपक जोग ॥ मृग मित्र भोजन तपमई, विज्ञान निरमल नीर । ते साधु० ॥४॥ सूखहिं सरोवर जल भरे, सूखहिं तरंगिनि-तोय । बाटहि बटोही ना चलै, जहँ घाम गरमी होय ॥ तिहँकाल मुनिवर तप तपहिं, गिरिशिखर ठाड़े धीर ॥ ते साधु०॥५॥ घनघोर गरजहिं घनघटा, जलपरहिं पावसकाल । चहुँ ओर चमकहि बीजुरी, अति चलै सीरी व्याल ॥ तरुहेठ तिष्ठहिं तब जती, एकान्त अचल शरीर॥ ते साधु० ॥ ६ ॥ जब शीतमास तुषारसों, दाहै सकल वनराय । तब जमै पानी पोखरां, थरहरै सबकी काय ॥ तब नगन निवसै चौहटै, अथवा नदीके तीर ॥ ते साधु० ॥७॥ करजोर 'भूधर' बीनवै, कब

मिलहिं वे मुनिराज। यह आश मनकी कब फलै, मम सरहिं सगरे काज ॥ संसार विषम विदेसमें, जे विना कारण वीर ॥ ते साधु० ॥ ८ ॥

५२–भूधरकृत गुरुस्तुति।

ते गुरु मेरे मन बसौ, जे भव- जलधि-जिहाज। आप तिरै पर तारहीं, ऐसे श्रीऋषिराज ॥ ते गुरु ० ॥ मोह महारिपु जीतिकैं, छाड्यो सब घरबार। होय दिगम्बर वन बसै, आतम शुद्ध विचार ॥ ते गुरु० ॥ रोगउरग बिल वपु गिण्यौ, भोग भुजंग समान। कदलीतरु संसार है, त्यागो सब यह जान ॥ ते गुरु० ॥ रतनत्रय निधि उर धरै, अरु निरग्रन्थ त्रिकाल। मार्यौ कामखवीसको, स्वामी परम दयाल ॥ ते गुरु० ॥ पंच महाव्रत आदरै, पांचौं सुमति समेत। तीन गुपति पालैं सदा, अरजअमरपद हेत ॥ ते गुरु० ॥ धर्म धरैं दशलक्षणी, भावै भावन सार। सहैं परीषह बीस द्वै, चारित-रतन भँडार ॥ ते गुरु० ॥ जेठ तपै रवि आकरौ, सूखै सरवरनीर। शैलशिखर मुनि तप तपै, दाहैं नगन शरीर ॥ ते गुरु० ॥ पावस रैन डरावनी, बरसै जलधर धार। तरुतल निवसै साहसी, बाजै झंझावार॥ ते गुरु० ॥ शीत पडै कपि-मद गलै, दाहै सब वनराय। ताल तरंगिनिके तटै, ठाडे ध्यान लगाय ॥ ते गुरु० ॥ इहि विधि दुद्धर तप तपै, तीनों काल मंझार। लागे सहज सरूपमें, तनसौ ममत निवार ॥ ते गुरु० ॥ पूरब भोग न

चिंतवैं, आगम बांछा नाहिं। चहु गतिके दुखसौं डरे, सुरत लगी शिवमाहिं ॥ ते गुरु० ॥ रंगमहलमें पोढते, कोमल सेज बिछाय। ते पच्छिम निशि भूमिमें, सोवैं संवरि काय ॥ ते गुरु० ॥ गज चढि चलते गरबसौं, सेना सजि चतुरंग। निरखि निरखि पग ते धरैं, पालैं करुणा अंग॥ ते गुरु० ॥ वे गुरु चरण जहां धरैं, जगमें तीरथ जेह। सो रज मम मस्तक चढौ, 'भूधर' मांगे येह ॥ ते गुरु० ॥

५३–प्रातःकालकी स्तुति।

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर भविजनकी अब पूरो आस ॥ ज्ञानभानुका उदय करो मम मिथ्यातमका होय विनाश ॥१॥ जीवोंकी हम करुणा पाले झूठ वचन नहिं कहैं कदा ॥ परधन कबहु न हरिहैं स्वामी ब्रह्मचर्य व्रत रहै सदा ॥ २ ॥ तृष्णा लोभ बढ़े न हमारा तोष सुधा निधि पिया करें ॥ श्री जिनधर्म हमारा प्यारा तिसकी सेवा किया करें ॥ ३ ॥ दूर भगावैं बुरी रीतियां सुखद रीतिका करै प्रचार ॥ मेल मिलाप बढ़ावै हम सब धर्मोन्नतिका करै प्रचार ॥ ४ ॥ सुखदुखमें हम समता धारैं रहें अचल जिमि सदा अटल ॥ न्याय कार्यको लेश न त्यागैं वृद्धि करैं निज आतमबल ॥ ५ ॥ अष्टकर्म जो दुःखहेतु हैं तिनके छयका करैं उपाय ॥ नाम आपका जपैं निरन्तर विघ्नशोक सब ही टल जाय ॥ ६ ॥ आतम शुद्ध हमारा होवे पाप मैल नहिं चढ़ै कदा। विद्याकी हो उन्नति हममें धर्मज्ञानहू बढ़े सदा ॥ ७॥ हाथ जोड़

कर शीष नवावे तुमको भविजन खड़े खड़े ॥ यह सब पूरो आस हमारी चरण शरणमें आन पड़े ॥ ८ ॥

५४-सायंकालकी स्तुति ।

. हे सर्वज्ञ ! ज्योतिमय गुणमणि बालक जनपर करहु दया ॥ कुमति निशा अँधियारीकारी सत्यज्ञानरवि छिपा दिया ॥ १ ॥ क्रोध मान अरु माया तृष्णा यह बटमार फिरे चहुं ओर ॥ लूट रहे जग जीवनको यह देख अविद्या-तमका जोर ॥ मारग हमको सूझे नांहिं ज्ञान विना सब अन्ध भये ॥ घटमें आय विराजो स्वामी बालक जन सब खड़े भये ॥ ३ ॥ सतपथ दर्शक जनमन हर्षक घटघट अन्तरयामी हो ॥ श्रीजिनधर्म हमारा प्यारा तिनके तुम ही स्वामी हो ॥४॥ घोर विपतमें आन पड़ा हूँ मेरा बेड़ा पार करो ॥ शिक्षाका हो घर घर आदर शिल्पकला सचार करो ॥ ५ ॥ मेल मिलाप बढ़ावे हम सब द्वेष भावकी घटाघटी॥ नहीं सतावे किसी जीवको प्रती क्षीरकी गटागटी ॥ ६ ॥ मात पिता अरु गुरुजनकी हम सेवा निशदिन किया करे ॥ स्वारथ तजकर सुखदें परको आशिष सबकी लिया करें ॥७॥ आतम शुद्ध हमारा होवै पाप मैल नहिं चढ़ै कदा ॥ विद्या-की हो उन्नति हममें धर्म ज्ञान हूं बढ़ै सदा ॥ ८ ॥ दोउ-कर जोरें बालक ठाड़े करें प्रार्थना सुनिये तात ॥ सुखसे बीतै रैन हमारी जिनमतका हो शीघ्र प्रभात ॥ ९ ॥ मात पिताकी आज्ञा पालैं गुरुकी भक्ति धरें उरमें ॥ रहें सदा हम करतबतत्पर उन्नति कर निज निजपुरमें ॥ १० ॥

५५-श्रीमहावीर-प्रार्थना।

हे सर्वज्ञ वीर जिनदेवा, चरन शरन हम आते हैं। ज्ञान अनंतगुणाकर तुमको चरनन सीस नवाते हैं॥ १ ॥ कथन तुम्हारा सबको प्यारा कहीं विरोध नहीं पाता। अनुभव-बोध अधिक जिनके है, उन पुरुषोंके मन भाता ॥ २ ॥ दर्शन ज्ञान चरित्रस्वरूपी, मारग तुमने दिखलाया। यही मार्ग हितकारी सबका, पूर्व ऋषीगणने गाया॥ ३ ॥ रत्न-त्रयको भूल न जावै, इसीलिये उपनयन करैं। ब्रह्मचर्यको दृढतम पालै, सप्तव्यसनका त्याग करैं॥ ४ ॥ नीतिमार्ग-पर नित्य चलै हम, योग्याहार विहार करैं। पालैं योग्या-चार सदा हम, वर्णाचार विचार करैं॥ ५ ॥ धर्ममार्ग, अरु वैधमार्ग से, देशोद्धार विचार करैं। आर्षवचन हम दृढतम पालें, सत्सिद्धांत प्रचार करैं॥६॥ श्रीजिनधर्म बढै दिनदूनो पंच आप्तनुति नित्य करै। सत्संगति को पाकर स्वामिन्, कर्म कलंक समूल हरै॥ ७ ॥ फलैं भाव ये सभी हमारे, यही निवेदन करते हैं। 'लाल' बाल मिलि भाल वीर के, चरणों में शिर धरते हैं॥ ८ ॥

५६-आचार्यवर्य रविषेणस्तुति।

रविसे रविसेन अचारज हैं, भविवारिजके विकसावनहारे। जिन पद्मपुराण बखान कियै, भवसागरतैं जगजंतु उधारे॥ सिय रामकथा सु जथारथ भाखि, मिथ्यातसमूह समस्त विदारे। भवि 'वृंद' विथा अब क्यों न हरौ, गुरुदेव तुम्हीं ममप्राण अधारे।

५७-आचार्यवर्य जिनसैनस्तुति।

भगवज्जिनसैन कविंद नमों, जिन अदि जिनिंदके छंद सुधारे। प्रथमानुसुवेद निवेदनमें, जिनको परधान प्रमान उचारे॥ जगमें मुदमंगल भूरि भरे, दुख दूर करे भवसागर तारे। भव 'वृंद' विथा अब क्यों न हरो, गुरुदेव तुम्हीं ममप्रान अधारे ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय।

स्तोत्र संग्रह।

५८-बृहत्स्वयंभूस्तोत्र

१ आदिनाथ भगवानकी स्तुति।

स्वयम्भुवा भूतहितेन भूतले समञ्जसज्ञानविभूतिचक्षुषा। विराजितं येन विधुन्वता तमः क्षपाकरेणेव गुणोत्करैः करैः ॥१॥ प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः। प्रबुद्धतत्त्वः पुनरद्भुतोदयो ममत्वतो निर्विविदे विदां-वरः ॥२॥ विहाय यः सागरवारिवाससं वधूमिवेमां वसुधावधूं सतीम्। मुमुक्षुरिक्ष्वाकुकुलादिरात्मवान् प्रभुः प्रवव्राज सहिष्णुरच्युतः ॥३॥ स्वदोषमूलं स्वसमाधितेजसा निनाय यो निर्दयभस्मसात्क्रियाम्। जगाद तत्त्वं जगतेऽर्थिनेऽञ्जसा बभूव चब्रह्मपदामृतेश्वरः ॥ ४ ॥ स विश्वचक्षुर्वृषभोऽर्चितः सतां समग्रविद्यात्मवपुर्निरञ्जनः। पुनातु चेतो मम नाभि-नन्दनो जिनो जितक्षुल्लकवादिशासनः॥ ५ ॥

२. अजितस्तुति।

यस्य प्रभावात्त्रिदिवच्युतस्य क्रीड़ास्वपि क्षीवमुखारविन्दः। अजेयशक्तिर्भुवि बन्धुवर्गश्चकार नामाजित इत्यवंध्यम्॥ अद्यापि यस्याजितशासनस्य सतां प्रणेतुः प्रतिमंगलार्थम्। प्रगृह्यते नाम परं पवित्रं स्वसिद्धिकामेन जनेन लोके॥७॥ यः प्रादुरासीत्प्रभुशक्तिभूम्ना भव्याशयालीनकलङ्कशान्त्यै। महामुनिर्मुक्तघनोपदेहो यथारविन्दाभ्युदयाय भास्वान्॥८॥ येन प्रणीतं पृथु धर्मतीर्थं ज्येष्ठं जनाः प्राप्य जयन्ति दुःखम्। गांगं हृदं चन्दनपंकशीतं गजप्रवेका इव घर्मतप्ताः॥९॥ स ब्रह्मनिष्ठः सममित्रशत्रुर्विद्याविनिर्वान्तकषायदोषः। लब्धात्मलक्ष्मीरजितोऽजितात्मा जिनःश्रियं मे भगवान विधत्तां॥

३ शंभवस्तुति।

त्वं शम्भवः संभवतर्षरोगैः संतप्यमानस्य जनस्य लोके। आसीरिहाकस्मिक एव वैद्यो वैद्यो यथा नाथ! रुजां प्रशांत्यै॥११॥ अनित्यमत्राणमहं क्रियाभिः प्रसक्तमिथ्याध्यवसायदोषम्। इदं जगज्जन्मजरान्तकार्त्तं निरञ्जनां शान्तिमजीगमस्त्वम्॥१२॥ शतह्रदोन्मेषचलं हि सौख्यं तृष्णामयाप्यायनमात्रहेतुः। तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रं तापस्तदायसयतीत्यवादीः॥१३॥ बंधश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतुः बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः। स्याद्वादिनो नाथ! तवैव युक्तं नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोऽसिशास्ता॥१४॥ शक्रोऽप्यशक्तस्तव पुण्यकीर्तेः स्तुत्यां प्रवृत्तः किमु मादृशोऽज्ञः। तथापि भक्त्या स्तुतपादपद्मो ममार्य! देयाः शिवतातिमुच्चैः॥१५॥

४ अभिनन्दनस्तुति।

गुणाभिनन्दादभिनन्दनो भवान् दयावधूं क्षान्तिसखी-मशिश्रयत्। समाधितन्त्रस्तदुपोपपत्तये द्वयेन नैर्ग्रन्थ्यगुणेन चायुजत् ॥ अचेतने तत्कृतबन्धजेऽपि ममेदमित्याभिनिवेशक-ग्रहात्। प्रभंगुरे स्थावरनिश्चयेन च क्षतं जगत्तत्त्वमजिग्रहद्भवान् ॥ १७ ॥ क्षुधादिदुःखप्रतिकारतः स्थितिर्न चेन्द्रियार्थप्रभवा-ल्पसौख्यतः। ततो गुणो नास्ति च देहदेहिनोरितीदमित्थं भगवान् व्यजिज्ञपत् ॥१८॥ जनोऽतिलोलोऽप्यनुबन्धदोषतो भयादकार्येष्विह न प्रवर्तते। इहाप्यमुत्राप्यनुबन्धदोषवित्कथं सुखे संसजतीति चाब्रवीत् ॥१९॥ स चानुबन्धोऽप्यजनस्य तापकृत्तृषोऽभिवृद्धिः सुखतो न च स्थितिः। इति प्रभो! लोकहितं यतो मतं ततो भवानेव गतिः सतां मतः ॥२०॥

५ सुमतिस्तुति।

अन्वर्थसंज्ञः सुमतिर्मुनिस्त्वं स्वयं मतं येन सुयुक्तिनीतम्। यतश्च शेषेषु मतेषु नास्ति सर्वक्रियाकारकतत्त्वसिद्धिः ॥२१॥ अनेकमेकं च तदेव तत्त्वं भेदान्वयज्ञानमिदं हि सत्यम्। मृषोपचारोऽन्यतरस्य लोपे तच्छेषलोपोऽपि ततोऽनुपा-ख्यम् ॥२२॥ सतः कथञ्चित्तदसत्त्वशक्तिः खे नास्ति पुष्पं तरुषु प्रसिद्धम्। सर्वस्वभावच्युतमप्रमाणं स्ववाग्विरुद्धं तव दृष्टितोऽन्यत् ॥२३॥ न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति न च क्रिया-कारकमत्र युक्तम्। नैवासतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गलभाववतोऽस्ति ॥२४॥ विधिर्निषेधश्च कथंचिदिष्टौ विवि-

क्षया मुख्यगुणव्यवस्था। इति प्रणीतिः सुमतेस्तवेयं मतिप्रवेकः स्तुवतोऽस्तु नाथ! ॥२५।

६ पद्मप्रभस्तुति।

पद्मप्रभः पद्मपलाशलेश्यः पद्मालयालिंगितचारुमूर्तिः। बभौ भवान् भव्यपयोरुहाणां पद्माकराणामिव पद्म बन्धुः॥ ॥२६॥ बभार पद्मां च सरस्वतीं च भवान्पुरस्तात्प्रतिमुक्तिलक्ष्म्याः। सरस्वतीमेव समग्रशोभां सर्वज्ञलक्ष्मीं ज्वलितां विमुक्तः॥२७॥ शरीररश्मिप्रसरः प्रभोस्ते बालार्करश्मिच्छविरालिलेप। नरामराकीर्णसभां प्रभावच्छैलस्य पद्माभमणेः स्वसानुम्॥२८॥ नभस्तलं पल्लवयन्निव त्वं सहस्रपत्राम्बुजगर्भचारैः। पादाम्बुजैः पातितमोहदर्पो भूमौ प्रजानां विजहर्ष भूत्यै॥२९॥ गुणाम्बुधेर्विप्रुषमप्यजस्रं नाखण्डलस्तोतुमलं तवर्षेः। प्रागेव मादृक्किमु तातिभक्तिर्मां बालमालापयतीदमित्थं॥३०॥

७ सुपार्श्वस्तुति।

स्वास्थ्यं यदात्यन्तिकमेष पुंसां स्वार्थो न भोगाः परिभंगुरात्मा। तृषोऽनुषंगान्न च तापशान्तिरितीदमाख्यद्भगवान् सुपार्श्वः॥३१॥ अजंगमं जंगमनेययन्त्रं यथा तथा जीवधृतं शरीरम्। बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च स्नेहो वृथात्रेति हितं त्वमाख्यः॥३२॥ अलंघ्यशक्तिर्भवितव्यतेयं हेतुद्वयाविष्कृतकार्यलिंगा। अनीश्वरो जन्तुरहं क्रियार्त्तः संहत्य कार्येष्विति साध्ववादीः॥३३॥ बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति

मोक्षो नित्यं शिवं वाञ्छति नास्य लाभः। तथापि बालो भयकामवश्यो वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः ॥३४॥ सर्वस्य तत्त्वस्य भवान्प्रमाता मातेव बालस्य हितानुशास्ता। गुणावलोकस्य जनस्य नेता मयापि भक्त्या परिणूयसेऽद्य ॥

८ चन्द्रप्रभस्तुति।

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम्। वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं जिनं जितस्वान्तकषायबन्धम् ॥३६॥ यस्यांगलक्ष्मीपरिवेषभिन्नं तमस्तमोरेरिव रश्मिभिन्नम्। ननाश बाह्यं बहुमानसं च ध्यानप्रदीपातिशयेन भिन्नम् ॥३७॥ स्वपक्षसौस्थित्यमदावलिप्ता वाक्सिंहनादैर्विमदा बभूवुः। प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगण्डा गजा यथा केशरिणो निनादैः ॥ यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः पदं बभूवाद्भुतकर्मतेजाः। अनन्तधामाक्षरविश्वचक्षुः समस्तदुःखक्षयशासनश्च ॥३९॥ स चन्द्रमा भव्यकुमुद्वतीनां विपन्नदोषाभ्रकलंकलेपः। व्याकोशवाङ्न्यायमयूखमालः पूयात्पवित्रो भगवान्मनो मे ॥

९ पुष्पदंतस्तुति।

एकान्तदृष्टिप्रतिषेधि तत्त्वं प्रमाणसिद्धं तदतत्स्वभावम्। त्वया प्रणीतं सुविधे स्वधाम्ना नैतत्समालीढपदं त्वदन्यैः ॥४१॥ तदेव च स्यान्न तदेव च स्यात्तथा प्रतीतेस्तव तत्कथञ्चित्। नात्यन्तमन्यत्वमनन्यता च विधेर्निषेधस्य च शून्यदोषात् ॥४२॥ नित्यं तदेवेदमिति प्रतीतेर्न नित्यमन्यत्प्रतिपत्तिसिद्धेः। न तद्विरुद्धं बहिरन्तरंगनिमित्तनैमित्तिकयोग-

तस्ते॥अनेकमेकं च पदस्य वाच्यं वृक्षा इति प्रत्ययवत्प्रकृत्या। आकाङ्क्षिणः स्यादिति वै निपातो गुणानपेक्षे नियमेऽपवादः ॥४४॥ गुणप्रधानार्थमिदं हि वाक्यं जिनस्य ते तद्द्विषतामपथ्यम्। ततोऽभिवंद्य जगदीश्वराणां ममापि साधोस्तव पादपद्मम् ॥४५॥

१० शीतलनाथस्तुति।

न शीतलाश्चन्दनचन्द्ररश्मयो न गांगमम्भो न च हारयष्टयः। यथा मुनेस्तेऽनघवाक्यरश्मयः शमाम्बुगर्भाः शिशिरा विपश्चिताम्॥४६॥ सुखाभिलाषानलदाहमूर्च्छितं मनो निजं ज्ञानमयामृताम्बुभिः। विदिध्यपस्त्वं विषदाहमोहितं यथा भिषग्मन्त्रगुणैःस्वविग्रहम ॥४७॥ स्वजीविते कामसुखे च तृष्णया दिवा श्रमार्त्ता निशि शेरते प्रजाः। त्वमार्य! नक्तंदिवमप्रमत्तवानजागरेवात्मविशुद्धवर्त्मनि ॥४८॥ अपत्यवित्तोत्तरलोकतृष्णया तपस्विनः केचन कर्म कुर्वते। भवान्पुनर्जन्मजराजिहासया त्रयीं प्रवृत्तिं शमधीरवारुणात् ॥४९॥ त्वमुत्तमज्योतिरजःक्वनिर्वृत्तः क्व ते परे बुद्धिलवोद्धवक्षताः। ततः स्वनिःश्रेयसभावनापरैर्बुधप्रवेकैर्जिनशीतलेड्यसे॥

११ श्री श्रेयान् स्तुति।

श्रेयान् जिनः श्रेयसि वर्त्मनीमाः श्रेयः प्रजाः शासदजेयवाक्यः। भवांश्चकाशे भुवनत्रयेऽस्मिन्नेको यथा वीतघनो विवस्वान्॥५१॥विधिर्विषक्तप्रतिषेधरूपः प्रमाणमत्रान्यतरत्प्रधानम्। गुणो परो मुख्यनियामहेतुर्नयः स दृष्टान्तसम-

र्थनस्ते ॥ ५२ ॥ विवक्षितो मुख्य इतीष्यतेऽन्यो गुणो विवक्षो न निरात्मकस्ते । तथारिमित्रानुभयादिशक्तिर्द्वयावधिः कार्य्यकरं हि वस्तु ॥ ५३ ॥ दृष्टान्तसिद्धावुभयोर्विवादे साध्यं प्रसिद्ध्येन्न तु तादृगस्ति । यत्सर्वथैकान्तनियामदृष्टं त्वदीयदृष्टिर्विभवत्यशेषे ॥५४॥ एकान्तदृष्टिप्रतिषेधसिद्धिर्न्यायेषुभिर्मोहरिपुं निरस्य । असि स्म कैवल्यविभूतिसम्राट् ततस्त्वमर्हन्नसि मे स्तवार्हः ॥ ५५ ॥

१२ वासुपूज्य स्तुति ।

शिवासु पूज्योऽभ्युदयक्रियासु त्वं वासुपूज्यस्त्रिदशेन्द्रपूज्यः । मयापि पूज्योऽल्पधिया मुनीन्द्र दीपार्चिषा किं तपनो न पूज्यः ॥ ५६ ॥ न पूज्ययार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ ! विवान्तवैरे । तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनातु चित्तं दुरितांजनेभ्यः ॥ ५७ ॥ पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य सावद्यलेशो वहुपुण्यराशौ । दोषाय नालं कणिका विषस्य न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ ॥ ५८ ॥ यद्वस्तु बाह्यं गुणदोषसूतेर्निमित्तमभ्यन्तरमूलहेतोः । अध्यात्मवृत्तस्य तदंगभूतमभ्यन्तरं केवलमप्यलं ते ॥ ५९ ॥ बाह्येतरोपाधिसमग्रतेयं कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः । नैवान्यथा मोक्षविधिश्च पुंसां तेनाभिवन्द्यस्त्वमृषिर्बुधानाम् ॥ ६० ॥

१३ विमलस्तुति ।

य एव नित्यक्षणिकादयो नया मिथोऽनपेक्षाः स्वपरप्रणाशिनः । त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः परस्परेक्षाः स्व-

परोपकारिणः ॥ ६१ ॥ यथैकशः कारकमर्थसिद्धये समीक्ष्य शेषं स्वसहायकारकम्। तथैव सामान्यविशेषमातृका नयास्तवेष्टा गुणमुख्यकल्पतः ॥ ६२॥ परस्परेक्षान्वयभेदलिंगतः प्रसिद्धसामान्यविशेषयोस्तव। समग्रतास्ति स्वपरावभासकं यथा प्रमाणं भुवि बुद्धिलक्षणम् ॥६३॥ विशेषवाच्यस्य विशेषणं वचो यतो विशेष्यं विनियम्यते च यत्। तयोश्च समान्यमतिप्रसज्यते विवक्षितात्स्यादिति तेऽन्यवर्जनम्॥६४॥नयास्तव स्यात्पदसत्यलाञ्छिता रसोपविद्धा इव लोहधातवः। भवन्त्यभिप्रेतगुणा यतस्ततो भवन्तमार्याः प्रणिता हितैषिणः ॥ ६५ ॥

१४ अनन्तनाथ स्तुति।

अनन्तदोषाशयविग्रहो ग्रहो विषंगवान्मोहमयश्चिरं हृदि। यतो जितस्तत्त्वरुचौ प्रसीदता त्वया ततोभूर्भगवाननन्तजित् ॥ ६६ ॥ कषायनाम्नां द्विषतां प्रमाथिनामशेषयन्नाम भवानशेषवित्। विशोषणं मन्मथदुर्मदामयं समाधिभैषज्यगुणैर्व्यलीनयन् ॥६७॥ परिश्रमाम्बुर्भयवीचिमालिनी त्वया स्वतृष्णासरिदार्य! शोषिता। असंगघर्मार्कगभस्तितेजसा परं ततो निर्वृतिधाम तावकम् ॥ ६८ ॥ सुहृत्त्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते द्विषन् त्वयि प्रत्ययवत्प्रलीयते। भवानुदासीनतमस्तयोरपि प्रभो! परं चित्रमिदं तवेहितम् ॥ ६९ ॥ त्वमीदृशस्त दृश इत्ययं मम प्रलापलेशोऽल्पमतेर्महामुने!। अशेषमाहात्म्यमनीरयन्नपि शिवाय संस्पर्श इवामृताम्बुधेः॥७०॥

१५ धर्मनाथ स्तुति ।

धर्मतीर्थमनघं प्रवर्त्तयन् धर्म इत्यनुमतः सतां भवान् । कर्मकक्षमदहत्तपोऽग्निभिः शर्म शाश्वतमवाप शङ्करः ॥७१॥ देवमानवनिकायसत्तमै रेजिषे परिवृतो वृतो बुधैः । तारकापरिवृतोऽतिपुष्कलो व्योमनीव शशलाञ्छनोऽमलः ॥७२॥ प्रातिहार्यविभवैः परिष्कृतो देहतोऽपि विरतो भवानभूत । मोक्षमार्गमशिषन्नरामरान्नापि शासनफलैषणातुरः ॥ ७३ ॥ कायवाक्यमनसां प्रवृत्तयो नाऽभवँस्तव मुनेश्चिकीर्षया । नासमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो धीर तावकमचिन्त्यमीहितम्॥७४ मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान् देवतास्वपि च देवता यतः । तेन नाथ ! परमासि देवता श्रेयसे जिनवृष प्रसीद नः ॥७५॥

१६ शान्तिनाथ स्तुति ।

विधाय रक्षां परतः प्रजानां राजा चिरं योऽप्रतिमप्रतापः । व्यधात्पुरस्तात्स्वत एव शान्तिर्मुनिर्दयामूर्तिरिवाघशान्तिम् ॥७६॥ चक्रेण यः शत्रुभयंकरेण जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम् । समाधिचक्रेण पुनर्जिगाय महोदयो दुर्जयमोहचक्रम् ॥७७॥ राजश्रिया राजसु राजसिंहो रराज यो राजसुभोगतन्त्रः । आर्हन्त्यलक्ष्म्या पुनरात्मतन्त्रो देवासुरोदारसभे रराज ॥७८॥ यस्मिन्नभूद्राजनि राजचक्रं मुनौ दयादीधितिधर्मचक्रम् । पूज्ये मुहुः प्रांजलिदेवचक्रं ध्यानोन्मुखे ध्वंसि कृतान्तचक्रम् ॥७९॥ स्वदोषशान्त्यावहितात्मशान्तिः शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम् । भूयाद्भवक्लेशभयोपशान्त्यै शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ॥८०॥

१७ कुन्थुनाथस्तुति।

कुन्थुप्रभृत्यखिलसत्त्वदयैकतानः, कुन्थुर्जिनो ज्वरजरामरणोपशान्त्यै। त्वं धर्मचक्रमिह वर्त्तयसि स्म भूत्यै, भूत्वा पुरा क्षितिपतीश्वरचक्रपाणिः ॥८१॥ तृष्णार्चिषः परिदहन्ति न शान्तिरासामिष्टेन्द्रियार्थविभवैः परिवृद्धिरेव। स्थित्यैव कायपरितापहरं निमित्तमित्यात्मवान्विषयसौख्यपराङ्मुखोऽभूत् ॥८२॥ बाह्यं तपः परमदुश्चरमाचरँस्त्वमाध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणार्थम्। ध्यानं निरस्य कलुषद्वयमुत्तरस्मिन्, ध्यानद्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने ॥८३॥ हुत्वा स्वकर्मकटुकप्रकृतीश्चतस्रो, रत्नत्रयातिशयतेजसि जातवीर्य्यः। विभ्राजिषे सकलदेवविधेर्विनेता, व्यभ्रे यथा वियति दीप्तरुचिर्विवस्वान् ॥८४॥ यस्मान्मुनीन्द्र! तव लोकपितामहाद्या, विद्याविभूतिकणिकामपि नाप्नुवन्ति। तस्माद्भवन्तमजमप्रतिमेयमार्याः, स्तुत्यं स्तुवन्ति सुधियः स्वहितैकतानाः ॥

१८ अरहनाथस्तुति।

गुणस्तोकं सदुल्लंघ्य तद्बहुत्वकथा स्तुतिः। आनन्त्यात्ते गुणा वक्तुमशक्यास्त्वयि सा कथम् ॥८६॥ तथापि ते मुनीन्द्रस्य यतो नामापि कीर्तितम्। पुनाति पुण्यकीर्तेर्नस्ततो ब्रूयाम किञ्चन ॥८७॥ लक्ष्मीविभवसर्वस्वं मुमुक्षोश्चक्रलाञ्छनम्। साम्राज्यं सार्वभौमं ते जरत्तृणमिवाभवत् ॥८८॥ तव रूपस्य सौन्दर्यं दृष्ट्वा तृप्तिमनापिवान्। द्व्यक्षः शक्रः सहस्राक्षो बभूव बहुविस्मयः ॥८९॥ मोहरूपो रिपुः पापः कषायभटसाधनः। दृष्टिसम्पदुपेक्षास्त्रैस्त्वया धीर! पराजितः

॥९०॥ कन्दर्पस्योद्धरो दर्पस्त्रैलोक्यविजयार्जितः। ह्रेपयामास ते धीर त्वयि प्रतिहतोदयः ॥९१॥ आयत्यां च तदात्वे च दुःखयोनिर्निरुत्तरा। तृष्णानदी त्वयोत्तीर्णा,विद्यानावा विविक्तया ॥९२॥ अन्तकः क्रन्दको नृणां जन्मप्रज्वरसखा सदा। त्वामन्तकान्तकं प्राप्य व्यावृत्तः कामकारतः॥ भूषावेषायुधत्यागी विद्यादमदयापरम्। रूपमेव तवाचष्टे धीर! दोषविनिग्रहम्॥९४॥ समन्ततोऽगभासां ते परिवेषेण भूयसा। तमो वाह्यमपाकीर्णमध्यात्मध्यानतेजसा ॥९५॥ सर्वज्ञज्योतिषोद्भूतस्तावको महिमोदयः। कं न कुर्यात् प्रणम्रं ते सत्त्वं नाथ! सचेतनम् ॥९६॥ तव वागमृतं श्रीमत्सर्वभाषास्वभावकम्। प्रणीयत्यमृतं यद्वत् प्राणिनो व्यापि संसदि ॥९७॥ अनेकान्तात्मदृष्टिस्ते सती शून्यो विपर्ययः। ततः सर्वं मृषोक्तं स्यात्तदयुक्तं स्वघाततः ॥४८॥ ये परस्खलितोन्निद्राः स्वदोषेभनिमीलिनः। तपस्विनस्ते किं कुर्युरपात्रं त्वन्मतश्रियः ॥९९॥ ते तं स्वघातिनं दोषं शमीकर्तुमनीश्वराः। त्वद्द्विषः स्वहनो बालास्तत्त्वावक्तव्यतां श्रिताः ॥१००॥ सदेकनित्यवक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नयाः। सर्वथेति प्रदुष्यन्ति पुष्यन्ति स्यादितीहिते ॥१०१॥ सर्वथा नियमत्यागी यथादृष्टमपेक्षकः। स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषाम् ॥१०२॥ अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः। अनेकान्तः प्रमाणात्ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात् ॥१०३॥ इति निरुपमयुक्तिशासनः प्रियहितयोगगुणानुशासनः। अरजिनदमतीर्थना-

यकस्त्वमिव सतां प्रतिबोधनायकः॥१०४॥ मतिगुणविभवा-
नुरूपतस्त्वयि वरदागमदृष्टिरूपतः। गुणकृशमपि किंचनो-
दितं मम भवता दुरिताशनोदितम् ॥१०५॥

१६ मल्लिनाथस्तुति।

यस्य महर्षेः सकलपदार्थमत्यवबोधः समजनि साक्षात्।
सामरमर्त्यं जगदपि सर्वं प्रांजलिभूत्वा प्रणिपतति स्म॥१०६॥
यस्य च मूर्तिः कनकमयीव स्वस्फुरदाभाकृतपरिवेषा। वा-
गपि तत्त्वं कथयितुकामा स्यात्पदपूर्वा रमयति साधून्॥१०७॥
यस्य पुरस्ताद्विगलितमाना न प्रतितीर्थ्या भुवि विवदन्ते।
भूरपि रम्या प्रतिपदमासीज्जातविकोशाम्बुजमृदुहासा॥ यस्य
समन्ताज्जिनशिशिरांशोः शिष्यकसाधुग्रहविभवोऽभूत्।
तीर्थमपि स्वं जननसमुद्रत्रासितसत्त्वोत्तरणपथोऽग्रम्॥१०९॥
यस्य च शुक्लं परमतपोऽग्निर्ध्यानमनन्तं दुरितमधाक्षीत्।
तं जिनसिंहं कृतकरणीयं मल्लिमशल्यं शरणमितोऽस्मि॥११०॥

२० मुनिसुव्रतनाथस्तुति।

अधिगतमुनिसुव्रतस्थितिर्मुनिवृषभो मुनिसुव्रतोऽनघः।
मुनिपरिषदि निर्बभौ भवानुडुपरिषत्परि वीतसोमवत्॥१११॥
परिणतशिखिकण्ठरागया कृतमदनिग्रहनिग्रहाभया। भव-
जिनतपसः प्रसूतया ग्रहपरिवेषरुचेव शोभितम्॥ ११२॥
शशिरुचिशुक्ललोहितं सुरभितरं विरजो निजं वपुः। तव
शिवमतिविस्मयं पते यदपि च वाङ्मनसोऽयमीहितम्॥११३॥
स्थितिजननिरोधलक्षणं चरमचरं च जगत्प्रतिक्षणम्। इति

जिनसकलज्ञलाञ्छनं वचनमिदं वदतां वरस्य ते ॥ ११४॥ दुरितमलकलङ्कमष्टकं निरुपमयोगबलेन निर्दहन्। अभवद्-भवसौख्यवान् भवान् भवतु ममापि भवोपशान्तये ॥११५॥

२१ नमिनाथस्तुति।

स्तुतिः स्तोतुः साधोः कुशलपरिणामाय स तदा, भवेन्मा वा स्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य च सतः। किमेवं स्वाधीना-ज्जगति सुलभे श्रायसपथे, स्तुयान्नत्वा विद्वान्सततमपि पूज्यं नमिजिनम् ॥११६॥ त्वया धीमन् ब्रह्मप्रणिधिमनसा जन्म-निगलं, समूलं निर्भिन्नं त्वमसि विदुषां मोक्षपदवी। त्वयि ज्ञानज्योतिर्विभवकिरणैर्भाति भगवन्नभूवन् खद्योता इव शुचिरवावन्यमतयः ॥ ११७ ॥ विधेयं वार्यं चानुभयमुभयं मिश्रमपि तत्, विशेषैः प्रत्येकं नियमविषयैश्चापरिमितैः। सदान्योन्यापेक्षैः सकलभुवनज्येष्ठगुरुणा त्वया गीतं तत्त्वं बहुनयविवक्षेतरवशात् ॥ ११८ ॥ अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं, न सा तत्रारम्भोस्त्यणुरपि च यत्राश्रम-विधौ। ततस्तत्सिद्ध्यर्थं परमकरुणो ग्रन्थमुभयं भवानेवात्या-क्षीन्न च विकृतवेषोपधिरतः ॥ ११९ ॥ वपुर्भूषावेषव्यवधि-रहितं शान्तिकरणं, यतस्ते संचष्टे स्मरशरविषातङ्कविजयम्। विना भीमैः शस्त्रैरदयहृदयामर्षविलयं ततस्त्वं निर्मोहः शरणमसि नः शान्तिनिलयः ॥ १२० ॥

२२ नेमिनाथस्तुति।

भगवानृषिः परमयोगदहनहुतकल्मषेन्धनम्। ज्ञानविपुल-

किरणैः सकलं प्रतिबुध्य बुद्धः कमलायतेक्षणः ॥ १२१ ॥ हरिवंशकेतुरनवद्यविनयदमतीर्थनायकः। शीलजलधिरभवो विभवस्तत्त्वमरिष्टनेमिजिनकुंजरोऽजरः ॥ १२२ ॥ त्रिदशेन्द्रमौलिमणिरत्नकिरणविसरोपचुम्बितम्। पादयुगलममलं भवतो विकसत्कुशेशयदलारुणोदरम् ॥ १२३ ॥ नखचन्द्ररश्मिकवचातिरुचिरशिखरांगुलिस्थलम्। स्वार्थनियतमनसः सुधियः प्रणमन्ति मन्त्रमुखरा महर्षयः ॥ १२४ ॥ द्युतिमद्रथांगरविबिम्बकिरणजटिलांशुमण्डलः। नीलजलजदलराशिवपुः सहबन्धुभिर्गरुडकेतुरीश्वरः ॥१२५॥ हलभृच्च ते स्वजनभक्तिमुदितहृदयौ जनेश्वरौ। धर्मविनयरसिकौ सुतरां चरणारविन्दयुगलं प्रणेमतुः ॥ १२६ ॥ ककुदं भुवः खचरयोषिदुषितशिखरैरलंकृतः। मेघपटलपरिवीततटस्तव लक्षणानि लिखितानि वज्रिणा ॥ १२७ ॥ वहतीति तीर्थमृषिभिश्च सततमभिगम्यतेऽद्य च। प्रीतिविततहृदयैः परितो भृशमूर्ज्जयन्त इति विश्रुतोऽचलः ॥ १२८ ॥ बहिरन्तरप्युभयथा च करणमविघाति नार्थकृत्। नाथ युगपदखिलं च सदा त्वमिदं तलामलकवद्विवेदिथ ॥ १२९ ॥ अतएव ते बुधनुतस्य चरितगुणमद्भुतोदयम्। न्यायविहितमवधार्य जिने त्वयि सुप्रसन्नमनसः स्थिता वयं ॥ १३० ॥

२३ पार्श्वनाथस्तुति।

तमालनीलैः सधनुस्तडिद्गुणैः प्रकीर्णभीमाशनिवायुवृष्टिभिः। बलाहकैर्वैरिवशैरुपद्रुतो महामना यो न चचाल

योगतः ॥ १३१ ॥ बृहत्फणामण्डलमण्डपेन यं स्फुरत्तडित्पिङ्गरुचोपसर्गिणाम् । जुगूह नागो धरणो धराधरं विरागसन्ध्यातडिदम्बुदो यथा ॥ १३२ ॥ स्वयोगनिस्त्रिंशनिशातधारया निशात्य यो दुर्जयमोहविद्विषम् । अवापदार्हन्त्यमचिन्त्यमद्भुतं त्रिलोकपूजातिशयास्पदं पदम् ॥ १३३ ॥ यमीश्वरं वीक्ष्य विधूतकल्मषं तपोधनास्तेऽपि तथा बुभूषवः । वनौकसः स्वश्रमवन्ध्यबुद्धयः शमोपदेशं शरणं प्रपेदिरे ॥ १३४ ॥ स सत्यविद्यातपसां प्रणायकः समग्रधीरुग्रकुलाम्बरांशुमान् । मया सदा पार्श्वजिनः प्रणम्यते विलीनमिथ्यापथदृष्टिविभ्रमः ॥ १३५ ॥

२४ महावीरस्तुति ।

कीर्त्या भुवि भासितया वीरत्वं गुणसमुच्छ्रया भासितया । भासोडुसभासितया सोम इव व्योम्नि कुन्द शोभासितया ॥ तव जिनशासनविभवो जयति कलावपि गुणानुशासनविभवः । दोषकशासनविभवः स्तुवंति चैनं प्रभाकृशासनविभवः ॥ १३७ ॥ अनवद्यः स्याद्वादस्तव दृष्टेष्टाविरोधतः स्याद्वादः । इतरो न स्याद्वादो सद्वितयविरोधान्मुनीश्वराऽस्याद्वादः ॥ १३८ ॥ त्वमसि सुरासुरमहितो ग्रन्थिकसत्त्वाशयप्रणामामहितः । लोकत्रयपरमहितोऽनावरणज्योतिरुज्वलद्धामहितः ॥ १३९ ॥ सभ्यानामभिरुचितं दधासि गुणभूषणं श्रिया चारुचितम् । मग्नं स्वस्यां रुचिरं जयसि च मृगलाञ्छनं स्वकान्त्या रुचितम् ॥ त्वं जिन ! गतमदमा-

यस्त्व भावानां मुमुक्षुकामदमायः । श्रेयान् श्रीमदमायस्त्वया समादेशि सभयामदमायः ॥ १४१ ॥ गिरिभित्त्यवदानवतः श्रीमत इव दन्तिनः श्रवदानवतः । तव शमवादानवतो गतमूर्जितमपगतप्रमादानवतः ॥ १४२ ॥ बहुगुणसंपदसकलं परमतमपि मधुरवचनविन्यासकलम् । नयभक्त्यवतंसकलं तव देव ! मतं समन्तभद्रं सकलम् ॥ १४३॥ यो निःशेषजिनोक्तधर्मविषयः श्रीगौतमाद्यैः कृतः, सूक्तार्थैरमलैः स्तवोयमसमः स्वल्पैः प्रसन्नैः पदैः। तद्व्याख्यानमदो यथाह्यवगतः किञ्चित्कृतं लेशतः स्थेयाँश्चन्द्रदिवाकरावधि बुधप्रह्लादचेतस्यलम् ॥

भगवज्जिनसेनाचार्यकृत ।

५८—श्रीजिनसहस्रनामस्तोत्र ।

स्वयंभुवे नमस्तुभ्यमुत्पाद्यात्मानमात्मनि। स्वात्मनैव तथोद्भूतवृत्तये चिंत्यवृत्तये॥१॥ नमस्ते जगतां पत्ये लक्ष्मीभर्त्रे नमो नमः ! विदांवर नमस्तुभ्यं नमस्ते वदतांवर ॥२॥ कामशत्रुहणं देवमामनंति मनीषिणः। त्वामानंमस्तुरेन्मौलिभामालाभ्यर्चितक्रमम् ॥३॥ ध्यानदुर्घणनिर्भिन्नघनघातिमहातरुः। अनंतभवसंतानजयोप्यासीरनंतजित्॥ त्रैलोक्यनिर्जयाव्याप्तदुर्दर्प्पमतिदुर्जयं। मृत्युराजं विजत्यासीज्जन्ममृत्युंजयो भवान्॥५॥विधूताशेषसंसारो बंधुर्नो भव्यबांधवः। त्रिपुरारिस्त्वमीशोसि जन्ममृत्युजरांतकृत्॥ त्रिकालविजयाशेषतत्त्वभेदात् त्रिविधोच्छिदं। केवलाख्यं दधच्चक्षुस्त्रिनेत्रोसि

त्वमीशिता ॥ त्वामंधकांतकं प्राहुर्मोहांधासुरमर्दनात् । अर्द्धन्ते नारयो यस्मादर्धनारीश्वरोस्युत ॥८॥ शिवः शिवपदाध्यासाद् दुरितारिहरो हरः । शंकरः कृतशं लोके संभवस्त्वं भवन्मुखे॥९॥ वृषभोसि जगज्ज्येष्ठः गुरुर्गुरु गुणोदयैः । नाभेयो नाभिसंभूतेरिक्ष्वाकुकुलनंदनः ॥१०॥ त्वमेकः पुरुषस्कंधस्त्वं द्वे लोकस्य लोचने । त्वं त्रिधाबुधसन्मार्गस्त्रिज्ञस्त्रिज्ञानधारकः॥ चतुर्मांगल्यमूर्तिस्त्वं शरणं चतुरः सुधीः । पंचब्रह्ममयो देवः पावनस्त्वं पुनीहि मां ॥१२॥ स्वर्गावतारिणे तुभ्यं सद्यो जातात्मने नमः । जन्माभिषकवामाय वामदेव नमोस्तुते ॥१३॥ सुनिःक्रांताय घोराय परं प्रशममीयुषे । केवलज्ञानसंसिद्धावीशानाय नमोस्तुते ॥१४॥ पुरुस्तत्पुरुषत्वेन विमुक्तपदभागिने । नमस्तत्पुरुषावस्थां भावनार्णवविभ्रते ॥१५॥ ज्ञानावरणनिर्हास नमस्तेनंतचक्षुषे । दर्शनावरणोच्छेदान्नमस्ते विश्वदर्शिने॥१६॥नमो दर्शनमोहादिक्षायिकामलदृष्टये । नमश्चारित्रमोहघ्ने विरागाय महौजसे॥१७॥ नमस्तेनंतवीर्याय नमोनंतसुखाय ते । नमस्तेनंत लोकायलोकालोकविलोकिने ॥ नमस्तेनंतदानाय नमस्तेनंतलब्धये । नमस्तेनंतभोगाय नमोनंताय भोगिने॥१९॥नमः परमयोगाय नमस्तुभ्यमयोनये । नमः परमपूताय नमस्ते परमर्षये ॥ नमः परमविद्याय नमः परमवच्छिदे । नमः परमतत्त्वाय नमस्ते परमात्मने ॥२१॥ नमः परमरूपाय नमः परमतेजसे । नमः परममार्गाय नमस्ते परमेष्ठिने ॥२२॥ परमर्द्धिजुषे धाम्ने परमज्योतिषे नमः ।

नमः पारेतमः प्राप्तधाम्ने ते परमात्मने ॥२३॥ नमः क्षीण-कलंकाय क्षीणबंध नमोस्तु ते। नमस्ते क्षीणमोहाय क्षीणदो-षाय ते-नमः ॥२४॥ नमः सुगतये तुभ्यं शोभनागतमीयुषेः। नमस्तेतींद्रियज्ञानसुखायानिंद्रियात्मने ॥२५॥ कायबंधननि-र्मोक्षादकायाथ नमोस्तु ते । नमस्तुभ्यमयोगाय योगिना-मपि योगिने ॥ अवेदाय नमस्तुभ्यमकषायाय ते नमः। नमः परमयोगींद्रवंदितांघ्रिद्वयाय ते॥२७॥नमः परमविज्ञान नमः परमसंयमः। नमः परमदृग्दृष्टपरमार्थाय ते नमः॥२८॥नमःस्तु भ्यमलेश्याय शुक्ललेश्यांशकस्पृशे । नमो भव्येतरावस्थाव्य तीताय विमोक्षणे ॥ संज्ञासंज्ञिद्वयावस्थाव्यतिरिक्तामलात्म-नें। नमस्ते वीतसंज्ञाय नमः क्षायिकदृष्टये॥३०॥ अनाहाराय तृप्ताय नमः परमभाजुषे। व्यतीताशेषदोषाय भवाद्धे पार-मीयुषे ॥३१॥ अजराय नमस्तुभ्यं नमस्तेतीतजन्मने अमृत्यवे नमस्तुभ्यमचलायाक्षरात्मने ॥ अलमास्तां गुणस्तोत्रमनं-तास्तावकागुणाः। त्वन्नामस्मृतिमात्रेण परमं शं प्रशास्महे ॥३३॥ एवं स्तुत्वा जिनं देवं भक्त्या परमया सुधीः। पठेद-ष्टोत्तरं नाम्नां सहस्रं पाप शांतये ॥

इति प्रस्तावना।

प्रसिद्धाष्टसहस्रेद्धलक्षणस्त्वं गिरां पतिः। नाम्नामष्टस-हस्रेण त्वांस्तुमोभीष्टसिद्धये ॥ १ ॥ श्रीमान्स्वयंभूर्वृषभः शंभवः शंभुरात्मभूः। स्वयंप्रभः प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः ॥२॥ विश्वात्माविश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः। विश्वविद्-

श्चविद्येशो विश्वयोनिरनीश्वरः ॥ ३ ॥ विश्वदृश्वाविभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः। विश्वव्यापी विधिर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः ॥ ४ ॥ विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः। विश्वदृक् विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः ॥५॥ जिनो जिष्णुरमेयात्मा जगदीशो जगत्पतिः। अनन्तचिदचिंत्यात्मा भव्यबंधुरबंधनः ॥ ६ ॥ युगादिपुरुषो ब्रह्मा पंचब्रह्ममयः शिवः। परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः॥७॥ स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्मयोनिरयोनिजः। मोहारिविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वजः ॥ ८ ॥ प्रशांतारिरनंतात्मा योगी योगीश्वरार्चितः। ब्रह्मविद् ब्रह्मतत्त्वज्ञो ब्रह्मेद्याविद्यतीश्वरः ॥९॥ शुद्धोबुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थः सिद्धशासनः। सिद्धः सिद्धांतविद् ध्येयः सिद्धसाध्यो जगद्धितः ॥१०॥ सहिष्णुरच्युतोनंतः प्रभविष्णुर्भवोद्भवः। प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो भ्राजिष्णुर्धीश्वरोऽव्ययः ॥ ११ ॥ विभावसुरसंभूष्णुः स्वयंभूष्णुः पुरातनः। परमात्मा परंज्योतिस्त्रिजगत्परमेश्वरः ॥ १२ ॥

इति श्रीमदादिशतम् ॥ १ ॥

(यहां उदकचंदनतंदुल...आदि श्लोक पढ़कर अर्घ चढ़ाना चाहिये)

दिव्यभाषापतिर्दिव्यः पूतवाक्पूतशासनः। पूतात्मा परमज्योतिधर्माध्यक्षो दमीश्वरः ॥१॥ श्रीपतिर्भगवानर्हन्नरजाविरजाः शुचिः। तीर्थकृत्केवली शांतः पूजार्हः स्नातकोऽमलः ॥ २ ॥ अनंतदीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयंबुद्धः प्रजापतिः। मुक्तः शक्तो निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः ॥३॥ निरंजनो

जगज्ज्योतिर्निरुक्तोक्तिर्निरामयः । अचलस्थितिरक्षोभ्यः कूटस्थः स्थाणुरक्षयः ॥ ४ ॥ अग्रणीर्ग्रामणीर्नेता प्रणेता न्यायशास्त्रकृत। शास्ता धर्मपतिधर्म्यो धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत् ॥ ५ ॥ वृषध्वजो वृषाधीशो वृषकेतुर्वृषायुधः। वृषो वृषपतिर्भर्ता वृषभांको वृषोद्भवः ॥ ६ ॥ हिरण्यनाभिर्भूतात्मा भूतभृद्भूतभावनः। प्रभवो विभवो भास्वान् भवो भावो भवांतकः ॥७॥ हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः प्रभूतविभवोद्भवः। स्वयंप्रभुः प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्प्रभुः। सर्वादिः सर्वदृक् सार्वः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः। सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्ववित्सर्वलोकजित् ॥९॥ सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुक् सुवाक् सूरिबहुश्रुतः। विश्रुतः विश्वतः पादो विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः॥१०॥ सहस्रशीर्षः क्षेत्रज्ञः सहस्राक्षः सहस्रपात्। भूतभव्यभवद्भर्ता विश्वविद्या महेश्वरः ॥ ११ ॥

इति दिव्यादिशतम् ॥ २ ॥ अर्घ ।

स्थविष्ठः स्थविरो जेष्ठः पृष्ठः प्रेष्ठो वरिष्ठधीः। स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः श्रेष्ठो निष्ठो गरिष्ठगीः ॥१॥ विश्वसृद्विश्वसृट् विश्वेट् विश्वभुग्विश्वनायकः। विश्वाशीर्विश्वरूपात्मा विश्वजिद्विजितांतकः ॥२॥ विभवो विभयो वीरो विशोको विजरो जरन्। विरागो विरतोऽसंगो विविक्तो वीतमत्सरः ॥३॥ विनयेजनताबंधुर्विलीनाशेषकल्मषः। वियोगो योगविद्विद्वान्विधातासुविधिः सुधीः ॥ ४ ॥ क्षांतिभाक्पृथिवीमूर्तिः शांतिभाक्सलिलात्मकः। वायुमुर्तिरसंगात्मा वह्निमूर्तिरधर्मधृक् ॥ ५ ॥ सुयज्वा यजमानात्मा सुत्वा सुत्राम-

पूजितः । ऋत्विग्यज्ञपतिर्यज्ञो यज्ञांगममृतं हविः ॥ ६ ॥ व्योममूर्त्तिरमूर्तात्मा निर्लेपो निर्मलोऽचलः । सोममूर्त्तिः सुसौम्यात्मा सूर्यमूर्त्तिर्महाप्रभः॥७॥मंत्रविन्मंत्रकृन्मंत्री मंत्रमूर्तिरनंतकः । स्वतंत्रस्तंत्रकृत्स्वांतः कृतांतांतः कृतांतकृत् ॥८॥ कृती कृतार्थः सत्कृत्यः कृतकृत्यः कृतक्रतुः । नित्यो मृत्युंजयो मृत्युरमृतात्मामृतोद्भवः ॥९॥ ब्रह्मनिष्ठः परंब्रह्म ब्रह्मात्मा ब्रह्मसंभवः । महाब्रह्मपतिर्ब्रह्मेट् महाब्रह्मपदेश्वरः ॥१०॥ सुप्रसन्नः प्रसन्नात्मा ज्ञानधर्मदमप्रभुः । प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा पुराणपुरुषोत्तमः ॥ ११ ॥

इति स्थविष्ठादिशतम् ॥ ३ ॥ अर्घ ।

महाशोकध्वजोऽशोकः कः स्रष्टापद्मविष्टरः । पद्मेशः पद्मसंभूतिः पद्मनाभिरनुत्तरः ॥ १ ॥ पद्मयोनिर्जगद्योनिरित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः । स्तवनार्हो हृषीकेशो जितजेयः कृतक्रियः ॥२॥ गणाधिपो गणज्येष्ठो गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः । गुणाकरो गुणांभोधिर्गुणज्ञो गुणनायकः ॥ ३ ॥ गुणाकरी गुणोच्छेदी निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः । शरण्यः पुण्यवाक्पूतो वरेण्यः पुण्यनायकः ॥ ४ ॥ अगण्यः पुण्यधीर्गण्यः पुण्यकृत्पुण्यशासनः । धर्मारामो गुणग्रामः पुण्यापुण्यनिरोधकः ॥५॥ पापापेतो विपापात्मा विपाप्मा वीतकल्मषः । निर्द्वन्द्वो निर्मदः शांतो निर्मोहो निरुपद्रवः ॥ ६ ॥ निर्निमेषो निराहारो निःक्रियो निरुपप्लवः । निष्कलंको निरस्तैना निर्धूतांगो निराश्रयः ॥७॥ विशालो विपुलज्योतिरतुलोऽचिंत्य-

वैभवः। सुसंवृतः सुगुप्तात्मा सुव्रत्सुनयतत्त्ववित् ॥८॥ एकविद्यो महाविद्यो मुनिः परिवृढः पतिः। धीशो विद्यानिधिः साक्षी विनेता विहतांतकः ॥९॥ पिता पितामहः पाता पवित्रः पावनो गतिः। त्राता भिषग्वरो वर्यो वरदः परमः पुमान् ॥१०॥ कविः पुराणपुरुषो वर्षीयान्वृषभः पुरुः। प्रतिष्ठः प्रसवो हेतुर्भुवनैकपितामहः ॥ ११ ॥

इति महाशोकध्वजादिशतम् ॥ ४ ॥ अर्घ।

श्रीवृक्षलक्षणः श्लक्ष्णो लक्षण्य शुभलक्षणः निरक्षः पुंडरीकाक्षः पुष्कलः पुष्करेक्षणः ॥१॥ सिद्धिदः सिद्धसंकल्पः सिद्धात्मा सिद्धिसाधनः। बुद्ध बोध्यो महाबोधिर्वर्धमानो महर्द्धिकः ॥ २ ॥ वेदांगो वेदविद्वेद्यो जातरूपो विदांवरः। वेदवेद्यः स्वयंवेद्यो विवेदो वदतांवरः ॥३॥ अनादिनिधनो व्यक्तो व्यक्तवाग्व्यक्तशासनः। युगादिकृद्युगाधारो युगादिर्जगदादिजः ॥ ४ ॥ अतीन्द्रोऽतींद्रियो धींद्रो महेंद्रोऽतींद्रियार्थदृक्। अनिंद्रियोऽहमिंद्राच्यों महेन्द्रमहितो महान् ॥ ५ ॥ उद्भवः कारणं कर्ता पारगो भवतारकः। अग्राह्यो गहनं गुह्यं परार्ध्यं परमेश्वरः ॥ ६ ॥ अनंतर्द्धिरमेयर्द्धिरचिंत्यर्द्धिः समग्रधीः। प्राग्रचः प्राग्रहरोऽभ्यग्रचः प्रत्यग्रोग्रचोग्रिमोग्रजः ॥ ७ ॥ महातपा महातेजा महोदर्को महोदयः। महायशो महाधामा महासत्त्वो महाधृतिः ॥ ८ ॥ महाधैर्यो महावीर्यो महासंपन्महाबलः। महाशक्तिर्महाज्योतिर्महाभूतिर्महाद्युति॥ महामतिर्महानीतिर्महाक्षांतिर्महोदयः।

महाप्राज्ञो महाभागो महानंदो महाकविः ॥ १० ॥ महा-महामहाकीर्तिर्महाकांतिर्महावपुः। महादानो महाज्ञानो महा-योगो महागुणः ॥ ११ ॥ महामहपतिः प्राप्तमहाकल्याण-पंचकः। महाप्रभुर्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वरः ॥ १२ ॥

इति श्रीवृक्षादिशतम् ॥ ५ ॥ अर्घं।

महामुनिर्महामौनी महाध्यानी महादमः। महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः ॥ १ ॥ महाव्रतपतिर्मह्यो महाकांतिधरोऽधिपः। महामैत्री मयोऽमेयो महोपायो महोदयः ॥ २ ॥ महाकारुण्यको मंता महामंत्रो महा-यतिः। महानादो महाघोषो महेज्यो महसांपतिः ॥ ३ ॥ महाध्वरधरो धुर्यो महौदार्यो महेष्टवाक्। महात्मा महसांधाम महर्षिर्महितोदयः ॥४॥ महाक्लेशांकुशः शूरो महाभूतपति र्गुरुः। महापराक्रमोऽनंतो महाक्रोधरिपुर्वशी ॥ ५ ॥ महाभवाब्धिसंतारिर्महामोहाद्रिसूदनः। महागुणाकरः क्षांतो महायोगीश्वरः शमी ॥ ६ ॥ महाध्यानपतिर्ध्याता महाधर्मा महाव्रतः। महाकर्मारिहात्मज्ञो महादेवो महे-शिता ॥ ७ ॥ सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः। असं-ख्येयोऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः ॥ ८ ॥ सर्वयोगी-श्वरोऽचिंत्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः। दांतात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः ॥ ९ ॥ प्रधानमात्मा प्रकृतिः परमः परमोदयः। प्रक्षीणबंधः कामारिः क्षेमकृत्क्षेमशासनः ॥ १० ॥ प्रणवः प्रणयः प्राणः प्राणदः प्रणतेश्वरः। प्रमाणं प्राणि-

र्धिर्दक्षो दक्षिणोऽध्वर्युरध्वरः ॥ ११ ॥ आनंदो नंदनो नंदो वंद्योऽनिंद्योऽभिनंदनः। कामहा कामदः काम्यः कामधेनुररिंजयः ॥ १२ ॥

इति महामुन्यादिशतम् ॥ ६ ॥ अर्घं।

असंस्कृतः सुसंस्कारः प्राकृतो वैकृतांतकृत्। अंतकृत्कांतिगुः कांतश्चिंतामणिरभीष्टदः ॥ १ ॥ अजितोजितकामारिरमितोऽमितशासनः। जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितांतकः ॥२॥ जिनेंद्रः परमानंदो मुनींद्रो दुंदुभिस्वनः। महेंद्रवंद्यो योगींद्रो यतीन्द्रो नाभिनंदनः॥३॥नाभेयो नाभिजो जातः सुव्रतो मनुरुत्तमः। अभेद्योऽनत्ययोऽनाश्वानधिकोऽधिगुरुः सुधीः ॥४॥ सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुकः। विशिष्टः शिष्टभुक् शिष्टः प्रत्ययः कामनोऽनघः ॥ ५ ॥ क्षेमी क्षेमंकरोऽक्षय्यः क्षेमधर्मपतिः क्षमी अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो ध्यानगम्यो निरुत्तरः ॥ ६ ॥ सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनयश्चतुराननः। श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्चतुरास्यश्चतुर्मुखः ॥ ७ ॥ सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक्सत्यशासनः। सत्याशीः सत्यसंधानः सत्यः सत्यपरायणः ॥ ८ ॥ स्थेयान्स्थवीयान्नेदीयान्दवीयान्दूरदर्शनः। अणोरणीयाननणुर्गुरुराद्यो गरीयसां॥९॥ सदायोगः सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः। सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्यः सदोदयः ॥ १० ॥ सुघोषः सुमुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृत्। सुगुप्तोगुप्तिभृद्गोप्ता लोकाध्यक्षो दमीश्वरः ॥११॥

इति असंस्कृतादिशतम् ॥ ७॥ अर्घं।

बृहन्बृहस्पतिर्वाग्मी वाचस्पतिरुदारधीः। मनीषी धिषणो धीमाञ्छेमुशीषो गिरांपतिः ॥ १ ॥ नैकरूपो नयस्तुंगो नैकात्मा नैकधर्मकृत्। अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः ॥ २ ॥ ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः। पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः ॥ ३ ॥ लक्ष्मीवांस्त्रिदशाऽध्यक्षो दृढीयानिन ईशिता। मनोहरो मनोज्ञांगो धीरो गंभीरशासनः ॥ ४ ॥ धर्मयूपो दयायागो धर्मनेमिर्मुनीश्वरः। धर्मचक्रायुधो देवः कर्महा धर्मघोषणः ॥ ५ ॥ अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासनः। सुरूपः सुभगस्त्यागी समयज्ञः समाहितः ॥ ६ ॥ सुस्थितः स्वास्थ्यभाक्स्वस्थो नीरजस्को निरुद्धवः। अलेपो निष्कलंकात्मा वीतरागो गतस्पृहः ॥७॥ वश्येन्द्रियो नियुक्तात्मा निःसपत्नो जितेन्द्रियः। प्रशान्तोऽनन्तधामर्षिर्मंगलं मलहानघः ॥ ८ ॥ अनीदृगुपमाभूतो दृष्टिर्दैवमगोचरः। अमूर्तो मूर्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक् ॥ ९ ॥ अध्यात्मगम्यो गम्यात्मा योगविद्योगिवन्दितः। सर्वत्रगः सदाभावी त्रिकालविषयार्थदृक् ॥ १० ॥ शंकरः शंवदो दान्तो दमी क्षान्तिपरायणः। अधिपः परमानन्दः परात्मज्ञः परात्परः ॥ ११ ॥ त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्त्रिजगन्मंगलोदयः। त्रिजगत्पतिपूजांघ्रिस्त्रिलोकाग्रशिखामणिः ॥ १२ ॥

इति बृहदादिशतम् ॥ ८ ॥

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रतः । सर्वलोकातिगः पूज्यः सर्वलोकैकसारथिः ॥ १ ॥ पुराणपुरुषः पूर्वः कृतपूर्वांगविस्तरः । आदिदेवः पुराणाद्यः पुरुदेवोऽधिदेवता ॥ २ ॥ युगमुख्यो युगज्येष्ठो युगादिस्थितिदेशकः । कल्याणवर्णः कल्याणः कल्यः कल्याणलक्षणः ॥ ३ ॥ कल्याणः प्रकृतिर्दीप्तः कल्याणात्मा विकल्मषः । विकलंकः कलातीतः कलिलघ्नः कलाधरः ॥ ४ ॥ देवदेवो जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जगद्विभुः । जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वगो जगदग्रजः ॥ ५ ॥ चराचरगुरुर्गोप्यो गूढात्मा गूढगोचरः । सद्योजातः प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसप्रभः ॥ ६ ॥ आदित्यवर्णो भर्माभः सुप्रभः कनकप्रभः । सुवर्णवर्णो रुक्माभः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ ७ ॥ तपनीयनिभस्तुंगो बालार्काभोऽनलप्रभः संध्याभ्रबभ्रुर्हेमाभस्तप्तचामीकरच्छविः ॥ ८ ॥ निष्टप्तकनच्छायः कनत्काञ्चनसन्निभः । हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुम्भनिभप्रभः ॥९॥ द्युम्नभाजातरूपाभो दीप्तजाम्बूनदद्युतिः । सुधौतकलधौतश्रीः प्रदीप्तो हाटकद्युतिः॥१०॥ शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षरक्षमः । शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता स्वभूः ॥ शान्तिनिष्ठो मुनिज्येष्ठः शिवतातिः शिवप्रदः । शान्तिदः शान्तिकृच्छान्तिः कांतिमान्कामितप्रदः ॥ १२ ॥ श्रेयोनिधिरधिष्ठानमप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः । सुस्थितः स्थावरः स्थाणुः प्रथीयान्प्रथितः पृथुः॥१३

इति त्रिकालदर्श्यादि शतम् ॥ ६ ॥ अर्घं ।

दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः। निष्किञ्चनो निराशंसो ज्ञानचक्षुरमोमुहः ॥१॥ तेजोराशिरनन्तौजा ज्ञानाब्धिः शीलसागरः। तेजोमयोऽमितज्योतिर्ज्योतिमूर्तिस्तमोपहः॥२॥ जगच्चूडामणिर्दीप्तः सर्वविघ्नविनायकः। कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो लोकालोकप्रकाशकः॥३॥ अनिद्रालुरतंद्रालुर्जागरूकः प्रमामयः। लक्ष्मीपतिर्जगज्ज्योतिर्धर्मराजः प्रजाहितः ॥४॥ मुमुक्षुर्बंधमोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथः। प्रशांतरसशैलूषो भव्यपेटनायकः ॥ ५ ॥ मूलकर्ताखिलज्योतिर्मलघ्नो मूलकारणः। आप्तो वागीश्वरः श्रेयाञ्छ्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक् ॥६॥ प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्वभाववित्। सुतनुस्तनुर्निर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः ॥ ७ ॥ श्रीशः श्रीश्रितपादाब्जो भीतभीरभयंकरः। उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सलः ॥८॥ लोकोत्तरो लोकपतिर्लोकचक्षुरपारधीः। धीरधीर्बुद्धसन्मार्गः शुद्धः सूनृतपूतवाक्॥९॥ प्रज्ञापारमितः प्राज्ञो यतिर्नियमितेंद्रियः। भदंतो भद्रकृद्भद्रः कल्पवृक्षो वरप्रदः ॥१०॥ समुन्मूलितकर्मारिः कर्मकाष्ठाशुशुक्षणिः। कर्मण्यः कर्मठः प्रांशुर्हेयादेयविचक्षणः ॥११॥ अनंतशक्तिरच्छेद्यस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः। त्रिनेत्रस्त्र्यम्बकस्त्र्यक्षः केवलज्ञानवीक्षणः ॥१२॥ समंतभद्रः शांतारिर्धर्माचार्यो दयानिधिः। सूक्ष्मदर्शी जितानंगः कृपालुर्धर्मदेशकः ॥१३॥ शुभंयुः सुखसाद्भूतः पुण्यराशिरनामयः। धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायकः ॥१४॥

इति दिग्वासादि शतं ॥१०॥ इत्यष्टाधिकसहस्रनामावली समाप्ता। अर्घं।

धाम्नांपते तवामूनि नामान्यागमकोविदैः। समुच्चितान्यनुध्यायन्पुमान्पूतस्मृतिर्भवेत्॥१॥ गोचरोऽपि गिरामासां त्वमवाग्गोचरो मतः। स्तोता तथाप्यसंदिग्धं त्वत्तोऽभीष्टफलं लभेत्॥२॥ त्वमतोऽसि जगद्बन्धुस्त्वमऽतोसि जगद्भिषक्। त्वमतोसि जगद्धाता त्वमतोऽसि जगद्धितः॥३॥ त्वमेकं जगतां ज्योतिस्त्वं द्विरूपोपयोगभाक्। त्वं त्रिरूपैकमुक्त्यंगं सोत्थानंतचतुष्टयः॥४॥ त्वं पंचब्रह्मतत्त्वात्मा पंचकल्याणनायकः। षड्भेदभावतत्त्वज्ञस्त्वं सप्तनयसंग्रहः॥५॥ दिव्याष्टगुणमूर्तिस्त्वं नवकेवललब्धिकः। दशावतारनिर्धार्यो मां पाहि परमेश्वरः॥६॥ युष्मन्नामावलीदृब्धाविलसत्स्तोत्रमालया। भवंतं वरिवस्यामः प्रसीदानुग्रहाण नः॥ ७॥ इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य पूतो भवति भाक्तिकः। यः सपाठं पठत्येनं स स्यात्कल्याणभाजनं॥८॥ ततः सदेदं पुण्यार्थी पुमान्पठति पुण्यधीः। पौरुहूतीं श्रियं प्राप्तुं परमामभिलाषुकः॥९॥ स्तुत्वेति मघवा देवं चराचरजगद्गुरुं। ततस्तीर्थविहारस्य व्यधात्प्रस्तावनामिमां॥१०॥ स्तुतिः पुण्यगुणोत्कीर्तिः स्तोता भव्यः प्रसन्नधीः। निष्ठितार्थो भवांस्तुत्यः फलं नैश्रेयसं सुखं॥११॥

यः स्तुत्यो जगतां त्रयस्य न पुनः स्तोता स्वयं कस्यचित्। ध्येयो योगिजनस्य यश्च नितरां ध्याता स्वयं कस्यचित्॥ यो नेतॄन् नयते नमस्कृतिमलं नंतव्यपक्षेक्षणः। स श्रीमान् जगतां त्रयस्य च गुरुर्देवः पुरुः पावनः॥१२॥तं देवं

त्रिदशाधिपार्चितपदं घातिक्षयानंतरं । प्रोत्थानंतचतष्टयं जिनमिमं भव्याब्जनीनामिनं । मानस्तंभविलोकनानतजगन्मान्यं त्रिलोकीपतिं । प्राप्ताचिंत्यबहिर्विभूतिमनघं भक्त्या प्रवंदामहे ॥१३॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत् । इति श्रीजिनसहस्रनामस्तवनं समाप्तम् ।

५९–भक्तामरस्तोत्र ।

भक्तामरप्रणतमौलिमणि प्रभाणामुद्योतकं दलितपापतमोवितानं । सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-वालंबनं भवजले पततां जनानां १॥ यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधादुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः । स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः, स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेंद्रं ॥२॥ बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठस्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहं । बालं विहाय जलसंस्थितमिंदुबिंबमन्यः क इच्छति जनः सहसा गृहीतुं ॥ ३ ॥ वक्तुं गुणान्गुणसमुद्र शशांककांतान्, कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपिबुद्ध्या । कल्पांतकालपवनोद्धतनक्रचक्रं, को वा तरीतुमलमंबुनिधिं भुजाभ्यां ॥ ४ ॥ सोहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश, कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः । प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगीमृगेंद्रं, नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थं ॥५॥ अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम, त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्मां । यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति, तच्चाम्रचारु-

कलिकानिकरैकहेतु ॥ ६ ॥ त्वत्संस्तवेन भवसंततिसन्निबद्धं पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजां। आक्रांतलोकमलिनील-मशेषमाशु, सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमंधकारं ॥ ७ ॥ मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेदमारभ्यते तनुधियापि तव प्रभा-वात्। चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु, मुक्ताफलद्युति-मुपैति ननूदबिंदुः ॥८॥ आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं, त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हंति। दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव, पद्माकरेषु जलजानि विकासभांजि ॥ ९ ॥ नात्यद्भुतं भुवनभूषण भूतनाथ ! भूतैर्गुणैर्भुवि भवंतमभि-ष्टुवंतः। तुल्या भवंति भवतो ननु तेन किं वा, भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥ १० ॥ दृष्ट्वा भवंतमनिमेषवि-लोकनीयं, नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्यचक्षुः। पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिंधोः क्षारं जलं जलनिधे रसितुं क इच्छेत् ॥ ११ ॥ यैः शांतरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं निर्मा-पितस्त्रिभुवनैकललामभूत। तावंत एव खलु तेप्यणवः पृथि-व्यां यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥ १२ ॥ वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि, निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानं। बिंबं कलंकमलिनं क्व निशाकरस्य, यद्वासरे भवति पांडुपला-शकल्पं ॥ १३ ॥ संपूर्णमंडलशशांककलाकलाप-शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयंति। ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथ-मेकं, कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टं ॥ १४ ॥ चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभिर्नीतं मनागपि मनो न

विकारमार्गं। कल्पांतकालमरुता चलिताचलेन, किं मंदराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥ १५ ॥ निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः, कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि। गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥ १६ ॥ नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगंति । नांभोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः सूर्यातिशायिमहिमासि मुनींद्र लोके ॥ १७ ॥ नित्योदयं दलितमोहमहांधकारं, गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानां। विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकांति, विद्योतयज्जगदपूर्वशशांकबिंबं ॥ १८ ॥ किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा, युष्मन्मुखेंदुदलितेषु तमस्सु नाथ । निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके, कार्यं कियज्जलधरैर्जलभार नम्रैः ॥ १९ ॥ ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं । नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु। तेजःस्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं, नैवं तु काचशकले किरणाकुलेपि ॥ २० ॥ मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा, दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति। किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः कश्चिन्मनो हरति नाथ भवांतरेपि ॥ २१ ॥ स्त्रीणां शतानि शतशो जनयंति पुत्रान्, नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता। सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं, प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालं ॥ २२ ॥ त्वामामनंति मुनयः परमं पुमांसमादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात्। त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयंति

मृत्युं, नान्यः शिवश्शिवपदस्य मुनींद्र पंथाः ॥२३॥ त्वामव्ययं विभुमचिंत्यमसंख्यमाद्यम्, ब्रह्माणमीश्वरमनंतमनंगकेतुम्। योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं, ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदंति संतः। बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्, त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात्। धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानाद् व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोसि॥तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्त्तिहराय नाथ, तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय। तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय, तुभ्यं नमो जिनभवोदधिशोषणाय ॥२६॥ को विस्मयोत्र यदि नाम गुणैरशेषैस्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश। दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः स्वप्नांतरेपि न कदाचिदपीक्षितोसि ॥२७॥ उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूखमाभाति रूपममलं भवतो नितांतं। स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं, बिंबं रवेरिवपयोधरपार्श्ववर्ति ॥२८॥ सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे विभ्राजते तव वपुः कनकावदातं। बिंबं वियद्विलसदंशुलतावितानं तुंगोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ॥२९॥ कुंदावदातचलचामरचारुशोभं, विभ्राजते तव वपुः कलधौतकांतं। उद्यच्छशांकशुचिनिर्झरवारिधारमुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौंभं ॥३०॥ छत्रत्रयं तव विभाति शशांककांतमुच्चैस्थितं स्थगितभानुकरप्रतापं। मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं, प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वं ॥३१॥ गंभीरताररवपूरितदिग्विभागस्त्रैलोक्यलोकशुभसंगमभूतिदक्षः। सद्धर्मराजजयघोष-

णघोषकः सन्, खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥ मंदारसुंदरनमेरुसुपारिजातसंतानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा। गंधोदबिंदुशुभमंदमरुत्प्रयाता, दिव्यादिवः पतति ते वयसां ततिर्वा ॥३३॥ शुंभत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते, लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपंती। प्रोद्यद्दिवाकरनिरंतरभूरिसंख्या, दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसोम्यां ॥३४॥ स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्टः, सद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्याः। दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थ सर्व भाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ॥३५॥ उन्निद्रहेमनवपंकजपुंजकांती, पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ। पादौ पदानि तव यत्र जिनेंद्र! धत्तः पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयंति ॥३६॥ इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेंद्र, धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य। यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतांधकारा तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोपि॥३७॥ श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूलमत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपं। ऐरावताभमिभमुद्धतमापतंतं, दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानां ॥३८॥ भिन्नेभकुंभगलदुज्ज्वलशोणिताक्तमुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः। बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोपि, नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥ ३९ ॥ कल्पांतकालपवनोद्धतवह्निकल्पं, दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगं विश्वं जिघित्सुमिव संमुखमापतंतं, त्वन्नामकीर्त्तनजलं शमयत्यशेषं ॥४०॥ रक्तेक्षणं समदकोकिलकंठनीलं, क्रोधोद्धतं फणिन-

मुत्फणमापतंतं । आक्रामति क्रमयुगेण निरस्तशंकस्त्वन्नाम नागदमनी हृदि यस्य पुंसः॥४१॥वल्गत्तुरंगगजगर्जितभीमनादमाजौ बलं बलवतामपि भूपतीनां । उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥४२॥ कुंताग्रभिन्नगज शोणितवारिवाहवेगावतारतरणातुरयोधभीमे । युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षास्, त्वत्पादपंकजवनाश्रयिणो लभंते ॥४३॥ अंभोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्रपाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ । रंगत्तरंगशिखरस्थितयानपात्रास्, त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजंति ॥४४॥ उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः । त्वत्पादपंकजरजोमृतदिग्धदेहा, मर्त्या भवंति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥४५॥ आपादकंठमुरुशृंखलवेष्टितांगा गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजंघाः । त्वन्नाममंत्रमनिशं मनुजाः स्मरंतः, सद्यः स्वयं विगतबंधभया भवंति ॥४६॥ मत्तद्विपेंद्रमृगराजदवानलाहिसंग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम् । तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव, यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७॥ स्तोत्रस्रजं तव जिनेंद्र गुणैर्निबद्धां, भक्त्या मया विविधवर्णविचित्रपुष्पां । धत्ते जनो य इह कंठगतामजस्रम्, त मांनतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥ इति ॥

६०–अथ भक्तामर भाषा

दोहा–आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधि करतार ।
धरमधुरंधर परमगुरु, नमों आदि अवतार ॥ १ ॥

· चौपाई–सुरनतमुकुट रतन छवि करैं। अंतर पापतिमिर सब हरै॥ जिनपद बंदों मनवचकाय। भवजलपतित-उधरन-सहाय॥ १॥ श्रुतपारग इन्द्रादिक देव। जाकी थुति कीनी कर सेव॥ शब्द मनोहर अरथ विशाल। तिस प्रभुकी बरनों गुनमाल॥ २॥ विबुधवंद्यपद मैं मतिहीन। हो निर्लज्ज थुति-मनसा कीन। जलप्रतिबिंब बुद्ध को गहै। शशिमंडल बालक ही चहै॥ ३॥ गुनसमुद्र तुमगुन अविकार। कहत न सुरगुरु पावै पार॥ प्रलयपवनउद्धत जलजंतु। जलधि तिरै को भुज बलवंतु॥ ४॥ सो मैं शक्तिहीन थुति करूं। भक्तिभाववस कछु नहिं डरूँ॥ ज्यों मृगि निजसुतपालन-हेत। मृगपतिसन्मुख जाय अचेत॥ ५॥ मैं शठ सुधीहँस-नको धाम। मुझ तव भक्ति बुलावै राम॥ ज्यों पिक अंब-कलीपरभाव। मधुऋतु मधुर करै आराव॥६॥ तुमजस जंपत जन छिनमाहिं। जनम जनमके पाप नशाहिं॥ ज्यों रवि उगै फटै ततकाल। अलिवत नील निशातमजाल॥ तव प्रभावतै कहूं विचार। होसी यह थुति जनमनहार॥ ज्यों जल कमलपत्रपै परै। मुक्ताफलकी दुति विस्तरै॥८॥ तुम गुनमहिमा हतदुखदोष। सो तो दूर रहो सुखपोष॥ पाप-विनाशक है तुम नाम। कमलविकाशी ज्यों रविधाम॥९॥ नहिं अचंभ जो होहिं तुरंत। तुमसे तुमगुण बरनत संत॥ जो अधनीको आपसमान। करै न सो निंदित धनवान॥१०॥ इकटक जन तुमको अविलोय। अवरविषै रति करै न

सोय ॥ को करि छीरजलधिजलपान । क्षारनीर पीवै मति-
मान ॥ ११ ॥ प्रभु तुम वीतराग गुनलीन । जिन परमानु
देह तुम कीन ॥ हैं तितने ही ते परमानु । यातैं तुम सम
रूप न आनु ॥ १२ ॥ कहँ तुम मुख अनुपम अविकार ।
सुरनरनागनयनमनहार । कहां चंद्रमंडल सकलंक । दिनमें
ढाकपत्र सम रंक ॥ १३ ॥ पूरनचंद जोति छविवंत । तुम-
गुन तीनजगत लंघंत ॥ एक नाथ त्रिभुवन आधार । तिन
विचरतको करै निवार ॥१४॥ जो सुरतिय विभ्रम आरंभ ।
मन न डिग्यो तुम तौ न अचंभ ॥ अचल चलावै प्रलय
समीर । मेरुशिखर डगमगै न धीर ॥ १५ ॥ धूमरहित
वाती गतनेह । परकाशै त्रिभुवन घर एह ॥ वातगम्य नाहीं
परचंड । अपर दीप तुम बलो अखंड ॥ १६ ॥ छिपहु न
लुपहु राहुकी छाहिं । जगपरकाशक हो छिनमाहिं ॥ धन
अनवर्त्त दाह विनिवार । रवितै अधिक धरो गुणसार ॥१७॥
सदा उदित विदलित मनमोह । विघटित मेघराहु अविरोह ॥
तुम मुखकमल अपूरव चंद । जगतविकाशी जोति अमंद ॥१८॥
निश दिन शशि रविको नहिं काम । तुम मुखचंद हरै तम-
धाम ॥ जो स्वभावतैं उपजै नाज । सजल मेघ तो कौनहु
काज ॥ १९ ॥ जो सुबोध सोहै तुममाहिं । हरि हर आदि-
कमें सो नाहिं ॥ जो दुति महारतनमें होय । काचखंड पावै
नहिं सोय ॥ २० ॥ नाराच छंद—

सराग देव देख मै भला विशेष मानिया । स्वरूप जाहि

देख वीतराग तू पिछानिया ॥ कछु न तोहिं देखके जहां तुही विशेखिया । मनोग चित्तचोर और भूलहू न पेखिया ॥२१॥ अनेक पुत्रवंतिनी नितंबिनी सपूत हैं । न तो समान पुत्र और माततैं प्रसूत हैं ॥ दिशा धरंत तारिका अनेक कोटि को गिनै । दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै ॥ २२ ॥ पुरान हो पुमान हो पुनीत पुन्यवान हो । कहैं मुनीश अंधकार-नाशको सुभान हो ॥ महंत तोहि जानके न होय वश्य का-लके । न और मोहि मोखपंथ देय तोहि टालके ॥ २३ ॥ अनंत नित्य चित्तकी अगम्य रम्य आदि हो । असंख्य सर्व व्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो ॥ महेश कामकेतु योग ईश योग ज्ञान हो । अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो ॥२४॥ तुही जिनेश बुद्ध है सुबुद्धिके प्रमानतैं । तुही जिनेश शंकरो जगत्त्रये विधानतै ॥ तुही विधात है सही सुमोखपंथ धारतै । नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थके विचारतैं ॥ २५ ॥ नमों करूँ जिनेश तोहि आपदा निवार हो । नमो करूँ सुभूरि भूमि-लोकके सिंगार हो ॥ नमो करूँ भवाब्धिनीरराशिशोषहेतु हो । नमो करूँ महेश तोहि मोखपंथ देतु हो ॥ २६ ॥

चौपाई—तुम जिन पूरनगुनगन भरे । दोष गर्वकरि तुम परिहरे ॥ और देवगण आश्रय पाय । स्वप्न न देखे तुम फिर आय ॥ तरुअशोकतर किरन उदार । तुमतन शोभित है अविकार ॥ मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत । दिनकर दिपै तिमिर-निहनंत ॥ २८ ॥ सिंहासन मनिकिरन विचित्र । तापर

कंचनवरन पवित्र ॥ तुमतनशोभित किरनविथार। ज्यों उदयाचल रवितमहार ॥ २१ ॥ कुंदपुहुपसितचमर ढुरंत। कनकवरन तुमतन शोभंत ॥ ज्यों सुमेरुतट निर्मल कांति। झरना झरै नीर उमगाँति ॥ ३० ॥ उंचे रहैं सूर दुति लोप। तीन छत्र तुम दिपैं अगोप ॥ तीन लोककी प्रभुता कहैं। मोती झालरसों छवि लहैं ॥ ३१ ॥ दुन्दुभि शब्द गहर गम्भीर। चहुँदिशि होय तुम्हारै धीर ॥ त्रिभुवनजन शिवसंगम करैं। मानूँ जय जय रव उच्चरैं ॥ ३२ ॥ मंद पवन गंधोदक इष्ट। विविध कलपतरु पुहुपसुवृष्ट ॥ देव करैं विकसित दल सार। मानों द्विजपंकति अवतार ॥३३॥ तुमतन-भामण्डल जिन-चंद। सब दुतिवंत करत हैं मंद ॥ कोटिशख रवितेज छिपाय। शशिनिर्मलनिशि करै अछाय ॥३४॥ स्वगमोखमारगसंकेत। परमधरम उपदेशनहेत ॥ दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध। सब भाषागर्भित हितसाध ॥ ३५ ॥

दोहा—विकसितसुवरनकमलदुति, नखदुति मिलि चमकाहिं।
तुमपद पदवी जहँ धरो, तहँ सुर कमल रचाहिं ॥३६॥
एसी महिमा तुमविषै, और धरै नहिं कोय।
सूरज में जो जोत है, नहिं तारागण होय ॥ ३७ ॥

षट्पद—मदअवलिप्तकपोल-मूल अलिकुल झंकारैं। तिन सुन शब्द प्रचंड क्रोध उद्धतअतिधारैं ॥ कालवरन विकराल, कालवत सनमुख आवै। ऐरावत सो प्रबल, सकल जन भय उपजावै ॥ देखि गयंद न भय करै तुम पदमहिमा छीन।

विपतिरहित संपतिसहित, वरतैं भक्त अदीन ॥ ३८ ॥ अति मदमत्तगयंद कुंभथल नखन विदारै। मोती रक्त समेत डारि भूतल सिंगारै॥ बांकी दाढ विशाल, वदनमें रसना लोलै। भीमभयानकरूप देखि जन थरहर डोलै॥ ऐसे मृगपति पगतलैं, जो नर आयो होय। शरण गये तुम चरणकी, बाधा करै न सोय ॥ ३९ ॥ मलयपवनकर उठी आग जो तास पटंतर। वमैं फुलिंग शिखा उतंग परजलैं निरंतर॥ जगत समस्त निगल्ल भस्मकर हैगी मानों। तड़तडाट दवअनल, जोर चहुंदिशा उठानों॥ सो इक छिनमें उपशमें, नामनीर तुम लेत। होय सरोवर परिनमै विकसित कमल समेत॥ ॥ ४० ॥ कोकिलकंठसमान. श्याम तन क्रोध जलंता। रक्त-नयन फुंकार, मारविषकण उगलन्ता॥ फणको ऊंचो करै, वेग ही सन्मुख धाया। तब जन होय निशंक, देख फण-पतिको आया॥ जो चांपै निज पगतलैं, व्यापै विष न लगा-र। नागदमनि तुम नामकी है, जिनके आधार॥ ४१ ॥ जिस रनमांहिं भयानक रवकर रहे तुरंगम। घनसे गज गरजाहिं मत्त मानों गिरि जंगम॥ अति कोलाहलमाहिं बात जहँ नाहिं सुनीजै। राजनको परचन्ड, देख बल धीरज छीजै॥ नाथ तिहारे नामतै सो छिनमाहिं पलाय। ज्यों दिनकर परकाशतैं अंधकार विनशाय ॥ ४२ ॥ मारै जहां गयद कुंभ हथियार विदारै। उमगै रुधिर प्रवाह वेग जलसम विस्तारै॥ होय तिरन असमर्थ महा

जोधा वलपूरे। तिस रनमें जिन तोर भक्त जे हैं नर सूरे। दुर्जय अरिकुल जीतके, जय पावैं निकलंक। तुम पदपंकज मन वसै ते नर सदा निशंक॥ ४४ ॥ नक्र चक्र मगरादि मच्छकरि भय उपजावै। जामैं वडवा अग्निदाहतैं नीर जलावै॥ पार न पावै जास थाह नहिं लहिये जाकी। गरजै अतिगंभीर, लहरकी गिनति न ताकी॥ सुखसों तरें समुद्रको, जे तुमगुनसुमराहिं। लोलकलोलनके शिखर, पार यान ले जाहिं॥ ४४ ॥ महाजलोदर रोग, भार पीडित नर जे हैं। वात पित्त कफ कुष्ठ आदि जो रोग गहे हैं॥ सोचत रहैं उदास नाहिं जीवनकी आशा। अति घिनावनी देह, धरै दुर्गंधि निवासा॥ तुम पदपंकजधूलको, जो लावैं निज अंग। ते नीरोग शरीर लहि, छिनमें होंय अनंग॥ ४५ ॥ पांव कंठतैं जकर वांध सांकल अति भारी। गाढ़ी वेडी पैरमाहिं, जिन जांघ विदारी॥ भूख प्यास चिंता शरीर दुख जे विललाने। सरन नाहिं जिन कोय भूपके वंदीखाने॥ तुम सुमरत स्वयमेव ही वंधन सव खुल जाहिं। छिनमें ते संपति लहैं, चिंता भय विनसाहिं॥ ४६ ॥ महामत्त गजराज और मृगराज दवानल। फणपति रणपरचन्ड नीरनिधि रोग महावल॥ वन्धन ये भय आठ डरपकर मानों नाशै। तुम सुमरत छिनमाहिं अभय थानक परकाशै॥ इस अपार संसारमें शरन नाहिं प्रभु कोय। यातैं तुम पदभक्तको भक्ति सहाई होय॥ ४७॥

यह गुनमाल विशाल नाथ तुम गुननसँवारी। विविध-वर्णमय पुहुप गूथ मैं भक्ति विथारी॥ जे नर पहिरे कन्ठ भावना मनमें भावैं। मानतुंग ते निजाधीन शिवलछमी पावैं। भाषा भक्तामर कियो, हेमराज हित हेत। जे नर पढ़ै सुभावसों, ते पावै शिवखेत॥ ४८॥ इति।

६१—कल्याणमंदिरस्तोत्र।

कल्याणमंदिरमुदारमवद्यभेदि भीताभयप्रदमनिंदितमंघ्रिपद्मं। संसारसागरनिमज्जदशेषजंतुपोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य॥१॥ यस्य स्वयं सुरगुरुर्गरिमांबुराशेः स्तोत्रं सुविस्तृतमतिर्न विभुर्विधातुं। तीर्थेश्वरस्य कमठस्मयधूमकेतोस्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये॥ २॥ सामान्यतोपि तव वर्णयितुं स्वरूपमस्मादृशाः कथमधीश भवंत्यधीशाः। धृष्टोपि कोशिकशिशुर्यदि वा दिवांधो रूपं प्ररूपयति किं किल धर्मरश्मेः॥३॥ मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ मर्त्यो नूनं गुणान्गणयितुं न तव क्षमेत्। कल्पांतवांतपयसः प्रगटोऽपि यस्मान्मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः॥४॥ अभ्युद्यतोस्मि तव नाथ जडाशयोपि कर्तुं स्तवं लसदसंख्यगुणाकरस्य। बालोपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य विस्तीर्णतां कथयति स्वधियांबुराशेः॥५॥ ये योगिनामपि न यांति गुणास्तवेश वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः। जाता तदेवमसमीक्षितकारितेयं जल्पंति वा निजगिरा ननु पक्षिणोपि॥६॥ आस्तामचिंत्यमहिमा जिन संस्तवस्ते नामापि

पाति भवतो भवतो जगंति । तीव्रा तपोपहतपांथजनान्निदाघे प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोपि ॥७॥ हृद्वर्तिनि त्वयि विभो शिथिलीभवंति जंतोः क्षणेन निविडा अपि कर्मबंधाः। सद्यो भुजंगममया इव मध्यभागमभ्यागते वनशिखंडिनि चंदनस्य ॥८॥ मुच्यंत एव मनुजाः सहसा जिनेंद्र रौद्रैरुपद्रवशतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि । गोस्वामिनि स्फुरिततेजसि दृष्टमात्रे चौरैरिवाशुपशवः प्रपलायमानैः ॥ ९ ॥ त्वं तारको जिन कथं भविनां त एव त्वामुद्वहंति हृदयेन यदुत्तरंतः। यद्वा दृतिस्तरंतियज्जलमेष नूनमंतर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ॥१०॥ यस्मिन्हरप्रभृतयोऽपि हतप्रभावाः सोपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन। विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन पीतं न किं तदपि दुर्धरवाड़वेन ॥११॥ स्वामिन्ननल्पगरिमाणमपिप्रपन्नास्त्वां जंतवः कथमहो हृदये दधानाः । जन्मोदधिं लघु तरंत्यतिलाघवेन चिंत्यो न हंत महतां यदि वा प्रभावः॥१२॥ क्रोधस्त्वया यदि विभो प्रथमं निरस्तो ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्मचौराः । प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ॥१३॥ त्वां योगिनो जिन सदा परमात्मरूपमन्वेषयंति हृदयांबुजकोषदेशे । पूतस्य निर्मलरुचेर्यदि वा किमन्यदक्षस्य संभवपदं ननु कर्णिकायाः ॥१४॥ ध्यानाज्जिनेश भवतो भविनं क्षणेन देहं विहाय परमात्मदशां व्रजंति। तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके

चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदाः ॥१५॥ अंतः सदैव जिन यस्य विभाव्यसे त्वं भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरं। एतस्वरूपमथ मध्यविवर्तिनो हि यद्विग्रहं प्रशमयंति महानुभावाः ॥१६॥ आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेदबुद्धया ध्यातो जिनेंद्र भवतीह भवत्प्रभावः। पानीयमप्यमृतमित्यनुचिंत्यमानं किं नाम नो विषविकारमपाकरोति ॥१७॥ त्वामेव वीततमसं परवादिनोऽपि नूनं विभो हरिहरादिधिया प्रपन्नाः। किं काचकामलिभिरीश सितोऽपि शंखो नो गृह्यते विविधवर्णविपर्ययेण ॥१८॥ धर्मोपदेशसमये सविधानुभावादास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः। अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोकः ॥१९॥ चित्रं विभो कथमवाङ्मुखवृंतमेव विष्वक्पतत्यविरला सुरपुष्पवृष्टिः। त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश! गच्छंति नूनमध एव हि बन्धनानि ॥२०॥ स्थाने गभीरहृदयोदधिसम्भवायाः पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति। पीत्वा यतः परमसम्मदसंगभाजो भव्या व्रजन्ति तरसाप्यजरामरत्वम् ॥२१॥ स्वामिन्सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो मन्ये वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः। येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुंगवाय ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्धभावाः॥२२॥श्यामं गभीरगिरमुज्ज्वलहेमरत्नसिंहासनस्थमिह भव्यशिखंडिनस्त्वां। आलोकयंति रभसेन नदंतमुच्चैश्चामीकराद्रिशिरसीव नवांबुवाहं ॥२३॥ उद्गच्छता तव शितिद्युतिमंडलेन लुप्तच्छदच्छविरशोकतरुर्ब-

भूव। सांनिध्यतोपि यदि वा तव वीतराग! नीरागतां व्रजति को न सचेतनोपि ॥ २४ ॥ भो भोः प्रमादमवधूय भजध्वमेनमागत्य निवृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम्। एतन्निवेदयति देव जगत्त्रयाय मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते ॥२५॥ उद्द्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ तारान्वितो विधुरयं विहतांधकारः। मुक्ताकलापकलितोरुसितातपत्रव्याजात्त्रिधा धृतधनुर्ध्रुवमभ्युपेतः ॥२६॥ स्वेन प्रपूरितजगत्त्रयपिंडितेन कांतिप्रतापयशसामिव संचयेन। माणिक्यहेमरजतप्रविनिर्मितेन सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥२७॥ दिव्यस्रजो जिन नमत्त्रिदशांधिपानामुत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिबंधान्। पादौ श्रयन्ति भवतो यदि नापरत्र त्वत्संगमे सुमनसो न रमंत एव ॥२८॥ त्वं नाथ जन्मजलधेर्विपराङ्मुखोपि यत्तारयत्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान्। युक्तं हि पार्थिवनिपस्य सतस्तवैव चित्रं विभो यदसि कर्मविपाकशून्यः ॥२९॥ विश्वेश्वरोऽपि जनपालक दुर्गतस्त्वं किं वाक्षरप्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश। अज्ञानवत्यपि सदैव कथंचिदेव ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्वविकासहेतु ॥३०॥ प्राग्भारसंभृतनभांसि रजांसि रोषादुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि। छायापि तैस्तव न नाथ हता हताशो ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥३१॥ यद्गर्जदूर्जितघनौघमदभ्रभीमभ्रश्यत्तडिन्मुसलमांसलघोरधारं। दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे तेनैव तस्य जिन दुस्तरवारिकृत्यम् ॥३२॥ ध्वस्तोर्ध्वकेश-

विकृताकृतिमर्त्यमुंडप्रालंबभृद्भयदवक्त्रविनिर्यदग्निः। प्रेतव्रजः प्रति भवंतमपीरितो यः सोऽस्यभवत्प्रतिभवं भवदुःखहेतुः ॥३३॥ धन्यास्त एव भवनाधिप ये त्रिसंध्यमाराधयंति विधिवद्विधुतान्यकृत्याः। भक्त्योल्लसत्पुलकपक्ष्मलदेहदेशाः पादद्वयं तव विभो भुवि जन्मभाजः ॥३४॥ अस्मिन्नपारभववारिनिधौ मुनीश मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि। आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमंत्रे किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ॥३५॥ जन्मांतरेऽपि तव पादयुगं न देव मन्ये मया महितमीहितदानदक्षं। तेनेह जन्मनि मुनीश! पराभवानां जातो निकेतनमहं मथिताशयानां॥३६॥ नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन पूर्वं विभो सकृदपि प्रविलोकितोसि। मर्माविधो विधुरयंति हि मामनर्थाः प्रोद्यत्प्रबंधगतयः कथमन्यथैते ॥३७॥ आकर्णितोपि महितोपि निरीक्षितोपि नूनं न चेतसि मया विधृतोसि भक्त्या। जातोस्मि तेन जनबांधव दुःखपात्रं यस्मात्क्रियाः प्रतिफलंति न भावशून्याः ॥३८॥ त्वं नाथ दुःखिजनवत्सल हे शरण्य कारुण्यपुण्यवसते वशिनां वरेण्य। भक्त्या नते मयि महेश दयां विधाय दुःखांकुरोद्दलनतत्परतां विधेहि ॥३९॥ निःसंख्यसार शरणं शरणं शरण्यमासाद्य सादितरिपुप्रथितावदानं। त्वत्पादपंकजमपि प्रणिधानवंध्यो वंध्योस्मि चेद्भुवनपावन हा हतोस्मि ॥४०॥ देवेंद्रवंद्य! विदिताखिलवस्तुसार संसारतारक विभो भुवनाधिनाथ। त्रायस्व देव करुणाहृद मां पुनीहि

सीदंतमद्य भयदव्यसनांबुराशेः ॥४१॥ यद्यस्ति नाथ भवदंघ्रिसरोरुहाणां भक्तेः फलं किमपि संततसंचितायाः। तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्य भूयाः स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवांतरेऽपि ॥४२॥ इत्थं समाहितधियो विधिवज्जिनेन्द्र सांद्रोल्लसत्पुलककंचुकितांगभागाः। त्वद्बिंबनिर्मलमुखांबुजबद्धलक्ष्याः ये संस्तवं तव विभो रचयंति भव्याः ॥४३॥ जननयनकुमुदचंद्रप्रभास्वराः स्वर्गसंपदो भुक्त्वा। ते विगलितमलनिचया अचिरान्मोक्षं प्रपद्यंते ॥४४॥

६२–कल्याणमंदिरस्तोत्र भाषा।

दोहा—परमज्योति परमात्मा, परमज्ञान परवीन ॥
बंदूं परमानंदमय, घट घट अन्तरलीन ॥ १ ॥

चौपाई—निर्भय करन परम परधान। भवसमुद्रजलतारनयान ॥ शिवमंदिर अघहरन अनिंद। बंदहु पासचरन अरविंद ॥ १ ॥ कमठमानभंजन वरवीर। गरिमासागर गुनगंभीर ॥ सुरगुरु पार लहैं नहिं जास। मैं अजान जंपू जस तास ॥ २ ॥ प्रभुस्वरूप अति अगम अथाह। क्यों हमसेती होय निवाह ॥ ज्यों दिनअंध उलूको पोत। कहि न सकै रवि-किरन-उदोत ॥ ३ ॥ मोहहीन जानै मनमाहिं। तोहु न तुम गुन वरने जाहिं ॥ प्रलयपयोधि करै जल वौन। प्रगटहिं रतन गिनै तिहिं कौन ॥ ४ ॥ तुम असंख्य निर्मल गुनखान। मैं मतिहीन कहूं निजवान ॥ ज्यों बालक निज बांह पसार। सागर परमित कहै विचार ॥

॥ ५ ॥ जे जोगीन्द्र करहिं तपखेद । तऊ न जानहिं तुम गुनभेद ॥ भक्तिभाव मुझ मन अभिलाख । ज्यों पंछी बोलै निज भाख ॥ ६ ॥ तुमजसमहिमा, अगम अपार । नाम एक त्रिभुवन-आधार ॥ आवै पवन पदमसर होय । ग्रीषम-तपत निवारै सोय ॥ ७ ॥ तुम आवत भविजन घटमाहिं । कर्मनिबंध शिथिल ह्वै जाहिं ॥ ज्यों चंदनतरु बोलहिं मोर । डरहिं भुजंग लगे चहुं ओर ॥ ८ ॥ तुम निरखत जन दीन-दयाल, । संकटतैं छूटैं तत्काल ॥ ज्यों पशु घेर लेहिं निशि चोर । ते तज भागहिं देखत भोर ॥ ९ ॥ तू भविजनतारक किमि होहि । ते चितधार तिरहिं ले तोहि । यह ऐसैं कर जान स्वभाव । तिरहिं मसक ज्यों गर्भित बाव ॥ १० ॥ जिहँ सब देव किये वश वाम । तै छिनमें जीत्योसो काम ॥ ज्यों जल करै अगनिकुल हान । बड़वानल पीवै सो पान ॥ ११ ॥ तुम अनंत गरवा गुन लिये । क्योंकर भक्ति धरों निज हिये ॥ ह्वै लघुरूप तिरहिं संसार । यह प्रभु महिमा अगम अपार ॥ १२ ॥ क्रोध निवार कियो मन शांत । कर्मसुभट जीते किहिं भांत ॥ यह पटतर देखहु संसार । नील विरछ ज्यों दहै तुसार ॥ १३ ॥ मुनिजनहिये कमल निज टोहि । सिद्धरूपसम ध्यावहिं तोहि ॥ कमलकरणिका विन नहिं और । कमलबीज उपजनकी ठौर ॥ १४ ॥ जब तुव ध्यान धरै मुनि कोय । तब विदेह परमातम होय ॥ जैसे धातु शिलातनु त्याग । कनकस्वरूप धवै जब आग ॥ १५

जाके मन तुम करहु निवास। विनशि जाय क्यों विग्रह तास ॥ ज्यों महंत विच आवै कोय। विग्रहमूल निवारै सोय ॥ १६ ॥ करहिं विवुध जे आतमध्यान। तुम प्रभावतैं होय निदान ॥ जैसे नीर सुधा अनुमान। पीवत विषविकारकी हान ॥ १७ ॥ तुम भगवंत विमल गुणलीन। समलरूप मानहिं मतिहीन ॥ ज्यों नीलिया रोग दृग गहै। वर्ण विवर्ण शंखसों कहै ॥ १८ ॥

दोहा—निकट रहत उपदेश सुन तरुवर भयो अशोक। ज्यों रवि ऊगत जीव सब, प्रगट होत भुविलोक ॥ १९ ॥ सुमनवृष्टि ज्यों सुर करहिं, हेट वीठमुख सोहि। त्यों तुम सेवत सुमनजन बंध अधोमुख होहि ॥ २० ॥ उपजी तुम हिय उदधितैं, वानी सुधा समान ॥ जिहँ पीवत भविजन लहहिं, अजर अमरपदथान ॥ २१ ॥ कहहिं सार तिहुँलोकको, ये सुरचामर दोय। भावसहित जो जिन नमै, तिहँ गति ऊरध होय ॥ २२ ॥ सिंघासन गिरिमेरुसम, प्रभु धुनि गरजत घोर। श्याम सुतनु घनरूप लखि, नाचत भविजन मोर ॥ २३ ॥ छविहत होत अशोक दल, तुम भामंडल देख। वीतरागके निकट रह रहत न राग विसेष ॥ २४ ॥ सीख कहै तिहु लोककों ये सुरदुंदुभिनाद। शिवपथसारथिवाहजिन भजहु तजहु परमाद ॥ २५ ॥ तीन छत्र त्रिभुवन उदित, मुक्तागण छविदेत। त्रिविधिरूप धर मनहु शशि, सेवत नखत समेत ॥ २६ ॥

पद्धरिछंद–प्रभु तुम शरीर दुति रतन जेम। परतापपुंज जिम शुद्धहेम ॥ अतिधवल सुजस रूपा समान। तिनके गढ तीन विराजमान ॥२७॥ सेवहिं सुरेन्द्र कर नमत भाल। तिन सीस मुकुट तज देहि माल ॥ तुमचरणलगत लहलहै प्रीति। नहिं रमहिं और जन सुमन रीति ॥ २८ ॥ प्रभु भोगविमुख तन गरमदाह। जन पार करत भवजल निवाह ॥ ज्यों माटीकलश सुपक्क होय। ले भार अधोमुख तिरहिं तोय ॥ २९ ॥ तुम महाराज निरधन निराश। तज विभव विभव सब जगप्रकाश ॥ अक्षरस्वभाव सुलिखै न कोय। महिमा भगवंत अनंत सोय ॥ ३० ॥ कर कोप कमठ निज वरै देख। तिन करी धूलिबरषा विशेष ॥ प्रभु तुम छाया नहिं भई हीन। सो भयो पापि लंपट मलीन ॥ ३२ ॥ गरजंत घोर घन अंधकार। चमकंत विज्जुजल मुसलधार ॥ वरषंत कमठ धर ध्यान रुद्र। दुस्तर करत निज भवसमुद्र ॥

वस्तु छंद–मेघमाली मेघमाली आप बल फोरि। भेजे तुरत पिशाचगण, नाथ पास उपसर्ग कारण। अग्नि जाल झलकंत मुख, धुनिकरत जिमि मत्तवारण ॥ कालरूप विकराल तन, मुंडमाल हित कंठ। है निशंक वह रंकनिज करै कर्म दृढगंठ ॥ ३४ ॥

चौपाई—जे तुम चरणकमल तिहुँकाल। सेवहिं तज माया जंजाल ॥ भाव भगतिपन हरष अपार। धन्य धन्य जग तिन अवतार ॥ ३५ ॥ भवसागरमैं फिरत अजान। मै तुअ

सुजस सुन्यो नहिं कान ॥ जो प्रभुनाममंत्र मन धरै। तासों विपति भुजंगम डरै ॥ ३६ ॥ मनवांछित फल जिन-पदमांहिं। मैं पूरव भव पूजे नाहिं ॥ मायामगन फिर्‌यो अज्ञान। करहिं रंकजन मुझ अपमान ॥ ३७ ॥ मोहतिमिर छायो दृग मोहि। जन्मांतर देख्यो नहिं तोहि ॥ तौ दुर्जन मुझ संगति गहैं। मरमछेदके कुवचन कहैं ॥ ३८ ॥ सुन्यो कान जस पूजे पाय। नैनन देख्यो रूप अघाय ॥ भक्ति-हेतु न भयो चित चाव। दुख दायक किरियाविन भाव ३९॥ महाराज शरणागत पाल। पतितउधारण दीनदयाल। सुमि-रण करहु नाय निज शीश। मुझ दुख दूर करहु जगदीश ४०॥ कर्मनिकंदनमहिमा सार। अशरणशरण सुजस विसतार ॥ नहिं सेये प्रभु तुमरे पाय। तो मुझ जन्म अकारथ जाय ॥४१॥ सुरगनवंदित दयानिधान। जगतारण जगपति जगजान ॥ दुखसागरतै मोहि निकासि। निर्भयथान देहु सुखरासि ॥ मैं तुम चरणमल गुनगाय। बहुविधि भक्ति करी मनलाय ॥ जनमजनम प्रभु पाऊं तोहि। यह सेवाफल दीजै मोहि ॥

इहिविधि श्रीभगवंत,सुजस जे भविजन भाषहिं। ते जिन पुण्यभंडार, संचि चिरपाप प्रणासहिं ॥ रोमरोम हुलसंति, अंग प्रभु गुणमन ध्यावहिं। स्वर्ग संपदा भुंज वेग पंचम-गति पावहिं ॥ यह कल्याणमंदिर कियो, कुमुदचंद्रकी बुद्धि। भाषा कहत 'बनारसी' कारण समकित शुद्ध ॥ ४४ ॥

६३-एकीभावस्तोत्र।

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबंधो घोरं दुःखं भवभवगतो दुर्निवारः करोति। तस्याप्यस्य त्वयि जिनरवे! भक्तिरुन्मुक्तये चेज्जेतुं शक्यो भवति न तया कोपरस्तापहेतुः॥ १॥ ज्योतीरूपं दुरितनिवहध्वांतविध्वंसहेतुं त्वामेवाहुर्जिनवर चिरं तत्त्वविद्याभियुक्ताः। चेतो वासे भवसि च मम स्फारमुद्भासमानस्तस्मिन्नंहः कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे॥२॥ आनंदाश्रुस्नपितवदनं गद्गदं चाभिजल्पन्यश्चायेत त्वयि दृढ़मनाः स्तोत्रमंत्रैर्भवंतं। तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देहवल्मीकमध्यान्निष्कास्यंते विविधविषमव्याधयः काद्रवेयाः॥ ३॥ प्रागेवेह त्रिदिवभवनादेष्यता भव्यपुण्यात्पृथिवीचक्रं कनकमयतां देव निन्ये त्वयेदं। ध्यानद्वारं मम रुचिकरं स्वांतगेहं प्रविष्टस्तत्किं चित्रं जिनवपुरिदं यत्सुवर्णीकरोषि॥ ४॥ लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्निर्निमित्तेन बन्धुस्त्वय्येवासौ सकलविषया शक्तिरप्रत्यनीका। भक्तिस्फीतां चिरमधिवसन्मामिकां चित्तशय्यां मय्युत्पन्नं कथमिव ततः क्लेशयूथं सहेथाः॥ ५॥ जन्माटव्यां कथमपि मया देव दीर्घं भ्रमित्वा प्राप्तैवेयं तव नयकथा स्फारपीयूषवापी। तस्या मध्ये हिमकरहिमव्यूहशीते नितांतं निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःखदावोपतापाः॥ ६॥ पादन्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकींहे माभासो भवति सुरभिः श्रीनिवासश्चपद्मः। सर्वांगेण स्पृशति भगवंस्त्वय्य-

नामभिमतफलाः पारिजाता भवंति ॥२१॥ कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव प्रसादो व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयैवानपेक्षं। आज्ञावश्यं तदपि भुवनं सन्निधिर्वैरहारी क्वैवंभूतं भुवनतिलक ! प्राभवं त्वत्परेसु ॥२२॥ देव स्तोतुं त्रिदिवगणिकामंडलीगीतकीर्तिं तोतूर्ति त्वां सकलविषयज्ञानमूर्तिं जनो यः। तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जोहूर्ति पंथास्तत्त्वग्रंथस्मरणविषये नैष मोमूर्ति मर्त्यः ॥२३॥ चित्ते कुर्वन्निरवधिसुखज्ञानदृग्वीर्यरूपं देव त्वां यः समयनियमादादरेण स्तवीति। श्रेयोमार्गं स खलु सुकृती तावता पूरयित्वा कल्याणानां भवति विषयः पंचधा पंचितानां ॥२४॥ भक्तिप्रह्वमहेंद्रपूजितपद त्वत्कीर्तने न क्षमाः सूक्ष्मज्ञानदृशोपि संयमभृतः के हंत मंदा वयं। अस्माभिः स्तवनच्छलेन तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते स्वात्माधीनसुखैषिणां सखलु नः कल्याणकल्पद्रुमः ॥२५॥ वादिराजमनु शाब्दिकलोको वादिराजमनु तार्किकसिंहः। वादिराजमनु काव्यकृतस्ते वादिराजमनु भव्यसहायः ॥२६॥

६४—एकीभावस्तोत्र भाषा।

दोहा—वादिराज मुनिराजके, चरणकमल चित लाय।
भाषा एकीभावकी, करूँ स्वपर सुखदाय ॥१॥

रोला छन्द अथवा "अहो जगत गुरुदेव०" वीनतीको चालमें।

जो अति एकीभाव भयो मानो अनिवारी। सो मुझ कर्मप्रबंध करत भव भव दुख भारी॥ ताहि तिहारी भक्ति

जगतरवि जो निरवारै। तो अब और कलेश कौन सो नाहिं विदारै॥ १ ॥ तुम जिन जोतिस्वरूप दुरित अँधियारि निवारी। सो गणेश गुरु कहैं तत्त्वविद्याधनधारी॥ मेरे चितघरमाहिं वसौ तेजोमय यावत। पापतिमिर अवकाश तहां सो क्योंकरि पावत ॥ २ ॥ आनंदआंसूवदन धोय तुमसों चित सानै। गदगद सुरसों सुयशमंत्र पढ़ि पूजा ठानैं॥ ताके बहुविधि व्याधि व्याल चिरकालनिवासी। भाजैं थानक छोड़ देहवांबइके वासी ॥३॥ दिवितैं आवनहार भये भविभागउदयबल। पहलेही सुर आय कनकमय कीय महीतल॥ मनगृहध्यानदुवार आय निवसो जगनामी। जो सुवरन तन करो कौन यह अचरज स्वामी ॥४॥ प्रभु सब जगके विनाहेतुबांधव उपकारी। निरावरन सर्वज्ञ शक्ति जिनराज तिहारी॥ भक्तिर चित ममचित्त सेज नित वास करोगे। मेरे दुखसंताप देख किम धीर धरोगे ॥५॥ भववनमें चिरकाल भ्रम्यो कछु कहिय न जाई। तुम शुतिकथापियूषवापिका भागन पाई॥ शशि तुषार घनसार हार शीतल नहिं जा सम। करत न्हौन तामाहिं क्यों न भवताप बुझै मम ॥६॥ श्रीविहार परिवाह होत शुचिरूप सकल जग। कमलकनक आभाव सुरभि श्रीवास धरत पग॥ मेरो मन सर्वंग परस प्रभुको सुख पावै। अब सो कौन कल्यान जो न दिन दिन ढिग आवै॥ ७ ॥ भवतज सुखपद बसे काममदसुभट संहारे। जो तुमको निरखंत

सदा प्रियदास तिहारे ॥ तुमवचनामृतपान भक्तिअंजुलिसों पीवै। तिन्हैं भयानक क्रूररोगरिपु कैसे छीवै ॥८॥ मानथंभ पाषान आन पाषान पटंतर। ऐसे और अनेक रतन दीखैं जगअंतर ॥ देखत दृष्टिप्रमान मानमद तुरत मिटावै। जो तुम निकट न होय शक्ति यह क्योंकर पावै ॥ ९ ॥ प्रभुतन पर्वतपरस पवन उरमें निवहै है। तासों ततछिन सकल रोगरज बाहिर ह्वै है। जाके ध्यानाहूत बसो उर अंबुज माहीं। कौन जगत उपकारकरन समरथ सो नाहीं ॥ १० ॥ जनम जनमके दुःख सहे सब ते तुम जानो। याद किये मुझ हिये लगैं आयुधसे मानों। तुम दयाल जगपाल स्वामि मै शरन गही है। जो कछु करनो होय करो परमान वही है ॥११॥ मरनसमय तुम नाम मंत्र जीवकतैं पायो। पापाचारी श्वान प्रान तज अमर कहायो ॥ जो मणिमाला लेय जपै तुम नाम निरंतर। इन्द्रसम्पदा लहै कौन संशय इस अंतर ॥१२॥ जो नर निर्मल ज्ञान मान शुचि चारित साधै। अनवधि सुखकी सार भक्ति कूँची नहिं लाधै ॥ सो शिववांछक पुरुष मोक्षपट केम उघारै। मोह मुहर दिढ करी मोक्ष मंदिरके द्वारै ॥१३॥ शिवपुर केरो पंथ पापतमसों अतिछायो। दुखसरूप बहु कूपखाडसों विकट बतायो॥ स्वामी सुखसों तहां कौन जन मारग लागैं। प्रभुप्रवचनमणिदीप जोतके आगैं आगैं ॥१४॥ कर्मपटलभूमाहिं दबी आतमनिधि भारी। देखत अतिसुख होय विमुखजन नाहिं

उघारी ॥ तुम सेवक ततकाल ताहि निहचै कर धारै। थुति कुदालसों खोद बंद भू कठिन विदारै ॥१५॥ स्यादवाद-गिरि उपजे मोक्ष सागर लों धाई। तुम चरणांबुज परस भक्तिगंगा सुखदाई। मो चित निर्मल थयो न्होन रुचिपूरव तामैं। सब वह हो न मलीन कौन जिन संशय यामैं ॥१६॥ तुम शिवसुखमय प्रगट करत प्रभु चिंतन तेरो। मैं भगवान समान भाव यों वरतै मेरो॥ यदपि झूठ है तदपि तृप्ति निश्चल उपजावै। तुव प्रसाद सकलंक जीव वांछित फल पावै ॥१७॥ वचन जलधि तुम देव सकल त्रिभुवनमें व्यापै। भंगतरंगिनि विकथवादमल मलिन उथापै॥ मनसुमेरुसों मथै ताहि जे सम्यग्ज्ञानी। परमामृत सों तृपत होहिं ते चिरलों प्रानी ॥१८॥ जो कुदेव छविहीन वसन भूषन अभि-लाखै॥ वैरी सों भयभीत होय सो आयुध राखै॥ तुम सुंदर सर्वंग शत्रु समरथ नहिं कोई। भूषन वसन गदादि ग्रहन काहेको होई ॥ १९ ॥ सुरपति सेवा करै कहा प्रभु प्रभुता तेरी। सो सलाघना लहै मिटै जगसों जगफेरी। तुम भवजलधि जिहाज तोहि शिवकंत उचरिये। तुही जगत-जनपाल नाथथुतिकी थुति करिये ॥२०॥ वचनजाल जड़-रूप आप चिन्मूरति झांई। तातैं थुति आलाप नाहिं पहुंचै तुम तांई॥ तो भी निर्फल नाहिं भक्तिरसभीने वायक। संतनको सुरतरु समान वांछित वरदायक ॥२१॥ कोप कभी नहिं करो प्रीति कबहूं नहिं धारो। अति उदास बेचाह चित्त

जिनराज तिहारो ॥ तदपि आन जग वहै वैर तुम निकट न लहिये। यह प्रभुता जगतिलक कहां तुम बिन सरदहिये ॥२२॥ सुरतिय गावै सुजश सर्वगति ज्ञानस्वरूपी। जो तुमको थिर होहिं नमैं भविआनंदरूपी॥ ताहि छेमपुर चलनवाट वाकी नहिं हो है। श्रुतके सुमरनमाहिं सो न कवहूं नर मोहै ॥२३॥ अतुल चतुष्टयरूप तुमैं जो चितमें धारै। आदरसों तिहुंकाल-माहिं जगथुति विस्तारै॥ सो सुक्रत शिवपंथ भक्तिरचना कर पूरै। पंचकल्यानक ऋद्धि पाय निहचै दुख चूरै ॥२४॥ अहो जगपति पूज्य अवधिज्ञानी मुनि हारे। तुम गुनकीर्तन-माहिं कौन हम मंद विचारे॥ थुति छलसों तुमविषै देव आदर विस्तारे। शिवसुखपूरनहार कलपतरु यही हमारे ॥२५॥ वादिराज मुनितैं अनु, वैयाकरणी सारे। वादिराज मुनितैं अनु, तार्किक विद्यावारे॥ वादिराज मुनितैं अनु हैं काव्यनके ज्ञाता। वादिराज मुनितैं अनु हैं भविजनके त्राता॥

दोहा—मूल अर्थ बहुविधिकुसुम, भाषा सूत्र मँझार।
भक्तिमाल 'भूधर' करी, करो कंठ सुखकार॥ १॥

६५—विषापहारस्तोत्र।

स्वात्मस्थितः सर्वगतः समस्त व्यापारवेदी विनिवृत्त-संगः। प्रवृद्धकालोप्यजरो वरेण्यः पायादपायात्पुरुषः पुराणः ॥१॥ परैरचिंत्यं युगभारमेकः स्तोतुं वहन्योगिभिरप्यशक्यः। स्तुत्योद्य मेसौ वृषभो न भानोः किमप्रवेशे विशति प्रदीपः ॥२॥ तत्याज शक्रः शकनाभिमानं नाहं त्यजामि

स्तवनानुबंधं । स्वल्पेन बोधेन ततोधिकार्थं वातायनेनेव निरूपयामि ॥३॥ त्वं विश्वदृश्वा सकलैरदृश्यो विद्वानशेषं निखिलैरवेद्यः। वक्तुं कियान्कीदृशमित्यशक्यः स्तुतिरततो शक्तिकथा तवास्तु ॥४॥ व्यापीडितं बालमिवात्मदोषैरुल्लाघतां लोकमवापिपस्त्वं । हिताहितान्वेषणमांद्यभाजः सर्वस्य जंतोरसि बालवैद्यः ॥५॥ दाता न हर्ता दिवसं विवस्वानद्यश्व इत्यच्युतदर्शिताशः। सव्याजमेवं गमयत्यशक्तः क्षणेन दत्सेभिमतं नताय ॥६॥ उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि त्वयि स्वभावाद्विमुखश्च दुःखं । सदावदातद्युतिरेकरूपस्तयोस्त्वमादर्श इवावभासि ॥ ७ ॥ अगाधताब्धेः स यतः पयोधिर्मेरोश्च तुंगाप्रकृतिः स यत्रः । द्यावापृथिव्यो पृथुता तथैव व्याप त्वदीया भुवनांतराणि ॥ ८ ॥ तवानस्था परमार्थतत्त्वं त्वया न गीतः पुनरागमश्च । दृष्टं विहाय त्वमदृष्टमैषीर्विरुद्धवृत्तोऽपि समंजसस्त्वं ॥ ९ ॥ स्मरः सुदग्धो भवतैव तस्मिन्नुद्धूलितात्मा यदि नाम शंभुः। अशेत वृंदोपहतोपि विष्णुः किं गृह्यते येन भवानजागः ॥१०॥ स नीरजाः स्यादपरोघवान्वा तद्दोषकीर्त्यैव न ते गुणित्वं ॥ स्वतोंबुराशेर्महिमा न देव स्तोकापवादेन जलाशयस्य ॥११॥ कर्मस्थितिं जंतुरनेकभूमिं नयत्यमुं सा च परस्परस्य । त्वं नेतृभावं हि तयोर्भवाब्धौ जिनेंद्र नौनाविकयोरिवाख्यः ॥ १२ ॥ सुखाय दुःखानि गुणाय दोषान्धर्माय पापानि समाचरंति । तैलाय बालाः सिकतासमूहं निपीडयंति स्फु-

टमतवदीयाः ॥ १३ ॥ विषापहारं मणिमौषधानि मंत्रं समुद्दिश्य रसायनं च । भ्राम्यंत्यहो न त्वमतिस्मरंति पर्यायनामानि तवैव तानि ॥ १४ ॥ चित्ते न किंचित्कृतवानसि त्वं देवः कृतश्चेतसि येन सर्वं । हस्ते कृतं तेन जगद्विचित्रं सुखेन जीवत्यपि चित्तवाह्यः ॥ १५॥ त्रिकालतत्त्वं त्वमवैस्त्रिलोकीस्वामीति संख्यानियतेरमीषां । बोधाधिपत्यं प्रति नाभविष्यंस्तेन्येपि चेद्व्याप्स्यदमूनपीदं ॥ १६ ॥ नाकस्य पत्युः परिकर्म रम्यं नागम्यरूपस्य तवोपकारि। तस्यैव हेतुः स्वसुखस्य भानोरुद्विभ्रतछत्रमिवादरेण ॥ १७॥ कोपेक्षकस्त्वं क्व सुखोपदेशः स चेत्किमिच्छाप्रतिकूलवादः। क्वासौ क्व वा सर्वजगत्प्रियत्वं तन्नो यथातथ्यमवेविजं ते ॥ १८॥ तुंगात्फलं यत्तदकिंचनाच्च प्राप्यं समृद्धान्न धनेश्वरादेः । निरंभसोप्युच्चतमादिवाद्रेर्नैकापि निर्याति धुनी पयोधेः ॥ १९॥ त्रैलोक्यसेवानियमाय दंडं दध्रे यदिंद्रो विनयेन तस्य। तत्प्रातिहार्यं भवतः कुतस्त्यं तत्कर्मयोगाद्यदि वा तवास्तु ॥ २०॥ श्रिया परं पश्यति साधु निःस्वः श्रीमान्नकश्चित्कृपणं त्वदन्यः । यथा प्रकाशस्थितमंधकारस्थायीक्षतेऽसौ न तथा तमःस्थं ॥ २१ ॥ स्ववृद्धिनिःश्वासनिमेषभाजि प्रत्यक्षमात्मानुभवेपि मूढः। किं चाखिलज्ञेयविवर्तिबोधस्वरूपमध्यक्षमवैति लोकः ॥२२॥ तस्यात्मजस्तस्य पितेति देव त्वां येऽवगायंति कुलं प्रकाश्य। तेद्यापि नन्वाश्मनमित्यवश्यं पाणौ कृतं हेम पुनस्त्यजंति

॥ २३ ॥ दत्तस्त्रिलोक्यां पटहोभिभूताः सुरासुरास्तस्य महान्स लाभः। मोहस्य मोहस्त्वयि को विरोद्धुमूलस्य नाशो बलवद्विरोधः ॥ २४ ॥ मार्गस्त्वयैको ददृशे विमुक्तेश्चतुर्गतीनां गहनं परेण । सर्वं मया दृष्टमिति स्मयेन त्वं मा कदाचिद्भुजमालुलोके ॥ २५ ॥ स्वर्भानुरर्कस्य हविर्भुजोंभः कल्पांतवातोंबुनिधेर्विघातः। संसारभोगस्य वियोगभावो विपक्षपूर्वाभ्युदयास्त्वदन्ये ॥ २६ ॥ अजानतस्त्वां नमतः फलं यत्तज्जानतोन्यं न तु देवतेति । हरिन्मणिं काचधिया दधानस्तं तस्य बुद्ध्या वहतो न रिक्तः ॥ २७॥ प्रशस्तवाचश्चतुराः कषायैर्दग्धस्य देवव्यवहारमाहुः । गतस्य दीपस्य हि नंदितत्वं दृष्टं कपालस्य च मंगलत्वं ॥२८॥ नानर्थमेकार्थमदस्त्वदुक्तं हितं वचस्ते निशमय्य वक्तुः। निर्दोषतां के न विभावयंति ज्वरेण मुक्तं सुगमः स्वरेण ॥ २९ ॥ न क्वापि वांछा ववृते च वाक्ते काले क्वचित्कोपि तथा नियोगः । न पूरयाम्यंबुधिमित्यदंशुः स्वयं हि शीतद्युतिरभ्युदेति ॥३०॥ गुणा गभीराः परमाः प्रसन्ना बहुप्रकारा बहवस्तवेति । दृष्टोयमंतः स्तवने न तेषां गुणो गुणानां किमतः परोस्ति ॥ ३१ ॥ स्तुत्या परं नाभिमतं हि भक्त्या स्मृत्या प्रणत्या च ततो भजामि । स्मरामि देवं प्रणमामि नित्यं केनाप्युपायेन फलं हि साध्यं ॥ ३२ ॥ ततस्त्रिलोकीनगराधिदेवं नित्यं परं ज्योतिरनंतशक्तिं। अपुण्यपापं परपुण्यहेतुं नमाम्यहं वंद्यमवंदितारं ॥ ३३ ॥

अशब्दमस्पर्शमरूपगंधं त्वां नीरसं तद्विषयाववोधं । सर्व-स्यमातारममेयमन्यैर्जिनेंद्रमस्मार्यमनुस्मरामि ॥ ३४ ॥ अगाधमन्यैर्मनसाप्यलंघ्यं निष्किंचनं प्रार्थितमर्थवद्भिः । विश्वस्य पारं तमदृष्टपारं पतिं जिनानां शरणं व्रजामि ॥३५॥ त्रैलोक्यदीक्षा गुरवे नमस्ते यो वर्द्धमानोपिनिजोन्नतोभूत् । प्राग्गंडशैलः पुनरद्रिकल्पः पश्चान्न मेरुः कुलपर्वतोऽभूत् ॥३६॥ स्वयंप्रकाशस्य दिवा निशा वा न बाध्यता यस्य न बाधकत्वं न लाघवं गौरवमेकरूपं वंदे विभुं कालकलामतीतं ॥३७॥ इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद्वरं न याचे त्वमुपेक्षकोसि । छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्कश्छायया याचितयात्मलाभः ॥३८॥ अथास्मि दित्सा यदि वोपरोधस्त्वय्येव सक्तां दिश भक्तिबुद्धिं । करिष्यते देव तथा कृपां मे को वात्म पोष्ये सु-मुखो न सूरिः ॥ ३९ ॥ वितरति विहिता यथाकथंचिज्जिन विनताय मनीषितानि भक्तिः । त्वयिनुति विषया पुनर्विशे-षाद्दिशति सुखानि यशो 'धनंजयं' च ॥४०॥ इति ॥

६६—विषापहारभाषा ।

दोहा—नमों नाभिनंदन बली, तत्त्वप्रकाशनहार ।
तुर्यकालकी आदिमें, भये प्रथम अवतार ॥ १ ॥

काव्य वा रोला छंद ।

निज आतममें लीन ज्ञानकरि व्यापत सारे । जानत सब व्यापार संग नहिं कछु तिहारे ॥ बहुत कालके हो पुनि जरा न देह तिहारी । ऐसे पुरुष पुरान करहु रछया जु हमारी

॥१॥ परकरिकै जु अचिंत्य भार जुगको अति भारो। सो एकाकी भयो वृषभ कीनों निसतारो ॥ करि न सके जोगिंद्र तवन मैं करिहौ ताको। भानु प्रकाश न करै दीप तमहरै गुफाको ॥२॥ स्तवनकरनको गर्भ तज्यो सक्री बहु ज्ञानी। मै नहि तजौ कदापि स्वल्पज्ञानी शुभध्यानी। अधिक अर्थकौ कहूं यथाविधि बैठि झरोकै। जालांतरधरि अक्ष भूमिधरकों जु विलोकै ॥३॥ सकल जगतकों देखत अर सबके तुम ज्ञायक। तुमकौं देखत नाहिं नाहिं जानत सुखदायक ॥ हौ किसाक तुम नाथ और कितनाक बखानै। तातैं थुति नहिं बनै असक्ती भये सयानै ॥४॥ बालकवत निजदोषपथकी इहलोक दुखी अति। रोगरहित तुम कियो कृपाकरि देव भुवनपति ॥ हित अनहितकी समझिमांहि हैं मंदमती हम। सब प्राणिनके हेत नाथ तुम बालवैद सम ॥५॥ दाता हरता नाहिं भानु सबकौ बहकावत। आजकालके छलकरि नितप्रति दिवस गुमावत ॥ हे अच्युत जो भक्त नमैं तुम चरनकमलकों। छिनक एकमें आप देत मनवांछित फलको ॥ ६ ॥ तुमसों सन्मुख रहै भक्तिसौं सो सुख पावै। जो सुभावतै विमुख आपतैं दुखहि बढावै॥ सदा नाथ अवदात एकद्युतिरूप गुसांई। इन दोन्योंके हेत स्वच्छ दरपणवत झांई ॥७॥ हैं अगाध जलनिधी समुदजल है जितनौं ही। मेरू तुंगसुभाव सिखरलौं उच्च भन्यो ही ॥ वसुधा अर सुरलोक एहु इसभांति सई है। तेरी प्रभुता देव भुव-

निकूं लंघि गई है ॥८॥ है अनवस्थाधर्म परम सो तत्त्व तुमारे। कह्यो न आवागमन प्रभू मतमांहि तिहारे ॥ दृष्ट पदारथ छांडि आप इच्छति अदृष्टकौ । विरुधवृत्ति तव नाथ समंजस होय सृष्टकौं ॥९॥ कामदेवको किया भस्म जगत्राता थे ही । लीनी भस्म लपेटि नाम संभू निजदेही ॥ सूतो होय अचेत विष्णु वनिताकरि हारयो । तुमकौं काम न गहै आप घट सदा उजारयो ॥१०॥ पापवान वा पुन्यवान सो देव बतावै । तिनके औगुन कहैं नाहिं तू गुणी कहावै ॥ निज सुभावतैं अंबुराशि निज महिमा पावै । स्तोक सरोवर कहे कहा उपमा बढि जावै ॥११॥ कर्मनकी थिति जंतु अनेक करै दुखकारी । सो थिति बहु परकार करै जीवनकी ख्वारी । भवसमुद्रके मांहि देव दोन्योंके साखी । नाविक नाव समान आप वाणी मैं भाखी ॥१२॥ सुखकौं तो दुख कहै गुणनिकूं दोष विचारै । धर्मकरनके हेत पाप हिरदैविच धारै ॥ तेलनिकासन काज धूलिकों पेलै घानी । तेरे मतसों बाह्य इसे जे जीव अज्ञानी ॥१३॥ विष मोचै ततकाल रोगकौ हरै तत्च्छन । मणि औपधी रसांण मंत्र जो होय सुलच्छन ॥ ए सब तेरे नाम सुबुद्धी यों मन धरिहैं । भ्रमत अपरजन वृथा नहीं तुम सुमिरन करिहैं ॥१४॥ किंचित भी चितमाहिं आप कछु करो न स्वामी । जे राखै चितमाहिं आपकों शुभपरिणामी ॥ हस्तामलवत लखैं जगतकी परिणति जेती । तेरे चितके बाह्य तोउ जीवै सुखसेती ॥१५॥ तीनलोक तिरकाल

माहिं तुम जानत सारी। स्वामी इनकी संख्या थी तितनीहि निहारी॥ जो लोकादिक हुते अनंते साहिब मेरा। तेऽपि झलकते आनि ज्ञानका ओर न तेरा॥१६॥ है अगम्य तवरूप करै सुरपति प्रभु सेवा। ना कछु तुम उपकार हेत देवनके देवा॥ भक्ति तिहारी नाथ इंद्रके तोषित मनको। ज्यों रवि सन्मुख छत्र करै छाया निज तनको॥१७॥ वीतरागता कहां कहां उपदेश सुखाकर। सो इच्छाप्रतिकूल वचन किम होय जिनेसर॥ प्रतिकूली भी वचन जगतकूं प्यारे अतिही। हम कछु जानी नाहिं तिहारी सत्यासतिही॥१८॥ उच्चप्रकृति तुम नाथ संग किंचित न धरनतैं। जो प्रापति तुमथकी नाहिं सो धनेसुरनतैं॥ उच्चप्रकृति जल विना भूमिधर धुनी प्रकासै। जलधि नीरतैं भरयौ नदी ना एक निकासै॥१९॥ तीनलोकके जीव करो जिनवरकी सेवा। नियमथकी करदंड धरयो देवनके देवा॥ प्रातिहार्य तौ बनै इंद्रके बनै न तेरे। अथवा तेरे बनै तिहारे निमित परेरे॥ ॥२०॥ तेरे सेवक नाहिं इसे जे पुरुषहीन धन। धनवानोंकी ओर लखत वे नाहिं लखत पन॥ जैसैं तमथिति किये लखत परकासथितीकूं। तैसैं सूझत नाहिं तमथिती मंदमतीकूं॥२१॥ निज वृध स्वासोसास प्रगट लोचन टमकारा। तिनकों वेदत नाहिं लोकजन मूढ़ विचारा॥ सकल ज्ञेय ज्ञायक जु अमूरति ज्ञान सुलच्छन। सो किमि जान्यो जाय देव तव रूप विचच्छन॥२२॥ नाभिरायके पुत्र पिता प्रभु भरततने हैं।

कुलप्रकाशिकैं नाथ तिहारो तवन भनै हैं ॥ ते लघुधी असमान गुननकौं नाहिं भजै हैं । सुवरन आयो हाथ जानि पाषान तजै हैं ॥२२॥ सुरासुरनको जीति मोहने ढोल बजाया । तीनलोकमैं किये सकल वशि यों गरभाया ॥ तुम अनंत वलवंत नाहिं ढिग आवन पाया । करि विरोध तुमथकी मूलतैं नाश कराया ॥२३॥ एक मुक्तिका मार्ग देव तुमने परकास्या । गहन चतुरगतिमार्ग अन्य देवनकूं भास्या ॥ 'हम सब देखनहार' इसीविधि भाव सुमिरिकैं । भुज न विलोको नाथ कदाचित गर्भ जु धरिकैं ॥२५॥ केतुविपक्षी अर्कतनो फुनि अग्नि तनो जल । अंवुनिधीअरि प्रलयकालको पवन महावल ॥ जगतमाहिं जे भोग वियोग विपक्षी हैं निति । तेरो उदयो है विपक्षनैं रहित जगतपति ॥२६॥ जाने विन हूं नवत आपकों जो फल पावै । नमत अन्यको देव जानि सो हाथ न आवै ॥ हरी मणीकूं काच, काचकूं मणी रटत है ॥ ताकी बुधिमें भूल, मूल्य मणिको न घटत है ॥ ॥२७॥ ते विवहारी जीव वचनमैं कुशल सयाने । ते कषायकरि दग्ध नरनकों देव वखानैं ॥ ज्यों दीपक बुझि जाय ताहिकह 'नंदि' भयो है । भग्न घड़ेको कहैं कलस मँगलि गयो है ॥२८॥ स्यादवाद संजुक्त अर्थको प्रगट वखानत । हितकारी तुम वचन श्रवनकरि को नहिं जानत ॥ दोषरहित ए देव शिरोमणि वक्ता जगगुर । जो ज्वरसेती मुक्त भयो सो कहत सरल सुर ॥२९॥ विन वांछा ए वचन आपके खिरैं

कदाचित । है नियोग ए कोपि जगतको करत सहजहित ॥ करै न वांछा इसी चंद्रमा पूरों जलनिधि । सीतरश्मिकूं पाय उदधि जल वढै स्वयंसिधि ॥३०॥ तेरे गुण गंभीर परम पावन जगमांई । वहुप्रकार प्रभु हैं अनंत कछु पार न पाई । तिन गुणानको अंत एक याहीविधि दीसै । ते गुण तुझ ही मांहि औरमैं नाहिं जगीसै ॥३१॥ केवल श्रुति ही नाहिं भक्तिपूर्वक हम ध्यावत । सुमरन प्रणमन तथा भजनकर तुम गुण गावत ॥ चितवन पूजन ध्यान नमनकरि नित आराधैं । को उपावकरि देवसिद्धिफलको हम साधैं ॥३२॥ त्रैलोकी नगराधिदेव नित ज्ञानप्रकाशी । परमज्योति परमातमशक्ति अनंती भासी ॥ पुन्य पापतै रहित पुन्यके कारण स्वामी । नमों नमों जगवंद्य अवंद्यक नाथ अकामी ॥३३॥ रस सुपरस अर गंध रूप नहिं शब्द तिहारे । इनिके विषय विचित्र भेद सब जाननहारे। सब जीवनप्रतिपाल अन्यकरिहैं अगम्य गन । सुमरनगोचर नाहिं करौ जिन तेरो सुमिरन ॥ ३४ ॥ तुम अगाध जिनदेव चित्तके गोचर नाहीं। निःकिंचन भी प्रभू धनेश्वर जाचत साँई ॥ भये विश्वके पार दृष्टिसों पार न पावै । जिनपति एमनिहारि संतजन सरनै आवै ॥ ३५ ॥ नमों नमों जिनदेव जगतगुरुशिक्षादायक । निजगुणसेती भई उन्नती महिमा लायक ॥ पाहनखंड पहार पछैं ज्यों होत और गिर । त्यों कुलपर्वत नाहिं सनातन दीर्घ भूमिधर ॥ स्वयं प्रका-

शी देव रैन दिनकूं नाहिं बाधित। दिवस रात्रि भी छतैं आपकी प्रभा प्रकाशित॥ लाघव गौरव नाहिं एकसो रूप तिहारो। कालकलातैं रहित प्रभूसूं नमन हमारो॥ ३७॥ इहविधि बहु परकार देव तव भक्ति करी हम। जाचूं वर न कदापि दीन ह्वै रागरहित तुम॥ छाया बैठत सहज वृक्षके नीचे ह्वै है। फिर छायाकों जाचत यामैं प्रापति क्वै है॥ ३८॥ जो कुछ इच्छा होय देनकी तौ उपगारी। द्यो बुधि ऐसी करूं प्रीतिसौं भक्ति तिहारी॥ करो कृपा जिन-देव ह ारे परि ह्वै तोषित। सनमुख अपनो जानि कौन पंडित नहिं पोषित॥ ३९॥ यथाकथंचित भक्ति रचै विनई-जन केई। तिनकूं श्रीजिनदेव मनोवांछित फल देही॥ फुनि विशेष जो नमत संतजन तुमको ध्यावै। सो सुख जस 'धन-जय' प्रापति है शिवपद पावै॥ ४०॥ श्रावक माणि-कचंद सुबुद्धी अर्थ बताया। सो कवि 'शांतीदास' सुगम-करि छंद बनाया॥ फिरि फिरिकै ऋषि रूपचंद नें करी प्रेरणा। माला स्तोतर विषापहारकी पढ़ो भविजना॥४१॥

६७—जिनचतुर्विंशतिका।

श्रीलीलायतनं महीकुलगृहं कीर्तिप्रमोदास्पदं वाग्देवीर-तिकेतनं जयरमाक्रीड़ानिधानं महत्। स स्यात्सर्वमहोत्सवै-कभवनं यः प्रार्थितार्थप्रदं प्रातः पश्यति कल्पपादपदल-च्छायं जिनाङ्घ्रिद्वयं॥ १॥ शांतं वपुः श्रवणहारि वचश्चरित्रं सर्वोपकारि तव देव ततः श्रुतज्ञाः। संसारमारवमहास्थलरु-

द्रसांद्रच्छायामहीरुहभवंतमुपाश्रयंते ॥३॥ स्वामिन्नद्य विनिर्गतोऽस्मि जननीगर्भांधकूपोदराद्द्योद्घाटितदृष्टिरस्मि फलवज्जन्मासि चाद्य स्फुट। त्वामद्राक्षमहं यदक्षयपदानंदाय लोकत्रयीनेत्रेंदीवरकाननेंदुममृतस्यंदिप्रभाचंद्रिकं ॥ निःशेषत्रिदशेंद्रशेखरशिखारत्नप्रदीपावली सांद्रीभूतमृगेंद्रविष्टरतटीमाणिक्यदीपावलिः। क्वेयं श्रीः क्व च निःस्पृहत्वमिदमित्यूहातिगस्त्वादृशः सर्वज्ञानदृशश्चरित्रमहिमा लोकेश ! लोकोत्तरः॥४॥ राज्य शासनकारिनाकपति यत्त्यक्तं तृणावज्ञया हेलानिर्दलितत्रिलोकमहिमा यन्मोहमल्लो जितः। लोकालोकमपि स्वबोधमुकुरस्यांतः कृतं यत्त्वया सैषाश्चर्यपरंपरा जिनवर क्वान्यत्र संभाव्यते ॥ ५ ॥ दानं ज्ञानधनाय दत्तमसकृत्पत्राय सद्वृत्तये चीर्णान्युग्रतपांसितेन सुचिरं पूजाश्च बह्व्यः कृताः। शीलानां निचयः सहामलगुणैः सर्वः समासादितो दृष्टस्त्वं जिन येन दृष्टिसुभगः श्रद्धापरेण क्षणं ॥ ६ ॥ प्रज्ञापारमितः स एव भगवान्पारं स एव श्रुतस्कंधाब्धेर्गुणरत्नभूषण इति श्लाघ्यः स एव ध्रुवं । नीयंते जिन येन कर्णहृदयालंकारतां त्वद्गुणाः संसाराहिविषापहारमणयस्त्रैलोक्यचूडामणेः ॥७॥ जयति दिविजवृंदान्दोलितैरिंदुरोचिर्निचयरुचिभिरुच्चैश्चामरैर्वीज्यमानः । जिनपतिरनुरज्यन्मुक्ति साम्राज्यलक्ष्मी युवतिनवकटाक्षक्षेपलीलां दधानैः ॥ ८ ॥ देवः श्वेतातपत्रत्रयचमरिरुहाशोकभाश्चक्रभाषापुष्पौघासारसिंहासनसुरपटहैरष्टभिः प्रातिहार्यैः। साश्चर्यै-

वरसो दृष्टेरियान्वर्तते। साक्षात्तत्र भवंतमीक्षितवतां कल्याणकाले तदा देवानामनिमेषलोचनतया वृत्तः स किं वर्ण्यते ॥२४॥ दृष्टं धाम रसायनस्य महतां दृष्टं निधीनां पदं दृष्टं सिद्धरसस्य सद्म सदनं दृष्टं च चिंतामणेः। किं दृष्टेरथवानुषंगिकफलैरेभिर्मयाद्य ध्रुवं दृष्टं मुक्तिविवाहमंगलगृहं दृष्टे जिनश्रीगृहे ॥२५॥ दृष्टस्त्वं जिनराजचन्द्रविकसद्भूपेंद्रनेत्रोत्पलैः स्नातं त्वन्नुतिचंद्रिकांभसि भवद्विद्वच्चकोरोत्सवे। नीतश्चाद्य निदाघजः क्लमभरः शांतिं मया गम्यते देव! त्वद्गतचेतसैव भवतो भूयात्पुनर्दर्शनं ॥ २६ ॥ इति ॥

६८—भूपालचतुर्विंशतिका भाषा।

सकल सुरासुर पूज्य नित, सकलसिद्धि दातार।
जिनपदवंदू जोर कर, अशरनजनआधार ॥ १ ॥

चोपाई—श्रीसुखवासमहीकुलधाम। कीरतिहर्षणथलअभिराम॥ सरसुतिके रतिमहल महान। जय जुवतीको खेलन थान॥ अरुण वरण वंछित वरदाय। जगतपूज्य ऐसे जिन पाय॥ दर्शन प्राप्त करै जो कोय। सब शिवथानक सो जन होय॥ १॥ निर्विकार तुम सोमशरीर। श्रवणसुखद वाणी गम्भीर॥ तुम आचरण जगतमें सार। सब जीवनको है हितकार॥ महानिंद भवमारू देश। तहां तुंग तरु तुम परमेश॥ सघनछांहिंमंडित छवि देत। तुम पंडित सेवैं सुखहेत॥२॥ गर्भकूपतैं निकस्यौ आज। अब लोचन उघरे जिनराज॥ मेरो जन्म सफल भयो अबै।

शिवकारण तुम देखे जबै ॥ जगजननैनकमलबनखंड। विकसावंनशशिशोकविहंड ॥ आनंदकरनप्रभातुमतणी । सोई अमी झरन चांदणी ॥३॥ सब सुरेन्द्र शेखर शुभ रैन। तुम आसन तट माणक ऐन ॥ दोऊं दुति मिल झलकै जोर। मानों दीपमाल दुहं ओर ॥ यह संपति अरु यह अनचाह। कहां सर्वज्ञानी शिवनाह ॥ तातैं प्रभुता है जगमांहिं। सही असम है संशय नाहिं ॥ सुरपति आन अखंडित बहै। तृण ज्यों राज तज्यो तुम वहै ॥ जिन छिनमैं जगमहिमा दली। जीत्यो मोहशत्रु महाबली ॥ लोकालोक अनंत अशेख। कीनो अंत ज्ञानसों देख ॥ प्रभु प्रभाव यह अद्भुत सबै। अवर देवमैं भूल न फबै ॥५॥ पात्रदान तिन दिन दिन दियो। तिन चिरकाल महातप कियो ॥ बहुविध पूजाकारक वही। सर्व शील पाले उन सही ॥ और अनेक अमलगुणरास। प्रापति आय भये सब तास ॥ जिन तुमशरधासों कर टेक। दृगवल्लभ देखे छिन एक ॥ त्रिजगतिलक तुम गुणगण जेह। भवभुजंगविषहरमणि तेह ॥ जो उरकाननमाहिं सदीव। भूषण कर पहरै भवि जीव ॥ सोई महामती संसार। सो श्रुतसागर पहुंचे पार ॥ सकल लोकमें शोभा लहै। महिमा जाग जगतमैं वहै ॥

दोहा—सुरसमूह ढोलै चमर, चंदकिरणद्युति जेम।
नवतनवधूकटाक्षतैं, चपल चलैं अतिएम ॥
छिन छिन ढलकैं स्वामिपर, सोहत ऐसो भाव।
किधौं कहत सिधि लच्छिसों, जिनपतिके ढिग आव ॥८॥

चौपाई—शीशछत्र सिंहासन तलै। दिपै देहदुति चामर ढलैं॥ वाजे दुंदुभि वरसै फूल। ढिगअशोक वाणी सुखमूल॥ इहि-विधि अनुपम शोभा मान। सुरनरसभा पद्मनीभान॥ लोक नाथ वंदें शिरनाय। सो हम शरण होहु जिनराय॥ सुरगज-दंत कमलवनमांहि। सुरनारीगण नाचत जांहि। बहुविध वाजे वाजैं थोक। सुन उछाह उपजै तिहुंलोक॥ हर्षंत हरि जै जै उच्चरै। सुमनमाल अपछर कर धरै॥ यों जन्मादि समय तुम होय। जयो देव देवागम सोय॥१०॥ तोष बढावन तुम मुखचंद। जननयनामृतकरन अमंद॥ सुंदर दुतिकर अधिक उजास। तीनभवन नहिं उपमा तास॥ ताहि निरखि सनयन हम भये। लोचन आज सुफल कर लये॥ देखनयोग जगतमें देख। उमग्यो उर आनंद विशेख॥११॥ कैयक यों मानै मतिमंद। विजितकाम विधि ईश मुकंद॥ ये तो हैं वनितावश दीन। कामकटकजीतनवलहीन॥ प्रभु आगैं सुर-कामिनि करै। ते कटाक्ष सब खाली परै॥ यातैं मदनवि-ध्वंसन वीर। तुम भगवंत और नहिं धीर॥१२॥ दर्शप्रीति हिये जब जगी। तबै आम्रकोंपल बहु लगी॥ तुम समीप उठ आवन ठयो। तबसो सघन प्रफुल्लित भयो॥ अबहूं निज नैनन ढिग आय। मुखमयंक देख्यो जगराय॥ मेरो पुन्न विरख इहवार। सुफलफल्यो सबसुखदातार॥१३॥

दोहा—त्रिभुवनबनमें विस्तरी कामदवानल जोर।
वाणीवरषाभरणसों, शांति करहु चहुं ओर॥

इंद्र मोर नाचै निकट, भक्तिभाव धर मोह।
मेघ सघन चौबीस जिन, जैवंते जग होय ॥१४॥

चौपाई—भविजनकुमुदचंद सुखदैन। सुरनरनाथप्रमुखजगजैन ॥ ते तुम देख रमै इह भांति। पहुप गेह लह ज्यों अलि पांत ॥ शिरधर अंजुलि भक्तिसमेत। श्रीगृहप्रति परिदक्षण देत ॥ शिवसुखकीसी प्रापति भई। चरणछांहसों भवतप गई ॥ वह तुमपदनखदर्पण देव। परम पूज्य सुंदर स्वयमेव ॥ तामैं जो भविभागविशाल। आनन अविलोकै चिरकाल ॥ कमलाकीरति कांति अनूप। धीरजप्रमुख सकल सुखरूप ॥ वे जगमंगल कौन महान। जो न लहै वह पुरुष प्रधान ॥१६॥ इंद्रादिक श्रीगंगा जेह उत्पतिथान हिमाचल येह ॥ जिनमुद्रामंडित अतिलसै। हर्ष होय देखे दुःख नशै ॥ शिखर ध्वजागण सोहैं एम। धर्मसुतरुवर पल्लव जेम ॥ यों अनेक उपमाआधार। जयो जिनेश जिनालय सार ॥१७॥ शीश नवाय नमत सुरनार। केशकांतिमिश्रित मनहार ॥ नखउद्योत वरतैं जिनराज। दशदिशपूरित किरण समाज ॥ स्वर्गनागनरनायक संग। पूजत पायपद्मअतुलंग ॥ दुष्टकर्मदलदलनसुजान। जैवंतो वरतो भगवान ॥१८॥ सो कर जागै जो धीमान। पंडित सुधी सुमुख गुणवान ॥ आपन मंगलहेतु प्रशस्त। अवलोकन चाहै कछु वस्त ॥ और वस्तु देखै किसकाज। जो तुम मुख राजै जिनराज ॥ तीनलोकको मंगलथान। प्रेक्षणीय तिहुं जगकल्यान ॥ १९ ॥ धर्मोदय

तापसगृहकीर। काव्यबंधवनपिक तुम वीर॥ मोक्षमल्लिका मधुपरसाल। पुन्यकथा कजसरसि मराल॥ तुम जिनदेव सुगुण मणिमाल। सर्वहितंकर दीनदयाल॥ ताको कौन न उन्नतकाय। धरै किरीटमांहि हर्षाय॥ केई वांछैं शिवपुर वास। केई करै स्वर्गसुख आस॥ पचै पँचानल आदिक ठान। दुख बंधै जस बँधै अयान॥ हम श्रीमुखवानी अनुभवै। सरधा पूरव हिरदै ठवै॥ तिस प्रभाव आनन्दित रहैं। स्वर्गादि सुख सहजे लहैं॥ न्होन महोच्छव इन्द्रन कियो। सुरतिय मिल मंगल पढ लियो॥ सुयशशरदचंद्रोपम सेत। सो गंधर्व गान कर लेत॥ और भक्ति जो जो जिस जोग। शेष सुरन कीनी सुनियोग॥ अव प्रभु करैं कौनसी सेव। हम चित भयो हिंडोलो एव॥ २२॥ जिनवर जन्मकल्यानक धोस। इंद्र आप नाचै कर होस॥ पुलकित अंग पिताघर आय। नाचनविधिमें महिमा पाय॥ अमरी बीन बजावै सार। धरी कुचाग्र करत झंकार॥ इहिविधि कौतुक देख्यो जबै। औसर कौन कह सकै अबै॥ २३॥ श्रीप्रतिबिंब मनोहर एम। विकसतवदन कमलदल जेम॥ ताहि हेर हरखे दृग दोय। कह न सकूं इतनो सुख होय॥ तव सुरसंग कल्यानक काल। प्रगटरूप जोवै जगपाल॥ इकटक दृष्टि एक चितलाय। वह आनंद कहा क्यों जाय॥२४॥ देख्यो देव रसायन धाम। देख्यो नव निधिको विसराम॥ चिंतारयन सिद्धिरस अबै। जिनगृह देखत देखे सबै॥

अथवा इन देखे कछु नाहिं। यह अनुगामी फल जगमांहि॥ स्वामी सरचो अपूरव काज। मुक्तिसमीप भई मुझ आज ॥२५॥ अब विनवै भूपाल नरेश। देखे जिनवर हरन कलेश॥ नेत्रकमल विकसे जगचंद्र। चतुर चकोर करण आनंद॥ थुति जलसों यों पावन भयो। पापताप मेरो मिट गयो॥ मो चित है तुम चरणनमाहिं। फिर दर्शन हूज्यो अब जाहिं॥

छप्पय छंद।

इहिविधि बुद्धिविशालराय भूपाल महाकवि। कियो ललित थुतिपाठ हिये सब समझ सकै नवि॥ टीकाके अनुसार अर्थ कछू मनमैं आयो। कहीं शब्द कहिं भाव जोड भाषा जस गायो॥ आतम पवित्रकारण किमपि, बालख्याल सो जानियो। लीज्यो सुधार भूधरतणी, यह विनती बुध मानियो॥ २७॥ इति समाप्त।

६९—महावीराष्टकस्तोत्र।

शिखरिणी

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः। समं भांति ध्रौव्यव्ययजनिलसंतोंतरहिताः। जगत्साक्षी मार्गप्रकटनपरो भानुरिव यो महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः] ॥ १ ॥ अताम्रं यच्चक्षुः कमलयुगलं स्पंदरहितं जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यंतरमपि। स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला, महावीर० ॥ २ ॥ नम

न्नाकेंद्राली मुकुटमणिभाजालजटिलं लसत्पादांभोजद्वयमिह यदीयं तनुभृतां। भवज्ज्वालाशांत्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि, महावीर० ॥३॥ यदर्च्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह क्षणादासीत्स्वर्गी गुणगणसमृद्धः सुखनिधिः। लभंते सद्भक्ताः शिवसुखसमाजं किमु तदा, महावीर०॥४॥कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगततनुर्ज्ञाननिवहो विचित्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थतनयः। अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरागोद्भुतगतिर्, महावीर० ॥ ५ ॥ यदीया वाग्गंगा विविधनयकल्लोल विमला, बृहज्ज्ञानांभोभिर्जगति जनतां या स्नपयति। इदानीमप्येषा बुधजनमरालैः परिचिता, महावीर० ॥६ । अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवनजयी कामसुभटः कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः। स्फुरन्नित्यानंदप्रशमपदराज्याय स जिनः, महावीर० ॥ ७ ॥ महामोहातंकप्रशमनपराकस्मिकभिषङ् निरापेक्षो बंधुर्विदितमहिमामंगलकरः। शरण्यः साधूनां भवभयभृतामुत्तमगुणो, महावीर० ॥ ८ ॥

महावीराष्टकं स्त्रोत्रं भक्त्या भागेंदुना कृतं।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिं ॥ ९ ॥

७०—अकलंकस्तोत्र

शार्दूलविक्रीडितछंदः।

त्रैलोक्यं सकलं त्रिकालविषयं सालोकमालोकितं साक्षाद्येन यथा स्वयं करतले रेखात्रयं सांगुलि। रागद्वेषभयामयांतकजरालोलत्वलोभादयो नालं यत्पदलंघनाय स महा-

देवो मया वंद्यते ॥ १ ॥ दग्धं येन पुरत्रयं शरभवा तीव्रार्चिषा वह्निना, यो वा नृत्यति मत्तवत्पितृवने यस्मात्मजो वागुहः। सोयं किं मम शंकरो भयतृषारोषार्तिमोहक्षयं कृत्वा यः स तु सर्ववित्तनुभृतां क्षेमंकरः शंकरः ॥ २ ॥ यत्नाद्येन विदारितं कररुहैर्दैत्येंद्रवक्षःस्थलं सारथ्येन धनंजयस्य समरे योऽमारयत्कौरवान्। नासौ विष्णुरनेककालविषयं यज्ज्ञानमव्याहतं विश्वं व्याप्य विजृंभते स तु महाविष्णुः सदेष्टो मम ॥ ३ ॥ उर्वश्यामुदपादि रागबहुलं चेतो यदीयं पुनः पात्रीदंडकमंडलुप्रभृतयो यस्याकृतार्थस्थितिं। आविर्भावयितुं भवंति स कथं ब्रह्माभवेन्मादृशां,क्षुत्तृष्णाश्रमरागोपरहितो ब्रह्माकृतार्थोस्तु नः ॥ ४ ॥ यो जग्ध्वा पिशितं समत्स्यकवलं जीवं च शून्यं वदन्, कर्ता कर्मफलं न भुंक्त इति यो वक्ता स बुद्धः कथं। यज्ज्ञानं क्षणवर्तिवस्तुसकलं ज्ञातुं न शक्तं सदा यो जानन्युगपज्जगत्त्रयमिदं साक्षात्स बुद्धो मम ॥ ५ ॥

स्रग्धरा छंदः।

ईशः किं छिन्नलिंगो यदि विगतभयः शूलपाणिः कथं स्यात् नाथः किं भैक्ष्यचारी यतिरिति स कथं सांगनः सात्मजश्च। आर्द्राजः किंत्वजन्मा सकलविदिति किं वेत्ति नात्मांतरायं संक्षेपात्सम्यगुक्तं पशुपतिमपपशुः कोऽत्र धीमानुपास्ते ॥ ६ ॥ ब्रह्मा चर्माक्षसूत्री सुरयुवतिरसावेशविभ्रांतचेताः शंभुः खट्वांगधारी गिरिपतितनयापांगलीलानु-

विद्धः। विष्णुश्चक्राधिपः सन्दुहितरमगमद्गोपनाथस्य मोहादर्हन्विध्वस्तरागो जितसकलभयः कोयमेष्वाप्तनाथः ॥७॥ एको नृत्यति विप्रसार्य कुकुभां चक्रे सहस्रान्भुजानेकः शेपभुजंगभोगशयने व्यादाय निद्रायते। दृष्टुं चारुतिलोत्तमामुखमगादेकश्चतुर्वक्त्रतामेते मुक्तिपथं वदंति विदुषामित्येतदत्यद्भुतं ॥ ८ ॥ यो विश्वं वेद वेद्यं जननजलनिधेर्भंगिनः पारदृश्वा पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलंकं यदीयं। तं वंदे साधुवंद्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोपद्विषंतं बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा ॥९॥ माया नास्ति जटाकपालमुकुटं चन्द्रो न मूर्द्धावली, खट्वांगं न च वासुकिर्न च धनुः शूलं न चोग्रं मुखं। कामो यस्य न कामिनी न च वृषो गीतं न नृत्यं पुनः सोऽस्मान्पातु निरंजनो जिनपतिः सर्वत्र सूक्ष्मः शिवः ॥ १० ॥ नो ब्रह्मांकितभूतलं न च हरेः शंभोर्न मुद्रांकितं नो चंद्रार्ककरांकितं सुरपतेर्वज्रांकितं नैव च । षड्वक्त्रांकितबौद्धदेवहुतभुग्यक्षोरगैर्नांकितं नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेंद्रमुद्रांकितं ॥११॥ मौजीदंडकमंडलुप्रभृतयो नो लांछनं ब्रह्मणो । रुद्रस्यापि जटाकपालमुकुटं कोपीनखट्वांगना। विष्णोश्चक्रगदादिशंखमतुलं बुद्धस्य रक्तांबरं नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेंद्रमुद्रांकितं ॥१२॥ खट्वांगं नैव हस्ते न च हृदि रचिता लंबते मुंडमाला भस्मांगं नैव शूलं न च गिरिदुहिता नैव हस्ते कपालं। चन्द्रार्द्धं नैव मूर्द्धन्यपि वृषगमनं नैव कण्ठे

फणीन्द्रः तं वंदे त्यक्तदोषं भवभयमथनं चेश्वरं देवदेवं ॥१३॥ नाहंकारवशी कृतेन मनसा न द्वेषिणा केवलं नैरात्म्यं प्रतिपद्य नश्यति जने कारुण्यबुद्ध्या मया। राज्ञः श्रीहिमशीतलस्य सदसि प्रायोविदग्धात्मनो बौद्धौघान्सकलान् विजित्य स घटः पादेन विस्फालितः ॥ १४ ॥ किं वाद्यो भगवानमेयमहिमा देवोकलंकः कलौ काले यो जनतासुधर्मनिहितो देवोऽकलंको जिनः। यस्य स्फारविवेकमुद्रलहरीजालेप्रमेयाकुला निर्भग्ना तनुतेतरां भगवतीतारा शिरःकंपनं ॥१५॥ सा तारा खलु देवता भगवती मन्यापि मन्यामहे षण्मासावधिजाड्यसांख्यभगवद्भट्टाकलंकप्रभोः। वाक्कल्लोलपरंपराभिरमते नूनं मनोमज्जनव्यापारं सहतेस्म विस्मितमतिः संताड़िततस्ततः ॥ इति ॥

७१—नामावली स्तोत्र।

जय जिनंद सुखकंद नमस्ते। जय जिनंद जितफंद नमस्ते ॥ जय जिनंद वरबोध नमस्ते। जय जिनंद जितक्रोध नमस्ते॥ १ ॥ पापतापहर इन्दु नमस्ते। अर्हवरनज्ञुतविन्दु नमस्ते ॥ विष्टाचार विशिष्ट नमस्ते। इष्टमित्र उत्कृष्ट नमस्ते ॥२॥ पर्म धर्म वर शर्म नमस्ते। मर्म भर्मधन धर्म नमस्ते। दृग विशाल वरभाल नमस्ते। हृदयाल गुनमाल नमस्ते ॥३॥ शुद्धबुद्ध अविरुद्ध नमस्ते। रिद्धसिद्धि वरवृद्ध नमस्ते ॥ वीतराग विज्ञान नमस्ते। चिद्विलास धृतध्यान नमस्ते ॥४॥ स्वच्छगुणा बुधि रत्न नमस्ते। सत्व हितंकर-

यत्न नमस्ते ॥ कुनयकरीमृगराज नमस्ते। मिथ्याखग-वरबाज नमस्ते ॥५॥ भव्यभवोदधिपार नमस्ते। शर्मामृत-सिवसार नमस्ते ॥ दरशज्ञानसुखवीर्य नमस्ते। चतुरानन-धरधीर्य नमस्ते ॥६॥ हरिहरब्रह्मा विष्णु नमस्ते। मोहमर्द मनु जिष्णु नमस्ते ॥ महादान मह भोग नमस्ते। महाज्ञान महजोग नमस्ते ॥७॥ महाउग्र तपसूर नमस्ते। भवसमुद्र-शतसेतु नमस्ते ॥८॥ विद्याईश मुनीश नमस्ते। इन्द्रादिक-नुतशीश नमस्ते ॥ जय रत्नत्रयराय नमस्ते। सकल जीव-सुखदाय नमस्ते ॥९॥ अशरणशरणसहाय नमस्ते। भव्य-सुपन्थ लगाय नमस्ते ॥ निराकार साकार नमस्ते। एकानेक अधार नमस्ते ॥ लोकालोकविलोक नमस्ते। त्रिधा सर्व-गुणथोक नमस्ते ॥ सल्लदल्लदलमल्ल नमस्ते। कल्लमल्ल-जितछल्ल नमस्ते ॥११॥ भुक्तिमुक्तिदातार नमस्ते। उक्ति-सुक्तिश्रृंगार नमस्ते ॥ गुणअनन्त भगवन्त नमस्ते। जै जै जै जयवन्त नमस्ते ॥१२॥

७२—पार्श्वनाथस्तोत्र।

भुजंगप्रयात छंद।

नरेंद्रं फणींद्रं सुरेंद्रं अधीसं। शतेन्द्रं सु पूजै भजै नाय शीशं ॥ मुनींद्रं गणेंद्रं नमों जोडि हाथं। नमो देवदेवं सदा पार्श्वनाथं॥ गजेंद्रं मृगेंद्रं गह्यो तू छुडावै। महा आगतैं नागतैं तू बचावै ॥ महावीरतैं युद्धमें तू जितावै। महा रोगतैं बंधतैं तू छुडावै ॥२॥ दुखीदुःखहर्ता सुखीसुक्खकर्ता। सदा सेवकोंको महानंद-

भर्ता ॥ हरे यक्ष राक्षस्स भूतं पिशाचं । विषं डांकिनी विघ्न-के भय अवाचं ॥३॥ दरिद्रीनको द्रव्यके दान दीने । अपु-त्रीनकौं तू भले पुत्र कीने ॥ महासंकटोंसे निकारै विधाता । सवै संपदा सर्वको देहि दाता ॥४॥ महाचोरको वज्रको भय निवारे । महापौनके पुंजतैं तू उबारे ॥ महाक्रोधकी अग्निको मेघधारा । महालोभशैलेशको वज्र भारा ॥ ५ ॥ महामोह अंधेरको ज्ञान भानं । महाकर्मकांतारको दौं प्रधानं ॥ किये नाग नागिनं अधोलोकस्वामी । हर्यो मान तू दैत्यको हो अकामी ॥६॥ तुही कल्पवृक्षं तुही कामधेनं । तुही दिव्यचिं-तामणी नाग एनं ॥ पशू नर्कके दुःखतैं तू छुडावै । महास्वर्गतै मुक्तिमें तू बसावै ॥७॥ करै लोहको हेमपाषाण नामी । रटै नाम सो क्यों न हो मोक्षगामी ॥ करै सेव ताकी करैं देव सेवा । सुनै वैन सोही लहै ज्ञान मेवा ॥८॥ जपै जाप ताको नहीं पाप लागै । धरै ध्यान ताके सबै दोष भागै ॥ विना तोहि जाने धरे भव घनेरे । तुम्हारी कृपातैं सरै काज मेरे ॥

दोहा—गणधर इंद्र न कर सकै, तुम विनती भगवान ।
'द्यानत' प्रीति निहारकैं, कीजे आप समान ॥१॥

७३—अथ अहिच्छितपार्श्वनाथस्तोत्र ।

जोगीरासेकी चालमें ।

वंदों श्रीपारसपदपंकज, पंच परम गुरु ध्याऊँ । शारद-माय नमो मनवचतन, गुरु गौतम शिर नाऊँ ॥ एक समय श्रीपारस जिनवर वन तिष्ठे वैरागी । बाह्याभ्यंतर परिगह

त्यागे आतमसों लव लागी ॥ १ ॥ कल्पद्रुमसम प्रभुतन सोहै, करपल्लव तनसाखा। अविचल आतमध्यान पगे प्रभु, इकचित मन थिर राखा ॥ माता-तात कमठचर पापी, तपसी तप करि मूवो। अज्ञानी अज्ञान तपस्या-चल करि सो सुर हूवो ॥ २ ॥ मारग जात विमान रह्यो थिर, कोप अधिक मन ठान्यो। देखत ध्यानारूढ जिनेश्वर, शत्रु आपनो मान्यो ॥ भीषणरूप भयानक दृग कर, अरुणवरण तन कांपै। मूसलधारासम जल छोड़ै, अधर डशततल चांपै ॥३॥ अति अँधियार भयानक निशि अति, गर्जै घटा घनघोरै। चपला चपल चमकती चहुँदिशि धीरन धीरज छोरै ॥ शब्द भयंकर करत असुर गण, अग्निजाल मुख-छोड़ै। पवन प्रचंड चलाय प्रलयवत, द्रुमगण तृणसम तोड़ै ॥४॥ पवन प्रचंड मूसलजलधारा, निशि अति ही अँधियारी। दामिनिदमक चिक्कार पिसाचन, वन कीनो भयकारी ॥ अविचल धीर गँभीर जिनेश्वर, थिर आसन वन ठाढे। पवनपरीषहसों नहिं कांपै सुरगिरि सम मन गाढे ॥ ५ ॥ प्रभुके पुण्यप्रतापपवनवश, फणपति आसन कंप्यो। अति भयभीत विलोकि चहूंदिशि, चकित ह्वै मन जंप्यो ॥ जान्यो प्रभु उपसर्ग अवधिबल पद्मावतिजुत धायो। फलको छत्र कियो प्रभुके शिर, सर्वारिष्ट नशायो ॥ ६ ॥ फलपतिकृत उपसर्गनिवारण, देखि असुर दुठ भाग्यो। लोकालोक विलोकन प्रभुकै, तुरतहिं केवल जाग्यो ॥ समवशरनकी

रचना कारण, सुरपति आज्ञा दीनी। मणिमुक्ता हीरा-कंचनमय, धनपति रचना कीनी॥७॥ तीनों कोट रचे मणिमंडित, धूलीसाल बनाई। गोपुर तुंग अनूप विराजै, मणिमय गहरी खाई॥ सरवर सजल मनोहर सोहैं, वन उप-वनकी शोभा। वापी विविध विचित्र विलोकत, सुरनर खगमन लोभा॥८॥ खेवैं देव गलिनमैं घटभरि धूपसुगंध सुहाई। मंद सुगंध मतापव्वनवश, दशहूं दिशिमैं छाई॥ गरुड़ादिकके चिह्न-अलंकृत धुज चहुँओर विराजैं। तोरन-वंदनवारी सोहैं, नवनिधिकी छवि छाजै॥९॥ देवीदेव खड़े दरवानी, देखि बहुत सुख पावै। सम्यकवंत महाश्रद्धानी, भविसों प्रीति बढावै॥ तीन कोटिके मध्य जिनेश्वर, गंध-कुटी सुखदाई। अंतरीक्षसिंहासनऊपर, राजैं त्रिभुवनराई॥१०॥ मणिमय तीन सिंहासन सोभा, वरणत पार न पाऊं। प्रभुके चरणकमलतल सोभैं, मनमोदित शिर नाऊं॥ चंद्र-कांतिसमदीप्ति मनोहर, तीन छत्रछवि आखी। तीनभुवन-ईश्वरताके हैं, मानों वे सब साखी॥ दुंदुभि शब्द गहिर अति बाजैं, उपमा बरणी न जाई। तीनभुवन जीवन प्रति भाखैं, जयघोषण सुखदाई॥ कलपतरूवर पुष्प सुगंधित, गंधोदककी वर्षा। देवीदेव करैं निशवासर, भविजीवनमन हर्षा॥१२॥ तरु अशोककी उपमा वरणत, भविजन पार न पावैं। रोग वियोगदुखीजन दर्शत, तुरतहि शोक नशावैं। कुंदपुहुपसम श्वेत मनोहर, चौसठि चमर ढुराहीं। मानों

निरमल सुरगिरिके तट, झरना झमकि झराहीं ॥१३॥ प्रभु-तन-श्रीभामंडलकी द्युति, अद्भुत तेज विराजैं। जाकी दीप्ति मनोहर आगैं, कोटि दिवाकर लाजैं॥ दिव्य वचन सब भाषा गर्भित, खिरहिं त्रिकाल सुवानी। 'आसा' आस करै सो पूरण, श्रीपारस सुखदानी ॥१४॥ सुर नर जिय तिरजंच घनेरे, जिनवंदन चित आनैं। वैरभावपरिहार निरं-तर प्रीति परस्पर ठानैं॥ दशहूं दिश निरमल अति दीखैं, भयो है शोभ घनेरा। स्वच्छसरोवरजलकर पूरे, वृक्ष फरे चहुँ फेरा॥ साली आदिक खेती चहुँदिश, भई स्वमेव घनेरी। जीवनवध नहिं होय कदाचित, यह अतिशय प्रभु-केरी। नख अरु केश बढै नहिं प्रभुके, नहिं नैनन टमकारे। दर्पणवत प्रभुको तन दीपै, आनन चार निहारे॥ १६॥ इन्द्र नरेन्द्र धनेन्द्र सबै मिलि, धर्मामृत अभिलाषी। गण-धरपदशिरनाय सुरासुर, प्रभुकी थुति अतिलाषी ॥ दीन-दयाल कृपाल दयानिधि, त्रिषावंत भवि चीन्हें। धर्मामृत वर्षाय जिनेश्वर, तोषित बहुविध कीन्हें॥ १७॥ आरज-खंडविहार जिनेश्वर, कीनो भविहितकारी। धर्मचक्र आगैनि चलै प्रभु, केवल महिमा भारी॥ पंद्रह पांति कमल पंद्रह जुग सुंदर हेम सम्हारे। अंतरीछ डग सहित, चलै प्रभु चरणांबुजतल धारे॥ १८॥ मिटि उपसर्ग भये प्रभु केवलि, भूमि पवित्र सुहाई। सो अहिक्षेत्र थप्यो सुरनर मिल, पूजककों सुखदाई॥ नाम लेत सब विघन विनाशैं

संकट क्षणमें चूरै। वंदन करत बढै सुख संपति, सुमिरत आसा पूरै ॥ १९ ॥ जो अहिक्षेत्र विधान पढै नित, अथवा गाय सुनावै। श्रीजिनभक्ति धरै मनमें दिढ, मनवांछित फल पावै ॥ जुगल वेद वसु एक अंक गणि, बुधजन वत्सर जान्यो। मारग शुक्ल दशैं रविवासर, 'आसाराम' बखान्यो ॥ २० ॥ समाप्त ॥

७४–मंगलाष्टकस्तोत्र।

श्रीमन्नम्रसुरासुरेंद्रमुकुटप्रद्योतरत्नप्रभा-भास्वत्पादनखेंदवः प्रवचनांभोधींदवः स्थायिनः। ये सर्वे जिनसिद्धसूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः स्तुत्या योगिजनैश्च पंचगुरवः कुर्वंतु ते मंगलम् ॥१॥ सम्यग्दर्शनबोधवृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं मुक्तिश्रीनगराधिनाथजिनपत्युक्तोपवर्गप्रदः। धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्र्यालयं, प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वंतु ते मंगलं ॥२॥ नाभेयादिजिनाधिपास्त्रिभुवनख्याताश्चतुर्विंशति श्रीमंतो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश। ये विष्णुप्रतिविष्णुलांगलधराः सप्तोत्तराः विंशतिस्त्रैकाल्ये प्रथितांस्त्रिषष्टिपुरुषाः कुर्वंतु ते मंगलं ॥३॥ देव्योष्टौ च जयादिका द्विगुणिता विद्यादिका देवताः श्रीतीर्थंकरमातृकाश्च जनका यक्षाश्च यक्ष्यस्तथा। द्वात्रिंशत्त्रिदशाधिपास्तिथिसुरा दिक्कन्यकाश्चाष्टधा दिक्पाला दश चैत्यमी सुरगणाः कुर्वंतु ते मंगलं ॥४॥ ये सर्वौषधऋद्धयः सुतपसो वृद्धिं गताः पंच ये ये चाष्टांगमहानिमित्तिकुशला येष्टाविधाश्चार-

णाः । पंचज्ञानधरास्त्रयोपि बलिनो ये बुद्धिऋद्धीश्वराः । सप्तैते सकलार्चिता गणभृतः कुर्वंतु ते मंगलं ॥५॥ कैलासे वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरे चंपायां वसुपूज्यसज्जिनपतेः संमेदशैलेऽर्हतां । शेषाणामपि चोर्जयंत शिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो । निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वंतु ते मंगलं ॥६॥ ज्योतिर्व्यंतरभावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ तथा जंबूशाल्मलिचैत्यशाखिषु तथा वक्षाररूप्याद्रिषु । इष्वाकारगिरौ च कुंडलनगे द्वीपे च नंदीश्वरे शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वंतु ते मंगलं ॥७॥ यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक् । यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा संभाविनः स्वर्गिभिः कल्याणानि च तानि पंच सततं कुर्वंतु ते मंगलं ॥८॥

इत्थं श्रीजिनमंगलाष्टकमिदं सौभाग्यसंपत्प्रदं कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणामुषः । ये श्रृण्वंति पठंति तैश्च सुजनैर्धर्मार्थकामान्विता लक्ष्मीराश्रयते व्यपायरहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि ॥११॥ ॥ इति मंगलाष्टकं समाप्तं ॥

७५–मंगलाष्टकस्तोत्र भाषा

कवित्त–संघसहित श्रीकुंदकुंदगुरु, वंदनहेत गये गिरनार । वाद परचो तहँ संशयमतिसों, साक्षी वदी अंबिकाकार ॥ 'सत्य' पंथ निरग्रंथ दिगंबर, कही सुरी तहँ प्रगट पुकार । सो गुरुदेव वसौ उर मेरे, विघनहरण मंगल करतार ॥ १ ॥ स्वामि समंतभद्र मुनिवरसों, शिवकोटी हठ कियो अपार । वंदन

करो शंभुपिंडीको, तब गुरु रच्यो स्वयंभू भार ॥ वंदन करत पिंडिका फाटी, प्रगट भये जिन चंद्र उदार । सो०॥२॥ श्रीअकलंकदेव मुनिवरसों, वाद रच्यौ जहँ बौद्ध विचार। तारादेवी घटमें थापी, पटके ओट करत उच्चार ॥ जीत्यो स्याद्वादबल मुनिवर, बौद्धबोध तारामद टार । सो०॥ ३ ॥ श्रीमत विद्यानंदि जबै, श्रीदेवागमथुति सुनी सुधार । अर्थ-हेत पहुंच्यो जिनमंदिर, मिल्यो अर्थ तहँ सुखदातार ॥ तब व्रत परमदिगम्बरको धर, परमतको कीनों परिहार । सो० ॥४॥ श्रीमत मानतुंग मुनिवरपर-भूप कोप जब कियौ गँवार। बंद कियो तालोंमें तबही, भक्तामर गुरु रच्यौ उदार ॥ चक्रेश्वरी प्रगट तब ह्वैकै,बंधन काट कियो जयकार ॥सो०॥५॥ श्रीमत वादिराज मुनिवरसौं, कह्यो कुष्टि भूपति जिहँ वार ॥ श्रावक सेठ कह्यो तिँह अवसर, मेरे गुरु कंचन तनधार ॥ तब ही एकीभाव रच्यो गुरु,तन सुवरणदुति भयौ अपार ।सो० ॥६॥ श्रीमत कुमुदचन्द्र मुनिवरसों, वाद परयो जहँ सभा मँझार । तब ही श्रीकल्यानधामथुति, श्रीगुर रचना रची अपार ॥ तब प्रतिमा श्रीपार्श्वनाथकी, प्रगट भई त्रिभुवन जयकार । सो०॥७॥ श्रीमत अभयचन्द्र गुरुसों जब, दिल्ली-पति इमि कही पुकार । कै तुम मोहि दिखावहु अतिशय, कै पकरौ मेरो मत सार ॥ तब गुरु प्रगट अलौकिक अतिशय, तुरत हरयो ताको मदभार ।

दोहा—विघन हरण मंगल करण, वांछित फलदातार ।
'वृन्दावन' अष्टक रच्यो, करौ कंठ सुखकार ॥

चतुर्थ अध्याय।

नित्यपूजा संग्रह।

७६—जिनेन्द्र पंचकल्याणक।

पणविवि पंच परमगुरु, गुरुजिनसासनो। सकलसिद्धिदातार सु, विघनाविनासनो॥ सारद अरु गुरु गौतम, सुमति प्रकासनो॥ मंगलकर चउ-संघहिं, पापपणासनो॥ पापहि पणासन गुणहिं गरुआ, दोष अष्टादश-रहिउ। धरि-ध्यान करमविनासि केवल-ज्ञान अविचल जिन लहिउ॥ प्रभु पंचकल्याणक विराजित, सकल सुरनर ध्यावहीं। त्रैलोक्यनाथ सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं॥१॥

१। गर्भकल्याणक।

जाके गरभकल्याणक, धनपति आइयो। अवधिज्ञान-परवान सु, इंद्र पठाइयो॥ रचि नव बारह जोजन, नयरि सुहावनी। कनकरयणमणिमंडित, मंदिर अति बनी॥ अति बनी पौरि पगार परिखा, सुवन उपवन सोहये। नर नारि सुंदर चतुरभेख सु, देख जनमन मोहये॥ तहं जनकगृह छहमास प्रथमहिं, रतनधारा वरसियो। पुनि रुचिकवासिनि जननि-सेवा, करहिं सब विधि हरसियो॥ सुरकुंजरसम कुंजर, धवल धुरंधरो। केहरि केशरशोभित, नख सिखसुंदरो॥ कमलाकलस-न्हवन, दुइदाम सुहावनी। रविससि-मंडल मधुर, मीनजुग पावनी॥ पावनिकनक घट जुगम पूरन, कमलकलित सरोवरो। कल्लोलमालाकुलितसागर,

सिंहपीठ मनोहरो ॥ रमणीक अमरविमान फणिपति-भुवन रवि छवि छाजई । रुचि रतनरासि दिपंत, दहन सु तेजपुंज विराजई ॥३॥ ये सखि सोरह सुपने सूती सयनहीं । देखे माय मनोहर, पच्छिम रयनहीं ॥ उठि प्रभात पिय पूछियो, अवधि प्रकाशियो । त्रिभुवनपति सुत होसी, फल तिहँ भासियो ॥ भासियो फल तिहिं चित्त दंपति परम आनंदित भये । छहमासपरि नवमास पुनि तहं, रैन दिन सुखसों गये ॥ गर्भावतार महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं । भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं ॥४॥

२ । जन्मकल्याणक ।

मतिश्रुतअवधिविराजित, जिन जब जनमियो । तिहुंलोक भयो छोभित, सुरगन भरमियो ॥ कल्पवासि घर घंट, अनाहद वज्जिया । जोतिषघर हरिनाद, सहज गल गज्जिया ॥ गज्जिया सहजहिं संख भावन, भुवन सबद सुहावने । विंतरनिलय पडु पटह बज्जहि, कहत महिमा क्यों बने ॥ कंपित सुरासन अवधिबल जिन जनम निहचै जानियो । धनराज तब गजराज माया-मयी निरमय आनियो ॥५॥ जोजन लाख गयंद, बदन सो निरमये । बदन बदन बसुदंत, दंत सर संठये ॥ सरसर-सौ पनवीस, कमलिनी छाजहीं । कमलिनि कमलिनि कमल पचीस विराजहीं ॥ राजहीं कमलिनी कमलऽठोतर सो मनोहर दल बने । दल दलहिं अपछर नटहिं नवरस, हाव भाव सुहावने ॥ मणि कनककिंकणि वर वि-

चित्र, सु अमरमंडप सोहये। घन घंट चँवर धुजा पताका, देखि त्रिभुवन मोहये ॥६॥ तिहिं करि हरि चढि आयउ, सुरपरिवारियो। पुरिहि प्रदच्छन दे त्रय, जिन जयकारियो॥ गुप्तजाय जिनजननिहिं, सुखनिद्रा रची। मायामयि सिसु राखि तौ, जिन आन्यो सची॥ आन्यो सची जिनरूप निरखत, नयन तृपित न हूजिये। तब परम हरषित हृदय हरणा सहस लोचन पूजिये। पुनि करि प्रणाम जु प्रथम इंद्र, उछंग धरि प्रभु लीनऊ। ईसान इंद्र सु चंद्र छवि सिर, छत्र प्रभुके दीनऊ ॥७॥ सनतकुमार माहेंद्र, चमर दुइ ढारहीं। सेस सक्र जयकार, सबद उचारहीं॥ उच्छवसहित चतुरविधि, सुर हरषित भये। जोजन सहस निन्यानव, गगन उलँघि गये॥ लँघिगये सुरगिरि जहां पांडुक-वन विचित्र विराजहीं। पांडुकशिला तहँ अर्द्धचंद्र समान, मणि छवि छाजहीं॥ जोजन पचास विशाल दुगुणायाम, वसु ऊंची गनी। वर अष्ट-मंगल-कनक कलसनि सिंहपीठ सुहावनी ॥८॥ रचि मणिमंडप सोभित, मध्य-सिंहासनो। थाप्यो पूरव मुख तहँ, प्रभु कमलासनो॥ बाजहिं ताल मृदंग, वेणु वीणा घने। दुंदुभि प्रमुख मधुर धुनि, अवर जु बाजने॥ बाजने बाजहिं सची सब मिलि, धवलमंगल गावहीं। पुनि करहिं नृत्य सुरांगना सब, देव कौतुक धावहीं॥ भरि छीरसागर जल जु हाथहिं, हाथ सुरगिरि ल्यावहीं। सौधर्म अरु ईशान इंद्रसु कलस लें प्रभु

न्हावहीं ॥ ९ ॥ वदन उदर अवगाह, कलसगत जानिये। एक चार वसु जोजन, मान प्रमानिये॥ सहस-अठोतर कलसा, प्रभुके सिर ढरइँ। पुनि सिंगार प्रमुख आचार सबै करइँ॥ करि प्रगट प्रभु महिमा महोच्छत्र, आनि पुनि मातहिं दये। धनपतिहिं सेवा राखि सुरपति, आप सुर-लोकहिं गये॥ जनमाभिषेक महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं। भणि'रूपचंद'सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं॥

३ तपकल्याणक।

श्रमजल रहित सरीर, सदा सब मलरहिउ। छीर वरन वर रुधिर, प्रथम आकृति लहिउ॥ प्रथम सार संहनन, सरूप विराजहीं। सहज सुगंध सुलच्छन, मंडित छाजहीं॥ छाजहिं अतुलवल परम प्रिय हित, मधुर वचन सुहावने। दस सहज अतिशय सुभग मूरति, बाललील कहावने॥ आवाल काल त्रिलोकपति मन, रुचिर उचित जु नित नये। अमरोपनीत पुनीत अनुपम, सकल भोग विभोगये॥११॥ भवतन-भोग-विरत्त, कदाचित चित्तए। धन जोवन पिय पुत्त, कलत्त अनित्तए॥ कोउ न सरन मरनदिन, दुख चहुं-गति भरयो। सुखदुख एकहि भोगत, जिय विधिवसिपरयो॥ परयो विधिवसि आन चेतन, आन जड़ जु कलेवरो। तन असुचि परतैं होय आस्रव, परिहरेतैं संवरो॥ निरजरा तप-बल होय, समकित,-विन सदा त्रिभुवन भम्यो। दुर्लभ विवेक विना न कबहूं परम धरमविषै रम्यो॥१२॥ ये प्रभु

मानंद सबको, नारि नर जे सेवता। जोजन प्रमान धरा सु-मार्जहिं, जहां मारुत देवता॥ पुनि करहिं मेघकुमार गंधोदक सुवृष्टि सुहावनी। पदकमलतर सुरखिपहिं कमलसु, धरणि ससिसोभा वनी॥१९॥ अमलगगनतल अरु दिसि, तहँ अनुहारहीं। चतुरनिकाय देवगण, जय-जयकारहीं॥ धर्मचक्र चलै आगैं, रवि जहँ लाजहीं। पुनि भृंगार-प्रमुख वसु मंगल राजहीं॥ राजहीं चौदह चारु अतिशय, देव रचित सुहावने। जिनराज केवलज्ञानमहिमा, अवर कहत कहा बनै॥ तव इद्र आय कियो महोच्छव, सभा सोभा अति बनी। धर्मोपदेश दियो तहां, उच्चरिय वानी जिनतनी॥२०॥ छुधातृषा अरु रोग, रोष असुहावने। जनम जरा अरु मरण, त्रिदोष भयावने॥ रोग सोग भय विस्मय, अरु निद्रा घनी। खेद स्वेद मद मोह, अरति चिंता गनी॥ गनिये अठारह दोष तिनकरि रहित देव निरंजनो। नव परम केवललब्धिमंडिय, सिवरमनि-मनरंजनो॥ श्रीज्ञान-कल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं। भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगतमंगल गावहीं॥२१॥

५ निर्वाणकल्याणक।

केवलदृष्टि चराचर, देख्यो जारिसो। भव्यनिप्रति उपदेस्यो जिनवर तारिसो॥ भवभयभीत भविकजन, सरणैं आइया। रत्नत्रयलच्छन सिवपंथ लगाइया॥ लगाइया पंथ जु भव्य पुनि प्रभु, तृतिय-सुकल जु पूरियो। तजि

तेरवां गुणथान जोग, अजोगपथपग धारियो ॥ पुनि चौदहें चौथे सुकलवल, वहत्तर तेरह हती। इमि घाति वसुविध कर्म पहुंच्यो, समयमें पंचमगती ॥ २२ ॥ लोकसिखर तनुवात,-वलयमहँ संठियो। धर्मद्रव्यविन गमन न जिहि आगै कियो ॥ मयनरहित मूषोदर, अंवर जारिसो। किमपि हीन निजतनुतै, भयो प्रभु तारिसो॥ तारिसो पर्जय नित्य अविचल, अर्थपर्जय छनछयी। निश्चयनयेन अनंतगुण, विवहार नय वसुगुणमयी ॥ वस्तुस्वभाव विभावविरहित, सुद्ध परिणति परिणयो। चिदरूपपरमानंदमंदिर, सिद्ध परमातम भयो ॥ २३ ॥ तनुपरमाणू दामिनिपर, सव खिर गए। रहे सेस नखकेश-रूप, जे परिणए॥ तव हरिप्रमुख चतुरविधि, सुरगण शुभसच्यो । मायामयि नख केशरहित, जिनतनुरच्यो॥ रचि अगर चंदन प्रमुख परिमल, द्रव्य जिन जयकारियो। पदपतित अगनिकुमार मुकुटानल, सुविध सँस्कारियो ॥ निर्वाणकल्याणक सु महिमा, सुनत सव सुख पावहीं। भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥२४॥ मै मतिहीन भगतिवस भावन भाइया। मंगलगीत प्रवंध, सु जिनगुण गाइया॥ जो नर सुनहिं, वखानहिं सुर धरि गावहीं। मनवांछित फल सो नर, निहचै पावहीं॥ पावहीं आठों सिद्धि नवनिधि मनप्रतीत जो लावहीं। भ्रम भाव छूटै सकल मनके, निजस्वरूप लखावहीं॥ पुनि हरहिं पातक टरहिं विघन, सु

८ ओं आं क्रौं ह्रीं ऐशान आगच्छ आगच्छ ऐशानाय स्वाहा
९ ओं आं क्रौं ह्रीं धरणींद्र आगच्छ आगच्छ धरणींद्रायस्वा०
१० ओं आं क्रौं ह्रीं सोम आगच्छ आगच्छ सोमाय स्वाहा

इति दिक्पालमंत्राः।

दध्युज्ज्वलाक्षतमनोहरपुष्पदीपैः पौत्रार्पितं प्रतिदिनं महतादरेण। त्रैलोक्यमंगलसुखानलकामदाहमारार्तिकं तवविभोरवतारयामि॥

दधि अक्षत पुष्प और दीप रकावीमें लेकर मंगल पाठ तथा अनेक वादित्रोंके साथ त्रैलोक्यनाथकी आरती उतारनी चाहिये।

यं पांडुकामलशिलागतमादिदेवमस्नापयन्सुरवराः सुरशैलमूर्ध्नि। कल्याणमीप्सुरहमक्षततोयपुष्पैः संभावयामि पुरएव तदीय बिंबं॥ ९॥

जल अक्षत पुष्पक्षेपकर श्रीकार लिखित पीठपर जिनबिंबकी स्थापना करना चाहिये।

सत्पल्लवार्चितमुखान्कलधौतरूप्यताम्रारकूठघटितान् पयसा सुपूर्णान्। संवाह्यतामिव गतांश्चतुरः समुद्रान् संस्थापयामि कलशान् जिनवेदिकांते॥ १०॥

जलपूरित सुन्दर पत्तोंसे ढके हुये सुवर्णादि धातुके चार कलश चौकी या वेदीके चारों कोनोंमें स्थापन करना चाहिये।

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमलबहुलेनामुनाचंदनेन, श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचिसदलचयैरुद्गमैरेभिरुद्धैः। हृद्यैरेभि-

निर्वेद्यैर्मखभवनमिमैर्दीपयद्भिः प्रदीपैः धूपैः प्रायोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरीशं यजामि ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं श्रीपरमदेवाय श्रीअर्हत्परमेष्ठिनेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दूरावनम्रसुरनाथकिरीटकोटीसंलग्नरत्नकिरणच्छविधूसरांघ्रि। प्रस्वदेतापमलमुक्तमपि प्रकृष्टैर्भक्त्या जलैर्जिनपतिं वसुधाभिषिंचे ॥ १२ ॥

ओं ह्रीं श्रीमतं भगवंतं कृपालसंतं वृषभादिमहावीरपर्यंत-चतुर्विंशतितीर्थंकरपरमदेवं आद्यानां आद्ये जंबूद्वीपे भरत-क्षेत्रे आर्यखंडे...नाम्नि नगरे मासानामुत्तमे मासे....मासे पक्षे...शुभदिने मुनिआर्यिका-श्रावकश्राविकाणां सकलकर्म-क्षयार्थं जलेनाभिषिंचे, नमः ॥ १३ ॥

(इसे पढ़कर श्रीजिनप्रतिमापर जलके कलशसे धारा छोड़नी चाहिये)
यहां प्रत्येक धाराके बाद 'उदक' आदि श्लोक बोलकर अर्घ चढ़ाना चाहिये

उत्कृष्टवर्णनवहेमरसाभिरामदेहप्रभावलयसंगमलुप्तदीप्तिं। धारां घृतस्य शुभगंधगुणानुमेयां वंदेर्हतां सुरभिसंस्नपनो-पयुक्तां ॥ १३ ॥

(ऊपर लिखा पूरा मंत्र पढ़कर मंत्रमें "जलेनाभिषिंचे" की जगह 'घृतेनाभिषिंचे' पढ़कर घृतके कलशसे स्नपन करना चाहिये)

संपूर्ण शारदशशांकमरीचिजालस्यंदैरिवात्मयशसामिव सुप्रवाहैः क्षीरैर्जिनाः शुचितरैरभिषिच्यमानाः संपादयंतु मम चित्तसमीहितानि ॥

(ऊपरके मंत्रमें जलेनाभिषिंचेको जगह 'क्षीरेणाभिषिंचे' पढ़कर दुग्धके कलशसे अभिषेक करना चाहिये)

दुग्धाब्धिवीचिपयसांचितफेनराशिपांडुत्वकांतिमवधीरयतामतीव। दध्नां गतां जिनपतेः प्रतिमां सुधारा संपद्यतां सपदि वांछितसिद्धये नः ॥ १५ ॥

ऊपरलिखे मंत्रमें 'जलेन' की जगह 'दध्ना' पढ़कर दधिके कलशसे अभिषेक करना चाहिये।

भक्त्या ललाटतटदेशनिवेशितोच्चैः हस्तैश्च्युताः सुरवराऽसुरमर्त्यनाथैः। तत्कालपीलितमहेक्षुरसस्य धारा सद्यः पुनातु जिनबिंबगतैव युष्मान् ॥ १६ ॥

ऊपरके मंत्रमें 'जलेन' की जगह 'इक्षुरसेन' पढ़कर इक्षुरसके कलशसे अभिषेक करना चाहिये।

संस्नापितस्य घृतदुग्धदधीक्षुवाहैः सर्वाभिरौषधिभिरर्हत उज्ज्वलाभिः। उद्वर्तितस्य विदधाम्यभिषेकमेलाकालेयकुंकुमरसोत्कटवारिपूरैः ॥ १७ ॥

(ऊपरके मंत्रमें 'जलेन' की जगह 'सर्वौषधेन' पढ़कर सर्वौषधीके कलशसे अभिषेक करना चाहिये)

द्रव्यैरनल्पघनसारचतुःसमाद्यैरामोदवासितसमस्तदिगंतरालैः। मिश्रीकृतेन पयसा जिनपुंगवानां त्रैलोक्यपावनमहं स्नपनं करोमि ॥ १८ ॥

(ऊपरके मंत्रमें 'जलेन' की जगह 'सुगंधजलेन' पढ़कर केशर कर्पूरादि सुगंधित पदार्थोंसे बनाये हुये जलसे स्नपन करना चाहिये।

इष्टैर्मनोरथशतैरिव भव्यपुंसां पूर्णैः सुवर्णकलशैर्निखिलैर्वसानैः। संसारसागरविलंघनहेतुसेतुमाप्लावये त्रिभुवनैकपतिं जिनेंद्रं ॥ १९ ॥

(ऊपर लिखे मंत्रसे बचे हुये समस्त कलशोंसे अभिषेक करना चाहिये)

मुक्तिश्रीवनिताकरोदकमिदं पुण्यांकुरोत्पादकं। नागेंद्रत्रिदशेंद्रचक्रपदवीराज्याभिषेकोदकं॥ सम्यग्ज्ञानचरित्रदर्शनलतासंवृद्धिसंपादकं। कीर्तिश्रीजयसाधकं तव जिन! स्नानस्य गंधोदकं॥

(इस श्लोकको पढ़कर गंधोदक अपने अंगमें लगाना चाहिये)

इतिश्रीलघुअभिषेकविधिः समाप्तः॥

७८-अथ लघुंपचामृताभिषेकभाषा।

घृत दुग्ध आदिसे पंचामृत अभिषेक करना हो तो यह पाठ बोलना अथवा पंचामृतके अभावमें सिर्फ जलधारासे ही काम लेना।

श्रीजिनवर चौवीस वर, कुनयध्वांतहर भान।
अमितवीर्यदृगबोधसुख, युत तिष्ठौ इहि थान॥

नाराचछंद—गिरीश शीस पांडुपै, सचीश ईश थापियो। महोत्सवो अनंदकंदको, सबै तहां कियो॥ हमैं सो शक्ति नाहिं, व्यक्त देखि हेतु आपना। यहां करैं जिनेंदचंद्रकी सुबिंब थापना॥ २॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करके श्रीवर्णपर जिनबिंबकी स्थापना करना)

सुन्दरीछंद—कनकमणिमय कुंभ सुहावने। हरि सुछीर भरे अति पावने। हम सुवासित नीर यहां भरै। जगतपावन-पांय तरैं धरै॥ ३॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करके वेदीके कोनोंमें चार कलशोंकी स्थापना)

हरिगीतिका छंद—शुद्धोपयोग समान भ्रमहर, परम सौरभ पावनो। आकृष्टभृंगसमूह गंग समुद्भवो अति भाव-

नो ॥ मणिकनककुंभ निकुंभकिल्विष, विमल शीतल भरि धरौं। श्रम स्वेद मल निरवार जिन त्रय धारदे पांयनि परौं॥४॥

(मंत्रसे शुद्धजलकी तीन धारा जिनबिंबपर छोड़ना)

अति मधुर जिनधुनि सम सुप्राणित प्राणिवर्ग सुभावसों बुधचित्तसम हरिचित्त नित्त, सुमिष्ट इष्ट उछावसों। तत्काल इक्षुसमुत्थप्रासुक रतनकुंभविषै भरौं। यमत्रासतापनिचार जिन त्रयधार दे पांयनि परौं ॥ ५ ॥

(ऊपरका मंत्र पढ़ इक्षुरसकी धारा देना)

निष्टप्तक्षिप्तसुवर्णमददमनीय ज्यों विधि जैनकी। आयुप्रदा बलबुद्धिदा रक्षा, सु यौं जियसैनकी ॥ तत्कालमंथित, क्षीर उत्थित, प्राज्य मणिझारी भरौ। दीजै अतुलबल मोहि जिन, त्रयधार दे पांयनि परौ ॥ ६ ॥

(घृतरसकी धारा देना)

शरदभ्र शुभ्र सुहाटकद्युति, सुरभि पावन सोहनो। क्लीवत्वहर बल धरन पूरन, पयसकल मनमोहनो ॥ कृतउष्ण गोथनतै समाहृत घटजटितमणिमें भरौ। दुर्बल दशा मो मेट जिन त्रयधार दे पांयनि परौं ॥ ७ ॥

(दुग्धकी धारा)

वर विशदजैनाचार्य ज्यों मधुराम्लकर्कशताधरैं। शुचिकर रसिक मंथन विमंथन नेह दोनों अनुसरैं ॥ गोदधि सुमणिभृंगार पूरन लायकर आगै धरौं। दुखदोष कोष निवार जिन त्रयधार दे पांयनि परौ ॥ ८ ॥

(दहीकी धारा)

सर्वौंषधी मिलायके, भरि कंचन भृंगार।
जजौं चरण त्रयधार दै, तारतार भवतार ॥९॥

(सर्वौंषधिकी धारा)

७९–अथ जलाभिषेक वा प्रक्षाल करनेका पाठ

प्रक्षाल करते समय बोलना।

जय जय भगवंते सदा, मंगल मूल महान।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, नमौं जोरि जुगपान॥

ढाल मंगलकी छंद अडिल्ल और गीता।

श्रीजिन जगमें ऐसो, को बुधवंत जू। जो तुम गुण वरननि करि पावै अंत जू॥ इन्द्रादिक सुर चार ज्ञानधारी मुनी। कहि न सकै तुम गुणगण हे त्रिभुवनधनी॥ अनुपम अमित तुमगणनिवारिध, ज्यों अलोकाकाश है। किमि धरैं हम उर कोषमें सो अकथगुणमणिराश है॥ पै जिनप्रयोजन सिद्धिकी तुम नाममें ही शक्ति है। यह चित्तमें सरधान यातै नाम हीमें भक्ति है॥१॥ ज्ञानावरणी दर्शनआवरणी भने। कर्ममोहनी अंतराय चारों हने॥ लोकालोक विलोक्यो केवलज्ञानमें। इन्द्रादिकके मुकुट नये सुरथानमें॥ तब इन्द्र जान्यो अवधितैं, उठि सुरनयुत बंदत भयो। तुम पुन्यको प्रेरचो हरी है मुदित धनपतिसौं चयो

अब वेगि जाय रचौ समवसृति सफल सुरपदको करौ।
साक्षात् श्रीअरहंतके दर्शन करौ कलमष हरौं ॥२॥ ऐसे वचन सुने सुरपतिके घनपती। चल आयो ततकाल मोद धारै अती॥ वीतराग छवि देखि शब्द जय जय चयौ। दै परदच्छिना वार वार वंदत भयो॥ अति भक्ति भीनो नम्रचित ह्वै समवशरण रच्यौ सही। ताकी अनूपम शुभगतीको, कहन समरथ कोउ नही॥ प्राकार तोरण सभामंडप कनकमणिमय छाजही। नगजडित गंधकुटी मनोहर मध्यभाग विराजही ॥३॥ सिंहासन तामध्य बन्यौं अदभुत दिपै। तापर वारिज रच्यो प्रभा दिनकर छिपै॥ तीनछत्र सिर शोभित चौसठ चमरजी। महाभक्तियुत ढोरत हैं तहां अमरजी॥ प्रभु तरन तारन कमल ऊपर अंतरीक्ष विराजिया। यह वीतरागदशा प्रतच्छ विलोकि भविजन सुख लिया॥ मुनि आदि द्वादश सभाके भवि जीव मस्तक नायकैं। बहुभांति वारंवार पूजे, नमैं गुणगण गायकैं ॥४॥ परमौदारिक दिव्य देह पावन सही। क्षुधा तृषा चिंता भय गद दूषण नही। जन्म जरा मृति अरति शोक विस्मय नसे। राग रोष निद्रा मद मोह सबै खसे॥ श्रमविना श्रमजलरहित पावन अमल ज्योतिस्वरूपजी। शरणागतनिको अशुचिता हरि, करत विमल अनूपजी॥ ऐसे प्रभूकी शांतिमुद्राको न्हवन जलतैं करैं। 'जस' भक्तिवश मन उक्तितैं हम, भानु ढिग दीपक धरैं ॥५॥ तुमतो सहज पवित्र यही निश्चय भयो।

तुम पवित्रताहेत नहीं मज्जन ठयो ॥ मैं मलीन रागादिक मलतैं ह्वै रह्यो । महामलिन तनमें वसुविधिवश दुख सह्यो ॥ वीत्यो अनंतौ काल यह, मेरी अशुचिता ना गई । तिस अशुचिताहर एक तुम ही भरहु बांछा चित ठई ॥ अब अष्टकर्म विनाश सब मल रोषरागातिक हरौ। तनरूप कारागेहतै उद्धार शिववासा करौ ॥६॥ मैं जानत तुम अष्टकर्म हरि शिव गये । आवागमन विमुक्त रागवर्जित भये ॥ पर तथापि मेरो मनरथ पूरत सही। नयप्रमानतैं जानि महा साता लही ॥ पापाचरण तजि न्हवन करता चित्तमें ऐसे धरूं। साक्षात् श्रीअरहंतका मानों न्हवन परसन करूं ॥ ऐसे विमल परिणाम होते अशुभ नसि शुभबंधतैं । विधि अशुभ नसि शुभबंधतैं ह्वै शर्म सब विधि तासतैं ॥७॥ पावन मेरे नयन, भये तुम दरसतैं । पावन पान भये तुम चरननि परसतैं ॥ पावन मन ह्वै गयो तिहारे ध्यानतै। पावन रसना मानी, तुम गुण गानतै ॥ पावन भई परजाय मेरी, भयौ मैं पूरणधनी । मैं शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी, पूर्णभक्ति नहीं बनी ॥ धन्य धन्य ते बड़भागि भवि तिन नीव शिवघरकी धरी । वर क्षीरसागर आदि जलमणि कुंभभरि भक्ती करी ॥८॥ विघनसघन वनदाहन-दहन प्रचंड हो । मोहमहातमदलन प्रबल मारतंड हो ॥ ब्रह्मा विष्णु महेश, आदि संज्ञा धरो । जगविजयी यमराज नाश ताको करो ॥ आनंदकारण दुखनिवारण, परममंगलमय सही। मोसो पतित नहिं और तुमसो, पतित तार

सुन्यौ नहीं ॥ चिंतामणी पारस कलपतरु, एकभव सुखकार ही। तुम भक्तिनवका जे चढै ते, भये भवदधि पार ही ॥९॥
दोहा—तुम भविदधितैं तरि गये, भये निकल अविकार।
तारतम्य इस भक्तिको, हमें उतारो पार ॥१०॥ इति ॥

८०—विनयपाठ दोहावली।

इहिविधि ठाडो होयके, प्रथम पढै जो पाठ। धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जु आठ ॥१॥ अनँत चतुष्टयके धनी, तुमही हो सिरताज ॥ मुक्ति वधूके कंथ तुम, तीन भुवनके राज ॥२॥ तिहुं जगकी पीड़ाहरन, भवदधि शोषणहार, ज्ञायक हो तुम विश्वके, शिवसुखके करतार ॥३॥ हरता अघअंधियारके, करता धर्मप्रकाश। थिरतापददातार हो, धरता निजगुण रास ॥४॥ धर्मामृत उर जलधिसों, ज्ञानभानु तुम रूप। तुमरे चरणसरोजको, नावत तिहुं जग भूप ॥५॥ मैं वंदौं जिनदेवको, कर अति निरमल भाव। कर्मबंधके छेदने, और न कछू उपाव ॥६॥ भविजनकों भवकूपतैं, तुमही काढनहार॥ दीनदयाल अनाथपति आतमगुणभंडार ॥७॥ चिदानंद निर्मल कियो, धोय कर्मरज मैल ॥ सरल करी या जगतमें भविजनको शिवगैल ॥८॥ तुमपदपंकज पूजतैं, विघ्न रोग टर जाय॥ शत्रु मित्रताकों धरै, विष निरविषता थाय ॥९॥ चक्रीखगधरइंद्रपद मिलैं आपतै आप। अनुक्रमकर शिवपद लहै, नेम सकल हनि पाय ॥१०॥ तुम विन मैं व्याकुल

भयो, जैसें जलविन मीन। जन्मजरा मेरी हरो, करो मोहि स्त्राधीन॥११॥ पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव। अंजनसे तारे कुधी, जय जय जय जिनदेव ॥१२॥ थकी नाव भवदधिविषै, तुम प्रभु पार करेय । खेवटिया तुम हो प्रभू, जय जय जय जिनदेव॥१३॥ रागसहित जगमें रुल्यो, मिले सरागी देव। वीतराग भेटयो अबैं, मेटो राग कुटेव ॥१४॥ कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यंच अज्ञान। आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान॥१५॥ तुमको पूजैं सुरपती, अहिपति नरपति-देव। धन्य भाग्य मेरो भयो, करनलग्यो तुम सब सेव ॥१६॥ अशरणके तुम शरण हो, निराधार आधार ॥ मै डूबत भवसिंधुमें खेओ लगाओ पार ॥ इंद्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान। अपनो विरद निहारिकै, कीजे आप समान ॥१८॥ तुमरी नेक सुदृष्टितै, जग उतरत है पार। हाहा डूब्यो जात हों, नेक निहार निकार ॥१९॥ जो मै कहूहूं औरसों तो न मिटै उरझार। मेरी तो तोसों बनी, तामें करौं मकार ॥ २० ॥ बंदों पाचौं परमगुरु, सुरगुरु वंदत जास। विघन हरन मंगल करन, पूरन परम प्रकाश ॥२१॥

८१—देवशास्त्रगुरुपूजा संस्कृत।

ओं जय जय जय। नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आयरीयाण। णमो उवज्झायाणं, णमो लोये सव्वसाहूणं ॥१॥ ओं ह्रीं अनादि-

मूलमंत्रेभ्यो नमः। (पुष्पांजलि क्षेपण करना) चत्तारि मंगलं–अरहंतमंगलं सिद्धमंगलं साहूमंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा–अरहंतलोगुत्तमा सिद्धलोगुत्तमा, साहूलोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मोलोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि–अरहंतसरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहुसरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मोसरणं पव्वज्जामि ॥ ओं नमोऽर्हते स्वाहा।

(यहां पुष्पांजलि क्षेपण करना)

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा। ध्यायेत्पंचनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१॥ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यंतरे शुचिः। अपराजितमंत्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः। मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥३॥ एसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो। मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलं ॥४॥ अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः। सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहं ॥५॥ कर्माष्टकविनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मीनिकेतनं। सम्यक्त्वादिगुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहं ॥६॥ विघ्नौघाः प्रलयं यांति शाकिनी भूतपन्नगाः। विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥७॥ (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

(यदि अवकाश हो, तो यहांपर सहस्रनाम पढ़कर दश अर्घ देना चाहिये। नहीं तो नीचे लिखा श्लोक पढ़कर एक अर्घ चढ़ाना चाहिये।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः। धवल-

मंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिननाथ महं यजे ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं श्रीभगवज्जिनसहस्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्घपामीति स्वाहा।

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवंद्य जगत्त्रयेशं स्याद्वादनायकमनंत-चतुष्टयार्हं। श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतुर्जैनेन्द्रयज्ञविधि-रेष मयाऽभ्यधायि ॥८॥ स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुंगवाय, स्वस्तिस्वभावमहिमोदयसुस्थिताय, स्वस्ति प्रकाशसह-जोर्ज्जितदृङ्मयाय, स्वस्ति प्रसन्नललिताद्भुतवैभवाय ॥ ९ ॥ स्वस्त्युच्छलद्विमलबोधसुधाप्लवाय, स्वस्ति स्वभावपरभावविभासकाय, स्वस्ति त्रिलोकविततैकचिदु-द्गमाय, स्वस्ति त्रिकालसकलायतविस्तृताय ॥१०॥ द्रव्य-स्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं, भावस्य शुद्धिमधिकामधिगं-तुकामः। आलंबनानि विविधान्यवलंब्यवल्गन्, भूतार्थयज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञं ॥११॥ अर्हत्पुराणपुरुषोत्तमपावनानि, वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेकएव। अस्मिन् ज्वलद्विमलकेव-बोधवह्नौ, पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करना)

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः। श्रीसं-भवः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनंदनः। श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः। श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः। श्रीश्रेयांसः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः। श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनंतः। श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशां-तिः। श्रीकुंथुःस्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः। श्रीमल्लिः

स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः। श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः। श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः।

(पुष्पांजलि क्षेपण)

नित्याप्रकंपाद्भुतकेवलौघाः स्फुरन्मनःपर्यय शुद्धबोधाः। दिव्यावधिज्ञानबलप्रबोधाः स्वस्तिकक्रियासुः परमर्षयोनः॥

यहां व आगेभी प्रत्येक श्लोकके अंतमें पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये

कोष्ठस्थधान्योपममेकबीजं संभिन्नसं श्रोतृपदानुसारि। चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः स्वस्ति क्रियासु परमर्षयो नः ॥२॥ संस्पर्शन संश्रवणं च दूरादास्वादनघ्राणविलोकनानि। दिव्यान्मतिज्ञानबलाद्वहंतः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः। प्रज्ञाप्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्वैः। प्रवादिनोऽष्टांगनिमित्तविज्ञाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः। जंघावलिश्रेणिफलांबुतंतुप्रसूनबीजांकुरचारणाह्वाः। नभोंऽगणस्वैरविहारिणश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः। अणिम्नि दक्षाः कुशलाः महिम्नि लघिम्नि शक्ता कृतिनो गरिम्णि। मनोवपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ६ ॥ सकामरूपित्ववशित्वमैश्यं प्राकाम्यमंतर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः। तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयोः नः ॥७॥ दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं घोरं तपो घोरपराक्रमस्थः। ब्रह्मापरं घोरगुणाश्चरंतः स्वस्ति क्रियासु परमर्षयो नः ॥ ८ ॥ आमर्षसर्वौषधयस्तथाशीर्विषंविषादृष्टिविषंविषाश्च। सखिल्ल विड्जल्ल-

मलौषधीशाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥९॥ क्षीरं स्रवंतोऽत्र घृतं स्रवंतो मधुस्रवंतोऽप्यमृतं स्रवंतः। अक्षीण-संवासमहानसाश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥१०॥

इति परमर्षिस्वस्तिमंगलविधानं।

सार्वः सर्वज्ञनाथः सकलतनुभृतां पापसंतापहर्ता, त्रैलोक्याक्रांतकीर्तिः क्षतमदनरिपुर्घातिकर्मप्रणाशः। श्रीमान्निर्वाणसंपद्वरयुवतिकरालीढकंठः सुकंठैर्देवेंद्रैर्वंद्यपादो जयति जिनपतिः प्राप्तकल्याणपूजः ॥१॥

जय जय जय श्रीसत्कांतिप्रभो जगतां पते!
जय जय भवानेव स्वामी भवांभसि मज्जतां।
जय जय महा मोहध्वांतप्रभातकृतेऽर्चनं।
जय जय जिनेश त्वं नाथ प्रसीद करोम्यहम् ॥२॥

ओं ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर। संवौषट् (इत्याह्वानम्) ओं ह्रीं भगवज्जिनेंद्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः (इति स्थापनम्) ओं ह्रीं भगवज्जिनेंद्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट् (इति सन्निधिकरणं)

देवि श्रीश्रुतदेवते भगवति! त्वत्पादपंकेरुह,
द्वंद्वे यामि शिलीमुखित्वमपरं भक्त्यामया प्रार्थ्यते।
मातश्चेतसि तिष्ठ मे जिनमुखोद्भूते सदा त्राहि मां
दृग्दानेन मयि प्रसीद भवतीं संपूजयामोऽधुना ॥३॥

ओं ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशांगश्रुतज्ञान! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। ओं ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशांगश्रुतज्ञान! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशांगश्रुतज्ञान! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

संपूजयामि पूज्यस्य पादपद्मयुगं गुरोः ।
तपःप्राप्तप्रतिष्ठस्य गरिष्ठस्य महात्मनः ॥४॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।
ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः । ओं
ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

देवेंद्रनागेन्द्रनरेन्द्रवंद्यान् शुंभत्पदान् शोभितसारवर्णान् ।
दुग्धाब्धिसंस्पर्धिगुणैर्जलौघैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥१॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्ममृत्युविनाशनायजलं निर्वपामीति० ॥

ताम्यत्त्रिलोकोदरमध्यवर्तिसमस्तसत्त्वाहितहारिवाक्यान् ।
श्रीचंदनैर्गंधविलुब्धभृंगैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥२॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति० ॥

अपारसंसारमहासमुद्रप्रोत्तारणे प्राज्यतरीन् सुभक्त्या ।
दीर्घाक्षतांगैर्धवलाक्षतौघैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥३॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥

विनीतभव्याब्जविबोधसूर्यान्वर्यान् सुचर्याकथनैकधुर्यान् ।
कुंदारविंदप्रमुखैः प्रसूनैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥४॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥

कुदर्पकंदर्पविसर्प्पसर्प्पप्रसह्यनिर्णाशनवैनतेयान् ।
प्राज्याज्यसारैश्चरुभी रसाढ्यैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

ध्वस्तोद्यमांधीकृतविश्वविश्वमोहांधकारप्रतिघातदीपान् ।

दीपैः कनत्कांचनभाजनस्थैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥६॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति० ॥

दुष्टाष्टकर्मेन्धनपुष्टजालसंधूपने भासुरधूमकेतून् ।
धूपैर्विधूतान्यसुगंधगंधैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेहं ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥

क्षुभ्यद्विलुभ्यन्मनसाप्यगम्यान् कुवादिवादाऽस्खलितप्रभा-वान्। फलैरलं मोक्षफलाभिसारैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेहं॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामि० ॥

सद्वारिगंधाक्षतपुष्पजातैर्नैवेद्यदीपामलधूपधूपैः । फलै-र्विचित्रैर्घनपुण्ययोगान् जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेहं ॥९॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति० ॥

ये पूजां जिननाथशास्त्रयमिनां भक्त्या सदा कुर्वते,
त्रैसंध्यं सुविचित्रकाव्यरचनामुच्चरयंतोनराः ।
पुण्याढ्या मुनिराजकीर्तिसहिता भूत्वा तपोभूषणा-
स्ते भव्याः सकलावबोधरुचिरां सिद्धिं लभन्ते पराम् ॥ १ ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलि क्षेपण करना)

वृषभोऽजितनामा च संभवश्चाभिनंदनः । सुमतिः पद्म-भासश्च सुपार्श्वो जिनसत्तमः ॥ १ ॥ चंद्राभः पुष्पदंतश्च शीतलो भगवान्मुनिः । श्रेयांश्च वासुपूज्यश्च विमलो विमल-द्युतिः ॥ २ ॥ अनंतो धर्मनामा च शांतिः कुंथुर्जिनोत्तमः । अरश्च मल्लिनाथश्च सुव्रतो नमितीर्थकृत् ॥ ३ ॥ हरिवंश-समुद्भुतोऽरिष्टनेमिर्जिनेश्वरः । ध्वस्तोपसर्गदैत्यारिः

पार्श्वो नागेंद्रपूजितः ॥४॥ कर्मांतकृन्महावीरः सिद्धार्थकुल-संभवः। एतेसंरासुरौघेण पूजिता विमलत्विषः ॥ पूजिता भरताद्यैश्च भूपेंद्रैर्भूरिभूतिभिः। चतुर्विधस्य संघस्य शांतिं कुर्वंतु शाश्वतीं ॥ ६ ॥ जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिः सदास्तु मे। सम्यक्त्वमेव संसारवारणं मोक्षकारणं ॥ ७ ॥

पुष्पांजलि क्षेपण करना।

श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः श्रुते भक्ति सदास्तुमे। सज्ज्ञानमेव संसारवारणं मोक्षकारण ॥ ८ ॥ (पुष्पांजलिं क्षिपेत्) गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिः सदाऽस्तुमे। चारित्रमेव संसारवारण मोक्षकारणं ॥ ९ ॥ (पुष्पांजलिम् क्षिपेत्)

अथ देवजयमाला प्राकृत।

वत्ताणुट्ठाणे जणधणुदाणे पइपोसिउ तुहु खत्तधरु। तुहु चरण विहाणे केवलणाणे तुहु परमप्पउ परमपरु ॥ १॥ जय रिसहरिसीसर णमियपाय। जय अजिय जियंगमरोस-राय॥ जय संभव संभवकयविओय। जय अहिणंदण णंदिय पओय ॥ जय सुमइ सुमइसम्मयपयास, जय पउम-प्पह पउमाणिवास ॥ जय जयहि सुपास सुपासगत्त। जय चंद-प्पह चंदाहवत्त ॥ ३ ॥ जय पुप्फयंत दंतंतरंग। जय सीयल सीयलवयणभग ॥ जय सेय सेयकिरणोहसुज्ज। जय वासु-पुज्ज पुज्जाण पुज्ज ॥ ४ ॥ जय विमल विमलगुणसेढि-ठाण। जय जयहि अणंताणंतणाण ॥ जय धम्म धम्मतित्थ-यर संत। जश सांसि सांति विहियाययवत्त ॥ ५ ॥ जय कुंथु कुथुपहुअंगिसदय। जय अर अर माहर विहियसमय ॥

जय मल्लि मल्लि आदामगंध। मुणिसुव्वय सुव्वयणिबंध ॥६॥ जय णमि णमियामरणियरसामि। जय णेमि धम्मरहचक्कणेमि। जय पास पासछिंदणकिवाण। जय वड्ढमाण जसवड्ढमाण ॥७॥ घत्ता—

इह जाणिय णामहिं दुरियविरामहिं परहिंवि णमिय सुरावलिहिं। अणहणहिं अणाइहिं समिय कुवाइहिं षणविवि अरहंतावलिहिं॥

ओं ह्रीं वृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनेभ्यो अर्घं निर्व० ॥

अथ शास्त्रजयमाला।

संपइसुहकारण कम्मवियारण भवसमुद्दतारणतरणं। जिणवाणि णमस्समि सत्तिपयासमि सग्गमोक्खसंगमकरणं ॥ १ ॥ जिणंदमुहाओ विणिग्गयतार। गणिंदविगुंफिय गंथपयार ॥ तिलोयहिमंडण धम्मह खाणि। सयापणमामि जिणिंदहवाणि ॥ २ ॥ अवग्गह ईह अवाय जु एहिं। सुधारण भेयहिं तिण्णि सएहिं ॥ मई छत्तीस वहुप्पमुहाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥ ३ ॥ सुद पुण दोण्णि अणेयपयार। सुबारहभेय जगत्तयसार ॥ सुरिंदणरिंदसमुच्चिओ जाणि। सयापणमामि जिणिंदहवाणि ॥ ४ ॥ जिणिंदगणिंदणरिंदह रिद्धि। पयासइ पुण्ण पुराकिउलद्धि ॥ णिउग्गुपहिल्लउ एहु वियाणि। सया पण० ॥ ५ ॥ जु लोय अलोयह जुत्ति जणेइ। जु तिण्णि विकाल सरूव भणेइ ॥ चउग्गइ लक्खण दुज्जउ जाणि। सयापमामि जिणिंदहवाणि ॥ ६ ॥ जिणिंदचरित्तविचित्त मुणेइ। सुसावहिधम्मह जुत्ति जणेइ ॥ णिउग्गु वि तिज्जउ इत्थु

वियाणि। सया पणमामि जिणिंदहवाणि ॥ ७ ॥ सुजीव अजीवह तच्चह चक्खु। सुपुण्ण विपाव विबंध विमुक्खु ॥ चउत्थुणि उग्गुविभासिय जाणि। सया पणमामि जिणिंदह-वाणि ॥ ८ ॥ तिभेयहिं ओहिविणाणविचित्तु। चउत्थरि-जोविउलं मइउत्तु ॥ सुखाइय केवलणाण वियाणि। सया पणमामि जिणिंदहवाणि ॥ ९ ॥ जिणिंदह णाणु जगत्तय भाणु। महातमणासिय सुक्खणिहाणु ॥ पय-च्चउ भत्तिभ-रेण वियाणि । सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥ १० ॥ पयाणि सुबारहकाडि मयेण। सुलक्ख तिरासिय जुत्ति-भरेण॥ सहस अट्ठावण पंच वियाणि ॥ सया पणमामि जिणिंदहवाणि ॥ ११ ॥ इक्कावण कोडिउ लक्ख अठेव। सहसचुलसीदियसा छक्केव ॥ सढाइगवीसह गंथ पयाणि। सया पणमामि जिणिंदहवाणि ॥ १२ ॥

घत्ता—इह जिणवरवाणि विशुद्धमई। जो भवियण णियमण धरई। सो सुरणरिंद संपइ लहई। केवलणाणवि उत्तरई ॥ १३ ॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतस्याद्वाद्नयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानायार्घं नि०

अथ गुरु जयमाला प्राकृत।

भवियह भवतारण, सोलहकारण, अज्जवि तित्थयर-त्तणहं। तवकम्म असंगइ दयधम्मंगइ पालवि पंचमहव्वयहं ॥ १ ॥ वंदामि महारिसि सीलवंत। पंचेंदियसंजम जोग-जुत्त ॥ जे ग्यारह अंगह अणुसरंति। जे चउदह पुव्वहं मुणि थुणंति ॥ २ ॥ पादाणु सारवर कुट्ठबुद्धि ॥ उप्पण्णु जाह

आयासरिद्धि॥ जे पाणाहारी तोरणीय। जे रुक्खमूल आतावणीय॥ ३॥ जे मोणिधाय चंदाहणीय। जे जत्थत्थवणि णिवासणीय॥ जे पंचमहव्वय धरणधीर। जे समिदिगुत्ति पालणहि वीर ॥ ४॥ जे वड्ढहिं देहविरत्तचित्त। जे रायरोसभयमोहचत्त॥ जे कुगइहि संवरु विगयलोह। जे दुरियविणासणकामकोह॥ ५॥ जे जल्लमल्लतणलित्त गत्त। आरंभपरिग्गह जे विरत्त ॥ जे तिण्णकाल बाहर गमंति। छट्ठम दसमउ तउ चरंति ॥ ६ ॥ जे इक्कगास दुइगास लिंति। जे णीरसभोयण रइ करंति॥ ते मुणिवर वंदउं ठिंयमसाण। जे कम्मडहइ वर सुक्कझाण ॥ ७॥ बारहविहसंजम जे धरंति। जे चारिउ विकहा परिहरंति॥ बावीस परीषह जे सहंति। संसारमहण्णउ ते तरंति॥ ८॥ जे धम्मबुद्धि महियलि थुणंति। जे काउस्सग्गो णिसि गमंति॥ जे सिद्धविलासणि अहिलसंति। जे पक्खमास आहार लिंति ॥ ९॥ गोदूहण जे वीरासणीय जे धणुहसेज वज्जासणीय। जे तववलेण आयास जंति। जे गिरि गुहकंदरविवरथंति॥ १०॥ जे सत्तु मित्त समभाव चित्त। ते मुनिवर वंदउं दिढचरित्त॥ चउवीसह गंथह जे विरत्त। ते मुनिवर वंदउं जगपवित्त॥ ११॥ जे सुज्झाणिज्झा एकचित्त। वंदामि महारिसि मोखपत्त॥ रणयत्तयरंजिय सुद्धभाव। ते मुणिवर बंदउं ठिदिसहाव १२॥

घत्ता– जे तपसूरा, संजमधीरा, सिद्धवधू अणुराईया।
रयणत्तयरंजिय, कम्महगंजिय, ते ऋषिवरमय झाईया॥

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

८२—अथ देवशास्त्रगुरुकी भाषा पूजा

अडिल्ल—प्रथमदेव अरहंत सुश्रुत सिद्धांतजू। गुरु निरग्रंथ महंत मुकतिपुर पंथजू। तीनरतन जगमांहि सो ये भवि ध्याइये। तिनकी भक्तिप्रसाद परमपद पाइये ॥ १ ॥

दोहा—पूजौं पद अरहंतके, पूजौं गुरुपदसार।
पूजौं देवी सरस्वती, नितप्रति अष्टप्रकार ॥ २ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्रावतरावतर। संवौषट्।
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

गीता छंद।

सुरपति उरगनाथ तिनकर, वंदनीक सुपदप्रभा।
अति शोभनीक सुवरण उज्वल, देखि छवि मोहित सभा ॥
वर नीर क्षीरसमुद्रघटभरि, अग्र तसु बहुविधि नचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥१॥

दोहा—मलिन वस्तु हरलेत सब, जल स्वभाव मलछीन।
जासों पूजौं परमपद देवशास्त्रगुरु तीन ॥१॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्व० ॥१॥

जे त्रिजग उदर मझार प्रानी, तपत अति दुद्धर खरे।
तिन अहितहरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे ॥ तसु भ्रमर लोभित घ्राण पावन, सरस चंदन घसि सचूं ॥अरहंत०॥

दोहा—चंदन शीतलता करै, तपत वस्तु परवीन।
जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥२॥

ओं ह्री देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्व० ॥२॥

यह भवसमुद्र अपार तारण,—के निमित्त सु विधि ठई। अति दृढ परमपावन जथारथ भक्ति वर नौका सही॥ उज्वल अखंडित सालि तंदुल पुंज धरि त्रयगुण जचूं। अरहंत० ॥

दोहा—तंदुल सालि सुगंधि अति, परम अखंडित बीन।
जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥३॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

जे विनयवंत सुभव्य उर अंबुज प्रकाशन भान हैं। जे एकमुख चारित्र भाषत त्रिजगमाहिं प्रधान हैं। लहि कुंद-कमलादिक पहुप, भव २ कुवेदनसों बचूं ॥ अरहंत० ॥

दोहा—विविधभांति परिमलसुमन, भ्रमर जास आधीन।
जासों पूजौं परमपद, देवशास्त्र गुरुतीन ॥४॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व० ॥ ४ ॥

अतिसबल मदकंदर्प जाको क्षुधाउरग अमान है। दुस्सह भयानक तास नाशनको सुगरुड समान है॥ उत्तम छहों रसयुक्त नित, नैवेद्यकरि घृतमें पचूं। अरहंत० ॥५॥

दोहा—नानाविध संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन।
जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥५॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० ॥ ५ ॥

जे त्रिजगउद्यम नाश कीने, मोहतिमिर महाबली। तिहि कर्मघाती ज्ञानदीपप्रकाशजोति प्रभावली! इहभांति दीप प्रजाल कंचनके सुभाजनमैं खचूं। अरहंत० ॥६॥

दोहा—स्वपर प्रकाशक जोति अति, दीपक तमकरि हीन।
जासों पूजौं परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन ॥६॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्व० ॥६॥

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसै। वर धूप तासु सुगंधताकरि, सकल परिमलता हँसै॥ इहभांति धूप चढाय नित भवज्वलनमांहि नहीं पचूं। अरहंत० ॥

दोहा—अग्निमांहि परिमलदहन, चंदनादि गुणलीन।
जासों पूजौं परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥७॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥

लोचन सु रसना घ्रान उर, उत्साहके करतार हैं। मोपै न उपमा जाय वरणी, सकलफलगुणसार हैं। सो फल चढावत अर्थपूरन, परमअमृतरस सचूं। अरहंत० ॥

दोहा—जो प्रधान फल फलविषै, पंचकरण-रस लीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥८॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं। वर धूप निरमल फल विविध, बहु जनमके पातक हरूं॥ इह भांति अर्घ चढाय नित भवि करत शिवपंकति मचूं। अरहंत०॥

दोहा—वसुविधि अर्घ सँजोयके, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥९॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

अथ जयमाला।

दोहा— देवशास्त्रगुरु रतन शुभ, तीनरतनकरतार।
भिन्न भिन्न कहुँ आरती, अल्प सुगुणविस्तार ॥१॥

पद्धरि छंद—कर्मनकी त्रेसठ प्रकृति नाशि। जीते अष्टादश दोषराशि। जे परम सुगुण हैं अनँत धीर, कहवतके छयालिस गुण गँभीर ॥२॥ शुभ समवसरण शोभा अपार, शत-इंद्र नमत करसीसधार। देवाधिदेव अरहंत देव, वंदों मन-वचतनकरि सु सेव ॥३॥ जिनकी धुनि है ओंकाररूप, निर अक्षरमय महिमा अनूप। दश अष्ट महाभाषा समेत, लघु-भाषा सात शतक सुचेत ॥४॥ सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गण-धर गूंथे बारह सु अंग॥ रवि शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहुप्रीति ल्याय॥५॥ गुरु आचारज उवझाय साध, तन नगन रतनत्रयनिधि अगाध। संसारदेह वैराग धार, निरवांछि तपैं शिवपद निहार ॥६॥ गुण छत्तिस पच्चिस आठवीस, भवतारन तरन जिहाज ईस। गुरुकी महिमा वरनी न जाय, गुरुनाम जपों मनवचनकाय ॥७॥

सोरठा—कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति विना सरधा धरै।
द्यानत सरधावान, अजर अमरपद भोगवै।

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

८३-विद्यमानविंशतिजिनपूजा संस्कृत।

पूर्वापरविदेहेषु, विद्यमानजिनेश्वरान्।
स्थापयाम्यहमत्र, शुद्धसम्यक्त्वहेतवे ॥१॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करा ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्।
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करा ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः।
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करा ! अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्

कर्पूरवासितजलैर्भृतहेमभृङ्गैः धारात्रयं ददतुजन्मजराप-हानि। तीर्थंकरायजिनविंशविहरमानैः, संचर्चयामि पदपं-कजशांतिहेतोः॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्व०।
(इस पूजामें यदि वीस पुंज करना हो, तो इस प्रकार मंत्र बोलनाचाहिये)

ओं ह्रीं सीमंधर-युग्मंधर-बाहु-सुबाहु-संजात-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-अनंतवीर्य-सूरप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-चन्द्रबाहु-भुजंगम-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरषेण-महाभद्र-देवयशोऽजितवीर्येतिविंशतिविद्यमानतीर्थं-करेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥

काश्मीरचंदनविलेपनमग्रभूमि, संसारतापहरचूरिकरोमि नित्यं। तीर्थंकरायजिनविंशविहरमानैः, संचर्चयामि पद०॥
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्व०॥

अखंडअक्षतसुगंधसुनम्रपुंजै-रक्षयपदस्य सुखसंपतिप्राप्त-हेतोः। तीर्थंकरायजिनविंशविहरमानैः, संचर्चयामि पद०॥
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्व०॥३॥

अंभोजचंपकसुगंधसुपारजातैः, कामैर्विध्वंसनकरोम्यहं-

जिनाय। तीर्थंकराय जिनविंशविहरमानैः, संचर्चयामि पद० ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं नि० ॥४॥

नैवेद्यकैः शुचितरैर्घृतपक्वखंडैः, क्षुधादिरोगहरिदोषविनाशनाय। तीर्थंकरायजिनविंशविहरमानैः, संचर्चयामि पद० ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निव० ॥

दीपैर्प्रदीपितजगत्त्रयरश्मिपुञ्जै,-र्दूरीकरोतितममोहविनाशनाय। तीर्थंकराय जिनविंशविहरमानैः, संचर्चयामि पद० ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि० ॥६॥

कर्पूरकृष्णागुरुचूर्णरूपै,-र्धूपैः सुगंधकृतसारमनोहराणि। तीर्थंकराय जिनविंशविहरमानैः, संचर्चयामि पदपंकज० ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपा० ॥७॥

नारिंगदाडिममनोहरश्रीफलाद्यैः, फलंअभीष्टफलदायकप्राप्तमेव। तीर्थंकराय जिनविंशविहरमानैः,संचर्चयामि पद० ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपा० ॥८॥

जलस्यगंधाक्षतपुष्पचरुभिः, दीपस्यधूपफलमिश्रितमर्घपात्रैः। अर्घं करोमि जिनपूजनशांतिहेतोः संसारपूर्णाकुरुसेविकानां॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामी० ॥६॥

अथ जयमाला।

दोहा—दीप अढाई मेरु पुनि, तीर्थंकर हैं बीस।
तिनको नित प्रति पूजिये, नमो जोरिकर सीस ॥१॥

प्रथम सीमंदिर स्वामि, युगमंदिर त्रिभुवनधनिये। बाहु

सुबाहु जिनंद, सेवहिं सुखसंपतिधनिये ॥२॥ संजात स्वयं-प्रभुदेव, ऋषभाननगुण गाइये। अनंतवीर्यजीकी सेव, मन-वांछितफल पाइये ॥३॥ सूरप्रभु सुविशाल, वज्राधर जिन वंदिये। चंद्रानन चंद्रवाहु, देखत मन आनंदिये॥ वीरसेन जयवंत, ईश्वर नेमीश्वर कहिये। भुजंगवाहु भगवंत, तारण भव जलते कहिये ॥५॥ देव यशोधरराय, महाभद्र जिन वंदिये। अजितवीर्यजीको तेज, क्रोटि दिवाकर जों दिपिये॥ घत्ता—ये बीस जिनवर संग प्रभुके, सेव तुमरी कीजिये। ये वीसौ बंदन करै सेवक, मनवांछित फल लीजिये ॥७॥इति॥

८४—श्रीबिसितीर्थंकरपूजा भाषा।

दीप अढाई मेरु पन, अरु तीर्थंकर बीस।
तिन सबकी पूजा करूं, मनवचतन धरि सीस॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकराः! अत्र अवतरत अवतरत। संवौषट्।
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतिर्थंकराः! अत्र तिष्ठत तिष्ठत। ठः ठः।
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकराः! अत्र मम सन्निहिताः भवत भवत वषट्।

इंद्र फणींद्र नरेंद्र वंद्य, पद निर्मल धारी। शोभनीक संसार, सारगुण हैं अविकारी॥ क्षीरोदधि सम नीरसों (हो), पूजों तृषा निवार। सीमंधर जिन आदि दे, बीस विदेह मझार॥ श्री जिनराज हो भव, तारणतरण जिहाज॥

ओं ह्रीं विद्यमामविंशतितीर्थंकरेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्व०॥

(इस पूजामें बीस पुंज करना हो, तो इसप्रकार मंत्र वोलना चाहिये)

ओं ह्रीं सीमंधर-जुगमंधर-बाहु-सुबाहु-संजातक-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-

अनंतवीर्य—सूरप्रभ—विशालकीर्ति—वज्रधर—चंद्रानन—भद्रबाहु—भुजंगम ईश्वर-नेमिप्रभ—वीरसेन—महाभद्र—देवयशोऽजितवीर्येतिविंशतिविद्यमान-तीर्थंकरेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जल निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

तीनलोकके जीव, पाप आताप सताये । तिनकों साता दाता, शीतल वचन सुहाये ॥ बावन चंदनसों जजूं (हो) भ्रमन-तपत निरवार । सीमंधर० ॥ २ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो भवातापविनाशनाय चदनं निर्व०॥२॥

(इसके स्थानमें यदि इच्छा हो, तो बड़ा मत्र पढ़ें)

यह संसार अपार, महासागर जिनस्वामी । तातै तारे बड़ी, भक्ति—नौका जगनामी ॥ तंदुल अमल सुगंधसों (हो) पूजों तुम गुणसार । सीमंधर० ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽक्षयदप्राप्तये अक्षतान् निर्व० ॥३॥

भविक-सरोज-विकाश, निंद्यतमहर रविसे हो । जति श्रावक आचार, कथनको, तुमही बडे हो ॥ फूलसुवास अनेकसों (हो) पूजों मदन प्रहार । सीमंधर० ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय दीपं निर्व० ॥४॥

काम नाग विषधाम, नाशको गरुड कहे हो । छुधा महादवज्वाल, तासको मेघ लहे हो ॥ नेवज बहुघृत मिष्टसों (हो), पूजों भूखविडार । सीमंधर० ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व० ॥

उद्यम होन न देत, सर्व जगमाहिं भरयो है । मोह महा-

तमघोर नाश परकाश करयो है ॥ पूजों दीपप्रकाशसों (हो) ज्ञानज्योति करतार । सीमंधर० ॥६॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्व० ॥६॥

कर्म आठ सब काठ,-भार विस्तार निहारा। ध्यान अगनि कर प्रगट, सरब कीनों निरवारा ॥ धू' अनूपम खे-वतैं (हो), दुःख जलैं निरधार। सीमंधर० ॥७॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽष्टकमविध्वंसनाय धूपं निर्व० ॥७॥

मिथ्यावादी दुष्ट, लोभऽहंकार भरे हैं। सबको छिनमें जीत जैनके मेर खरे हैं ॥ फल अति उत्तमसों जजों (हो) वांछितफलदातार । सीमंधर० ॥८॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व० ॥८॥

जल फल आठों दर्व. अरघकर प्रीति धरी है। गणधर इंद्रनहूतै थुति पूरी न करी है। द्यानत सेवक जानके (हो) जगतैं लेहु निकार। सीमं० ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निव० ॥९॥

अथ जयमाला आरती।

सोरठा—ज्ञान सुधारक चंद, भविकखेतहित मेघ हो।
भ्रमतमभान अमंद, तीर्थंकर बीसों नमों ॥

चौपाई—सीमंधर सीमंधर स्वामी । जुगमंधर जुगमंधर नामी। बाहु बाहु जिन जगजन तारे। करम सुबाहु बाहु-बल दारे ॥ १ ॥ जात सुजात केवलज्ञानं । स्वयंप्रभू प्रभू स्वयं प्रधानं । ऋषभानन ऋषि भानन दोषं। अनंतवीरज

वीरजकोषं ॥ २ ॥ सौरीप्रभ सौरीगुणमालं। सुगुण विशाल विशाल दयालं। वज्रधार भव गिरिवज्जर हैं। चंद्रानन चंद्रानन वर हैं॥ ३ ॥ भद्रबाहु भद्रनिके करता। श्री भुजंग भुजंगम हरता॥ ईश्वर सबके ईश्वर छाजै। नेमिप्रभु जस नेमि विराजै ॥ ४ ॥ वीरसेन वीरं जग जानै। महाभद्र महभद्र बखानै ॥ नमों जसोधर जसधरकारी। नमों अजितवीरज बलधारी ॥५॥ धनुष पांचसै काय विराजै। आव कोडिपूरव सब छाजै ॥ समवसरण शोभित जिनराजा। भवजलतारनतरन जिहाजा ॥ ६ ॥ सम्यक रत्नत्रयनिधिदानी। लोकालोक प्रकाशक ज्ञानी ॥ शतइन्द्रनिकरि वंदित सोहैं। सुरनर पशु सबके मन मोहैं ॥७॥

दोहा—तुमको पूजै वंदना, करै धन्य नर सोय।
'द्यानत' सरधा मन धरै, सो भी धरमी होय ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

३२। अथ विद्यमानवीस तीर्थंकरोंका अर्घ।

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनराजमहं यजे ॥

ओं ह्रीं श्री सीमंधरयुग्मंधरबाहुसुबाहुसंजातस्वयंप्रभऋषभाननअनन्तवीर्यसूर्यप्रभविशालकीर्तिवज्रधरचन्द्राननभद्रबाहुभुजंगमईश्वरनेमिप्रभवीरसेनमहाभद्रदेवयशअजितवीर्येतिविंशतिविद्यमानतीर्थंकरेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

——

८६—अकृत्रिम चैत्यालयोंके अर्घ ।

कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यानिलयान् नित्यं त्रिलोकींगतान् । वंदे भावनव्यंतरान् द्युतिवरान् स्वर्गामरावासगान् ॥ सद्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलैर्द्रव्यैर्नीरमुखैर्यजामि सततं दुष्कर्मणां शांतये ॥ १ ॥

ओं ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसंबंधिजिनबिंबेभ्योऽर्घ्यं निर्व० ॥

वर्षेषु वर्षांतरपर्वतेषु नंदीश्वरे यानि च मंदरेषु । यावंति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वंदे जिनपुंगवानां ॥ २ ॥ अवनितलगतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणां । वनभवनगतानां दिव्य वैमानिकानां ॥ इह मनुजकृतानां देवराजार्चितानां । जिनवरनिलयानां भावतोऽहं स्मरामि ॥ ३ ॥ जंबूधातकिपुष्करार्धवसुधाक्षेत्रत्रये ये भवाँश्चंद्रांभोजशिखंडिकंठकनकप्रावृड्घनाभाजिनाः ॥ सम्यग्ज्ञानचरित्रलक्षणधरा दग्धाष्टकर्मेन्धनाः । भूताः नागतवर्तमानसमये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥ ४ ॥ श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौरजतगिरिवरे शाल्मलौ जंबुवृक्षे, वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकररुचिके कुंडले मानुषांके । इष्वाकारेंजनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यंतरे स्वर्गलोके, ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भुवनमहितले यानि चैत्यालयानि ॥ ५ ॥ द्वौ कुंदेंदुतुषारहारधवलौ द्वाविंद्रनीलप्रभौ । द्वौ बंधूकसमप्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियंगुप्रभौ । शेषाः षोडशजन्ममृत्युरहिताः संतप्तहेमप्रभा स्ते संज्ञानदिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छंतु नः ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं त्रिलोकसंबंधि कृत्याकृत्रिमचैत्यालयेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

इच्छामि भंते चेइयभत्ति काओसग्गो कओ तस्सालोचेओ अहलोय तिरियलोय उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेयाणि ताणि सव्वाणि, तीसुवि लोयेसु भवण-वासिय वाणविंतरजोयसियकप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण धुव्वेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ह्णाणेण णिच्चका-लं अच्चंति पुज्जंति वंदंति णमस्संति । अहमविइहसंतो तत्थ-संताइ णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिनगुणसंपत्ति होउ मज्झं ॥

(इत्याशीर्वादः । पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

अथ पौर्वाह्णिक-माध्याह्निक-अपराह्णिकदेववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तव-समेतं श्रीपंचमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

णमो अरहंताणं । णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥
तावकायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

८७—अथ सिद्धपूजा द्रव्याष्टक ।

ऊर्ध्वाधोरयुतं सबिंदु सपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं ।
वर्गापूरितदिग्गतांबुजदलं तत्संधितत्त्वान्वितं ॥
अंतःपत्रतटेष्वनाहतयुतं ह्रींकारसंवेष्टितं ।
देवं ध्याययति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकंठीरवः ॥

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र मम सन्निहितो। भव भव वषट्।

निरस्तकर्मसंबंधं, सूक्ष्मं नित्यं निरामयम्।
वंदेऽहं परमात्मानममूर्तमनुपद्रवम् ॥१॥

जिन त्यागियोंको विना द्रव्य चढाये भावसे ही पूजा करना हो वे आगैं भावाष्टक है उसको बोलकर करैं, अष्टद्रव्यसे पूजा करनेवालोंको भावपूजाका अष्टक कदापि नहिं बोलना चाहिये।

सिद्धौ निवासमनुगं परमात्मगम्यं हान्यादिभावरहितं भववीतकायं। रेवापगावरसरोयमुनोद्भवानां नीरैर्यजे कलशगैर्वरसिद्धचक्रं ॥१॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्ममृत्युविनाशनाय जलं नि०

आनंदकंदजनकं घनकर्ममुक्तं सम्यक्त्वशर्मगरिमं जननार्तिवीतं। सौरस्यवासितभुवं हरिचंदनानां, गंधैर्यजे परिमलैर्वरसिद्धचक्रं ॥२॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चंदनं नि०

सर्वावगाहनगुणं सुसमाधिनिष्ठं, सिद्धं स्वरूपनिपुणं कमलं विशालं। सौगन्ध्यशालिवनशालिवराक्षतानां, पुंजैर्यजे शशिनिभैर्वरसिद्धचक्रं ॥३॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि०

नित्यं स्वदेहपरिमाणमनादिसंज्ञं, द्रव्यानपेक्षममृतं मरणा-

द्यतीतम् । मंदारकुन्दकमलादिवनस्पतीनां, पुष्पैर्यजे शुभतमैर्वरसिद्धचक्रम् ॥४॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतयेसिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्प नि०

ऊर्ध्वस्वभावगमनं सुमनोऽव्यपेतं, ब्रह्मादिबीजसहितं गगनावभासम् । क्षीरान्नसाज्यवटकैः रसपूर्णगर्भैर्नित्यं यजे चरुवरैर्वसिद्धचक्रम् ॥५॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुद्रोगविध्वंसनाय नैवेद्यं नि०

आंतशोकभयरोगमदप्रशांतं, निर्द्वंद्वभावधरणं महिमानिवेशं। कर्पूरवर्तिबहुभिः कनकावदातै-र्दीपैर्यजे रुचिवरैर्वरसिद्धचक्रम्

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि०

पश्यन्समस्तभुवनं युगपन्नितांतं, त्रैकाल्यवस्तुविषये निविडप्रदीपम् । सद्‌द्रव्यगन्धघनसारविमिश्रितानां, धूपैर्यजे परिमलैर्वरसिद्धचक्रम् ॥७।

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपा० ।

सिद्धासुरादिपतियक्षनरेन्द्रचक्रै-र्ध्येयं शिवं सकलभव्यजनैः सुवन्द्यं। नारिंगपूगकदलीवरफलनारिकेलैः सोऽहंयजे वरफलैर्वरसिद्धचक्रम ॥८॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपा० ।

गन्धाढ्यं सुपयो मधुव्रतगणैः संगं वरं चन्दनं । पुष्पौघं विमलं सदक्षतचयं रम्यं चरुं दीपकं ।। धूपं गन्धयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठ फलं लब्धये । सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वांछितं ॥९॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं, सूक्ष्मस्वभावपरमं यद-नंतवीर्यं । कर्मौघकक्षदहनं सुखसस्यबीजं वंदे सदा निरुपमम् वरसिद्धचक्रम् ॥१०॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

त्रैलोक्येश्वरवंदनीयचरणाः प्रापुः श्रियं शाश्वतीं । यानाराध्य निरुद्धचंडमनसः संतोऽपितीर्थकराः ॥ सत्सम्यक्त्वविबोधवीर्यविशदाऽव्याबाधताद्यैर्गुणैर्, युक्तांस्तानिह तोष्टवीमि सततं सिद्धान् विशुद्धोदयान् ॥ (पुष्पांजलिं०)

अथ जयमाला ।

विराग सनातन शांत निरंश । निरामय निर्भय निर्मल हंस ॥ सुधाम विबोधनिधान विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥१॥ विदूरितसंसृतिभाव निरंग । समामृतपूरित देव विसंग ॥ अबंधकषाय विहीन विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ २ ॥ निवारितदुष्कृतकर्मविपास । सदामल केवलकेलिनिवास ॥ भवोदधिपारग शान्त विमोह । प्रसीद विशुद्धसुसिद्धसमूह ॥३॥ अनंतसुखामृतसागर धीर । कलंकरजोमलभूरिसमीर ॥ विखंडितकाम विराग विमोह । प्रसीद विशुद्धसुसिद्धसमूह ॥४॥ विकारविवर्जित तर्जितशोक विबोधसुनेत्रविलोकितलोक ॥ विहार विराग विरंग विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥५॥ रजोमलखेदविमुक्त विगात्र । निरंतर नित्य सुखामृतपात्र ॥ सुदर्शनराजित नाथ विमोह । प्रसिद्ध विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥६॥ नरामरवंदित निर्मल भाव

अनंत मुनीश्वरपूज्य विहाव ॥ सदोदय विश्वमहेश विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥७॥ विदंभ वितृष्ण विदोष विनिद्र। परापरशंकरसार वितन्द्र ॥ विकोप विरूप विशंक विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ८ ॥ जरामरणोज्झित वीतविहार। विचिंतित निर्मल निरहंकार ॥ अचिंत्यचरित्र विदर्प विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ९ ॥ विवर्ण विगंध विमान विलोभ। विमाय विकाय विशब्द विशोभ। अनाकुल केवल सर्व विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥

घत्ता—असमसमयसारं चारुचैतन्यचिह्नं, परपरणतिमुक्तं पद्मनंदींद्रवंद्यं। निखिलगुणनिकेतं सिद्धचक्रं विशुद्धं, स्मरति नमति यो वा स्तौति सोऽभ्येति मुक्तिं ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अथाशीर्वाद। अडिल्लछंद।

अविनाशी अविकार परमरसधाम हो। समाधान सर्वज्ञ सहज अभिराम हो। शुद्धबोध अविरुद्ध अनादि अनंत हो। जगत शिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत हो ॥ १ ॥ ध्यान अगनिकर कर्म कलंक सबै दहे। नित्य निरंजनदेव सरूपी ह्वै रहे। ज्ञायकके आकार ममत्व निवारिकैं, सो परमातम सिद्ध नमूं सिर नायकें ॥ २ ॥

दोहा—अविचलज्ञानप्रकाशतैं, गुण अनंतकी खान।
ध्यान धैर सो पाइये, परम सिद्ध भगवान ॥ ३ ॥

८८—अथ सिद्धपूजाका भावाष्टक।

निजमनोमणिभाजनभारया, समरसैकसुधारसधारया।
सकलबोधकलारमणीयकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥जलं॥
सहजकर्मकलंकविनाशनैरमलभावसुवासितचंदनैः। अनुप-
मानगुणावलिनायकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये॥ चंदनम्॥
सहजभावसुनिर्मलतंदुलैः सकलदोषविशालविशोधनैः।
अनुपरोधसुबोधनिधानकम्, सहज सिद्धमहं परिपूजये॥ अक्ष०
समयसारसुपुष्पसुमालया, सहजकर्मकरेण विशोधया।
परमयोगबलेन वशीकृतम्, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥पुष्पं॥
अकृतबोधसुदिव्यनिवेद्यकैर्विहितजातजरामणांतकैः।
निरवधिप्रचुरात्मगु॥ लायं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥नैवेद्यं॥
सहजरत्नरुचिप्रतिदीपकै, रुचिविभूतितमःप्र वनाशनैः।
निरवधिस्वविकाशप्रकाशनैः, सहजसिद्धमहं परिपूजये॥दीपम्॥
निजगुणाक्षयरूपसुधूपनैः, स्वगुणघातिमलप्रविनाशनैः।
विशदबोधसुदीर्घसुखात्मकम्, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥धूपं॥
परमभावफलावलिसम्पदा, सहजभावकुभावविशोधया।
निजगुणास्फुरणात्मनिरंजनम्, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥फलं
नेत्रोन्मीलिविकाशभावनिवहैरत्यन्तबोधाय वै।
वार्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैःफलैः॥
यश्चिंतामणिशुद्धभावपरमज्ञानात्मकैरर्चयेत्।
सिद्धं स्वादुमगाधबोधमचलं संचर्चयामो वयम् ॥९॥ इति॥

८९—सोलहकारणका अर्घ।

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।

धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनहेतुमहं यजे ॥१॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

१०—दशलक्षणधर्मका अर्घ।

उदकचन्दतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनधर्ममहं यजे ॥

ओं ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्भूतोत्तक्षमामार्दवार्ज्जवसौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यदशलाक्षणिकधर्मेभ्यो अर्घ निर्वपामीति स्वाहा॥

११—रत्नत्रयका अर्घ।

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।
धवलमंगलगानरवाकुलेजिनगृहेजिनरत्नमहं यजे ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशप्रकारसम्यक्चारित्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

१२—अथ पंचपरमेष्ठिजयमाला।

मणुय-णाइन्द-सुरधरियछत्तया, पंचकल्लाणसुक्खावली पत्तया। दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं, ते जिणा दितु अम्हं वरं मगलं ॥१॥ जेहिं झाणग्गिवाणेहिं अइथड्ढयं, जम्मजरमरणणय रत्तयं दड्ढयं। जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं, ते जिणा दितु सिद्धावरं णाणयं ॥२॥ पंचहाचारपंचग्गि संसाहया, वारसंगाइ सुयजलहिं अवगाहया। मोक्खलच्छी महंती महंते सया, सूरिणो दितु मोक्खं गया संगया ॥३॥ घोरसंसारभीमाड वीकाणणे, तिक्खवियरालणहपावपंचा-

णणे। णट्ठ मग्गाण जीवाण पहदेसया, वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया ॥४॥ उग्गतवयरणकरणेहिं झीणं गया, धम्मवरझाणसुक्केक्कझाणंगया। णिब्भरं तवसिरीएसमालिंगया, साहओ ते महामोक्खपहमग्गया ॥५॥ एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदये, गुरुयसंसारघणवेल्लि सो छिंदए। लहइ सो सिद्ध सुक्खाइवरमाणणं, कुणइ कम्मिधणं पुंजपज्जालणं ॥६॥

आर्या—अरिहा सिद्धाइरीया, उवज्झाया साहु पंचपरमिट्टी।
एयाण णमुक्कारो, भवे भवे मम सुहं दिंतु ॥

ओं ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुपंचपरमेष्ठिभ्योऽर्घ्यं निर्वपा० ॥

इच्छामि भंते पचगुरुभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेओ अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताणं। अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं। अट्ठपवयणमाउसंजुत्ताणं आइरीयाणं। आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं। तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं। णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमस्सामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ वोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं। इत्याशीर्वादः। (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

९३—शांतिपाठ।

(शांतिपाठ वोलते समय दोनों हाथोंसे पुष्पवृष्टि करते रहना चाहिये)

दोधकवृत्तं—शांतिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रम्, शीलगुणव्रतसंयमपात्रम्। अष्टशतार्चितलक्षणगात्रम्, नौमि जिनोत्तममम्बुजनेत्रम् ॥१॥ पंचममीप्सितचक्रधराणां पूजितमिंद्रनरे-

न्द्रगणैश्च। शांतिकरं गणशांतिमभीप्सुः षोडशतीर्थंकरं प्रणमामि ॥२॥ दिव्यतरुसुरपुष्पसुवृष्टिर्दुंदुभिरासनयोजनघोषौ। आतपवारणचामरयुग्मे यस्य विभाति च मंडलतेजः ॥३॥ तं जगदर्चितशांतिजिनेंद्रं शांतिकरं, शिरसा प्रणमामि। सर्वगणाय तु यच्छतु शांतिं मह्यमरं पठते परमां च ॥४॥

वसंततिलका छंद–येऽभ्यर्चिता मुकुटकुंडलहाररत्नैः शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्माः। ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपास्तीर्थंकराः सततशांतिकरा भवंतु ॥५॥

इन्द्रवज्रा–सपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र सामान्यतपोधनानां। देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शांतिं भगवान् जिनेन्द्रः ॥६॥

स्रग्धरावृत्तं–क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः। काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यांतु नाशं। दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्मभूज्जीवलोके, जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि ॥७॥

अनुष्टुप–प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञानभास्कराः।
कुर्वंतु जगतः शांतिं वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥८॥
प्रथम करणं चरणं द्रव्यं नमः।

अथेष्ट प्रार्थना।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः। सद्वृत्तानां गुणगणकथादोषवादे च मौनं। सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे। संपद्यंतां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥ ९ ॥

आर्यावृत्तं—तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनं। तिष्ठतु जिनेंद्र ! तावद्यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः ॥१०॥ अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं। तं खमउ णाणदेव य मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु ॥११॥ दुःक्खखओ कम्मखओ, समाहिमरणं च वोहिलाहो य। मम होउ जगदवंधव तव, जिणवर चरणसरणेण ॥२॥

संस्कृतप्रार्थना।

त्रिभुवनगुरो ! जिनेश्वर ! परमानंदैककारणं कुरुस्व। मयि किंकरेत्र करुणा यथा तथा जायते मुक्तिः ॥१३॥ निर्विण्णोहं नितरामर्हन् बहुदुक्खया भवस्थित्या। अपुनर्भवाय भवहर ! कुरु करुणामत्र मयि दीने ॥१४॥ उद्धर मां पतितमतो विषमाद् भवकूपतः कृपां कृत्वा। अर्हन्नलमुद्धरणे त्वमसीति पुनः पुनर्वच्मि ॥१५॥ त्वं कारुणिकः स्वामी त्वमेव शरणं जिनेश ! तेनाहं। मोहरिपुदलितमानं फूत्करणं तव पुरः कुर्वे ॥१६॥ ग्रामपतेरपि करुणा परेण केनाप्युपद्रुते पुंसि। जगतां प्रभो ! न किं तव, जिन ! मयि खलु कर्मभिः प्रहते ॥७१॥ अपहर मम जन्म दयां, कृत्वैत्येकवचसि वक्तव्यं। तेनानिदग्ध इति मे देव ! बभूव प्रलापित्वम् ॥ १८ ॥ तव जिनवर चरणाब्जयुगं करुणामृतशीतलं यावत्। संसारतापतप्तः करोमि हृदि तावदेव सुखी ॥१९॥ जगदेकशरण भगवन् ! नौमि श्रीपद्मनंदितगुणौघ ! किं बहुना कुरु करुणामत्र जने शरणमापन्ने ॥२०॥ (परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्)

१४-अथ विसर्जनपाठ।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया। तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर॥ आह्वानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनं। विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥२॥ मंत्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं तथैव च। तत्सर्वं क्षम्यतां देव रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥३॥ आहूता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमं। ते मयाऽभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यांतु यथास्थितिं॥

१५-अथ भाषास्तुतिपाठ।

तुम तरणतारण भवनिवारण, भविकमन आनंदनो। श्रीनाभिनंदन जगतवंदन, आदिनाथ निरंजनो ॥१॥ तुम आदिनाथ अनाद देवकि सेय पदपूजा करूँ। कैलाश गिरिपर रिषभजिनवर, पदकमल हिरदै धरूँ ॥२॥ तुम अजितनाथ अजीत जीते, अष्टकर्म महाबली। इह विरुद सुनकर सरन आयो, कृपा कीज्यो नाथ जी ॥३॥ तुम चन्द्र-वदन सु चन्द्रलच्छन चन्द्रपुरि परमेश्वरो। महासेननन्दन जगतवन्दन चन्द्रनाथ जिनेश्वरो ॥४॥ तुम शांति पांचक-ल्याण पूजों, शुद्धमनवचकाय जू। दुर्भिक्ष चोरी पापनाशन विघन जाय पलाय जू ॥५॥ तुम बालब्रह्म विवेकसागर, भव्यकमल विकाशनो। श्रीनेमिनाथ पवित्र दिनकर, पाप-तिमिर विनाशनो ॥६॥ जिन तजी राजुल राजकन्या, काम-सैन्या वश करी। चारित्ररथ चढ़ि भये दूलह, जाय शिव-

रमणी वरी ॥७॥ कन्दर्प दर्प सुसर्पलच्छन, कमठ शठ निर्मद कियो। अश्वसेननन्दन जगतवंदन सकलसँग मंगल कियो ॥ ८ ॥ जिन धरी बालकपणे दीक्षा, कमठमानविदारकै। श्रीपार्श्वनाथ जिनेद्रके पद, मैं नमों शिरधारके ॥९॥ तुम कर्मघाता मोक्षदाता, दीन जानि दया करो। सिद्धार्थनंदन जगत वंदन, महावीर जिनेश्वरो॥ १० ॥ छत्र तीन सोहैं सुरनर मोहैं, वीनती अवधारिये। करजोड़ि सेवक वीनवै प्रभु आवागमन निवारिये॥ ११ अब होउ भवभव स्वामि मेरे, मैं सदासेवक रहों। करजोड़ यों वरदान मांगूं, मोक्षफल जावत लहों ॥ १२ ॥ जो एक माहीं एक राजत एकमाहिं अनेकनो। इक अनेककि नहीं संख्या नमूँ सिद्ध निरंजनो ॥ १३ ॥

चौ०— मैं तुम चरण कमलगुण गाय। बहुविधि भक्ति करी मनलाय ॥ जनम जनम प्रभु पाऊँ तोहि। यह सेवाफल दीजे मोहि ॥ १४ ॥ कृपा तिहारी ऐसी होय। जामन मरन मिटावो मोय॥ वार वार मैं विनती करूँ। तुम सेयां भवसागर तरूँ॥ १५ ॥ नाम लेत सब दुख मिटजाय। तुमदर्शन देख्यां प्रभु आय॥ तुम हो प्रभु देवनके देव। मै तो करूँ चरण तव सेव॥ १६ ॥ मै आयो पूजनके काज। मेरो जन्म सफल भयो आज। पूजाकरके नवाऊं शीश। मुझ अपराध छमहु जगदीश॥ १७॥

दोहा—सुखदेना दुख मेटना, यही तुम्हारी वान। मो

गरीबकी बीनती, सुन लीज्यो भगवान॥ पूजन करते देवकी, आदिमध्य अवसान। सुरगनके सुख भोगकर, पावै मोक्ष निदान॥ १९॥ जैसी महिमा तुम विषै, और धरै नहिं कोय। जो सूरजमें जोति है, तारनमें नहिं सोय॥ २०॥ नाथ तिहारे नामतैं, अघ छिनमाहिं पलाय। ज्यों दिनकर परकाशतै, अंधकार विनशाय॥ २१॥ बहुत प्रशंसा क्या करूं मैं प्रभु बहुत अजान। पूजाविधि जान्यो नहीं, सरन राखि भगवान॥ २२॥ इति समाप्तं॥

पंचम अध्याय।

पर्वपूजा-संग्रह।

९६—देवपूजा भाषा।

दोहा—प्रभु तुम राजा जगतके; हमें देय दुख मोह।
तुम-पद-पूजा करत हूं, हमपै करुणा होहि॥ १॥

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीजिनेन्द्रभगवन्! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीजिनेन्द्रभगवन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीजिनेन्द्रभगवन्! अत्र मम सन्निहतो भव भव। वषट्।

बहु तृषा सतायो, अति दुख पायो, तुमपै आयो जल लायो।

उत्तम गंगाजल, शुचि अतिशीतल प्राशुक निर्मल गुनगायो॥
प्रभु अन्तरजामी, त्रिभुवननामी, सबके स्वामी, दोष हरो।
यह अरज सुनीजै, ढील न कीजै, न्याय करीजै दया धरो॥
ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीजिनेभ्यो जलं नि०।

अघ तपत निरन्तर, अगनिपटन्तर, मो उर अन्तर खेद करयो। लै बावन चन्दन, दाहनिकन्दन, तुमपदवन्दन हरष धरयो॥ प्रभु०॥ चंदनं॥ २॥

औगुन दुखदाता, कह्यो न जाता, मोहि असाता बहुत करै। तन्दुल गुनमण्डित, अमल अखंडित, पूजत पंडित, प्रीति धरै॥ प्रभु०॥ अक्षतान्॥३॥

सुरनरपशुको दल, काम महाबल, बात कहत छल मोह लिया। ताके शर लाऊं, फूल चढ़ाऊं, भक्ति बढ़ाऊं, खोल हिया॥ प्रभु०॥ पुष्पं॥ ४॥

सब दोषनमाहीं, जासम नाहीं, भूख सदाहीं, मो लागै। सद घेवर बावर, लाडू बहुधर, थार कनक भर, तुम आगै॥ प्रभु०॥ नैवेद्य॥५॥

अज्ञान महातम, छाय रह्यो मम, ज्ञान ढक्यो हम, दुख पावैं। तम मेटनहारा, तेज अपारा, दीप सँवारा, जस गावैं॥ प्रभु०॥ दीपं॥ ६॥

इह कर्म महावन, भूल रह्यो जन, शिवमारग नहिं पावत है। कृष्णागरुधूपं, अमलअनूपं, सिद्धस्वरूपं ध्यावत है॥ प्रभु०॥ धूपं॥ ७॥

सबतै जोरावर, अन्तराय अरि, सुफल विघ्नकरि डारत हैं। फलपुंज विविध भर, नयन मनोहर, श्रीजिनवरपद धारत हैं ॥ प्रभु० ॥ फलं ॥८॥

आठों दुखदानी, आठनिशानी, तुम ढिग आनि निवारन हो। दीननिस्तारन, अधम उधारन, 'द्यानत' तारन, कारन हो ॥ प्रभु० ॥ अर्घं ॥९॥

जयमाला।

दोहा—गुण अनन्तको कहि सकै, छियालीस जिनराय।
प्रगट सुगुन गिनती कहूं, तुम ही होहु सहाय ॥ १ ॥

चौपाई—एक ज्ञान केवल जिनस्वामी। दो आगम अध्यातम नामी ॥ तीन काल विधि परगट जानी। चार अनँत चतुष्टय ज्ञानी ॥२॥ पंच परावर्तन परकासी। छहों दरवगुनपरजायभासी ॥ सातभंगवानी-परकाशक । आठों कर्म महारिपुनाशक ॥३॥ नवतत्त्वनके भाखनहारे। दशलक्षनसों भविजनतारे ॥ ग्यारह प्रतिमाके उपदेशी। बारह सभा सुखी अकलेशी ॥ ४ ॥ तेरहविध चारितके दाता। चौदह मारगनाके ज्ञाता। पन्द्रह भेद प्रमाद निवारी। सोलह भावन फल अविकारी ॥ ५ ॥ तारे सत्रह अंक भरत भुव। ठारै थान दान दाता तुव ॥ भाव उनीस जु कहे प्रथम गुन। वीस अंक गणधरजीकी धुन ॥६॥ इकइस सर्वघातविधि जानै। बाइस बंध नवम गुणथानै ॥ तेइस विधि अरु रतन नरेश्वर। सो पूजै चौबीस जिनेश्वर ॥ ७ ॥ नाश

पचीस कषाय करी हैं। देशघाति छब्वीस हरी हैं॥ तत्त्व दरव सत्ताइस देखे। मति विज्ञान अठाइस पेखे ॥८॥ उनतिस अंक मनुष सब जाने। तीस कुलाचल सर्व बखाने। इकतिस पटल सुधर्म निहारे। बत्तिस दोष समायिक टारे ॥९॥ तेतिस सागर सुखकर आये। चौंतिस भेद अलब्धि बताये॥ पैंतिस अच्छर जप सुखदाई। छत्तिस कारन रीति मिटाई ॥१०॥ सैंतिस मग कहि ग्यारह गुनमें। अठतिस पद लहि नरक अपुनमें ॥ उनतालीस उदीरन तेरम। चालिस भवन इन्द्र पूजैं नम ॥११॥ इकतालीस भेद आराधन। उदै वियालिस तीर्थंकर भन ॥ तेतालीस बंध ज्ञाता नहिं। द्वार चवालिस नर चौथेमहिं॥ १२ ॥ पैतालीस पल्यके अच्छर। छियालीस बिन दोष मुनीश्वर॥ नरक उदै न छियालिस मुनिधुन। प्रकृत छियालिस नाश दशमगुन ॥१३॥ छियालीस घन राजु सात भुव। अंक छियालीस सरसों कहि कुव॥ भेद छियालिस अन्तर तपवर। छियालीस पूरन गुन जिनवर ॥१४॥

अडिल्ल—मिथ्या तपन निवारन चन्द समान हो। मोहतिमिर वारन को कारन भानु हो॥ कामकषाय मिटावन मेघ मुनीश हो। 'द्यानत' सम्यकरतनत्रय गुनईश हो॥१५॥

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेंद्रेभ्यः पूर्णार्घं०।

१७—सरस्वतीपूजा।

दोहा—जनम जरा मृतु छय करै, हरै कुनय जडरीति।

भवसागरसों ले तिरै, पूजै जिनवचप्रीति ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

छीरोदधिगंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा, सुखसंगा।
भरि कंचन झारी, धार निकारी, तृषानिवारी, हित चंगा॥
तीर्थंकरकी धुनि, गणधरने सुनि, अंग रचे चुनि, ज्ञानमई।
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी, पूज्य भई॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

करपूर मँगाया चन्दन आया, केशर लाया, रंग भरी।
शारदपद वन्दों, मन अभिनंदों, पाप निकंदों, दाह हरी ॥ तीर्थ० ॥ चंदनं ॥२॥

सुखदास कमोदं, धारकमोदं, अति अनुमोदं चंदसमं।
बहु भक्ति बढाई, कीरति गाई, होहु सहाई, मात ममं ॥ तीर्थ० ॥ अक्षतान् ॥३॥

बहुफूल सुवासं, विमलप्रकाशं, आनँदरासं, लाय धरे।
मम काम मिटायो, शील बढायो, सुखउपजायो दोष हरे ॥ तीर्थ० ॥ पुष्पं ॥४॥

पकवान बनाया, बहुघृत लाया सब विध भाया, मिष्ट महा। पूजूँ थुति गाऊँ, प्रीति बढाऊँ, क्षुधा नशाऊँ, हर्ष लहा ॥ तीर्थ० ॥ नैवेद्यं ॥५॥

करि दीपक-जोतं, तमछय होतं, ज्योति उदोतं, तुमहिं चढै। तुम हो परकाशक, भरमविनाशक हम घट भासक, ज्ञान बढै ॥ तीर्थंकर० ॥ दीपं० ॥६॥

शुभगंध दशोंकर, पावकमें धर, धूप मनोहर खेवत हैं। सब पाप जलावैं, पुण्य कमावै, दास कहावै, सेवत हैं ॥ तिर्थंकरकी० ॥ धूपं० ॥ ७ ॥

बादाम छुहारी, लोंग सुपारी, श्रीफल भारी, ल्यावत हैं। मनवांछित दाता, मेट असाता, तुम गुन माता, ध्यावत हैं ॥ तीर्थंकरकी ॥ फलं ० ॥ ८ ॥

नयननसुखकारी, मृदुगुनधारी, उज्ज्वलभारी, मोल धरैं। शुभगंधसम्हारा, वसननिहारा, तुमतन धारा ज्ञान करैं ॥ तीर्थंकरकी ॥ वस्त्रम् ॥ ९ ॥

जलचंदन अच्छत, फूल चरू चत, दीप धूप अति फल लावैं। पूजाको ठानत, जो तुम जानत, सो नर द्यानत, सुख पावैं ॥ तीर्थंकरकी० ॥ अर्घम् ॥ ॥१०॥

अथ जयमाला

सोरठा—ओंकार धुनिसार, द्वादशांगवाणी विमल।
नमों भक्ति उर धार, ज्ञान करै जड़ता हरै॥

पहलो आचारांग वखानो। पद अष्टादश सहस प्रमानो। दूजो सूत्रकृतं अभिलाषं। पद छत्तीस सहस गुरु भाषं ॥ तीजो ठाना अंग सुजानं। सहस बियालिस पदसरधानं ॥ चौथो समवायांग निहारं। चौसठ सहस लाख इकधारं ॥ २ ॥

पंचम व्याख्याप्रज्ञपति दरसं । दोय लाख अट्ठाइस सहसं ॥ छट्ठो ज्ञातृकथा विसतारं । पांचलाख छप्पन हज्जारं ॥ ३ ॥ सप्तम उपासकाध्ययनंगं । सत्तर सहस ग्यारलख भंगं । अष्टम अंतकृतं दस ईसं । सहस अठाइस लाख तेईसं ॥ ४ ॥ नवम अनुत्तरदश सुविशालं । लाख बानवै सहस चवालं । दशम प्रश्नव्याकरण विचारं । लाख तिरानव सोल हजारं ॥ ५ ॥ ग्यारम सूत्रविपाक सु भाखं, एक कोड़ चौरासी लाखं ॥ चार कोड़ि अरु पंद्रह लाखं । दो हजार सब पद गुरुशाखं ॥६॥ द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं । इकसौ आठ कोडि पन वेदं ॥ अडसट लाख सहस छप्पन हैं । सहित पंथपद मिथ्या हन हैं ॥ ७ ॥ इक सौ बाहर कोडि बखानो । लाख तिरासी ऊपर जानो ॥ ठावन सहस पंच अधिकाने । द्वदश अंग सर्व पद माने ॥ ८ ॥ कोडि इकावन आठ हि लाखं । सहस चुरासी छहसौ भाखं ॥ साढ़ेइकीस सिलोक बताये । एक एक पदके ये गाये ॥ १० ॥

घत्ता—जा वानीके ज्ञानमैं, सूझै लोक अलोक ।
'द्यानत' जग जयवंत हो, सदा देत हों धोक ॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतादेव्यै महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

१८—गुरुपूजा ।

दोहा—चहुंगति दुखसागरविषैं, तारनतरन जिहाज ।
रतनत्रयनिधि नगन तन, धन्य महा मुनिराज ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह ! अत्रावतरावतर । संवौ-

षट्। ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

शुचि नीर निर्मल छीरदधिसम, सुगुरु चरन चढाइया। तिहुँधार तिहुँ गददार स्वामी, अति उछाह बढ़ाइया॥ भवभोगतनवैराग्य धार, निहार शिवतप तपत हैं। तिहुँ जगतनाथ अधार साधु सु, पूज नित गुन जपत हैं॥१॥

ओं ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाम जलं॥

करपूर चंदन सलिलसौं घसि, सुगुरुपद पूजा करौं। सब पापताप मिटाय स्वामी, धरम शीतल विस्तरौं॥भवभोग०॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो भवातापविनाशनाय चंदनं० ॥२॥

तन्दुल कमोद सुवास उज्जल, सुगुरुपगतर धरत हैं। गुनकार औगुनहार स्वामी, वंदना हम करत हैं ॥ भवभोग० ॥३॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि० ॥

शुभफूलरासप्रकाश परिमल, सुगुरु पायनि परत हों। निरवार मारउपाधि स्वामी, शील दृढ उर धरत हों॥ भवभो० ॥४॥

ओं ह्रीं आचर्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यः कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं० ॥४॥

पकवान मिष्ट सलौन सुदंर, सुगुरु पायनि प्रीति सौं। धर छुधारोग विनाश स्वामी, सुथिर कीजे रीतिसौं॥ भवभोग०॥

ओं ह्रीं आचर्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं० ॥५॥

दीपकउदोत सजोत जगमग, सुगुरुपद पूजों सदा। तमनाश ज्ञानउजास स्वामी, मोहि मोह न हो कदा॥ भवभोग० ॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं०॥

बहु अगर आदि सुगंध खेऊँ, सुगुण पद पद्महिं खरे। दुख-पुंजकाठ जलाय स्वामी, गुण अछय चितमैं धरे॥ भवभोग०॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं नि० ॥७॥

भर थार पूग बदाम बहुविध, सुगुरुक्रम आगैं धरों। मंगल महाफल करो स्वामी, जोर कर विनती करों॥ भवभोग० ॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि० ॥८॥

जल गंध अक्षत फूलनेवज,दीप धूप फलावली। द्यानत सुगुरुपद देहु स्वामी, हमहिं तार उतावली॥ भवभोग० ॥ ९॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि० ॥९॥

अथ जयमाला।

दोहा—कनककामिनीविषयवश, दीसै सब संसार। त्यागी वैरागी महा, साधुसुगुनभंडार॥ १ ॥ तीन घाटि नव-कोड सब, बंदौं सीस नवाय। गुन तिन अट्ठाईस लों कहूं आरती गाय॥ २ ॥ वेसरी छंद—एक दया पालैं मुनिराजा रागदोष द्वै हरन परं। तीनोंलोक प्रगट सब देखैं, चारौं आराधन निकरं॥ पंच महाव्रत दुद्धर धारै, छहों दरव जानैं सुहितं। सात भंगवानी मन लावै, पावैं आठ रिद्ध उचितं॥३॥ नवों पदारथ विधिसौं भाखैं, बंध दशों चूरन करनं। ग्यारह शंकर जानै मानै, उत्तम बारह व्रत धरनं॥ तेरह भेद काठिया चूरै, चौदह गुनथानक लखियं। महाप्रमाद पंचदश नाशैं, सोलकषाय सबै नशियं॥ ४ ॥ बंधादिक सत्रह सब

चूरैं, ठारह जन्मन मरन मुनं। एक समय उनईस परीसह, बीस प्ररूपनिमैं निपुणं ॥ भाव उदीक इकीसों जानें, बाइस अभखन त्याग करं। अहिमिंदर तेईसों वेदै, इन्द्र सुरग चौबीस वरं ॥ ५ ॥ पच्चीसों भावन नित भावैं, छब्बिस अंग उपंग पढ़ैं। सत्ताईसों विषय विनाशैं, अट्ठाईसों गुण सु पढैं। शीत समय सर चौहटवासी, ग्रीषमगिरिशिर जोग धरं। वर्षा वृक्ष तरै थिर ठाढैं, आठ करम हनि सिद्ध वरं ॥६॥

दोहा—कहों कहालों भेद मैं, बुध थोरी गुन भूर।
'हेमराज' सेवक हृदय, भक्ति करो भरपूर ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं आचर्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

११—अकृत्रिम चैत्यालयपूजा।

आठ किरोड़ रु छप्पन लाख। सहस सत्याचण चतुशत भाख॥
जोड़ इक्यासी जिनवर थान। तीनलोक आह्वान करान॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयानि अत्र अवतरत अवतरत। संवौषट्। ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयानि अत्र तिष्ठत तिष्ठत। ठः ठः। ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयानि अत्र मम सन्निहितो भवत भवत। वषट्।

क्षीरोदधिनीरं उज्ज्वल सीरं, छान सुचीरं, भरि झारी। अति मधुर लखावन, परम सु पावन, तृषा बुझावन, गुण भारी॥ वसुकोटि सु छप्पन लाख संत्तणव, सहस चार-

सत इक्यासी। जिनगेह अकीर्तिम तिहुँजगभीतर, पूजत पद ले अविनाशी ॥ १ ॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

मलयागर पावन, चंदन बावन, तापबुझावन घसि लीनो। धरि कनक कटोरी द्वैकरजोरी, तुमपद ओरी चित दीनो ॥ वसु० ॥ चंदनं ॥ २ ॥

बहुभांति अनोखे, तंदुल चोखे, लखि निरदोखे, हम लीने। धरि कंचनथाली, तुमगुणमाली, पुंजविशाली, कर दीने ॥ वसु० ॥ अक्षतान् ॥ ३ ॥

शुभ पुष्प सुजाती है बहुभांती, अलि लिपटाती लेय वरं। धरि कनकरकेवी, करगह लेवी, तुमपद जुगकी भेट धरं ॥ वसु० ॥ पुष्पं ॥ ४ ॥

खुरमा जु गिंदोड़ा, बरफी पेड़ा, घेवर मोदक भरि थारी। विधिपूर्वक कीने, घृतपयभीने, खँडमै लीने, सुखकारी ॥ वसु० ॥ नैवेद्यं ॥ ५ ॥

मिथ्यात महातम, छाय रह्यो हम, निजभव परणति नहिं सूझै। इहकारण पाकैं, दीप सजाकै, थाल धराकै, हम पूजैं ॥ वसु० ॥ दीपं ॥ ६ ॥

दशगंध कुटाकै, धूप बनाकैं, निजकर लेकैं, धरि ज्वाला। तसु धूम उडाई, दशदिश छाई, बहु महकाई, अति आला ॥ वसु० ॥ धूपं ॥ ७ ॥

बादाम छुहारे, श्रीफल धारे, पिस्ता प्यारे, दाख वरं। इन आदि अनोखे, लखि निरदोखे, थाल पजोखे, भेट धरं ॥ वसु० ॥ फलं ॥ ८ ॥

जल चंदन तंदुल कुसुम रु नेवज, दीप धूप फल थाल रचौं ॥ जयघोष कराऊँ, बीन बजाऊँ, अर्घ चढ़ाऊँ, खूब नचौं ॥ वसु० ॥ अर्घ ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घ। चौपाई।

अधोलोक जिन आगमसाख। सात कोडि अरु वहतर लाख ॥
श्रीजिनभवन महा छवि देइ। ते सब पूजौं वसुविध लेइ ॥१॥

ओं ह्रीं अधोलोकसंबंधिसप्तकोटिद्विसप्ततिलक्षाकृत्रिमश्रीजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

मध्यलोकजिनमंदिरठाठ। साढे चारशतक अरु आठ ॥
ते सब पूजौं अर्घ चढाय। मन वच तन त्रयजोग मिलाय॥२॥

ओं ह्रीं मध्यलोकसंबंधिचतुःशताष्टपंचाशत् श्रीजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घ ॥

अडिल्ल—उर्ध्वलोकके मांहि भवनजिनजानिये। लाख चुरासी सहस सत्याणव मानिये ॥ तापै धरि तेईस जजौ शिर नायकैं। कंचन थालमझार जलादिक लायकैं ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं उर्ध्वलोकसंबंधिचतुरशीतिलक्षसप्तनवतिसहस्रत्रयोविंशतिश्रीजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घ्यं० ॥३॥

वसुकोटि छप्पनलाख ऊपर, सहसत्याणव मानिये। सतच्यारपै गिनले इक्यासी,भवन जिनवर जानिये ॥ तिहुं-

लोकभीतर सासते, सुर असुर नर पूजा करै। तिन भवनकों, हम अर्घ लेकैं, पूजि हैं जगदुख हरैं ॥४॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

दोहा—अब वरणों जयमालिका सुनो भव्य चितलाय।
जिनमंदिर तिहुँलोकके, देहु सकल दरसाय ॥ १ ॥

पद्धरि छंद–जय अमल अनादि अनंत जान। अनिमित जु अकीर्तम अचल थान ॥ जय अजय अखंड अरूपधार। षटद्रव्य नहीं दीसै लगार ॥ २ ॥ जय निराकार अविकार होय। राजत अनंत परदेश सोय ॥ जे शुद्ध सुगुण अवगाह पाय। दशदिशामाहिं इहविध लखाय ॥ ३ ॥ यह भेद अलोकाकाश जान। तामध्य लोक नभ तीन मान ॥ स्वयमेव बन्यो अविचल अनंत। अविनाशि अनादि जु कहत संत ॥ ४ ॥ पुरषा अकार ठाढ़ो निहार। कटि हाथ धारि द्वै पग पसार ॥ दच्छिन उत्तरदिशि सर्व ठौर। राजू जु सात भाख्यो निचोर ॥ ५ ॥ जय पूर्व अपर दिश घाटबाधि। सुन कथन कहूं ताको जुसाधि ॥ लखि श्वभ्रतलै राजू जु सात। मधिलोक एक राजू रहात ॥ ६ ॥ फिर ब्रह्मसुरग राजू जु पांच। भूसिद्ध एक राजू जु सांच ॥ दश चार ऊंच राजू गिनाय। षट्द्रव्य लये चतुकोण पाय ॥ ७॥ तसु वातवलय लपटाय तीन। इह निराधार लखियो प्रवीन ॥ त्रसनाड़ी तामधि जान खास। चतुकोन एक राजू जु व्यास॥

राजू उतंग चौदह प्रमान। लखि स्वयंसिद्ध रचना महान॥ तामध्य जीव त्रस आदि देय। निज थान पाय तिष्ठें भलेय॥ ९॥ लखि अधो भागमें श्वभ्रथान। गिन सात कहे आगम प्रमान॥ षट थानमाहिं नारकि बसेय। इक श्वभ्रभाग फिर तीन भेय॥ १०॥ तसु अधोभाग नारकि रहाय। फुनि ऊर्ध्वभाग द्वय थान पाय॥ वस रहे भवन व्यंतर जु देव। पुर हर्म्य छजै रचना स्वमेव॥ ११॥ तिह थान गेह जिनराज भाख। गिन सातकोटि वहतरि जु लाख॥ ते भवन नमों मनवचनकाय। गति श्वभ्रहरनहारे लखाय॥ १२॥ पुनि मध्यलोक गोला अकार। लखि दीप उदधि रचना विचार॥ गिन असंख्यात भाखे जु संत। लखि संभुलन सबके जु अंत॥ १३॥ इक राजुव्यासमैं सर्व जान। मधिलोक तनों इह कथन मान॥ सबमध्यदीप जंबू गिनेय। त्रयदशम रुचिकवर नाम लेय॥ १४॥ इन तेरहमै जिनधाम जान। शतचार अठावन है प्रमान॥ खग देव असुर नर आय आय। पद पूज जांय शिर नाय नाय॥ १५॥ जय उर्ध्वलोकसुर कल्पवास। तिहँ थान छैजै जिन भवन खास॥ जय लाख चुरासीपै लखेय। जय सहससत्याणव और ठेय॥ १६॥ जय वीसतीन फुनि जोड देय। जिनभवन अकीर्तम जान लेय॥ प्रतिभवन एक रचना कहाय। जिनबिंब एकसत आठ पाय॥ १७॥ शतपंच धनुष उन्नत लसाय। पद्मासनजुत वर ध्यान

लाय ॥ शिर तीनछत्र शोभित विशाल । त्रय पादपीठ मणिजडित लाल ॥ १८ ॥ भामंडलकी छवि कौन गाय। फुनि चँवर ढुरत चौसठि लखाय ॥ जय दुंदाभिरव अद-भुत सुनाय । जय पुष्पवृष्टि गंधोदकाय ॥ १९ ॥ जय तरु अशोक शोभा भलेय । मंगल विभूति राजत अमेय । घट तूप छजै मणिमाल पाय । घटधूप धूम्र दिग सर्व छाय ॥२०॥ जय केतुपँक्ति सोहै महान । गंधर्वदेवगन करत गान ॥ सुर जनमलेत लखि अवधि पाय । तिहँ थान प्रथम पूजन कराय जिनगेहतणो वरनन अपार । हम तुच्छबुद्धि किम लहत पार॥ जय देव जिनेसुर जगत भूप । नमि 'नेम' मँगै निज देहरूप ॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशी-तिअकृत्रिमश्रीजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥२३॥

तिहुँ जगभीतर श्रीजिनमंदिर, बने अकीर्त्तम अति सुख-दाय । नर सुर खग करि वंदनीक जे, तिनको भविजन पाठ कराय ॥ धनधान्यदिक संपति तिनके, पुत्रपौत्र सुख होत भलाय ॥ चक्री सुर खग इन्द्र होयकै, करम नाश सिवपुर सुख थाय ॥२४॥ (इत्याशीर्वाद-पुष्पांजलिंक्षिपेत्)

१००—अथ सिद्धपूजा भाषा ।

छप्पय—स्वयंसिद्ध जिनभवन रतनमय बिंब विराजैं । नमत सुरासुरभूप दरश लखि रवि शशि लाजैं ॥ चारिशतक-पंचासआठ भुवलोक बताये । जिनपद पूजनहेत धारि

भविमंगल गाये ॥ मंगलमय मंगलकरन शिवपद दायक जानिकैं ॥ अह्वनन करिकै नमूं सिद्धसकल उर आनिकैं ॥

ओं ह्रीं अनंतगुणविराजमानसिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर। संवौषट् ओं ह्रीं अनंतगुणविराजमानसिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं अनंतगुणविराजमान सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अथ अष्टकं (चाल—नंदीश्वरकी)

उज्जल जल शीतल लाय, जिनगुन गावत हैं। सब सिद्धनकौं सुचढाय, पुन्य बढावत हैं ॥ सम्यक्त्व सु छायक जान, यह-गुण पइयतु हैं। पूजौं श्रीसिद्धमहान, बलिबलि जइयतु हैं ॥

ओं ह्रीं णमोसिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने (सम्मत्त, णाण, दंसण, वीयत्व, सुहमत्त, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, अव्याबाधत्व अष्टगुण सहिताय) जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

करपूर सुकेश रसार, चंदन सुखकारी। पूजों श्रीसिद्ध निहार, आनँद मनधारी॥ सब लोकालोक प्रकाश, केवलज्ञान जगौ। इह ज्ञान सुगुण मनभास, निजरस मांहिपगौ ॥ चंदनं ॥

मुक्ताफलकी उनमान, अच्छित धोय धरे। अक्षयपद पापति जान,पुन्यभंडार भरै ॥ जगमें सुपदारथ सार, ते सब दरसावे। सो सम्यकदरसन सार, यह गुण मन भावै ॥ अक्षतान् ॥

सुंदर सुगुलाव अनूप, फूल अनेक कहे। श्रीसिद्ध सु पूजत भूप, बहु विधि पुन्य लहे ॥ तहां वीर्य अनंतौ सार, यह गुण मन आनौ। संसार-समुदतैं पार, कारक प्रभु जानौ ॥पुष्पं॥

फैनी गोजा पकवान, मोदक सरस बने। पूजों श्रीसिद्ध

महान, भूख-विथा जु हने ॥ झलकै सब एकहि बार, ज्ञेय कहे जितने । यह सूक्षमता गुण सार, सिद्धनकौं पूजौं ।नैवेद्यं॥ दीपककी जोति जगाय, सिद्धनकौं पूजौं। कर आरंति सनमुख जाय, निरभय पद हूजौं ॥ कछु घाटि न बाधिप्रमाण, गुरुलघु गुन राखौ हम शीस नवावत आन तुम गुण मुख भाखौ। दीपं वर धूप सुदशविध लाय, दश दिश गंधवरै। वसु करम जरावत जाय, मानौ नृत्य करै ॥ इक सिद्धमै सिद्ध अनंत, सत्ता सब पावैं। यह अवगाहन गुण संत, सिद्धनके गावैं ॥ धूपं लै फल उत्कृष्ट महान, सिद्धनकौ पूजौ। लहि मोक्ष परमसुखथान, प्रभु सम तुम हूजो ॥ यह गुणबाधाकरि हीन, बाधा नास भई। सुख अव्याबाध सुचीन,शिवसुंदरि सु लई। फलं॥ जल फल भरि कंचन थाल, अरचन करजोरी । तुम सुनियौ दीनदयाल, विनती है मोरी॥ करमादिक दुष्ट महान, इनकौं दूरि करं । तुम सिद्ध महासुख दान, भवभव दुःख हरौ ॥ अर्घ्यं ॥

अथ जयमाला।

दोहा—नमौं सिद्ध परमातमा, अदभुत परम रसाल।
तिन-गुण अगम अपार है, सरस रची जयमाल ॥१॥

छन्द पद्धरी—जय जय श्रीसिद्धनकौं प्रणाम। जय शिवसुख-सागरके सुधाम। जय बलि बलि जात सुरेश जान। जय पूजत तनमन हरष आन ॥२॥ जय छायकगुण सम्यक्त्वलीन। जय केवलज्ञान सगुण नवीन। जय लोका-

लोक प्रकाशवान। यह केवल अतिशय हिये आन ॥ ३ ॥ जय सरव तत्त्व दरसै महान। सोइ दरसन-गुण तीजौ सु जान। जयं वीर्य अनंतो है अपार। जाकी पटतर दूजो न सार ॥ ४ ॥ जय सूक्षमतागुण हिये धार। सब ज्ञेय लखे एकहिसुवार। इक सिद्धमें सिद्ध अनंत जान। अपनी अपनी सत्ता प्रमान॥ ५ ॥ अवगाहन-गुण अतिशय विशाल। तिनके पद वंदौं नमितभाल। कछु घाटि न बाध कहे प्रमान। सो अगुरुलघुगुणधर महान ॥ ६ ॥ जय बाधा-रहित विराजमान। सोई अव्याबाध कहो बखान। ए वसु गुण हैं विवहार संत। निहचैं जिनवर भाखे अनंत ॥ ७ ॥ सब सिद्धनके गुण कहे गाय। इन गुणकरि शोभित हैं बनाय। तिनकौं भविजन मनवचनकाय। पूजत वसुविधि अति हरष लाय ॥८॥ सुरपति फणपति चक्री महान। बलहरि प्रतिहरि मनमथ सुजान। गणपति मुनिपति मिलि धरत ध्यान। जय सिद्धशिरोमणि जगप्रधान ॥९॥

ऐसे सिद्ध महान, तिन गुण-महिमा अगम है।
बरनन कह्यो बखान, तुच्छ बुद्धि भविलालजू ॥ १० ॥

ओं ह्रीं णमोसिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने सर्वसुखप्राप्ताय महार्घं निर्वपामी० ॥

करताकी यह वीनती, सुनो सिद्धभगवान।
मोहिबुलावो आपु ढिग, यही अरज उर आन ॥इत्याशीर्वादः॥

१०१—अथ संस्कृत पंचमेरु समुच्चय पूजा।

संवौषडाहूय निवेश्य ठाभ्यां, सान्निध्यमानीय वषड्पदेन।

श्रीपंचमेरुस्थजिनालयानां यजाम्यशीतिप्रतिमाः समस्ताः॥

ओं ह्रीं पंचमेरुस्थितजिनचैत्यालयस्थजिनबिंब! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अथाष्टकं।

सुसिंधुमुख्याखिलतीर्थसार्था,-म्बुभिः शुभांभोजरजोभिरामैः।
श्रीपंचमेरुस्थजिनालयानां, यजाम्यशीतिप्रतिमाः समस्ताः॥

आद्यः सुदर्शनो मेरुर्विजयश्चाचलस्तथा।
चतुर्थो मंदरो नाम विद्युन्माली सुपंचमः॥

ओं ह्रीं पंचमेरुस्थचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं०

कर्पूरपूरस्फुरदत्युदारैःसौरभ्यसारैर्हरिचंदनाद्यैः।श्री०॥चंदनं॥

शाल्यक्षतैः कैरवकुड्मलानां गुणत्रयेण भ्रममावहद्भिः।
श्रीपंचमेरुस्थजिनालयानां, यजाम्यशीति०॥ अक्षतान्॥४॥

प्रधानसंतानकमुख्यपुष्पसुगंधिताग्च्छदतुच्छभृंगैः। श्री०पुष्पं

सद्यस्तनैः क्षीरघृतेक्षुमुख्यैःसद्द्रव्यभव्यैश्चरुभिःसुगंधैः।
श्रीपंचमेरुस्थजिनालयानां यजाम्यशीति०॥ नैवेद्यं॥६॥

तमोविनाशप्रकटीकृतार्थैर्दीपैरशेषज्ञवचोनुरूपैः।श्री०॥दीपं॥

स्वपापरक्षःपरिणाशधूम्रैरिवोरुकृष्णागरुधूपधूम्रैः। श्री०॥धूपं॥

नारिंगमुख्याखिलवृक्षपक्वफलैः सुगंधैः सरसैः सुवर्णैः।श्री०फलं

वार्गंधपुष्पाक्षतदीपधूपनैवेद्यदूर्वाफलवद्भिरर्घैः।श्री०॥अर्घ॥

अथ जयमाला।

जिनमज्जणपीठं मुनिगणईठं असी चैत्यमंदिरसहितं।
वंदौं गिरिनायक महिमा लायक पंच मेरु तीरथमहितं॥

चौपाई—जंबूदीप अधिक छवि छाजै, मध्य सुदरशन मेरु विराजै । उन्नत जोजन लक्षप्रमाणं, छत्रोपम शिर ऋजुक विमानं ॥ २ ॥ दीप धातुकीखंड मंझारं, मेरु युगम आगम अनुसारं । विजय नाम पूरव दिशि सोहै, पश्चिमभाग अचल मन मोहै ॥ ३ ॥ पुष्करार्द्धमें भी पुनि यों ही, मंदर विद्युन्माली सोही । चारोंकी इकसार ऊँचाई, सहस असी चउ याजन गाई ॥ ४ ॥ पांचों मेरु महागिरि ये ही, अचल अनादि निधन थिर जेही । मूल वज्र मधि मणिमय भासै, ऊपर कनकमई तम नासै ॥ ५ ॥ गिरि गिरि प्रति वन चार बखाने, वन वन देवल चार रवाने । चामीकरमय चहुँदिशि राजै, रतनमई जोती रवि लाजै ॥ ६ ॥ समोसरण रचना शुभ धारै, धुज पाननसों पाप विडारै, सौ योजन आयाम गणीजै, व्यास तासमें अर्ध भणीजै॥ ७ ॥ तुंग पौनसौ योजन भारे, भद्रसालके जिनगृह सारे । ऊपर अर्ध अर्ध सब जानो, पांडुक वन पर्यंत प्रमानो ॥८॥ पांचों मेरुनिका सुन लीजै, सुन वर्णन सरधा यह कीजै । शोभा वर्णत पार न लहिये, बुधि ओछी कैसे करि कहिये ॥९॥ बिंब अठोतरसौ इक माहीं, रतनमई देखत दुख जाई । आनन जो अरविंद लसै हैं, लक्षण व्यंजन सहित हसै हैं ॥१०॥ तीन पीठपर शोभित ऐसैं, जगशिर सिद्ध विराजत जैसे । पद्मासन वैराग्य बढ़ावैं, सुर विद्याधर पूजन आवैं ॥११॥ महिमा कौन कहै जिनकेरी, त्रिभुवन नैनानंद जिनेरी ।

धनुष पांचसै तन चित चोरैं, वंदों भाव सहित कर जोरै ॥
गजदंतादि शिखर परके हैं, कृत्य अकृत्रिम जिनगृह जेहैं।
अरु त्रिभुवनमें प्रतिमा सारी, तिन प्रति धोक अकाल हमारी॥
घत्ता—भूधर प्रति जेहा करमन एहा, भक्तिविषैं दृढ़ भव्यजनौ।
करि पूजा सारी अष्टप्रकारी, पंचमेरु जयमाल भणौ ॥

ओं ह्रीं पञ्चमेरुस्थचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति० ॥

(इत्याशीर्वादः)

१०२—अथ पुष्पांजलिपूजा संस्कृत।

अथ प्रथम सुदर्शनमेरुपूजा।

जिनान्संस्थापयाम्यत्रा,—ह्वानादिविधानतः।
सुदर्शनविधिं पूजां, पुष्पांजलिविशुद्धये ॥१॥

ओं ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। ओं ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

स्वर्धुनीजलनिर्मलधारया, विशदकांतिनिशाकरभारया।
प्रथममेरुसुदर्शनदिग्स्थितान्, यजत षोडशनित्यजिनालयान्॥

ओं ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धिभद्रशाल-नन्दन-सौमनस-पांडुकवन-सम्बन्धिपूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तररुस्थजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जलं० ॥

मलयचंदनमर्दित सद्द्रवैः, सुरभिकुंकुमसौरभमिश्रितैः।
प्रथममेरुसुदर्शनदिग्स्थितान्, यजत० ॥ चंदनं ॥२॥
असकलै रमलैः शुभशालिजै,—र्विधुकरोज्वलकांतिभिरक्षतैः।

प्रथममेरु सुदर्शनदिग्स्थितान्, यजत० ॥ अक्षतं ॥ ३ ॥
अमरपुष्पसुवारिज चंपकै,-र्वकुलमालतिकेतकिसंभवैः ।
प्रथममेरुसुदर्शनदिग्स्थितान्, यजत० ॥ पुष्पं ॥४॥
घृतवरादिसुगंधचरूत्करैः, कनकपात्रचितैर्रसनाप्रियैः ।
प्रथममेरुसुदर्शनदिग्स्थितान् यजत० ॥ नैवेद्यं ॥५ ॥
मणिघृतादिनवैर्वरदीपकै,-स्तरलदीप्तिविरोचितदिग्गणैः ।
प्रथममेरुसुदर्शनदिग्स्थितान्, यजत० ॥ दीपं ॥ ६ ॥
अगुरुदेवतरूद्भवधूपकैः, परिमलोद्गमधूपितविष्टपैः ।
प्रथममेरुसुदर्शनदिग्स्थितान्, यजत० ॥ धूपं ॥७ ॥
क्रमुकदाडिमनिम्बुकसत्फलैः, प्रमुखपक्कफलैः सुरसोत्तमैः ।
प्रथममेरुसुदर्शनदिग्स्थितान्, यजत० ॥ फलं ॥८॥
विमलसलिलधाराशुभ्रगंधाक्षतौघैः, कुसुमनिकरचारुस्वेष्ट-नैवेद्यवर्गैः । प्रहततिमिरदीपैर्धूपधूम्रैःफलैश्च, रजतरचितमर्घ रत्नचंद्रो भजेऽहं ॥ अर्घं ॥

अथ जयमाला ।

जम्बूद्वीपधरास्थितस्य सुमहा मेरुस्थपूर्वादिषु, दिग्भागेषु चतुर्षु षोडशमहा चैत्यालये सद्वनैः । नानाक्ष्माजविभूषितैर्मणिमयैर्भद्रादिशालांतकैः, संयुक्तस्य निवासिनो जिनवरान् भक्त्यास्तवीमि स्तवैः ॥१॥ जन्मदूरानतादेवकैर्निष्कलाः, स्वेदवीताः सदक्षीरदेहाकुलाः । मेरुसंबधिनो वीतरागाजिनाः, संतु भव्योपकाराय संपूजिताः॥२॥ शुद्धवर्णांकिताः शुद्धभावोद्धराः, रत्नवर्णोज्वलाः सद्गुणैर्निर्भराः

॥ मेरु० ॥३॥ मानमायातिगामुक्तिभावोद्धरा, शुद्धसद्बोध-शंकादिदोषाहराः ॥मेरु०॥४॥ क्षुत्तृषामोहकक्षेपुदावानलाः, प्रोल्लसद्बोधदीपाः सुधांशूत्कराः ॥ मेरु० ॥५॥ पूर्णचन्द्राभतेजोभिर्निवेशकाः, चन्द्रसूर्य्यप्रतापाः करावेशकाः ॥मेरु०॥

घत्ता—इतिरचितफलौघाः प्राप्तसुज्ञानपाराः, हततमघनपापाः नम्रसर्वामरेन्द्राः। गतनिखिलविलापाः कान्तिदीप्ताजिनेन्द्राः, अपगतघनमोहाः सन्तु सिद्ध्यैजिनेन्द्राः ॥७॥

ओं सुदर्शनमेरुसम्बन्धिभद्रशाल-नन्दन-सौमनस-पांडुकवनसम्बन्धिपूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरस्थजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घं० ॥

सर्वव्रताधिपं सारं, सर्वसौख्यकरं सतां।
पुष्पांजलिव्रतं पुष्याद्युष्माकं शाश्वतीं श्रियं॥(इत्याशीर्वादः)

अथ द्वितीयविजयमेरु पूजा।

जिनान्संस्थापयाम्यत्रा,-ह्वानादिविधानतः।
धातुकीखण्डपूर्वाशा,-मेरोर्विजयवर्तिनः ॥ १ ॥

ओं ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्। ओं ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

सुतोयैः सुतीर्थोद्भवैर्वीतदोषैः, सुगांगेयभृंगारनालास्यसंगैः।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातुकीस्थं,यजे रत्नबिंबोज्वलं रत्नचन्द्रः॥

ओं ह्रीं श्रीविजयमेरुसम्बन्धिभद्रशाल-नन्दन-सौमनस-पांडुकवनसंबन्धि-पूर्व-दक्षिण-पश्चिमोत्तरस्थजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जलं० ॥

सुगंधागतालिव्रजैः कुंकुमादि, द्रवैश्चन्दनैश्चंद्रपूर्णाभिरामैः ।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातुकीस्थं, यजे० ॥ गंधं ॥ २ ॥
सुशाल्यक्षतैरक्षितदिव्यदेहैः, सुगंधाक्षतारब्धभृंगारगानैः ।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातुकीस्थं, यजे० ॥ अक्षतान् ॥ ३ ॥
लवंगैः प्रसूनैस्ततामोदवद्भिः,सुमंदारमालापयोजादिजातैः।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातुकीस्थं, यजे० ॥ पुष्पं ॥ ४ ॥
मनोज्ञैः सुखाद्यैर्गवीनाज्यतप्तैः,सुशाल्योदनैर्मोदकैर्मंडकाद्यैः।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातुकीस्थं, यजे० ॥ नैवेद्यं ॥ ५ ॥
प्रदीपैर्हतध्वांतरत्नादिभूतैः, ज्वलत्कीलजातैर्भृशंभासुरैश्च ।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातुकीस्थं, यजे० ॥ दीपं ॥ ६ ॥
सुधूपैः सुगन्धीकृताशासमूहै,-र्भ्रमद्भृंगयूथैः शुभैश्चंदनाद्यैः ।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातुकीस्थं, यजे० ॥ धूपं ॥ ७ ॥
शुभैर्मोचचोचाम्रजंभीरकाद्यै, र्मनोभीष्टदानप्रदैः सत्फलाद्यैः।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातुकीस्थं, यजे० ॥ फलं ॥ ८ ॥

विशुद्धैरष्टसद्द्रव्यै,-रर्घमुत्तारयाम्यहं ।
हेमपात्रस्थित भक्त्या जिनानां विजयौकसां ॥अर्घ्यं ॥९॥

अथ जयमाला

सकलकलिविमुक्ताः सर्वसंपत्तियुक्ता, गणधरगणसेव्याः कर्मपंकप्रणष्टाः । गहतमदनमानास्त्यक्तमिथ्यात्वपाशाः, कलितनिखिलभावास्ते जिनेन्द्रा जयन्तु ॥ १ ॥

विमोहविसारितकामभुजंग, अनेकसदाविधिभाषितभंग ।
कषायदवानलतत्त्वसुरंग, प्रसीद जिनोत्तम मुक्तिप्रसंग ॥

निरीह निरामय निर्मलहंस, सुचामरभूषितशुद्धसुवंस।
अनिंद्यचरित्रविमानितकंस, प्रसीद जिनोत्तम मुक्तिप्रसंग॥
प्रबोधविबोधजगत्त्रयसार, अनंतचतुष्टयसागरपार।
निवारित सर्वपरिग्रहभार, प्रसीद जिनोत्तम मुक्तिप्रसंग॥
तपोभरदारितकर्मकलंक, विरोग विभोग वियोग विशंक।
अखंडितचिन्मयदेहप्रकाश, प्रसीद जिनोत्तम मुक्तिप्रसंग॥
विवर्जितदोषगुणौघकरंड, प्रसारितमानतमोमददंड।
अपारभवोदधितारतरंड, प्रसीद जिनोत्तम मुक्तिप्रसंग॥

घत्ता—दृगवगमचरित्राः प्राप्तसंसारपारा, सकलशशिनिभासाः सर्वसौख्यादिवासाः। विदितविभवविशिष्टाः प्रोल्लसद्ज्ञानशिष्टाः, ददतु जिनवरास्ते मुक्तिसाम्राज्यलक्ष्मीं॥

ओं ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धिभद्रशाल-नंदन-सौमनस-पांडुकवनसम्बन्धिपूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरस्थजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घ्यं०।

सर्वव्रताधिपं सारं सर्वसौख्यकरं सतां।
पुष्पांजलिव्रतं पुष्पाद्युष्माकं शाश्वतीं श्रियं॥(इत्याशीर्वादः)

अथ तृतीय अचलमेरुपूजा।

जिनान्संस्थापयाम्यत्रा,—ह्वानादिविधानतः।
धातुकीपश्चिमाशास्था,—चलमेरुप्रवर्तिनः॥ १॥

ओं ह्रीं अचलमेरुसंबंधिजिनप्रतिमासमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। ओं ह्रीं अचलमेरुसंबंधिजिनप्रतिमासमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं अचलमेरुसंबंधिजिनप्रतिमासमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

सौरभ्याहृतसद्गंधसारयाजलधारया ।
अचलमेरुजिनेंद्राय जराजन्मविनाशिने ॥ जलं ॥
चारुचंदवनकर्पूरकाश्मीरादिविलेपनैः । अचलमे० ॥चंदनं ॥
अक्षतैरक्षतानंदसुखध्यानविधानकैः ॥अचल० ॥ अक्षतं ॥
जातिकुंदादिराजीवचंपकानेकपल्लवैः । अचलमे० ॥ पुष्पं ॥
खाद्यस्वाद्यपदैः स्वाद्यैः सन्नाढयैः सुकृतैरिव ।अचल०॥नैवेद्यं॥
दशाग्रैः प्रस्फुरद्दीपैर्दीपैः पुण्यजनैरिव । अचल० ॥ दीपं ॥
धूपैः संधूपितानेककर्मभिर्धूपदायिनैः ॥ अचल० ॥ धूपं ॥
नारिकेलादिभिः पुंगैः फलैः पुण्यजनैरिव । अचल०॥फलं॥
जलगंधाक्षतानेकपुष्पनैवेद्यदीपकैः । अचल० ॥ अर्घ ॥

अथ जयमाला ।

सिरिसंताने रिसह जिणजाइ, अजित जिणंदजिणंदह पय कमलो । इह कुसुमांजलि होइ मनोहर मेलहिया, गिरिकैलासे जाडपहारे मेलहिया ॥१॥ संभवजिण सेवंतिसही, अहि अहिनंदन मेहजिणंदह पयकमलो । इह कुसुमांजलि० ॥ २ ॥ सुमति जे सुमत जेहुजिण, पदमप्पहाजिन हेद जिणंदह पयकमलो । इह कुसुमांजलि० ॥ ३ ॥ मंदारिहि सुपासजिन, चंदप्पइ चंपेह जिणंदह पयकमलो । इह कुसु० ॥४॥ पुष्पदंत परमेष्ठिजिन,सीतल सीय जिणंदजिणंदह पयकमलो। इह कुसु० ॥ ५ ॥ जिणश्रेयांसह असोयपही, वासुपूज्यवडलेह जिंणदह पयकमलो ॥ इह० ॥६॥ विमलभंडारो सुरतरही, शुकलवेहि जिणंद जिणंदह पयकमलो । इह० ॥ ७ ॥

बहुमचकुंदहिं घर्मजिन, रत्तप्पह जिणशांति जिंणदजिणंदह पयकमलो। इह०॥ ८ ॥ युक्तय फुल्लय कुंथुजिणुं, अरु जिणपास जिंणदजिणंदह पयकमलो। इह० ॥ ९ ॥ मल्लिय हुल्लिय मल्लिजिणु, मुनिसुव्रत जिनबुल्ल जिणंदह पयकमलो। इह० ॥ १० ॥ नमिजिणवर केवलयाही, जापे अजितजिणंद जिणंदह पयककमलो। इह० ॥११॥ पाडलहुल्लिय पासजिन, वड्ढमान कमलोहि जिंणदजिणंदह पयकमलो। इह० ॥१२॥ पापनेहु पुञ्जहु अवले, अवनिअवर-अभ्रयारि जिणंदह पयकमलो। इह०॥ १३ ॥ गुरुपयपुंजह तिन्निलए, अवनिपडहु संसार जिणंदह पय कमलो। इह० ॥ १४ ॥ इह रयणांजुलि विणयसहु, जो जिणनाही होइ जिणंदह पयकमलो। इह० ॥ १५ ॥ भाद्रवशुक्क सुपंचमिए, पंचदिवस कारेह जिणंदह पयकमलो। इह कुसुमांजलि०॥१६

घत्ता—यावंति जिनचैत्यानि विद्यंते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या त्रिपरीत्या नमाम्यहं ॥१७॥

ओं ह्रीं मंदिरमेरुसंबंधिभद्रशाल-नन्दन-सौमनस-पांडुकवनसंबंधि-पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरस्थजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घं नि०॥

सर्वव्रतादिकं सारं सर्वसौख्यंकरं सतां।
पुष्पांजलिव्रतं पुष्याद्युष्माकं शास्वतीं श्रियं॥ इत्याशीर्वादः।

अथ चतुर्थ मंदिरमेरु पूजा।

जिनान्संस्थापयाम्यत्रा,-ह्वानादिविधानतः।
मेरुमन्दिर नामानं, पुष्पांजलिविशुद्धये॥ १॥

ओं ह्रीं मंदिरमेरुसंबंधिजिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। ओं ह्रीं मंदिरमेरुसंबंधिजिनप्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। ओं ह्रीं मंदिरमेरुसंबंधिजिनप्रतिमासमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

गंगागतैर्जलचयैः सुपवित्रतांगैः। रम्यैःसुशीतलतरैर्भव तापभेद्यैः। मेरुं यजेऽखिलसुरेंद्रसमर्चनीयं, श्रीमंदिरं चित-तपुष्करद्वीपसंस्थम् ॥

ओं ह्रीं मंदिरमेरुसम्बन्धिभद्रशाल-नन्दन-सौमनस-पाण्डुकवनसंबन्धि-पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरस्थजिनचैत्यालयस्थजिनविम्बेभ्यो जलं निर्व० ॥

काश्मीरकुंकुमरसैर्हरिचंदनाद्यैः, गंधोत्कटैर्वनभवैर्घनसार-मिश्रैः। मेरुं यजेऽखिलसुरेंद्रसमर्चनीयं०॥चन्दनं ॥२॥

चंद्रांशुगौरविहितैः कलमाक्षतोघै,-र्घ्राणप्रियैरवितथैर्विमलै-रखंडैः। मेरुं यजेऽखिलसुरेंद्र समर्चनीयं,-श्रीमन्दिरं०॥अक्षतं॥
गंधागतालिनिवहैः शुभचंपकादि, पुष्पोत्करैरमरपुष्पयुतैर्म-नोज्ञैः। मेरुं यजेऽखिलसुरेंद्र समर्चनीयं, श्रीमंदिरं०॥पुष्पं०॥
स्वर्णादिपात्रनिहितैर्घृतपक्वखंडैर्नानाविधैर्घृतचरै रसनेंद्रियेष्टैः। मेरुं यजेऽखिलसुरेंद्र समर्चनीयं० ॥ नैवेद्यं ॥

कर्पूरदीपनिचयैर्निहितांधकारै,-रुद्भासिनीशनिकरैः शुभ-कीलजालैः। मेरुं यजेऽखिलसुरेंद्र समर्चनीयं० ॥ दीपं ॥
कालागुरुत्रिदशदारुसुचन्दनादि, द्रव्योद्भवैः सुभगगंधसु-धूपधूम्रैः। मेरु यजेऽखिलसुरेंद्रसमचनीयं, श्रीमन्दिरं०॥धूपं॥

नारिंगपुंगपनसाम्रसुमोचचोचः श्रीलांगलप्रमुखभव्यफलैः सुरम्यैः । मेरुं यजेऽखिलसुरेंद्र समर्चनीयं० ॥ फलं ॥

जलैः सुगन्धाक्षतचारुपुष्पै-नैवेद्यदीपैर्वरधूपवर्गैः ।
फलैर्महार्घं ह्यवतारयामि, श्रीरत्नचन्द्रोयतिवृंद सेव्यं ॥अर्घं॥

अथ जयमाला ।

प्रोद्यत्षोडशलक्षयोजनमिति श्रीपुष्करार्द्धस्थितः । श्रीमत्पूर्वविदेहमंदिरगिरिदेवेंद्रवृंदार्चितः ॥ चंचत्पंचसुवर्ण-रत्नज.टतोर्नामाभ्रमोद्योर्जित-स्तत्संबधिजिनौकसां गुण-गणां संस्तौम्यहं सर्वदा ॥ १ ॥ देवविद्याधरासुरसंचर्चितं किन्नरीगीतकलगानसंजृंभितं । नर्तितानेकदेवांगनासुंदरं श्रीजिनागारवारं भजे भासुरं ॥ २ ॥

जन्मकल्याणसंमोहितामरवलं, दर्शितानेकदेवांगनासुंदरं ।
प्रोल्लसत्केतुमालालयैः सुंदरं, श्रीजिनागार० ॥३॥

धूपघटधूपितात्रासशोभावरं, रत्नसंभर्जितालिभिराशाकुलं ।
अष्टमंगलमहाद्रव्यचयसुंदरं, श्रीजिनागार० ॥४॥

तालवीणामृदंगादिपटहस्वरं, कल्पतरुपुष्पवापीतडागावरं ।
चारणार्द्धिमुनिसंगतासाधरं, श्रीजिनागार० ॥ ५ ॥

रुचिरमणिमयैर्गोपुरैसंयुतं,प्रेमहर्म्यावलीमुक्तिमालाभृतं ।
तुंगतोरणलसद्धटिकाभंगुरं, श्रीजिनागार० ॥ ६ ॥

घत्ता—विविधविषयभव्यं भव्यसंसारतारं, शतमखशत-पूज्यं प्राप्तसज्ज्ञानपारं । विषयविषमदुष्टाव्यालपक्षीशमीशं, जिनवरनिकरं तं रत्नचन्द्रोऽभजेहं ॥

ओं ह्रीं मंदिरमेरुसम्वन्धिभद्रशाल-नंदन-सौमनस-पांडुकवनसम्वन्धि-पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरस्थजिनचैत्यालयस्थजिनविंबेभ्यो अर्घ्यं० ॥

सर्वव्रताधिपं सारं सर्वसौख्यकरं सतां ।
पुष्पांजलिव्रतं पुष्पाद्युष्माकं शाश्वतीं श्रियं॥(इत्याशीर्वादः)

अथ पंचमविद्युन्मालिमेरुपूजा ।

जिनान्संस्थापयाम्यत्रा,—ह्वानादिविधानतः ।
पुष्करापश्चिमाशास्थां, विद्युन्माली प्रवर्तिनः ॥ १ ॥

ओं ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्वन्धिजिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् । ओं ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्वन्धिजिनप्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः । ओं ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्वान्धिजिनप्रतिमासमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

निर्मलैः सुशीतलैर्महापगाभवैर्वनैः, शांतकुंभकुंभगैर्जगज्ज-नांगतापहैः । जैनजन्ममज्जनांभसाप्लवातिपावनं, पंचमं सुमंदिरं महाम्यहं शिवप्रदम् ॥

ओं ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसंबंधिभद्रशाल-नन्दन-सौमनस-पांडुकवनसम्वन्धिपूर्वपश्चिमोत्तरस्थजिनचैत्यालस्थजिनविम्बेभ्यो जलं० ॥

चंदनैः सुचन्द्रसारमिश्रितैः सुगंधिभिरर्कवेणुमूलभूतवर्जितै र्गुणोज्वलैः । जैनजन्ममज्जनांभसाप्लवातिपावनं० ॥चंदनं॥

इंदुरश्मिहारयष्टिहेमभासभासितैरक्षतैरखंडितैः सलक्षितै-र्मनप्रियैः । जैनजन्ममज्जनांभसाप्लवातिपावनं० ॥अक्षतं ॥

गंधलुब्धषट्पदैः सुपारिजातपुष्पकैः पारिजातकुंददेवपुष्प-मालतीभवैः । जैनजन्ममज्जनांभसाप्लवातिपावनं० ॥पुष्पं॥

प्राज्यपूरपूरितैः सुखज्जकैः सुमोदकैः इन्द्रियप्रमूत्करैः सुचारुभिश्चरूत्करैः। जैनजन्ममज्जनांभसाप्लवातिपावनं०॥नैवेद्यं॥
अंधकारभारनाशकारणैर्दशैंघनैः रत्नसोमजैः प्रदीप्तिभूषितैः शिखोज्वलैः। जैनजन्ममज्जनांभसा०॥ दीपं॥
सिल्हिकागुरूद्भवैः सुधूपकैर्नभोगतैः गंधवासचक्रकेशवृंदकैः गुणोज्वलैः। जैनजन्ममज्जनांभसाप्लवातिपावनं० ॥धूपं॥
आम्रदाडिमैः सुमोचचोचकैः शुभैः फलैः मातुलिंगनारिकेलपूगचूतकादिभिः जैनजन्ममज्जनांभसाप्लवातिपावनं०॥फलं॥
जलगंधाक्षतैर्पुष्पैश्चरुदीपसुधूपकैः।
फलैरुत्तारयाम्यर्घं विद्युन्मालिप्रवर्तनां ॥ अर्घं ॥

अथ जयमाला।

स्तुवे मंदिरंपंचमंसद्‌गुणौघं, सुमुक्त्यंगचैत्यालयं भासुरांगम्।
चलद्रत्नसोपानविद्याधरीश, नमोदेवनागेंद्रमर्त्यैंद्रवृंदम्।
भद्रशालाभिधारण्यसंशोभितं, कोकिलानां कलालापसंकूजितं। पुष्पकरार्द्धाचलसंस्थितं मन्दिरं, चंचलामालिनं पूजयेसुन्दरम् ॥ २ ॥ नन्दनैर्नंदितानेकलोकाकरै,—भ्राजमानंसदाशोकवृक्षोत्करैः॥ पुष्क० ॥ ३ ॥ सौमनस्यैर्वनैः कल्पवृक्षादिभिः, भ्राजमानंबुधागारकेत्वादिभिः ॥ पुष्क० ॥
ऊर्ध्वगैः पांडुकैः काननैर्राजितं, पांडुकाख्याशिलाभिः समालिंगितं ॥ पुष्क० ॥ निर्जितानेकरत्नप्रभाभासुरं, दिक्‌चतुष्काश्रिताहत्प्रभाभासुरम्। पुष्क० ॥
घत्ता—घंटातोरणतालिकाब्जकलशैः छत्राष्टद्रव्यैः परैः।

श्रीभामंडलचामरैः सुरचितैः चन्द्रोपकरणादिभिः ॥
त्रैकाल्येवरपुष्पजाप्यजपनैर्जैनाकरोत्वर्च्यतां ।
भव्यैर्दीनपरायणैः कृतदयैः पुष्पांजलिं शुद्धये ॥७॥

ओं ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बन्धिभद्रशाल-नन्दन-सौमनस-पांडुकवनसम्बन्धिपूर्वपश्चिमोत्तरस्थजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अर्घं निर्व० ॥

सर्वव्रताधिपंसारं सर्वसौख्यकरं सतां ।
पुष्पांजलिव्रतं पुष्याद्युष्माकं शाश्वतीं श्रियं ॥(इत्याशीर्वादः)
विधुवसुरसचंद्रांकैः प्रयुक्तेकृतार्चा शरदि नभसिमासेरत्नचंद्रश्चतुर्थ्यां । धवलभृगुसुवारे सांगवादे पुरेत्र जिनवृषगगलादिश्रावकादेशतोऽन्यात् ॥ (इत्याशीर्वादः)

१०३–अथ पंचमेरुपूजा भाषा ।

गीताछंद–तीर्थकरोंके न्हवनजलतैं, भये तीरथ शर्मदा । तातैं प्रदच्छन देत सुरगन, पंचमेरनकी सदा ॥ दो जलधि ढाईदीपमें सब, गनतमूल विराजही । पूजौं असी जिनधाम प्रतिमा, होहि सुख, दुख भाजही ॥ १ ॥

ओं ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् । ओं ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः । ओं ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

चौपाई–सीतलमिष्टसुवास मिलाय, जलसौं पूजौं श्रीजिनराय ।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥

पांचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमाको करों प्रणाम।
॥ महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥ १ ॥

ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो जलं निर्व० ॥१॥

जलकेशरकरपूर मिलाय, गंधसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥पांचों०॥चंदनं॥
अमल अखंड सुगंध सुहाय, अच्छतसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥पांचों०॥अक्षतान्॥
वरन अनेक रहे महकाय, फूलनसौ पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पांचों०॥पुष्पं॥
मनवांछित बहु तुरत बनाय, चरुसौं पूजौं श्रीजिनराय ॥
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पांचों०॥नैवेद्यं॥
तमहर उज्ज्वल ज्योति जगाय, दीपसों पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥पांचों०॥दीपं॥
खेऊं अगर अमल अधिकाय, धूपसों पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥पांचों०॥ धूपं ॥
सुरस सुवर्ण सुगंध सुभाय, फलसों पूजौं श्रीजिनराय ॥
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥पाचों०॥फलं॥
आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पांचों०॥अर्घं॥

अथ जयमाला।

सोरठा—प्रथम सुदर्शन स्वामि, विजय अचल मंदर कहा।
विद्युन्माली नाम, पंचमेरु जगमें प्रगट ॥ १ ॥

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजै, भद्रशाल वन भूपर छाजै। चैत्यालय चारों सुखकारी, मनवचनतन वंदना हमारी ॥ ॥२॥ ऊपर पंच शतकपर सोहै, नंदनवन देखत मन मोहै ॥ ॥ चैत्या० ॥ ३ ॥ साढे बासठ सहस उंचाई, वन सुमनस शोभै अधिकाई ॥ चै० ॥ ४ ॥ ऊंचा जोजन सहस छत्तीसं, पांडुकवन सोहै गिरिसीसं ॥ चै० ॥ ५ ॥ चारों मेरु समान बखाने, भूपर भद्रसाल चहुं जाने। चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचनतन वंदना हमारी ॥ ६ ॥ ऊंचे पांच शतक पर भाखे, चारों नंदनवन अभिलाखे ॥ चैत्या० ॥७॥ साढे पचपन सहसउतंगा, वन सौमनस चार बहुरंगा ॥ चैत्या० उच्च अठाइस सहस बताये, पांडुक चारों वन शुभ गाये॥चैत्या० सुर नर चारन वंदन आवै, सो शोभा हम किह मुख गावैं। चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मनवचतन वंदना हमारी ॥१०॥

दोहा—पंचमेरुकी आरती, पढै सुनै जो कोय।
'द्यानत' फल जानै प्रभू, तुरत महासुख होय ॥११॥

ओं ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं निर्व० ॥

(अर्घके बाद विसर्जन करना चाहिये)

१०४—अथ नंदीश्वरपूजा संस्कृत

स्थानासनार्घ्यप्रतिपत्तियोग्यं, सद्भावसन्मानजलादिमिश्र। लक्ष्मीसुतागमनवीर्यसुदर्भगर्भैः संस्थापयामि भुवनाधिपतिं जिनेंद्रं ॥

ओं ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्

तीर्थोदकैर्मणिसुवर्णघटोपनीतैः, पीठे पवित्रवपुषि प्रविकल्पितार्थैः। नंदीश्वरद्वीपजिनालयार्चाः, समर्चये चाष्टदिनानि भक्त्या ॥

ओं ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वदिग्भागे एक अंजनगिरि-चतुर्दधिमुखा-ष्टरतिकरेति त्रयोदशजिनालयेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा। ओं ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिग्भागे त्रयोदशजिनालयेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा। ओं ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिग्भागे त्रयोदशजिनालयेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा। ओं ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिग्भागे त्रयोदशजिनालयेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीखंडकर्पूरसुकुंकुमाद्यैर्गंधैः सुगंधीकृतदिग्विभागैः।
नंदीश्वरद्वीपजिनालयार्चाः समर्चये चाष्टदिनानि० ॥चंदनं॥
शाल्यक्षतैरक्षतदीर्घगात्रैः सुनिर्मलैश्चंद्रकरावदातैः।
नंदीश्वरद्वीपजिनालयार्चाः समर्चये चाष्टदिनानि० ॥अक्षतान्॥
अंभोजनीलोत्पलपारिजातैः कदंबकुंदादितरुप्रसूतैः।
नंदीश्वरद्वीपजिनालयार्चाः समर्चये चाष्टदिनानि० ॥पुष्पं॥
नैवेद्यकैः कांचनपात्रसंस्थैर्न्यस्तैरुदस्तैर्हरिनासुहस्तैः
॥नंदीश्वरद्वीपजिनालयार्चाः० ॥ नैवेद्यं ॥
दीपोत्करैर्ध्वस्ततमोवितानैरुद्योतिताशेषपदार्थजातैः ॥
नंदीश्वर द्वीपजिनालयार्चाः०॥ दीपं ॥

कर्पूरकृष्णागरुचंदनाद्यैर्धूपैर्विचित्रैर्वरगंधयुक्तैः ॥नंदी०॥धूपं॥
लवंगनारिंगकपित्थपूगश्रीमोचचोचादिफलैःपवित्रैः॥नंदी॥फलं
श्रीचंदनाढ्याक्षततोयमिश्रैर्विकाशिपुष्पांजलिना सुभक्त्या।
यजे त्रिकालोद्भवजैनबिंबान् भक्त्या स्वकर्मक्षयहेतवेऽहं॥अर्घं॥
श्रीचंदनाढ्याक्षततोयमिश्रैर्विकाशिपुष्पांजलिना सुभक्त्या।
सद्भावनावासजिनालयस्थान् जिनेंद्रबिंबान्प्रयजे मनोज्ञान्॥
ओं ह्रीं भावनामरजिनालयेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥
श्रीचंदनाढ्याक्षततोयमिश्रैर्विकाशिपुष्पांजलिना सुभक्त्या।
जंब्वाख्यद्वीपस्थजिनालयस्थान् जिनेंद्रबिंबान् प्रयजे मनोज्ञान्
ओं ह्रीं जम्बूद्वीपस्थजिनालयबिंबेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥
श्रीचंदनाढ्याक्षततोयमिश्रैर्विकाशि पुष्पांजलिना सुभक्त्या।
श्रीधातकीखंडजिनालयस्थान् जिनेंद्रबिंबान् प्रयजे मनोज्ञान्
ओं ह्रीं धातकीखंडद्वीपस्थजिनालयबिंबेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥
श्रीचंदनाढ्याक्षततोयमिश्रैर्विकाशिपुष्पांजलिना सुभक्त्या।
श्रीपुष्करद्वीपजिनालयस्थान जिनेंद्रबिंबान्प्रयजे मनोज्ञान्॥
ओं ह्रीं पुष्करार्द्धद्वीपस्थजिनालयबिंबेभ्योऽर्घं निर्व॰॥
श्रीचंदनाढ्याक्षततोयमिश्रैर्विकाशिपुष्पांजलिना सुभक्त्या।
सत्कुंडलाद्रिस्थजिनालयस्थान् जिनेंद्रबिंबान्प्रयजे मनोज्ञान्॥
ओं ह्रीं कुंडलगिरिद्वीपस्थजिनालयबिंबेभ्योऽर्घं निर्व०॥
श्रीचंदनाढ्याक्षततोयमिश्रैर्विकाशिपुष्पांजलिना सुभक्त्या।
श्रीमन्नगे वै रुचिके हि संस्थान् जिनेंद्रबिंबान्प्रयजे मनोज्ञान्
ओं ह्रीं रुचिकगिरिस्थजिनालयबिंबेभ्योऽर्घं निर्व०

श्रीचंदनाढ्याक्षततोमिश्रैर्विकाशिपुष्पांजलिना सुभक्त्या । सद्व्यंतराणां निलयेषुसंस्थान् जिनेंद्रबिंबान्प्रयजे मनोज्ञान्

ओं ह्रीं अष्टप्रकारव्यन्तरदेवानां गृहेषु जिनालयबिंबेभ्योऽर्घं निर्व० ॥

श्रीचंदनाढ्याक्षततोयमिश्रैर्विकाशिपुष्पांजलिना सुभक्त्या । चंद्रार्कताराग्रहऋक्षज्योतिष्काणां यजे वै जिनबिंबवर्यान् ॥

ओं ह्रीं पंचप्रकारज्योतिष्काणां देवानां जिनालयबिंबेभ्योऽर्घं निर्व०॥

कल्पेषु कल्पातिगकेषु चैव देवालयस्थान् जिनदेवबिंबान् । सन्नीरगंधाक्षतमुख्यद्रव्यैर्यजे मनोवाक्तनुभिर्मनोज्ञान् ॥

ओं ह्रीं कल्पकल्पातीतसुरविमानस्थजिनबिंबेभ्योऽर्घं निर्व० ॥

कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान्नित्यं त्रिलोकीगतान् । बंदे भावनव्यंतरद्युतिवरस्वर्गामरावासगान् ॥ सद्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलै-र्द्रव्यैर्नीरमुखैर्नमामि सततं दुष्कर्मणां शांतये ॥

ओं ह्रीं कृत्याकृत्रिमजिनालयस्थजिनबिंबेभ्योऽर्घं निर्व० ।

वर्षेषु वर्षांतरपर्वतेषु नन्दीश्वरे यानि च मंदरेषु । यावंति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वंदे जिनपुंगवानां ॥ अवनितलगतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणां वनभवनगतानां दिव्यवैमानिकानां । इह मनुजकृतानां देवराजार्चितानां जिनवरनिलयानां भावतोऽहं स्मरामि ॥ जम्बूधातकिपुष्करार्धवसुधाक्षेत्रत्रये ये भवाश्चंद्राम्भोजशिखंडिकंठकनकप्रावृड्घनाभाजिनाः । सम्यग्ज्ञानचरित्रलक्षणधरा दग्धाष्टकर्मेंधना । भूतानागतवर्तमानसमये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥ श्रीमन्मेरौ

कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जंबुवृक्षे। वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकररुचके कुंडले मानुषांके इष्वाकारेजनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यंतरे स्वर्गलोके, ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भुवननहितले यानि चैत्यालयानि॥ द्वौ कुंदेंदुतुषारहारधवलौ द्वाविंद्रनीलप्रभौ द्वौ बंधूकसमप्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियंगुप्रभौ। शेषाः षोडश जन्ममृत्युरहिताः संतप्तहेमप्रभास्ते संज्ञानदिवाकरा सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छंतु नः। नोकोडिसया पणवीसा तेपणलक्खाण सहससत्ताईसा। नौसेते पडियाला जिणपडियाला जिणपडिमाकिट्टिमा वंदे॥

ओं ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयस्थजिनविंवेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

अतीतचतुर्विंशतितीर्थंकरनामानि।

निर्वाणसागरराभिख्यो माधुर्यो विमलप्रभः। शुद्धवाक् श्रीधरो धीरो दत्तनाथोऽमलप्रभुः॥ १॥ उद्धराह्वोग्निनाथश्च संयमः शिवनायकः। पुष्पांजलिर्जगत्पूज्यस्तथा शिवगणाधिपः॥ २॥ उत्साही ज्ञाननेता च महनीयो जिनोत्तमः। विमलेश्वरनामान्यो यथार्थश्च यशोधरः॥ ३॥ कर्मसंज्ञोऽपरो ज्ञान–मतिः शुद्धमतिस्तथा। श्रीभद्रपरकांतश्चातीता एते जिनाधिपाः॥ ४॥ नमस्कृतसुराधीशैर्महीपतिभिरर्चिताः। वंदिता धरणेंद्राद्यैः संतु नः सिद्धिहेतवे॥ ५॥

ओं ह्रीं अतीतचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकरनामानि।

ऋषभोऽजितनामा च संभवश्चाभिनंदनः। सुमतिः

पद्मभासश्च सुपार्श्वो जिनसत्तमः ॥ १ ॥ चन्द्राभः पुष्पदंतश्च शीतलो भगवान्मुनिः । श्रेयांसो वासुपूज्यश्च विमलो विमलद्युतिः ॥ २ ॥ अनन्तो धर्मनामा च शांति-कुंथो जिनोत्तमौ । अरश्च मल्लिनाथश्च सुव्रतो नमितीर्थ-कृत् ॥ ३ ॥ हरिवंशसमुद्भूतोऽरिष्टनेमिर्जिनेश्वरः । ध्वंस्तो-पसर्गदैत्यारिः पार्श्वो नागेंद्रपूजितः ॥ ४ ॥ कर्मांतकृन्महा-वीरः सिद्धार्थकुलसंभवः । एते सुरासुरौघेण पूजिता विमल-त्विषः ॥५॥ पूजिता भरताद्यैश्च भूपेद्रैर्भूरिभूतिभिः । चतुर्वि-धस्य संघस्य शांतिं कुर्वंतु शाश्वतीं ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं वर्तमानचतुर्विंशतिजिनेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

अनागततीर्थंकरनामानि ।

तीर्थकृच्च महापद्मः सूरदेवो जिनाधिपः । सुपार्श्वनाम-धेयोऽन्यो यथार्थश्च स्वयंप्रभुः ॥ १ ॥ सर्वात्मभूतइत्यन्यो देवदेवप्रभोदयः । उदयः प्रश्नकीर्तिश्चजयकीर्तिश्च सुव्रतः ॥ अरश्च पुण्यमूर्तिश्च निष्कषायो जिनेश्वरः । विमलो निर्मलाभि-ख्यश्चित्रगुप्तो वरः स्मृतः ॥ ३ ॥ समाधिगुप्तनामान्यौ स्वयंभूरनिवर्तकः । जयो विमलसंज्ञश्च दिव्यपाद इतीरितः ॥४॥ चरमोऽनंतवीर्योऽमीवीर्यधैर्यादिसद्गुणाः । चतुर्विंशति-संख्याता भविष्यत्तीर्थकारिणः ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं अनागतचतुर्विंशतिजिनेभ्योर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

कंपिल्लाणयरीमंडणस्स विमलस्स विमलणाणस्स ।
आरत्तिय वरसमये णच्चंति अमररमणीओ ॥

छंद—अमररमणीउ णच्चंति जिणमंदिरं । विविहवरताल-तूरहिं सुचंगमपुरं ॥ जडियबहुरयणचामीयरं पत्तयं । जोइयं सुन्दरं जिणघ आरत्तियं ॥ १ ॥ रुणझणंकारणेवरघ-चलणुट्ठिया । मोतियादाम वच्छच्छले संठिया ॥ गीय गायंति णच्चंति जिणमंदिरं । जोइयं सुंदरं०॥२॥ केशभरि-कुसुमपयसरसढोलंतिया । वयण छणइन्द समकंतवियसंतिया कमलदलणयण जिणवयणपेखंतिया । जोइयं सुंदरं० ॥४॥ इन्दधरिणिंदजक्खेंदवोहंतिया । मिलित्र सुर असुर घणरासि खेलंतिया । के वि सियचमर जिणविंव ढोलंतिया । जोइयं०॥

गाथा—णंदीसुरम्मि दीवे बावण्णजिणालयेसु पडिमाणं ।
अट्ठाहिवरपव्वे इन्दो आरत्तियं कुणई ॥

छंद—इन्द आरत्तियं कुणइ जिणमंदिरं, रयणमणिकिरण-कमलेहि वरसुंदरं । गीय गायंति णच्चंति वरणाडियं, तूर वज्जंति णाणाविहप्पाडियं ॥

गाथा—एक्कम्मि य जिणहरे चउचउ सोलहबावीओ ।
जोयणलक्खपमाणं अट्ठमणंदीसुरं दीवे ॥ ८ ॥

अट्ठमं दीवणंदीसुरं भासुरं चैत्यचैत्यालये वंदि अमरासुरं । देवदेवीउ जह धम्मसंतोसिया, पंचमं गीय गायंति रसपोसिया

गाथा—दिव्वेहिं खीरणीरेहिं गंधड्ढाइहिं कुसुममालाहिं ।
सव्वसुरलोयसहिया पुज्जा आरंभए इंदो ॥१०॥

इंदसोहम्मिसग्गाववज्जोसयं, आयऊसज्जि ऐरावयं वरगयं । सव्वदव्वेहिं भव्वेहिं पूजाकरा, मिलित्र पडिवक्खया तस्स तिहु देसया ।

गाथा—कंसालतालतिवली, झल्लरभर मेरिवेणुविण्णाओ।
वज्जंति भावसहिया भव्वेहिं णउज्जिया सव्वे ॥

छंद—सव्वदव्वेहिं भव्वेहिं करताडियं, सद्दए संझिगणझिगण-णिद्धाडयं। गिझिनिझं झिगिनिझं वज्जये झल्लरी, णच्चये इंद-इंदायणी सुंदरी। णयणकज्जलसलायामथं दिण्णयं, हेम-हीरालयं कुंडलं कंकणं॥ झंझणं झंकरं तं पिये णेवरं, जिणघ-आरत्तियं जोइयं सुंदरं॥ दिहिणासग्गि अंगुलियदावंतिया, खिणहिं खिण खिणहिं जिणबिंब जोइत्तिया॥ णारिणच्चंति गायंति कोइलसुरं, जिणघ०॥ रुणुझुणंकारणे वरघक्कर-कंकणं, णाइ जंपंति जिणणाहवे बहुगुणं॥ जुवइ णच्चंति सुम-रंति ण उ णियघरं जिणघआरत्तियं जोइय सुंदरं॥ कंठकदलीह मणिहार झुल्लंतऊ, जिणइ थुइ थुई सो णाय संतुट्ठऊ। विविह-कोऊहलं रयहि णारीधरं, जिणघ आरत्तिय जोइयं सुंदरं॥१७॥

घत्ता—आरत्तिय जोवइ कम्मइ धोवइ, सग्गावग्ग हलहु लहइ।
जं जं मण भावइ तं सुह पावइ, दीणु वि कासुण भासुणइ॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपंचाशज्जिनालयेभ्यो अर्घ्यं

यावंति जिनचैत्यानि, विद्यंते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहं (इत्याशीर्वादः)

१०५—श्रीनंदीश्वरद्वीप[अष्टाह्निका]पूजा भाषा

अडिल्ल—सरब परबमें बड़ो अठाई परब है, नंदीश्वर सुर जाहिं लेय वसु दरब है। हमें सकति सो नाहिं इहां करि थापना, पूजैं जिनग्रह प्रतिमा है हित आपना॥ १॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमा-

समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र तिष्ठ ठः ठः। ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

कंचनमणिमय भृंगार, तीरथनीरभरा, तिहुं धार दयी, निरवार जामन मरन जरा। नंदीश्वरश्रीजिनधाम, वावन पुंज करों। वसुदिन प्रतिमा अभिराम, आनँदभावधरों॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरदीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो जन्मजरामृत्विनाशनाय जलं निर्वपामीतिस्वाहा

भवतपहर शीतल वाच, सो चन्दन नाहीं,
प्रभु यह गुन कीजे सांच, आयौ तुम ठांहीं॥नंदी०॥चंदनं॥
उत्तम अक्षत जिनराज, पुंज धरे सोहैं,
सब जीतै अक्षसमाज, तुम सम अरुको है॥नंदी०॥अक्षतान्॥
तुम कामविनाशकदेव, ध्याऊं फूलनसौं।
लहि शील लच्छमी एव, छूटूं सूलनसौ॥ नंदी०॥ पुष्पं॥
नेवज इंद्रियबलकार, सो तुमने चूरा।
चरु तुम ढिग सोहै सार, अचरज है पूरा॥ नंदी० ॥नैवेद्यं॥
दीपककी ज्योति प्रकाश, तुम तनमाहिं लसै।
टूटै करमनकी राशि, ज्ञानकणी दरसै॥ नंदी० ॥ दीपं॥
कृष्णागरुधूपसुवास, दशदिशिनारि वरै।
अति हरषभाव परकाश, मानों नृत्य करै॥ नंदी० ॥ धूपं॥
बहुविधफल ले तिहुंकाल, आनँद राचत हैं।
तुम शिवफल देहु दयाल, तो हम जाचत हैं॥नंदी०॥फलं

यह अरघ कियो निज हेत, तुमको अरपतु हों।
'द्यानत' कीनों शिवखेत,—भूमि समरपतु हों ॥नंदी०॥अर्घ्यं

अथ जयमाला।

दोहा—कातिक फागुन साढके, अंत आठ दिनमांहि।
नंदीसुर सुर जात हैं, हम पूजै इह ठांहि ॥१॥

एकसौ त्रेसठ कोडि जोजनमहा। लाख चौरासि एक एक दिशमें लहा ॥ अष्टमें द्वीप नंदीश्वरं भास्वरं। भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं ॥२॥ चारदिशि चार अंजनगिरी राजहीं। सहस चौरासिया एकदिश छाजहीं। ढोलसम गोल ऊपर तलें सुंदरं। भौन० ॥३॥ एक इक चार दिशि चार शुभ बावरी। एक इक लाख जोजन अमल जलभरी। चहुँदिशा चार वन लाख जोजन वरं। भौन० ॥४॥ सोल वापीनमधि सोल गिरि दधिमुखं। सहस दश महा जोजन लखत ही सुखं। बावरीकोंन दोमांहि दो रतिकरं। भौन० ॥५॥ शैल बत्तीस इक सहस जोजन कहे। चार सोलै मिलैं सर्व बावन लहे ॥ एक इक सीसपर एक जिनमंदिरं। भौन० ॥६॥ बिंब आठ एकसौ रतनमइ सोहही, देवदेवी सरव नयनमन मोहही। पांचसै धनुष तन अब्रआसन परं। भौन० ॥७॥ लाल नख मुख नयन स्याम अरु स्वेत हैं, स्यामरंग भौंह सिरकेश छवि देत हैं ॥ वचन बोलत मनो हँसत कालुषहरं। भौन० कोटि शशि भानदुति तेज छिप जात है, महावैराग परिणाम ठहरात । वयन नहिं कहैं लखि होत सम्यकधरं। भौन० ॥९॥

सोरठा—नंदीश्वर जिनधाम, प्रतिमामहिमाको कहै,
'द्यानत' लीनों नाम, यहै भगति सब सुख करै ॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यो पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा। (इत्याशीर्वादः)

१०६—षोडशकारणपूजा संस्कृत।

ऐंद्रं पदं प्राप्य परं प्रमोदं धन्यात्मतामात्मनि मन्यमानः।
दृक्शुद्धिमुख्यानि जिनेंद्रलक्ष्म्या महाम्यहं षोडशकारणानि

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि! अत्रावतरत अवतरत संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट्।

सुवर्ण भृंगारविनिर्गताभिः पानीयधाराभिरिमाभिरुच्चैः।
दृक्शुद्धिमुख्यानि जिनेंद्रलक्ष्या महाम्यहं० ॥१॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धि-विनयसम्पन्नता-शीलव्रतेष्वनतीचारा-भीक्ष्णज्ञानोपयोग-संवेग-शक्तितस्त्यागतपः-साधुसमाधि-वैयावृत्यकरणा-र्हद्भक्ति बहुश्रुतभक्ति-प्रवचनभक्ति-आवश्यकापरिहाणि-मार्गप्रभावना-प्रवचनवात्सल्येति-तीर्थंकरत्वकारणेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्व० ॥

श्रीखंडपिंडोद्भवचंदनेन, कर्पूरपूरैः सुरभीकृतेन।
दृक्शुद्धिमुख्यानि जिनेंद्रलक्ष्म्या० ॥ चंदनं ॥

स्थूरलैरखंडैरमलैः सुगंधैः शाल्यक्षतैः सर्वजगन्नमस्यैः।
दृक्शुद्धिमुख्यानि जिनेंद्रलक्ष्म्या० ॥ अक्षतं ॥

गुंजद्द्विरेफैः शतपत्रजातीसत्केतकीचंपकमुख्यपुष्पैः।
दृक्शुद्धिमुख्यानि जिनेंद्रलक्ष्म्या० ॥ पुष्पं ॥

नवीनपक्वान्नविशेषसारैर्नानाप्रकारैश्चरुभिर्वरिष्ठैः।
दृक्शुद्धिमुख्यानि जिनेंद्रलक्ष्म्या० ॥ नैवेद्यं ॥

तेजोमयोल्लासशिखैः प्रदीपैः दीपप्रभैर्ध्वस्ततमोवितानैः।
दृक्शुद्धिमुख्यानि जिनेन्द्रलक्ष्म्या० ॥ दीपं ॥
कर्पूरकृष्णागरुचूर्णरूपैर्धूपैर्हुताशाहुतदिव्यगंधैः।
दृक्शुद्धिमुख्यानि जिनेन्द्रलक्ष्म्या० ॥ धूपं ॥
सन्नालिकेराक्रमुकाम्रबीजपूरादिभिः सारफलैः रसालैः।
दृक्शुद्धिमुख्यानि जिनेन्द्रलक्ष्म्या० ॥ फलं ॥
पानीयचंदनरसाक्षतपुष्पभोज्यसद्दीपधूपफलकल्पितमर्घपा-
त्रं! आर्हत्यहेत्वमलषोडशकारणानां पूजाविधौ विमलमंग-
लमातनोतु ॥अर्घं॥

अथ प्रत्येकार्घं।

यदा यदोपवासाः स्युराकर्ण्यंते तदा तदा।
मोक्षसौख्यस्य कर्तॄणि कारणान्यपि षोडश ॥
(इति पठित्वा यंत्रोपरिपुष्पांजलि क्षिपेत्-यंत्रके ऊपर पुष्प चढाने चाहिये)

असत्यसहिता हिंसा मिथ्यात्वं च न दृश्यते।
अष्टांगं यत्र संयुक्तं दर्शनं तद्विशुद्धये ॥१॥
ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धयेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

दर्शनज्ञानचारित्रतपसां यत्र गौरवं।
मनोवाक्कायसंशुद्धया साख्याता विनयस्थितिः ॥२॥
ओं ह्रीं विनयसंपन्नतायै अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

अनेकशीलसंपूर्णं व्रतपंचकसंयुतं।
पंचविंशतिक्रिया यत्र तच्छीलव्रतमुच्यते ॥३॥
ओं ह्रीं निरतिचारशीलव्रतायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

काले पाठस्तवो ध्यानं शास्त्रे चिंता गुरौ नुतिः ।
यत्रोपदेशना लोके शास्त्रज्ञानोपयोगता ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं अभीक्ष्णज्ञानोपगायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

पुत्रमित्रकलत्रेभ्यः संसारविषयार्थतः ।
विरक्तिर्जायते यत्र स संवेगो बुधैः स्मृतः ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं संवेगायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

जघन्यमध्यमोत्कृष्टपात्रेभ्यो दीयते भृशं ।
शक्त्या चतुर्विधं दानं साख्याता दानसंस्थितिः ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं शक्तितस्त्यागायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

तपो द्वादशभेदं हि क्रियते मोक्षलिप्सया ।
शक्तितो भक्तितो यत्र भवेत् सा तपसः स्थितिः ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं शक्तितस्तपसेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

आर्या—मरणोपसर्गरोगादिष्टवियोगादनिष्टसंयोगात् ।
न भयं यत्र प्रविशति, साधुसमाधिः स विज्ञेयः ॥८॥

ओं ह्रीं साधुसमाधयेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

अनुष्टुप्—कुष्टोदरव्यथाशूलैर्वातपित्तशिरोर्तिभिः ।
काशश्वासज्वरारोगैः पीडिता ये मुनीश्वराः ॥
तेषां भैषज्यमाहारं शुश्रूषापथ्यमादरात् ।
यत्रैतानि प्रवर्तंते वैयावृत्यं तदुच्यते ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं वैयावृत्यकरणायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥९॥

मनसा कर्मणा वाचा जिननामाक्षरद्वयं ।

सदैव स्मर्यते यत्र सार्हद्भक्तिः प्रकीर्तिता ॥ १० ॥

ओं ह्रीं ... तयेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥१०॥

निर्गंथभुक्तितो भुक्तिस्तस्य द्वारावलोकनं ।

तद्भोज्यालाभतो वस्तुरसत्यागोपवासता ॥

तत्पादवंदनापूजा प्रणामो विनयो नतिः ।

एतानि यत्र जायंते गुरुभक्तिर्मता च सा ॥११॥

ओं ह्रीं आचार्यभक्तयेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ११

भवस्मृतिरनेकांतलोकालोकप्रकाशिका ।

प्रोक्ता यत्रार्हता वाणी वर्ण्यते सा बहुश्रुतिः ॥१२॥

ओं ह्रीं बहुश्रुतभक्तयेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १२ ॥

षट्द्रव्यपंचकायत्वं सप्ततत्वं नवार्थता ।

कर्मप्रकृतिविच्छेदो यत्र प्रोक्तः स आगमः । १३॥

ओं ह्रीं प्रवचनभक्तयेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १३ ॥

प्रतिक्रमस्तनूत्सर्गः समता वंदना स्तुतिः ।

स्वाध्यायः पठ्यते यत्र तदावश्यकमुच्यते ॥१४॥

ओं ह्रीं आवश्यकापरिहाणयेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १४ ॥

जिनस्नानं श्रुताख्यानं गीतवाद्यं च नर्तनं ।

यत्र प्रवर्तते पूजा सा सन्मार्गप्रभावना ॥ १५ ॥

ओं ह्रीं सन्मार्गप्रभावनायैअर्घं निर्वपामीति स्वाहा १५ ॥

चारित्रगुणयुक्तानां मुनीनां शीलधारिणां ।

गौरवं क्रियते यत्र तद्वात्सल्यं च कथ्यते ॥१६॥

ओं ह्रीं प्रवचनवात्सलत्वायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १६ ॥

: अथ जयमाला ।

भवभवहि निवारण सोलहकारण, पयडमि गुणगणसायरहं ।
पणविवि तित्थंकर असुहखयंकर केवलणाण दिवायरहं ॥१॥

पद्धरी छंद—दिढ धरहु परम दंसण विसुद्धि, मणवयणकायविरइयतिसुद्धि । मा छंडहु विणऊ चउ पयार, जो मुत्तिवरांगण हियहि हार ॥२॥ अणुदिणु परिपालउ सीलभेउ, जो हुत्ति हरइ संसारहेउ । णाणोपजोग जो काल गमइ, तसु तणिय किट्टि भुवणयहिं भमइ ॥ संचेउ चाउ जे अणुसरंति, वेएण भवण्णउ ते तरंति । जे चउविह दाण सुपत्त देय, ते भोहभूमि सुह सत्थ लेय ॥४॥ जे तव तवंति बारहपयार, ते सग्गसुरहिंदहविहवसार । जो साहुसमाधि धरंति थक्कु, सो हवइ ण कालमुहंधुवक्कु ॥५॥ जो जाणइ वैयावच्चकरण, सो होइ सव्व दोसाण हरण । जो चिंतइ मण अरिहंत देव, तसु विसय अणंताक्खवण खेव ॥ ६ ॥ पव्वयणसरिस जे गुरु णमंति, चउगइसंसार ण ते भमंति । वहु सुयह भत्ति जे णर करंति, अप्पउ रयणत्तय ते धरंति ॥ ॥७॥ जे छह आवासइ चित्तदेइ, सो सिद्धपंचसहरत्थ लेइ । जे मग्गपहावण आइरंति, ते अहमिंद्दंसण संभवंति ॥८॥ जे पवयणकज्जसमत्थ हंति, तहं कम्म जिणंदह खवण भांति । जे वच्छलच्छ कारण वहंति, ते तित्थयरत्तउ पुह लहंति ॥९॥

घत्ता—जे सोलह कारण कम्मवियारण जे धरंति वयसीलधरा ।
ते दिवि अमरेसुर पहुमि णरेसुर सिद्धवरंगण हियहि हरा ॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये पूर्णार्घं निर्व०

ऐताः षोडश भावना यतिवराः कुर्वंतिये निर्मलास्ते वै तीर्थकरस्य नामपदवीमायुर्लभंते कुलं। वित्तं कांचनपर्वतेषु विधिना स्नानार्चनं देवतां, राज्यं सौख्यमनेकधा वरतपो मोक्षं च सौख्यास्पदं ॥ (इत्याशीर्वादः)

१०७–अथ सोलहकारणपूजा भाषा।

अडिल्ल–सोलहकारण भाय तीर्थंकर जे भये, हरषे इंद्र अपार मेरुपै ले गये। पूजाकरिनिजधन्यलख्यौ बहुचावसौं, हमहू षोडशकारन भावैं भावसौं ॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

चौपई–कंचनझारी निरमल नीर, पूजौं जिनवर गुनगंभीर।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥
दरशविशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकरपदपाय।
परमगुरु होय, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥१॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं नि०

चंदन घसौं कपूर मिलाय, पूजौं श्रीजिनवरके पाय।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दरश० ॥चंदनं॥
तंदुल धवल सुगंध अनूप। पूजौं जिनवर तिहुँ जगभूप।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दरश० ।अक्षतान्।

फूल सुगंध मधुपगुंजार । पूजौं जिनवर जगआधार ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो । दरश० ॥ पुष्पं ॥
सदनेवेज बहुविध पकवान । पूजौं श्रीजिनवर गुणखान ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो । दरश० ॥नैवेद्यं॥
दीपकजोति-तिमिर छयकार, पूजूं श्रीजिन केवलधार ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दरश० ॥दीपं॥
अगर कपूर गंध शुभखेय । श्रीजिनवर आगे महकेय ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दरश० ॥धूपं॥
श्रीफल आदि बहुत फलसार । पूजौं जिन वांछितदातार ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दरश० ॥फलं॥
जल फल आठों दरव चढाय । 'द्यानत' वरत करों मनलाय ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दरश० ॥अर्घ्यं॥

अथ जयमाला ।

दोहा–षोडषकारण गुण करै, हरै चतुरगतिवास ।
पाप पुण्य सब नाशकै, ज्ञानभान परकास ॥१॥

चौपाई–दरशविशुद्धि धरै जो कोई । ताको आवागमन न होई ॥ विनय महा धारै जो प्रानी । शिववनिताकी सखी बखानी ॥२॥ शील सदा दिढ जो नर पालै । सो औरनकी आपद टालै ॥ ज्ञानाभ्यास करै मनमाहीं । ताके मोहमहातम नाहीं ॥३॥ जो संवेगभाव विसतारै । सुरगमुकतिपद आप निहारै ॥ दान देय मन हरष विशेखै । इह भव जस परभव सुख देखै ॥४॥ जो तप तपै खपै अभिलाषा । चूरै करमशि-

स्वर गुरु भाषा। साधुसमाधि सदा मन लावै। तिहुँजगभोग भोगि शिव जावै ॥५॥ निशदिन वैयावृत्य करैया। सो निहचै भवनीर तिरैया॥ जो अरहंतभगति मन आनै। सो जन विषय कषाय न जानै ॥६॥ जो आचारजभगति करै है। सो निर्मल आचार धरै है॥ बहुश्रुतवंतभगति जो करई। सो नर संपूरन श्रुत धरई ॥७॥ प्रवचनभगति करै जो ज्ञाता। लहै ज्ञान परमानँद दाता॥ षट्आवश्य काल जो साधै। सो ही रत्नत्रय आराधै ॥८॥ धरमप्रभाव करै जे ज्ञानी। तिन शिवमारग रीति पिछानी॥ वत्सल अंग सदा जो ध्यावै। सो तीर्थंकर पदवी पावै ॥९॥

दोहा—एही सोलह भावना, सहित धरै व्रत जोय।
देव इंद्र नरवंद्यपद, 'द्यानत' शिवपद होय ॥१०॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्व०। (इत्याशीर्वादः)

१०८—अथ दशलक्षणपूजा संस्कृत।

उत्तमादिक्षमाद्यंतब्रह्मचर्यसुलक्षणं।
स्थापयेद्दशधा धर्ममुत्तमं जिनभाषितं ॥१॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलाक्षणिकधर्म अत्रावतर अवतर। संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। (यंत्रस्थापनं)

प्रालेयशैलशुचिनिर्गतचारुतोयैः, शीतैः सुगंधिसहितैर्मुनिचित्ततुल्यैः। सपूजयामि दशलक्षणधर्ममेकं, संसारतापहननाय क्षमादियुक्तं ॥१॥

ओं ह्रीं ,उत्तमक्षमा-मार्दवा-र्जव-सत्य-शौच-संयम-तपस्त्यागा-किंचन्य ब्रह्मचर्यधर्मेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

श्रीचंदनैर्नहलकुंकुमचंद्रमिश्रैःसंवासवासितदिशामुखदिव्यसंस्थैः। संपूजयामि दशलक्षणधर्ममेकं संसार० ॥ चंदनं ॥

शालीयशुद्धसरलामलपुण्यपुंजै रम्यैरखंडशशिलक्षणरूपतुल्यैः संपूजयामि दशलक्षणधर्ममेकं संसार० । अक्षतं ॥

मंदारकुंदवकुलोत्पलपारिजातैः पुष्पैः सुगंधसुरभीकृतमूर्धलोकैः। संपूजयामि दशलक्षणधर्ममेकं संसार० । पुष्पं ।

अत्युत्तमैः रसरसादिकसद्यजातैर्नैवेद्यकैश्च परितोषित भव्यलोकैः। संपूजयामि दशलक्षणधर्ममेकं संसार० । नैवेद्यं ।

दीपैर्विनाशिततमोत्कररुद्यताशैः कर्पूरवर्तिज्वलितोज्वलभाजनस्थैः। संपूजयामिदशलक्षणधर्ममेकं संसार० । दीपं ॥

कृष्णागरुप्रभृतिसर्वसुगंधद्रव्यैर्धूपैस्तिरोहितदिशामुखदिव्यधूम्रैः । संपूजयामि दशलक्षणधर्ममेकं संसार० ॥ धूपं ॥

पूगीलवंगकदलीफलनालिकेरैर्हृद्घ्राणनेत्रसुखदैः शिवदानदक्षैः संपूजयामि दशलक्षणधर्ममेकं संसार० । फलं ।

पानीयस्वच्छहरिचन्दनपुष्पसारैः शालीयतंदुलनिवेद्यसुचन्द्रदीपैः । धूपैः फलावलिविनिर्मितपुष्पगंधैः पुष्पांजलिभिरपि धर्ममहं समर्चे ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा-मार्दवा-र्जव-सत्य-शौच-संयम-तपस्त्यागा-किंचन्य-ब्रह्मचर्यधर्मेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥१०॥

अथ अंगपूजा।

येनकेनापि दुष्टेन पीडितेनापि कुत्रचित्।
क्षमा त्याज्या न भव्येन स्वर्गमोक्षाभिलाषिणा ॥१॥

ओं ह्रीं परब्रह्मणे उत्तमक्षमाधर्मांगाय जलं निर्वपामीति स्वाहा। चंदनं निर्व०। अक्षतान् निर्व०। पुष्पं निर्व०। चरुं निर्व०। दीपं नि०। धूपं नि०। फलं नि०। अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

उत्तमखममद्दउ अज्जउ सच्चउ पुण सउच्च संजम सुतऊ। चाउवि आकिंचणु भवभयवंचणु वंभचेरु धम्मजु अखऊ। ॥ १ ॥ उत्तमखम तिल्लोयहसारी, उत्तमखम जम्मोवहितारी। उत्तमखम रयणयधारी, उत्तमखम दुग्गइदुहहारी ॥ २ ॥ उत्तमखम गुणगणसहयारी, उत्तमखम मुणिविंदपयारी। उत्तमखम बुहयण चिंतामणि, उत्तमखम संपज्जइ थिरमणि ॥ ३ ॥ उत्तमखम महणिज्ज सयलजणु, उत्तमखम मिच्छत्त विहंडणु। जह असमत्थह दोसु खमिज्जइ, जहिं असमत्थह ण वि रूसिज्जइ॥ जहिं आक्रोसणवयण सहज्जइ, जहि परदोस ण जण भासिज्जइ। जह चेयणगुण चित्त धरिज्जइ, तहिं उत्तमखम जिणे कहिज्जइ ॥ ५ ॥

घत्ता—इय उत्तमखमजूया सुरखगणूया केवलणाण लह चि
थिरू। हुय सिद्धणिरंजण भवदुहभंजणु अगणियरि-
सि पुंगमजि चिरू॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांगायार्घं निर्वपामीतिस्वाहा

मृदुत्वं सर्वभूतेषु कार्यं जीवेन सर्वदा।
काठिन्यं त्यज्यते नित्यं धर्मबुद्धिं विजानता ॥ २ ॥
ओं ह्रीं परब्रह्मणे उत्तममार्दवधर्मांगाय जलाद्यर्घं निर्व० ॥

मद्दव भवमद्दणु माणणिकंदणु दयधम्म जु मूल हु विमलु। सव्वह हिययारउ गुनजनसारउ तिस उचऊ संजम सयलु॥ मद्दउ माणकसाय विहंडणु, मद्दउ पंचेंदियमण दंडणु। मद्दउ धम्मइकरुणावल्ली, पसरइ चित्तमहीरुहवल्ली ॥२॥ मद्दउ जिनवर भत्तिपयासइ, मद्दउ कुमइपसरु णिण्णासइ। मद्दवेण बहुविणय पवट्टइ मद्दवेण जणवइरी हट्टइ ॥ ३ ॥ मद्दवेण परिणामविसुद्धी, मद्दवेण विहु लोयह सिद्धी। मद्दवेण दोविह तव सोहइ, मद्दवेण तीजो पर मोइइ॥ मद्दउ जिणसासण जाणिज्जइ, अप्पापर सरूव भासिज्जइ। मद्दउ दोस असेस णिवारउ, मद्दउ जणणसमुद्दह तारउ॥
घत्ता—सम्मद्दंसण अंगु मद्दउपरिणाम जु मुणहु।
हय परियाण विचित्त मद्दउ धम्म अमल थुणहु ॥६॥
ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्मांगायर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

आर्यत्वं क्रियते सम्यक् दुष्टबुद्धिश्च त्यज्यते।
पापचिंता न कर्त्तव्या श्रावकैर्धर्मचिंतकैः ॥ ३ ॥
ओं ह्रीं परमब्रह्मणे आर्जवधर्मांगाय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा

धम्मह वरलक्खणु अज्जउ थिरमणु, दुरियविहंडणु सुहजणणु। तं इत्थु जि किज्जइ तं पालिज्जइ,तं णि सुणिज्जइ खयजणणु॥ जारिसु णिजयचित्त चिंतिज्जइ, तारिसु अण्णहु पुण भासिज्जइ। किज्जइ पुण तारिसु सुहसंचणु, तं अज्जवगुण मुणहु

अवंचणु ॥२॥ मायासल्ल मणहु णीसारहु, अज्जउ धम्म पवित्त वियारहु। वउ तउ मायावियउ णिरत्थउ, अज्जउ सिवपुर पंथ सउत्थउ ॥ ३ ॥ जत्थ कुटिलपरिणाम चइज्जइ, तहिं अज्जउ धम्मजु संपज्जइ। दंसणणाणसरूव अखंडो, परम अतींदिय सुक्खकरंडो ॥ ४ ॥ अप्पे अप्पउ भवहतरंडो, एरिसु चेयणभावपयंडो। सो पुण अज्जउ धम्मे लब्भइ, अज्जवेण वैरियमण खुब्भइ ॥ ५ ॥

घत्ता—अज्जउ परमप्पउ गयसंकप्पउ चिम्मितु सासय अभयपऊ। तं णिरुजाइज्जइ संसउ हिज्जह, पाविज्जइ जिहि अचलपऊ ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं उत्तमार्जवधर्मांगायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

असत्यं सर्वथा त्याज्यं दुष्टवाक्यं च सर्वदा।
परनिंदा न कर्तव्या भव्येनापि च सर्वदा ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं परमब्रह्मणे उत्तमसत्यधर्मांगाय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दयधम्महु कारण दोसणिवारण, इहभवपरभव सुक्खयरू। सच्चुजि वयणुल्लउ भुवणिअतुल्लउ, बोलिज्जइ वीसासयरू ॥ १ ॥ सच्चु जि सव्वह धम्मपहाणु, सच्चु जि महियलगरुवविहाण। सच्चु जि संसारसमुद्दसेउ, सच्चु जि भव्वह मण सुक्खहेउ ॥ २ ॥ सच्चेण जि सोहइ मणुवजम्मु, सच्चेण पवित्तउ पुण्णकम्म। सच्चेण सयल गुणगण सहंति, सच्चेण तियस सेवा वहंति ॥ सच्चेण अणुव्वमहव्वयाइ, सच्चेण विणासिय आवयाइ। हियमिय भासिज्जइ

णिच्चभास, ण वि भासिज्जइ परदुहपयास ॥ ४ ॥ परबाहा-यर भासहु ण भव्व, सच्चु णि छंडउ विगयगव्व। सच्चु जि परमप्पा अत्थि एक्कु, सो भावहु भवतमदलण अक्कु॥ रुंधिज्जइ मुणिणा वयणगुत्ति, जंखण किट्टइ संसार अत्ति।

घत्ता--सच्चु जि धम्मफलेण केवलणाण वहेइ थणु।
तं पालहु भो भव्य! भणहु ण अलियउ इह वयणु॥

ओं ह्रीं सत्यध र्मांगायार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

बाह्याभ्यंतरैश्चापि मनोवाक्कायशुद्धिभिः।
शुचित्वेन सदा भाव्यं पापभीतैः सुश्रावकैः ॥९॥

ओं ह्रीं परब्रह्मणे उत्तमशौचधर्मांगाय जलाद्यर्घं निर्व० ॥

सच्चु जि धम्मंगो तं जि अभंगो भिण्णंगो उवओगमई। जरमरणविणासणु तिजयपयासणु काइज्जइ अहिणिसु जि थुऊ॥ धम्म सउच्च होइ मणसुद्धिय, धम्म सउच्च वयण-धण गिद्धिये। धम्म सउच्च लोह वज्जंतउ, धम्म सउच्च सुतव पहिजंतउ॥ धम्म सउच्च वंभव्वयधारणु, धम्म सउच्च मयट्ठ-णिवारणु। धम्म सउच्च जिणायमभणणे, धम्म सउच्च सुगुण अणुमणणे॥ धम्म सउच्च सल्लकयचाए, धम्म सउच्चु जि णिम्मलभाए। धम्म सउच्च कसाय अहावे, धम्म सउ-च्च ण लिप्पइ पावे॥ अहवा जिणवर पूज विहाणे, णिम्मल फासुयजलकयण्हाणे। तं पि सउच्च गिहत्थउ भासइ, णवि मुणिवरह कहिउलोयासिउ॥

घत्ता—भव मुणि वि अणिच्चो धम्म सउच्चउ पालिज्जइ

सिवमग्ग सहाओ सिवपयदाओ अणुमचितहिंकिणिखणि ।
ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

संयमं द्विविधं लोके कथितं मुनिपुंगवैः ।
पालनीयं पुनश्चित्ते भव्यजीवेन सर्वदा ॥६॥

ओं ह्रीं परब्रह्मणे उत्तमसंयमधर्मांगायजलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

संजम जणि दुल्लहु, तं पाविल्लहु, जो छंडइ पुण मूढमई।
सो भमै भवावलि, जरमरणावलि, किम पावइ सुइ पुण सुगई॥
संजम पंचिंदिय दंडणेण, संजम जि कसाय विहंडणेण । संजम दुद्धर तव धारणेण, संजमरस चाय वियारणेण ॥ संजम उववास वियंभणेण, संजम मणुपसरहु थंभणेण । संजम गुरु कायकलेसणेण, संजम परिगहगिहचायणेण ॥ संजम तस-थावररक्खणेण, संजम तिणि जोयणियत्तणेण । संजमसुतत्थ-परिरक्खणेण, संजम वहुगमण चयंतणेण ॥ संजम अणुकंप-कुणंतणेण, संजम परमत्थवियारणेण । संजम पोसइ दंसण हु अत्थु, संजम तिसहूणिरुमोक्खपत्थ । संजम विणु णरभव सयल सुण्णु, संजम विणु दुग्गइ जि उपवण्णु । संजम विण घडि यम इत्थ जाउ, संजम विण विहली अत्थि आउ॥ घत्ता—
इहभवपरभव संजमसरणो, होज्जउ जिणणाहे भणिओ ।
दुग्गइ सरसो सण खरकिरणोवम जेण भवारि विसम हणिओ
ओं ह्रीं संयमधर्मांगायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥

द्वादशं द्विविधं लोके वाह्याभ्यंतरभेदतः ।
स्वयं शक्तिप्रमाणेन क्रियते धर्मवेदिभिः ॥७॥

ओं ह्रीं परब्रह्मणे उत्तमतपोधर्मांगाय जलाद्यर्घं निर्व० ॥

णरभवपावेप्पिणु तच्च मुणेप्पिणु खंड वि पंचेंदियसमणु। णिव्वेउवि मंडिवि संगइ छंडिवि तव किज्जइ जाये विवणु॥ तं तउ जहि परिगह छंडिज्जह, तं तउ जहि मयणु जि खं-डिज्जइ। तं तउ जहि णग्गत्तणु दीसइ, तं तउ जहि गिरि-कंदर णिवसइ॥२॥ तं तउ जहि उवसग्ग सहिज्जइ, तं तउ जहि रायाइ जिणिज्जइ। तं तउ जहि भिक्खइ भुंजिज्जइ, सावइगेह कालणिविसज्जइ॥३॥ तं तउ जत्थ समिदिपरि-पालणु, तं तउ गुत्तित्तयहणिहालणु। तं तउ जहि अप्पापर बुज्झिउ, तं तउ जहि भव माणु जि उज्झिउ॥ तं तउ जहि ससरूव मुणिज्जइ, तं तउ जहि कम्महगण खिज्जइ। तं तउ जहि सुरभत्तिपयासहि, पवयणत्थ भवियणह पमासहि॥५॥ जेण तवे केवल उपवज्जइ, सासय सुक्ख णिच्च संपज्जइ॥ घत्ता—बारहविहु तउवरु दुग्गइ परिहरु, तं पूज्जिइ थिरग-णिणा। मच्छरमयछंडिवि करणइ दंडिवि तं पि धइज्जइ गौरविणा॥

ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगायार्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

चतुर्विधाय संघाय दानं चैव चतुर्विधं।
दातव्यं सर्वथा सद्भिश्चितकैः पारलौकिकैः॥८॥

ओं ह्रीं परब्रह्मणे उत्तमत्यागधर्मांगाय जलाद्यर्घं नि०॥

चाउ वि धम्मंगो करहु अभंगो णियसत्तिइ भत्तिय जण-हु। पत्तह सुपवित्तह तवगुणजुत्तह परगइसंवलु तं मुणहु॥ चाए आवागवणउ हट्टइ, चाए णिम्मल किंत्ति पवट्टइ।

चाए वयरिय पणमिइ पाये, चाए भोगभूमि सुह जाए ॥२॥ चाउ विहिज्जइ णिच्च जि विणए, सुयवयणे भासेप्पिणु पणए। अभयदाण दिज्जइ पहिलारउ, जिमि णासइ परभव-दुहयारउ ॥ सत्थदाण वीजो पुण किज्जइ, णिम्मलणाण जेण पाविज्जइ। ओसह दिज्जइ रोयविणासणु, कह विं ण पित्थइ वाहिपयासणु ॥ आहारे धणरिद्धि पविट्टइ, चउ-विह चाउ जि एहु पविट्टइ। अहवा दुइवियप्पह चाए, चाउ जि एहु मुणहु समवाए ॥५॥

घत्ता—दुहियहिं दिज्जइ दाण, किज्जइ माणु जि गुणियणहिं।
दयभावीय अभंग, दंसण चिंतिज्जइ मणहं ॥

ओं ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगायार्घं निवपामीति स्वाहा।

चतुर्विंशतिसंख्यातो यो परिग्रह ईरितः।
तस्य संख्या प्रकर्तव्या तृष्णारहितचेतसा ॥८॥

ओं ह्रीं परब्रह्मणे उत्तमाकिंचन्यधर्मांगायार्घं निवपा०।

आकिंचणु भावहु अप्पा ज्झावहु देहभिण्णउज्झाणमऊ। निरुवम गयवण्णउ सुहसंपण्णउ, परम अतींदिय विगयभउ ॥१॥ आकिंचणु चउसंगहणिवित्ति, आकिंचणु चउसुज्झा-णसत्ति। आकिंचणु वउवियलियममत्ति, आकिंचणु रयण-त्तयपवित्त। आकिंचणु आउ चिएहिचित्त, पसरंतउ इंदिय वणिविचित्त। आकिंचणु देहहणेहचित्त, आकिंचणु जं भव-सुइ विरत्त। तिणमत्त परिग्गह जत्थ णत्थि, मणिराउ विहि-ज्जइ तत्र अवत्थि। अप्पापर जत्थ वियारसत्ति, पयडिज्जइ

जहि परमेट्ठिभत्ति ॥ जह छंडिज्जइ संकप्पदुह, भोयण वंछिज्जइ जह अणिट्ठ । आकिंचण धम्म जि एम होइ, तं ज्झाइज्जइ णरुइत्थलोइ ॥ घत्ता-ए हुव्जि पहावे, लद्ध-सहावे तित्थेसर सिवनयरिगया । ते पुण रिसिसारा मयण-वियारा वंदणिज्ज एतेण सया ॥

ओं ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मांगायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

नवधा सर्वदा पाल्यं शीलं संतोषधारिभिः ।
भेदाभेदेन संयुक्तं सद्गुरूणां प्रसादतः ॥१०॥

ओं ह्रीं परब्रह्मणे उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय जलाद्यर्घं निर्व० ॥

वंभव्वउ दुद्धरु धारिज्जइवरु केडिज्जइ विसयासणिरु । तियसुक्खयरत्तो मणकरिमत्तो तं जि भव्व रक्खेहु थिरु ॥ चित्तभूमि मयणु जि उपवज्जइ, तेण जु पीडउ करइ अक-ज्जइ । तियह सरीरइ णिंदह सेवइ, णिय परणारि ण मूढउ वेवइ । णिवडइ णिरय महादुह भुंजइ, जो हीणुजि वंभव्वउ भंजइ ॥ इय जाणेविणु मणवयकाए, वंभचेरु पालहु अणु-राए । णवपयार सत्थिय सुहयारउ, वंभव्वे विणु वउतउ-जिअसारउ । वंभव्वे विणु काय किलेसइ, विहल सयल भा सीय जिणेसइ । वाहिर फरसेंदियसुहरक्खउ, परमवंभ आभिं-तर पिक्खउ ॥ एण उवाए लब्भइ सिवहरु, इम रइधू वहु-भणइ विणयपरु ॥

घत्ता-जिणणाह महिज्जइ, मुणि पणविज्जइ, दहलक्ख-

ण पालीइणिरु। भो खेमसियासुय भव्व विणय जुय होलि-वम्मयहु करहु थिरु ॥

ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

समुच्चय आरती।

इय काऊण णिज्जरं जे हणंति भवपिंजरं।
नीरोयं अजरामरं ते लहंति सुक्खं परं ॥ १ ॥

जण मोक्खफल तं पाविज्जइ, सो धम्मंगो एहहु गि-ज्जइ। खमखमायलु तुंगय देहउ, मद्दउ पल्लउ अज्जउ सेहउ ॥ सच्च सउच्च मूल संजमदलु, दुविह महातव णवकु-सुमाउलु। चउविह चाउय साहियपरमलु, पीणिय भव्वलोय छप्पइयलु ॥ दियसंदोह सद्द कलकलयलु, सुरणरवरखेयर सुहसयफलु। दीणाणाह दीह सम णिग्गहु, सुद्ध सोमतणु-मित्तपरिग्गहु ॥ बंभचेरु छायइ सुहासिउ, रायहंस नियरे-हि समासिउ। एहउ धम्म रुक्ख लाखिज्जइ, जीवदया वयणहि राखिज्जइ ॥ झाणट्ठाण भल्लारउ किज्जइ, मि-च्छामई पवेस ण दिज्जइ। सीलसलिलधारहि सिंचि-ज्जइ, एम पयत्तणवड्ढारिज्जइ ॥

घत्ता—कोहानल चुकउ, होउ गुरुकउ, जाइ रिसिंदिय सिट्ठगई।
जगताइ सुहंकरु धम्ममहातरु देइ फलाइ सुमिट्ठमई ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

(इत्याशीर्वादः)

१०९–अथ दशलक्षणधर्मपूजा भाषा

अडिल्ल–उत्तम छिमा मारदव आरजवभाव हैं। सत्य सौच संजम तप त्याग उपाव हैं॥ आकिंचन ब्रह्मचरज धरम दश सार हैं। चहुंगतिदुखतै काढि मुकतिकरतार हैं॥१॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधम ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्

सोरठा–हेमाचलकी धार, मुनिचित सम शीतल सुरभि।
भवआताप निवार, दसलच्छन पूजौं सदा॥१॥

ओं ह्री उत्तमक्षमामार्दवार्जव सत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्य-ब्रह्मचर्यादिदशलक्षणधर्मेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

चंदन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा। भव०॥ चंदनं
अमल अखंडितसार, तंदुल चंद्रसमान शुभ।भव०॥ अक्षतान्
फूल अनेकप्रकार, महकै ऊरधलोक लों। भव०॥ पुष्पं॥
नेवज विविध निहार, उत्तम षटरससंजुगत।भव०॥ नैवेद्यं
वाति कपूर सुधार, दीपकजोति सुहावनी।भव०॥ दीपं॥
अगर धूप विस्तार, फैलै सर्व सुगंधता। भवआ०॥ धूपं॥
फलकी जाति अपार, घ्रान नयन मनमोहने।भव०॥ फलं॥
आठो दरव संवार, द्यानत अधिक उछाहसों। भव०॥ अर्घ्य

अंग पूजा।

सोरठा–पीडैं दुष्ट अनेक, बांध मार वहुविधि करैं।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजे पीतमा॥१॥

चौपाईमिश्रित गीता छंद।

उत्तमछिमा गहोरे भाई। इहभव जस परभव सुखदाई॥
गाली सुनि मन खेद न आनो। गुनको औगुन कहै अयानो॥
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बांध मार बहुविधि करै।
घरतैं निकारै तन विदारै, वैर जो न तहां धरै॥
तैं करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा।
अतिक्रोधअगनि बुझाय प्रानी, साम्य जल ले सीयरा॥
ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

मान महाविषरूप, करहि नीचगति जगतमें।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा॥२॥
उत्तम मार्दवगुन मनमाना। मान करनको कौन ठिकाना।
वस्यो निगोदमहितैं आया। दमरी रूँकन भाग विकाया॥
रूकन विकाया भागवशतैं, देव इकइन्द्री भया।
उत्तम मुआ चांडाल हूवा, भूप कीडोंमें गया॥
जीतव्य-जोवन-धनगुमान कहा करै जलबुदबुदा।
करि विनय बहुगुन बड़े जनकी ज्ञानका पावै उदा॥
ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कपट न कीजै कोय, चोरनके पुर ना बसै।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु संपदा॥
उत्तमआर्जवरीति बखानी। रंचक दगा बहुत दुखदानी।
मनमें हो सो वचन उचरिये। वचन होय सो तनसौं करिये॥
करिये सरल तिहुँजोग अपने, देख निरमल आरसी।

मुख करै जैसा लखै तैसा, कपटप्रीति अंगारसी ॥
नहिं लहै लछमी अधिक छलकरि, करमबंध विशेषता ॥
भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता ॥
ओं ह्रीं उत्तमार्जवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

कठिन वचन मति बोल, परनिंदा अरु झूठ तज ।
सांच जवाहर खोल, सतवादी जगमें सुखी ॥
उत्तम सत्यवरत पालीजै, परविश्वासघात नहिं कीजै ॥
सांचे झूठे मानुष देखो, आपनपूत स्वपास न पेखो ॥
पेखो तिहायत पुरुष सांचेको, दरब सब दीजिये ।
मुनिराज श्रावककी प्रतिष्ठा, सांचगुण लख लीजिये ॥
ऊँचे सिंहासन बैठि वसुनृप, धरमका भूपति भया ।
वच झूठसेती नरक पहुँचा, सुरगमें नारद गया ॥
ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

धरि हिरदै संतोष, करहु तपस्या देहसौं ।
शौच सदा निरदोष, धरम बड़ो संसारमें ॥
उत्तम सौच सर्व जग जाना । लोभ पापको बाप बखाना ॥
आसापास महादुखदानी । सुख पावै संतोषी प्रानी ॥
प्रानी सदा शुचि शीलजपतप, ज्ञानध्यानप्रभावतैं ।
नित गंगजमुन समुद्र न्हाये, अशुचिदोष सुभावतैं ॥
ऊपर अमल, मल भर्यो भीतर, कौन विध घट शुचि कहै ॥
बहु देह मैली सुगुनथैली, शौच गुन साधू लहै ॥
ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

काय छहों प्रतिपाल, पंचेंद्री मन वश करो।
संजमरतन संभाल, विषय चोर बहु फिरत हैं॥
उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव भवके भाजैं अघ तेरे॥
सुरग नरकपशुगतिमें नाहीं, आलसहरन करन सुख ठाहीं॥
ठाहीं पृथी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो।
जिस विना नहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जगकीचमें।
इक घरी मत विसरो करो नित, आव जममुख वीचमें॥
ओं ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

तप चाहैं सुरराय, करमसिखरको वज्र है।
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकति सम॥
उत्तम तप सबमाहिं बखाना। करमशैलको वज्र समाना॥
बस्यो अनादिनिगोदमंझारा। भूविकलत्रय पशुतन धारा॥
धारा मनुषतन महादुर्लभ, सुकुल आव निरोगता।
श्रीजैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषयपयोगता॥
अति महादुरलभ त्याग विषय, कषाय जो तप आदरै।
नरभवअनूपमकनकघरपर, मणिमयी कलसा धरै॥
ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

दान चार परकार, चारसंघको दीजिये।
धन विजुली उनहार, नरभवलाहो लीजिये॥ ८॥
उत्तमत्याग कह्यो जगसारा। औषध शास्त्र अभय आहारा॥
निहचै रागद्वेष निरवारै। ज्ञाता दोनों दान संभारै॥

दोनों संभारैं कूपजलसम, दरब घरमें परिनया। निज-
हाथ दीजे साथ लीजे, खाय खोया बह गया॥ धनि साध
शास्त्र अभयदिवैया, त्याग राग विरोधकों॥ विन दान
श्रावक साध दोनों, लहैं नाहीं बोधकों॥ ८॥

ओं ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ ८॥

परिग्रह चौविस भेद, त्याग करैं मुनिराजजी।
तिसना भाव उछेद, घटती जान घटाइए॥ ९॥
उत्तम आकिंचन गुण जानौ। परिग्रहचिंता दुख ही मानौ॥
फांस तनकसी तनमें सालै, चाह लंगोटीकी दुख भालै॥
भालै न समता सुख कभी नर, विना मुनि मुद्रा धरैं।
धनि नगनपर तन-नगन ठाडे, सुर असुर पायनि परैं॥
घरमांहि तिसना जो घटावै, रुचि नहीं संसारसौं।
वहुधन बुरा हू भला कहिये, लीन पर उपगारसौं॥ ९॥

ओं ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मांगाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥९॥

शीलवाड नौ राख, ब्रह्मभाव अंतर लखो।
करि दोनों अभिलाख, करहु सुफल नरभव सदा॥१०॥
उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता वहिन सुता पहिचानौ॥
सहै वानवरषा वहु सूरे। टिकैं न नैन वान लखि कूरे॥
कूरे तियाके अशुचितनमें, कामरोगी रति करै।
वहु मृतक सडहिं मसानमाहीं, काक ज्यों चौंचैं भरै।
संसारमें विषवेल नारी, तजि गये जोगीश्वरा।
'द्यानत' धरमदशपैंडि चढिकैं, शिवमहलमें पग धरा॥

ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ १०॥

अथ समुच्चय जयमाला।

दोहा—दशलच्छन बंदौं सदा, मनवांछित फलदाय।
कहों आरती भारती, हमपर होहु सहाय ॥ १ ॥

वेसरी छंद—उत्तमछिमा जहां मन होई, अंतरबाहिर शत्रु न कोई। उत्तममार्दव विनय प्रकासै, नानाभेद ज्ञान सब भासै ॥ २ ॥ उत्तमआर्जव कपट मिटावै, दुरगति त्यागि सुगति उपजावै। उत्तम सत्यवचन मुख बोलै, सो प्रानी संसार न डोलै ॥३॥ उत्तमशौच लोभपरिहारी, संतोषी गुण-रतनभंडारी। उत्तमसंयम पालै ज्ञाता, नरभव सफल करै ले साता ॥ ४ ॥ उत्तमतप निरवांछित पालै, सो नर करम-शत्रुको टालै। उत्तमत्याग करै जो कोई, भोगभूमि-सुर-शिव सुख होई ॥ ५ ॥ उत्तमआकिंचनव्रत धारै, परमसमाधि दशा विसतारै। उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावै, नरसुरसहित मुकतिफल पावै ॥ ६ ॥

दोहा—करै करमकी निरजरा, भवपींजरा, विनाशि।
अजर अमरपदकों लहै, 'द्यानत' सुखकी राशि ॥७॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यदशलक्षणधर्माय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

११०—अथ रत्नत्रयपूजा भाषा

दोहा—चहुंगतिफनिविषहरनमणि, दुखपावक जलधार।
शिवसुखसुधासरोवरी, सम्यकत्रयी निहार ॥ १ ॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

सोरठा—क्षीरोदधि उनहार, उज्वल जल अति सोहनो ।
जनमरोग निरवार, सम्यकरत्नत्रय भजूं ॥ १ ॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय जन्मरोगविनाशाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

चंदन केसर गारि, परिमल महासुरंगमय । जन्म०॥चंदनं

तंदुल अमल चितार, वासमती सुखदासके । जन्म०॥अक्षतान्

महकैं फूल अपार, अलि गुंजैं ज्यों थुति करैं । जन्म०॥पुष्पं॥

लाडू वहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगंधयुत ॥ जन्म० ॥नैवेद्यं॥

दीपरतनमय सार, जोत प्रकाशै जगतमें । जन्म० ॥दीपं ॥

धूप सुवास विथार, चंदन अगर कपूरकी । जन्म० ॥धूपं॥

फल शोभा अधिकार, लौंग छुहारे जायफल ।जन्म०॥फलं॥

आठदरव निरधार, उत्तमसों उत्तम लिये । जन्म०॥ अर्घ्यं ॥

सम्यकदरशनज्ञान, व्रत शिवमग तीनों मयी ।
पार उतारन जान, 'द्यानत' पूजों व्रतसहित ॥ १० ॥

दर्शनपूजा ।

दोहा—सिद्ध अष्टगुनमय प्रगट, मुक्तजीवसोपान ।
जिहविन ज्ञानचरित अफल, सम्यकदर्श प्रधान ॥१॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्रावतर अवतर । संवौषट् ।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

सोरठा—नीर सुगंध अपार, त्रिषा हरै मल छय करै ।
सम्यकदर्शनसार, आठअंग पूजौं सदा ॥१॥
ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

जल केसर घनसार, ताप हरै सीतल करै । सम्य०॥चंदनं॥
अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै । सम्य०॥अक्षतान्
पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै । सम्य० ॥पुष्पं॥
नेवज विविधप्रकार, छुधा हरै थिरता करै । सम्य० ॥नैवेद्यं॥
दीपज्योति तमहार, घटपट परकाशै महा । सम्य० ॥दीपं॥
धूप घ्रानसुखकार, रोग विघन जड़ता हरै । सम्यक०॥धूपं॥
श्रीफलआदि विथार, निहचै सुरशिवफल करै । सम्य० ॥फलं॥
जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फलफूल चरु । सम्यक०॥अर्घं

अथ जयमाला ।

दोहा—आप आप निहचैं लखै, तत्त्वप्रीति व्योहार ।
रहितदोष पच्चीस है, सहित अष्ट गुन सार ॥१॥

चौपाई-मिश्रित गीताछन्द ।

सम्यकदरशन रतन गहीजे । जिनवचमें संदेह न कीजै ।
इहभव विभवचाह दुखदानी । परभवभोग चहै मत प्रानी ॥
प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरमगुरुप्रभु परखिये ।
परदोष ढकिये धरम डिगतेको, सुथिर कर हरषिये ॥
चहुसंघको वात्सल्य कीजे, धरमकी परभावना ।
गुन आठसों गुन आठ लहिकैं, इहां फेर न आवना ॥२॥
ओं ह्रीं अष्टांगसहितपञ्चविंशतिदोषरहिताय सम्यग्दर्शनाय पूर्णार्घ्यं० ॥

ज्ञानपूजा ।

दोहा—पंचभेद जाके प्रगट, ज्ञेयप्रकाशन भान ।
मोह-तपन-हर-चन्द्रमा, सोई सम्यकज्ञान ॥१॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र तिष्ठ ठः ठः ।
ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

सोरठा—नीरसुगंध अपार, त्रिषा हरै मल छय करै ।
सम्यकज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥१॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

जलकेसर घनसार, ताप हरै शीतल करै । सम्य०।.चन्दनं॥
अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै । सम्य०॥अक्षतान्
पहुपसुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै । सम्य० ॥पुष्पं॥
नेवज विविधप्रकार, छुधा हरै थिरता करै । सम्य०॥नैवेद्यं॥
दीप ज्योति तमहार, घटपट प्रकाशै महा । सम्य० ॥दीपं॥
धूप घ्रानसुखकार, रोग विघन जडता हरै । सम्य० ॥धूपं॥
श्रीफल आदि विथार, निहचै सुरशिवफल करै ।सम्य०फलं॥
जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु । सम्य०॥अर्घ्यं॥

अथ जयमाला ।

दोहा—आप आप जानै नियत, ग्रंथपठन व्योहार ।
संशय विभ्रम मोह विन, अष्टभंग गुनकार ॥१॥

चौपाई-मिश्रित गीताछंद ।

सम्यकज्ञान रतन मन भाया, आगम तीजा नैन बताया ।

अच्छर शुद्ध अरथ पहिचानो, अच्छर अरथ उभय संग जानौं।
जानौं सुकालपठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइये।
तपरीति गहि वहु मान देकै, विनयगुन चित लाइये॥
ये आठ भेद करम उछेदक, ज्ञान-दर्पन देखना।
इस ज्ञानहीसों भरत सीझा, और सब पटपेखना॥२॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥२॥

चारित्रपूजा।

दोहा—विषयरोग औषध महा, दवकषायजलधार।
तीर्थंकर जाकौं धरैं, सम्यकचारितसार॥१॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

सोरठा—नीर सुगंध अपार, त्रिषा हरै मल छय करै।
सम्यकचारितसार, तेरहविध पूजौं सदा॥ १॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

जल केशर घनसार, ताप हरै शीतल करै। सम्यक०॥चंदनं॥
अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै। सम्य०॥अक्षतान्॥
पहुपसुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै। सम्य०॥पुष्पं॥
नेवज विविधप्रकार, छुधा हरै थिरता करै। सम्यक०॥नैवेद्यं॥
दीपजोति तमहार, घटपट परकाशै महा। सम्यक०॥ दीपं॥
धूप घ्रान सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै। सम्य०॥धूपं॥
श्रीफल आदि विथार, निहचै सुरशिवफल करै। सम्य०॥फलं

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु। सम्यक०॥अर्घं॥

अथ जयमाला।

दोहा—आप आप थिर नियत नय, तपसंजम व्योहार।
स्वपर दया दोनों लिये, तेरहविध दुखहार ॥१॥

चौपाई-मिश्रित गीताछंद।

सम्यकचारित रतन संभालौ, पांच पाप तजिकैं व्रत पालौ।
पंचसमिति त्रय गुपति गहीजे, नरभव सफल करहु तन छीजे।
छीजै सदा तनको जतन यह, एक संजम पालिये।
बहु रुल्यो नरक निगोदमाहीं, विषयकषायनि टालिये।
शुभकरम जोग सुघाट आया, पार हो दिन जात है।
'द्यानत' धरमकी नाव बैठो, शिवपुरी कुशलात है ॥२॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

अथ समुच्चय जयमाला।

दोहा—सम्यकदरशन-ज्ञान-व्रत, इन विन मुकति न होय।
अंध पंगु अरु आलसी, जुदे जलै दव-लोय ॥१॥

चौपाई—जापै ध्यान सुथिर वन आवै। ताके करमबंध कट जावै। तासों शिवतिय प्रीति बढावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै ॥१॥ ताको चहुँगतिके दुख नाहीं। सो न परै भव-सागरमाहीं॥ जनमजरामृतु दोष मिटावै। जो सम्यक-रतनत्रय ध्यावै ॥२॥ सोई दशलच्छनको साधै। सो सोलह कारण आराधै। सो परमातम-पद उपजावै। जो सम्यक-रतनत्रय ध्यावै ॥४॥ सोई शक्रचक्रिपद लेई। तीनलोकके

सुख विलसेई ॥ सो रागादिक भाव वहावै । जोसम्यकरतन-त्रय ध्यावै ॥ सोई लोकालोक निहारै परमानंददशा विसतारै॥ आप तिरै औरन तिरवावै । जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै ॥

दोहा–एकस्वरूपप्रकाश निज, वचन कह्यो नहिं जाय।
तीन भेद व्योहार सब, द्यानतको सुखदाय ॥

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्राय महार्घ्यं निर्वपामीति० ॥

(अर्घके बाद विसर्जन करना चाहिये)

१११–समुच्चयचौबीसीपूजा

वृषभ अजित संभव अभिनंदन, सुमति पदम सुपास जिन-राय । चंद पुहुप शीतल श्रियांस नमि, बासुपूज पूजितसुर-राय ॥ विमल अनंत धर्मजसउज्जल, शांति कुंथु अर मल्लि मनाय । मुनिसुव्रत नमि नेमि पासप्रभु, वर्द्धमानपद पुष्प चढ़ाय

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह ! अत्र तिष्ठ । ठः ठः । ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

मुनिमनसम उज्वल नीर, प्रासुक गंध भरा । भरि कनक कटोरी धीर, दीनी धार धरा ॥ चौबीसों श्रीजिनचंद, आ-नँदकंद, सही । पद जजत हरत भवफंद, पावत मोक्षमही ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं० ॥

गोशीर कपूर मिलाय, केशर रंगभरी ।
जिनचरनन देत चढाय, भवआताप हरी ॥चौबी०॥चंदनं॥

तंदुल सित सोमसमान, सुंदर अनियारे ।
मुकताफलकी उपमान, पुंज धरों प्यारे ॥चौवी०॥अक्षतान्॥
वरकंज कदंब कुरंड, सुमन सुगंध भरे ।
जिन अग्र धरों गुनमंड, कामकलंक हरे ॥ चौवी० पुष्पं ॥
मनमोदनमोदक आदि, सुंदर सद्य बने ।
रसपूरित प्रासुक स्वाद,जजत छुधादि हने।।चौवी०॥नैवेद्यं॥
तमखंडन दीप जगाय, धारों तुम आगै ।
सब तिमिरमोह क्षय जाय, ज्ञानकला जागै ॥चौवी०॥दीपं
दशगंध हुताशनमाहिं, हे प्रभु खेवत हों ।
मिस धूम करम जरि जाहिं, तुम पद सेवत हों ॥चौवी०॥धूपं
शुचि पक्क सुरस फल सार, सबऋतुके ल्यायो ।
देखत दृगमनकों प्यार, पूजत सुख पायो ॥चौवी०॥फलं॥
जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ करों ।
तुमकों अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों ॥चौवी०॥अर्घ्यं

जयमाला

दोहा-श्रीमत तीरथनाथपद, माथ नाय हितहेत ।
गाऊं गुणमाला अबै, अजर अमरपद देत ॥ १ ॥

छंद घत्तानन्द-जय भवतम भंजन जनमनकंजन, रंजन दिनमनि स्वच्छकरा । शिवमगपरकाशक अरिगननाशक, चौबीसौं जिनराज वरा ॥ २ ॥

छन्द पद्धरी-जय ऋषभदेव रिषिगन नमंत । जय अजित जीत वसुअरि तुरंत ॥ जय संभव भवभय करत चूर । जय

अभिनंदन आनंदपूर ॥ जय सुमति सुमतिदायक दयाल।
जय पद्म पद्मदुति तनरसाल ॥ जय जय सुपास भवपास-
नाश। जय चंद चंदतनदुतिप्रकाश ॥ ४ ॥ जय पुष्पदंत
दुतिदंत सेत। जय शीतल शीतलगुननिकेत। जय श्रेयनाथ
नुतसहसभुज्ज। जय वासवपूजित वासुपुज्ज ॥ ५ ॥ जय
विमल विमलपददेनहार। जय जय अनंत गुनगन अपार।
जय धर्म धर्म शिवशर्म देत। जय शांति शांति पुष्टी करेत॥
जय कुंथु कुंथु वादिक रखेय। जय अर जिन वसुअरि छय
करेय॥ जय मल्लि मल्ल हतमोहमल्ल। जय मुनिसुव्रत
व्रतशल्लदल्ल ॥ ७ ॥ जय नमि नित वासवनुत सपेम।
जय नेमिनाथ वृषचक्रनेम। जय पारसनाथ अनाथनाथ।
जय वर्द्धमान शिवनगर साथ ॥ ८ ॥

घत्ता—चौबीस जिंनदा आनँदकंदा, पापनिकंदा सुखकारी।
तिनपदजुगचंदा उदय अमंदा, वासव वंदा हितकारी ॥९॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिचतुर्विंशतिजिनेभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सोरठा—भुक्ति मुक्ति दातार, चौबीसौं जिनराजवर।
तिनपद मनवचधार, जो पूजै सो शिव लहै॥इत्याशीर्वादः॥

११२—श्रीआदिनाथजिनपूजा।

अडिल्ल—परमपूज्य वृषभेश स्वयंभूदेवजू। पिता नाभि
मरुदेवि करै सुर सेवजू। कनक वरन तनतुंग धनुषपन-
सततनो। कृपासिंधु इत आय तिष्ठ मम दुख हनो ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

हिमवनोद्भव वारि सुधारकै । जजतहूं गुणबोध उचारकैं ।
परम भाव सुखोदधि दीजिये । जनममृत्युजराक्षय कीजिये॥
ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

मलय चंदन दाहनिकंदनं । घसि उभै करमें कर वंदनं ॥
जजतहूँ प्रशमाश्रम दीजिये । तपततापत्रिधा छय कीजिये ॥
ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय चदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अमल तंदुल खंड विवर्जितं । सित निसेस हिमामिय तर्जितं ॥
जजतहूं तसुपुंज धरायजी । अखय संपति द्यो जिनरायजी ॥
ओं ह्रीं आदिनाथजिनेन्द्राय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा !

कमल चंपक केतुकी लीजिये । मदनभंजन भेंट धरीजिये ॥
परमशील महासुखदाय हैं । समरशूल निमूल नशाय हैं ॥
ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

सरस मोदन मोदक लीजिये । हरन भूख जिनेश जजीजिये ॥
शकल आकुलअंतक हेतु हैं । अतुल शांति-सुधारस देतु हैं ॥
ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

निवड मोह महातम छाइयो । स्वपरभेद न मोहि लखाइयो ॥
हरन कारन दीपक तासके । जजतहूं पद केवलभासके ॥
ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

अगर चंदन आदिक लेयकैं । परम पावन गंध सुखेयकैं ॥
अगनिसंग जरैं मिस धूमके । सकल कर्म उड़ै यह घूमकैं ॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सरस पक्क मनोहर पावने। विविध ले फल पूज रचावने॥
त्रिजगनाथ कृपा अब कीजिये। हमहि मोक्ष महाफल दीजिये॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फलादि समस्त मिलायकैं। जजतहूं पद मंगल गायकैं॥
भगतवत्सल दीनदयालजी। करहु मोहि सुखी लख हालजी॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक।

असित दोज अषाढ सुहावनी। गरभ मंगलको दिन पावनी॥
हरि सची पितु मातहिं सेवहीं। जजत हैं हम श्रीजिनदेवही॥

ओं ह्रीं आषाढ़कृष्णद्वितीयादिने गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीआदि० अर्घं॥

असित चैत सुनौमि सुहाइयो। जन्म मंगल तादिन पाइयो॥
हरि महागिरिमै जजियो तबै। हम जजैं पदपंकजको अबै॥

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णनवमीदिने जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीआदिनाथ० अर्घ्यं॥

असित नौमिसु चैत धन्यो सही। तप विशुद्ध सबै समतागही॥
निज सुधारससौं लव लाइयो। हम जजैं पद अर्घ चढ़ाइयो

ओं ह्रीं श्रीचैत्रकृष्णनवमीदिने दीक्षामंगलप्राप्ताय श्रीआदि० अर्घ्यं॥

असित फागुन ग्यारसि सोहनो। परम केवल ज्ञान जग्यो भनो॥
हरि समूह जजैं तित आयकै। हम जजै इत मंगल गायकैं॥

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां ज्ञानमंगलप्राप्ताय श्रीआदि० अर्घ्यं॥

असित चौदस माघ विराजई। परम मोक्ष लियो जिनराजई॥
हरिसमूह जजे कैलाशजी। हम जजैं इत धार हुलासजी॥

ओं ह्रीं माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीआदि० अर्घं॥

जयमाला।

जय जय जिनचंदा आदि जिनंदा हरि भवफंदा-कंदा जू। वासववसतवंदा धरि आनंदा ज्ञान असंदा नंदाजू ॥ छंद मोतीदाम—त्रिलोकहितकरं पूरन पर्म। प्रजापति विष्णु चिदातम धर्म ॥ जतीस्वर ब्रह्म विदांवरबुद्ध। वृषंक असंक क्रियांबुधि शुद्ध ॥२॥ जबै गर्भागममंगल जान। तबै हरि हर्ष हिये अति आन ॥ पिता जननीपदसेव करेय। अनेक प्रकार उमंग भरेय ॥३॥ जयो जबही तबही हरि-आय। गिरीन्द्रविषै किय न्हौन सु जाय ॥ नियोग समस्त किये तित सार। सुल्याय प्रभू पुनि राज-अगार ॥ ४ ॥ पिताकर सौंपि कियो तित नाट। अमंद अनंद समेत विराट ॥ सुथान पयान कियो फिर इन्द्र। इहां सुर सेव करैं जिन-चन्द्र ॥ ५ ॥ कियो चिरकाल सुखाश्रितराज। प्रजा सब आनँदको नित साज ॥ सुलिप्त सुभोगनमैं लखिजोग। कियो हरिने यह उत्तम योग ॥६॥ निलंजन नाच रच्यो तुमपास। नवोंरसपूरित भाव विलास ॥ बजैं मिरदंग दमं-दम जोर। चलै पग झार झनंझन झोर ॥७॥ घनाघन घंट करैं धुनि मिष्ट। बजै मुहचंग सुरान्वित पुष्ट ॥ खड़ी छिन पास छिनैहि अकाश। लघू छिन दीरघ आदिविलास ॥८॥ ततच्छिन ताहि विलय अवलोय। भये भवतैं भय-भीत वहोय ॥ सुभावत भावन बारह भाय। तहां दिवब्रह्म ऋषी-श्वर आय ॥९॥ प्रबोध जिनेश गये निजधाम। तबै हरि

आप रची शिवकाम ॥ कियौ कचलौंच प्रयाग अरन्य। चतुर्थम ज्ञान लह्यो जग धन्य ॥१०॥ धर्यो जब जोग छमास-प्रमान। दियो सिरियांस तिन्हैं इखदान ॥ भयो जब केवलज्ञान जिनेंद। समोश्रितठाठ रच्यो सुधनेंद ॥११॥ तहां वृषतत्त्व प्रकाश असेस। कियो फिर निर्भयथान प्रवेश ॥ अनंतगुणात्तम श्रीसुखरास। तुमै नित भव्य नमैं शिव आस ॥

घत्ता—यह अरज हमारी सुन त्रिपुरारी, जन्म जरा मृत, दूर करो। शिवसंपति दीजे, ढील न कीजे निज लखिलीजे, कृपा धरो

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्राय अर्घ्यं निवपामीति स्वाहा।

आर्या—जो ऋषभेस्वर पूजैं, मनवचतनभाव शुद्ध कर प्रानी।
सो पावै निश्चैसों, भुक्ती ओ मुक्ति सार सुखथानी ॥१४॥
(इत्याशीर्वादः)

११३—श्रीचंद्रप्रभजिनपूजा।

छंद गीता—शुभ चंद्रपुरनृप महासेन सुलक्षणा माता जने।
सो चंद्रप्रभु-वपु चंद्रसम पदचंद अंक सुहावने ॥
तजि वैजयंत विमान वंश इक्ष्वाकु नभके भानु वे।
आयूष दश लख पूर्व उन्नत डेढसै धनुमान वे ॥१॥

सोरठा—कुमुदचंद भगवान, भविकफुलां प्रफुलित करन।
अमिय करावत पान, अत्र आय तिष्ठौ प्रभो ॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्रावतर अवतर। संवौषट्।(इत्याह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। (इति स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।(सन्नि०)

अष्टक—छंद जोगीरासा।

रतन-जडित कंचनमय झारी तामधि गंगापानी।
फटिक समान मिलाय अगरजा गंध वहै मनमानी॥
चंद्रप्रभके पदनख ऊपर कोटि चंद्रदुति लाजै।
दरवित भावित भाव शुद्ध करि जजै सप्त भय भाजै॥

ओं ह्रीं चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरोगविनाशनाय जलं निर्वपामीति० ॥

मलयागिर घसि चंदन नीको भलोसिताभ्र मिलाऊं। अग्नि-शिखा मिश्रितकरि आछे कनक कटोरी ल्याऊं।चंद्र० चंदनं
तंदुल धवल प्रछालि मनोहर मिष्ट अमी समतूला। चुने खंड-वर्जित अति दीरघ लखे मिटत क्षुधशूला॥चद्र०॥अक्षतान्॥
वरमच कुंद कुंद कुंदनके पुष्प सम्हारि बनाये। नसत काम-की विथा चढावत पावत सुखमनभाये॥चंद्रप्रभ०॥ पुष्पं॥
सूपकारकृत षटरसपूरित व्यंजन नानाभांती। पुष्टि करत हरिलेत क्षीनता क्षुधारोगको घाती॥ चंद्रप्रभ० ॥ नैवेद्य ॥
निश्चल जोति महादीपककी प्रभु चरननके तीरा। ल्याय धरों हितपाय आपनो हतै न ताहि समीरा ॥चंद्रप्रभ०॥ दीपं ॥
कंचनजडित धूपको आयन जामधि धूप जराऊं। उठत धूम्र मिस करम जनो वसु फेरि न जगमें आऊं॥चंद्रप्रभ०॥धूपं॥
वृंदारक कुसुमारक द्राक्षा क्रमुक रसाल घनेरे। इन्हैं आदि-फल नानाविधिके कंचन थार भरेरे ॥ चंद्रप्रभ० ॥ फलं ॥
लै जल गंध अक्षत वरसुमना चरु दीपकमणिकेरा। धूप महा-फल अरघ बनाऊं पदपूजनकी वेरा॥ चंद्रप्रभ० ॥ अर्घं ॥

अथ पंचकल्याणक। छंद शिखरिणी।

कही पांचैं आछी असित पखकी चैत्र महिना। महाप्यारी रानी भल सुलक्षणा नाम कहिना॥ वसे रात्रि स्वामी सुभग दिन जाके उदरमा। जजौं लैकैं अर्घ मिलत जिहिसों धामपरमा

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णपञ्चम्यां गर्भमङ्गलप्राप्ताय श्रीचंद्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं।

जने माता भूपै शुभ इकदशी पूस वदिकी। बजे घंटा आदि भेसब अपुनसों छोभ अधिकी॥ वहां पूजा कीन्हीं अमरपतिने जन्मदिनकी। इहां मैं ले अर्घ जजन करिहौं चंद्र जिनकी॥

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्मकल्याणमंडिताय श्रीचंद्रप्रभ० अर्घं॥

कपाली संख्याकी तिथिवदि कही पूष पलमें। धरी दीक्षा स्वामी विभव तजि आरण्यथलमें॥ डरे शत्रु सारे कलमष कहे आदि जितने। लिये अर्घ भारी चरणयुग पूजों तुअ तने॥

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां तपकल्याणमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजि० अर्घं॥

भये ज्ञानी स्वामी नवमि कहिये फाल्गुन वदी। निवारे चौघाती जगत जनतारे सुजलदी॥ करे पूजा थारी सुरनर कहे आदि सबते। इहां मैं ले अर्घ पूजहुँ मनलगी आस कबते

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां तपकल्याणमंडिताय श्रीचंद्रप्रभजि० अर्घं॥

सुदीसातैं जानी सुभग महिना फाल्गुन कहा। भये स्वामी सो ता दिन शिखरतैं सिद्धिप महा॥ बजे बाजे भारी सुरनर-कृत आनंद वरतैं। करौं पूजा थारी शुभ अरघ लै आज करतैं

ओं ह्रीं फाल्गुनशुक्लसप्तम्यां निर्वाणकल्याणमंडिताय श्रीचन्द्र०अर्घं॥

अथ जयमाल—छंद झूलना।

महासेन कुलचंद गुणकलाके वृंद नहिं निकट आवै कदा मोह मंथी। देखि तुवकांति अतिशांतिताकी सुगति लाजि निजमन स्वपद रहत मंथी॥ चढ़ी छवि छटाधर असित सो तिमिरहर अहर्निश मंदता लेश नाहीं॥ कहत 'मनरंग' निति करै मनरंग जो धरै मनप्रभू तो चरणमाहीं॥ १॥

छंद भुजगप्रयात।

नमस्ते नमस्ते नमस्ते जिनन्दा। निवारे भली भांतिकैं कर्मफन्दा। सुचन्द्रप्रभू नाथ तो सौ न दूजा। करौं जानिकै पादकी जासु पूजा॥१॥ लखै दर्श तेरो महादर्श पावै। जो पूजै तुम्हैं आपही सो पुजावै॥ सुचन्द्र०॥ २॥ जो ध्यावै तुम्हैं आपने चित्तमांही। तिसै लोक ध्यावै कछू फेर नाहीं॥ सुचन्द्र०॥३॥ गहै पंथ तो सो सुपंथी कहावै। महापंथसों शुद्ध आपै चलावै॥ सुचन्द्र०॥४॥ जो गावै तुम्हें ताहि गावें मुनीशा। जो पावें तुम्हें ताहि पावें गणीशा॥सुचंद्र० ॥५॥ प्रभूपाद मांही भयो जोऽनुरागी। महापद्म ताको मिलै वीतरागी॥ सुचंद्र०॥६॥ प्रभू जो तुम्हें नृत्य करकै रिझावै। रिझावै तिसे शक्र गोदी खिलावै॥ सुचंद्र०॥७॥ धरे पादकी रेणु माथे तिहारी। न लागै तिसे मोहकी दृष्टि भारी॥सुचंद्र०॥८॥लहै पक्ष तो जो वो है पक्षधारी। कहावै सदासिद्धिको सो विहारी॥ सुचन्द्र०॥ ९॥ नमावै तुम्हें सीस जो भावसेरी। नमें तासुको लोकके जीवहेरी॥सुचंद्र०

॥१०॥ तिहारो लखे रूप ज्यों दौसदेवा। लगें भोरके चंदसे जे कुदेवा॥ सुचन्द्र० ॥ ११ ॥ भलीभांति जानी तिहारी सुरीती। भई मोर जीमैं बड़ीसो प्रतीती ॥सुचन्द्र० ॥ १२ ॥ भयौ सौख्य जो मो कहो नाहिं जाई। जनौ आजही सिद्धि-की ऋद्धि पाई ॥ सुचन्द्र० ॥१३॥ करूं वीनती मै दोऊ हाथ जोरी। बड़ाई करूं सो सबै नाथ थोरी ॥सुचंद्र०॥१५॥ थके जो गणी चारिहू ज्ञान धारे। कहा और को पार पावें विचारे ॥सुचन्द्र० ॥१५॥

घत्ता—चन्द्रप्रभ नामा गुणकी दामा पढेऽअभिरामा धरि मनहीं। अंतक परछाहीं परिहै नाहीं तापर कबहूं झूंठ नहीं॥

दोहा—पंथीप्रभु मंथीमथन कथन तुम्हार अपार।
करो दया सबपै प्रभो जासें पावें पार॥

(इत्याशीर्वादः)

११४–श्रीअनंतनाथ जिनपूजा।

अडिल्ल—बाह्य अभ्यंतर त्यागि परिग्रह जति भये। बहुजन हित शिवपंथ दिखायो हरि नये॥ ऐसे अनंत जिनेश पाय नमि हूं सदा। आह्वाननविधि करूं त्रिविध करिके मुदा॥

ओं ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेंद्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ओं ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ओं ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्

नाराच छंद

क्षीर नीर हीर गौर सोम शीत धारया। मिश्र गंध रत्न भृंग

पाप नाश कारया ॥ अनंतनाथ पाय सेव मोख्य सौख्य दाय है। अनंतकाल भ्रमज्वाल पूजतैं नसाय है ॥ १ ॥
ओं ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्व० ॥

कुंकुमादि चंदनादि गंध शीत कारया । संभवेन अंतकेन भूरि ताप हारया ॥ अनंतनाथ० ॥चन्दनं॥

स्वेत इंदु कुंद हार खंड ना अखित्तही। दुर्ति खंडकार पुंज धारिये पवित्त ही ॥ अनंतनाथ० ॥ अक्षतान् ॥

सरोपुनीत पुष्पसार पंथ वर्ण ल्यावही । गंध लुब्ध भृंगवृंद शब्द धारि आवही ॥ अनंतनाथ० ॥ पुष्पं ॥

मोदकादि घेवरादि मिष्ट स्वादसार ही। हेमथाल धारि भव्य दुष्ट भूख टारही ॥ अनंतनाथ० ॥ नैवेद्यं ॥

रत्न दीप तेज भान हेमपात्र धारिये। भवांधकार दुःखभार मूलतै निवारिये ॥ अनंतनाथ० ॥ दीपं ॥

देवदारु कृष्ण सार चंदनादि ल्यावही। दशांग धूप धूम्रगंध भृंगवृंद धावही ॥ अनंतनाथ० ॥ धूपं ॥

श्रीफलादि खारिकादि हेमथालमें भरे। सुष्ट मिष्ट गंधसार चक्खि नासिका हरे ॥ अनंतनाथ० ॥ फलं ॥

छप्पय।

सलिल शीत अति स्वच्छ मिष्ट चंदन मलियागर । तंदुल सोम समान पुष्प सुरतरुके ला वर ॥ चरु उत्तम अति मिष्ट-पुष्ट रसना मनभावन । मणि दीपक तमहरन धूप कृष्ना-गर पावन ॥ लहि फल उत्तम कणथाल भरि, अरघ 'राम-

चंद' इम करै । श्रीअनंतनाथके चरन जुग, बहुविधि अरचे शिव वरै ॥

ओं ह्रीं श्री अनंतननाथजिनेंद्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति०

पंचकल्याणक ।

दोहा—पुष्पोत्तरतैं चय लियो, 'सूर्यादे' उर आय ।
कातिक पडिवा कृष्ण ही, जजहूं तूर बजाय ॥ १ ॥

ओं ह्रीं कार्तिककृष्णप्रतिपदायाँ गर्भमङ्गलमंडिताय श्रीअनंत० अर्घं ॥

जेठ असित द्वादशिविषैं, जनम सुराधिप जान ।
सनपन करि सुरगिर जजे, जजहूं जनमकल्यान ॥ २ ॥

ओं ह्रीं ज्यैष्ठकृष्णद्वादश्यां जन्ममङ्गलमंडिताय श्रीअनंत० अर्घं ॥

जगतराज्य तृणवत तज्यो, द्वादशि जेठ असेत ।
लौकांतिक सुरपति जजे, मै जजहूं शिवहेत ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं ज्यैष्ठकृष्णद्वादश्यां तपोमङ्गलमंडिताय श्रीअनंत० अर्घं ॥

चैत अमावसि अरि हने, घातिकर्म दुखदाय ।
कह्यो धर्म केवलि भये, जजूं चरण सुखदाय ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णामावस्यां ज्ञानमङ्गलमंडिताय श्रीअनन्त० अर्घं ॥

चैत अमावसि शिव गये, हनि अघाति भगवान ।
सुरनरखगपति मिलि जजे, जजहुं मोक्षकल्यान ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णामवास्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीअनंत० अर्घं ॥

जयमाला ।

दोहा—काल अनंताअनंत भव, जीव अनंतानंत ।
जिन अनंत उतपति व्यय ध्रुव कही, नमूंऽनंत भगवंत ॥

(चाल—त्रिभुवनगुरु स्वामीजीकी)

जय अनंत जिनेस्वरजी, पुष्पोत्तरतैं स्वरजी, सिंघसेन नरसुरके चय सुत भये जी॥ 'सूर्योदे' माताजी जग पुण्य विख्याताजी, तिनके जगत्राता गर्भविषैं थये जी॥२॥ कातिक अंधियारीजी, परिवा अविकारीजी, साकेत मझारि कल्याणक हरि कियोजी। षटमास अगारेजी, मणि स्वर्ण घनेरेजी, वरषे नृपकेरे मंदिर धन जयोजी॥३॥ द्वादशि अंधियारीजी जनमे हितकारीजी, प्रभु जेठमझारि सुरासुर आयकैंजी। सुरगिरि लै आयेजी, भव मंगल गायेजी, अभिषेक रचाये पूजे ध्यायकैंजी॥४॥ फिर पितुघर लायेजी, नचि तूर बजायेजी, लखि अंग नमाये मातपिता तबैजी। तन हेम महा छविजी, पंचास धनू रविजी, लखि तीस कहे कवि आयु भई सबैजी॥५॥ नृपपदवी धारीजी, लखि पणदह सारीजी, सब अनीति विचारि तपोवनकूं गयेजी, बदि जेठ दुवादसिजी, तप देखि स्वरा रिषिजी, पद पूजि नये नसि पाप सबै गयेजी॥६॥ षष्टम करि पूरोजी, भोजन हित सूरोजी, पुर धर्म सनूरो आवत देखिकैंजी। नव भक्तिथकी पयजी, विसाख तहां दयजी, मणिविष्टि अखय करि सुरगण पेखिकैंजी॥७॥ धरि ध्यान सुकल तबजी, चउ घाति हनै जबजी, सुर आय मिले सब ज्ञान कल्याण ही जी। बदि चैत अमावसिजी, जखि भुक्ति तुहे वसिजी, समवादि रच्यौ तसु उपमा भी नहींजी॥ समवादि जिते भविजी, सुनि धर्म तिरे सबजी,

प्रभु आयु रही जब मास तणी तबै जी। संमेद पधारेजी, सब जोग संघारेजी, समभाव विथारि वरी शिवतिय जबैजी॥ वसु गुण जुत भूषितजी, भव छारि बसे तितजी, सुख मगन भये जित मावस चैतकीजी। सुर सब मिलि आयेजी, शिव-मंगल गायेजी, बहु पुण्य उपाय चले तुम गुणत कीजी॥१०॥ गुणवृंद तुम्हारेजी, बुध कौन उचारेजी, गणदेव निहारे पै वचना कहै जी। "चंदराम" करै थुतिजी, वसु अंगथकी नुतिजी, गुण पूरन द्यो मति मर्म तुहे लहैजी। ११॥ प्रभु अरज हमारीजी, सुनिज्यो सखकारीजी, भवमें दुखभारी निवारौ हो धणीजी। तुम सरन सहाईजी, जगके सुखदाईजी शिवदे पितुमाई कहो कबलौं धणीजी॥१२॥

घत्ता—इति गुण गण सारं, अमल अपारं, जिय अनंतके हिय धरई। हनि जरमरणावलि, नासिभवावलि, सिवसुंदरि ततछिन वरई॥ १३॥

ओं ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेंद्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

११५-श्रीशांतिनाथ जिनपूजा।

सर्वारथ सुविमान त्यागि गजपुरमें आये। विश्वसेन भूपाल तासुके बाल कहाये॥ पंचम चक्री भये दर्प द्वाद-शमें राजैं। मैं सेऊं तुम चरन तिष्ठिये जो दुख भाजैं॥ १॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्

पंचम उदधि तनौं जल निर्मल, कंचन-कलश भरे हरषाय। धार देत ही श्रीजिन सन्मुख, जन्मजरामृत दूर पलाय ॥ शांतिनाथ पंचम चक्रेश्वर, द्वादश मदन तनौ पद पाय। जाके चरणकमलके पूजैं, रोग-शोक-दुख-दारिद जाय।

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय जमन्जरारोगविनाशनाय जलं निर्वपा० ॥

मलयागिरिचंदन कदलीकंदन, कुंकुम जलके संग घिसाय। भवआतप विनाशनकारन, चरचूं चरन सर्वसुख पाय। शांतिनाथ० ॥ गंधं ॥

उज्वल अच्छित पुंज मनोहर, शशिमरीच तिस देख लजाय। पुंजकिये तुमआगे श्रीजिन, अक्षयपदके हेत वनाय। शांतिनाथ० ॥ अक्षतं ॥

सुरपुनीत अथवा अवनीके, कुसुम मनोहर लिये मंगाय। भेंटधरत तुमचरननके ढ़िग, ततखित कामबाण नसिजाय ॥ शांतिनाथ० ॥ पुष्पं ॥

भांति भांतिके सब मनोहर, कीने मैं पकवान सम्हार। भरिथारी तुम सनमुख लायो, क्षुधावेदनी रोग-निवार। शांतिनाथ० ॥ नैवेद्यं ॥

घृतसनेह कर्पूर लायकरि, दीपक ताके देत प्रजार। जगमग जोति होति मंदिरमें, मोह-अंधको देत सुटार। शांतिनाथ० ॥ दीपं ॥

देवदार कृष्णागरुचंदन, तगर कपूर सुगंध अपार।

खेऊं अष्टकरम जारनको, धूप धनंजयमाहिं सुडार। शांति०॥धूपं
नारंगी बादाम सु केला, एला दाडिम फल सहकारि।
कंचन-थालमाहिं धर लायो, अरचत हूं पाऊं शिवनारि।
शांतिनाथ० ॥ फलं ॥
जल फलादि वसु द्रव्य सम्हारे, अर्घ चढाऊं मंगल गाय।
'बखतावर' के तुमही साहब, दीजै शिवपुरराज कराय।
शांतिनाथ० ॥ अर्घं ॥ पंचकल्याणक–
भादों सप्तम स्यामा, सर्वारथ त्याग नागपुर आये।
माता एरा नामा, मै पूजूं अर्घ सुभ लाये ॥ १ ॥
ओं ह्रीं भाद्रपदकृष्णसप्तम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीशांतिनाथजिनेन्द्राय अर्घं
जनमे तीरथनाथं, वर जेठ असित चतुर्दशी सोहै।
हरिगण नावैं माथं, मै पूजूं शांतिनाथ जुग जोहै ॥ २ ॥
ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीशांतिनाथ० अर्घं ॥
चौदसि जेठ अँधारी, काननमें जाय जोग प्रभु लीना।
नौ-निधि रतन सु छारी, मैं बंदूं आतमसार जिन चीना॥३॥
ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां निःक्रममहोत्सवमंडिताय श्रीशांति० अर्घं॥
पौस दसै उजियारा, अरि घात ज्ञानभानु जिन पाया।
प्रातहार्य वसुधारा, मै सेऊँ सुरनर जासु यश गाया ॥ ४ ॥
ओं ह्रीं पौषशुक्लदशम्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीशांतिनाथ० अर्घं ॥
सम्मेदशैल भारी, हनिकर अघाती मोक्ष जिन पाई।
जेठ चतुर्दशि कारी, मै पूजूं सिद्ध थान सुखदाई ॥ ५ ॥
ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीशांतिनाथ० अर्घं ॥

जयमाला।

छप्पय—भये आप जिनदेव जगतमें सुख विस्तारे।
तारे भव्य अनेक तिन्होंके संकट टारे॥
टारे आठों कर्म मोक्षसुख तिनको भारी।
भारी विरद निहार लही मै शरण तिहारी॥
तिहारे चरणनकूं नमूं, दुख दारिद संताप हर।
हर सकल कर्म छिन एकमें, शांति जिनेश्वर शांतिकर॥

दोहा—सारग लक्षण चरनमें, उन्नत धनु चालीस।
हाटकवर्ण शरीरद्युति, नमौं शांति जुगईश॥२॥

छंद भुजंगप्रयात—प्रभू आपने सर्वके फंद तोड़े। गिनाऊं कहूं मै तिन्हों नाम थोड़े॥ पडौ अंबुधे वीच श्रीपालराई। जपौ नाम तेरो भये थे सहाई॥३॥ धरौ रायने शेठको सूलिकापै। जपी आपके नामकी सार जापैं॥ भये थे सहाई तवै देव आए। करी फूलवर्षा सुवृष्टिर्वढाये॥४॥ जवै लाखके धाम वह्नि प्रजारी। भयो पांडुकापै महाकष्ट भारी॥ जवै नाम तेरे तनी टेर कीनी। करी थी विदुरने वहीं राह दीनी॥५॥ हरी द्रोपदी धातुके खंडमाहीं। तुम्हीं ह्वां सहायी भला और नाहीं॥ लियो नाम तेरो भलौ शील पालौ। वचाई तहांतैं सवै दुःख टालौ॥६॥ जवै जानकी रामने जो निकारी। धरै गर्भको भार उद्यान डारी॥ रटौ नाम तेरो सवै सुक्खदायी। करी दूर पीडा सु छिन ना लगाई॥७॥ विसन सात सेवै करै तस्कराई। सु अंजन ज़ु

तारो घड़ी ना लगाई॥ सहे अंजना चंदना दुःख जेते। गये भाग सारे जरा नाम लेते॥८॥ घडे वीच में सासुने नाग डारो। भलो नाम तेरो जु सोमा सम्हारो॥ गई काढने को भई फूलमाला। भई है विख्यातं सबै दुःख टाला॥९॥ इन्हैं आदि दैकैं कहालौं वखानौ॥सुनौ वृद्धभारी तिहूंलोक जानौ॥ अजी नाथ! मेरी जरा ओर हेरो। वडी नाद तेरी रती बोझ मेरो॥१०॥ गहो हाथ स्वामी! करो वेग पारा। कहूं क्या अबै आपनी मैं पुकारा॥ सबै ज्ञान के बीच भाषी तुम्हारे। करो देर नाहीं अहो संतप्यारे

घत्ता—श्रीशांति तुम्हारी, कीरति भारी, सुरनरनारी गुणमाला। 'बखतावर' ध्यावै, रतन सुगावैं, मम दुखदारिद सब टाला॥१२॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घं॥

अजी एरानंदं, छबि लखत हैं आप अरनं। धरैं लज्जा भारी, करत थुति सो लाग चरनं॥ करै सेवा सोई, लहत सुख है सार छिनमें। घने दीना तारे, हम चहत हैं बास तिनमें॥

(इत्याशीर्वादः)

११६—श्रीपार्श्वनाथ जिनपूजा।

गीता—वर सुरग आनतको विहाय सुमात वामा सुत भये।
विस्वसेनके पारस जिनेसुर चरन तिनके सुर नये॥
नव हाथ उन्नत तन विराजे उरग लच्छन अतिलसै।
थापूं तुम्हे जिन आय तिष्ठहु करम मेरे सब नसैं॥

ओं ह्रीं श्रीपारस्वेनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

छन्द नाराच–क्षीर सोमके समान अंबुसार लाइये । हेमपात्र धारके सु आपको चढ़ाइये ।। पार्श्वनाथदेव सेव आपकी करूँ सदा । दीजिये निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा ।
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्व० ।।

चन्दनादि केशरादि स्वच्छ गंध लीजिये ।
आप चर्न चर्च मोहतापको हनीजिये ।।पार्श्वनाथ०।।चंदनं।।
फेन चंदके समान अक्षतें मँगाइकै ।
पादके समीप सार पूजकौं रचाइकै ।।पार्श्वनाथ०।।अक्षतान्।।
केवडा गुलाब और केतुकी चुनाइये ।
धार चर्नके समीप कामको नसाइये । पार्श्वनाथ० ।।पुष्पं।।
घेवरादि बावरादि मिष्ट सर्पिमें सने ।
आप चर्नचर्चते क्षुधादि रोगको हने । पार्श्वनाथ०।।नैवेद्यं।।
लाय रत्न दीपको सनेह पूरिकै भरूँ ।
वातिका कपूरवारि मोहध्वांतको हरूँ । पार्श्वनाथ० ।।दीपं।।
धूप गंध लेयके सु अग्नि संग जारिये ।
तास धूपके सुसंग अष्टकर्म वारिये । पार्श्वनाथ० ।। धूपं ।।
खारिकादि चिर्भटादि रत्नथालमें धरूँ ।
हर्षधारके जजूं सुमोक्ष सुक्खकूं वरूं । पार्श्वनाथ० ।। फलं ।।
नीर गंध अक्षतं सुपुष्प चारु लीजिये
दीप धूप श्रीफलादि अर्घतें जजीजिये ।।पार्श्वनाथ० ।।अर्घं।।

पंचकल्याणक। छंद चाल।

शुभ आनत स्वर्ग विहाये, वामा माता उर आये।
वैसाख तनी दुति कारी, हम पूजे विघ्न निवारी ॥१॥
ओं ह्रीं वैशाखकृष्णद्वितीयायाँ गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथ० अर्घं ॥

जनमे त्रिभुवन सुखदाता, एकादशि पौष विख्याता ॥
श्यामातन अद्भुत राजै, रविकोटिक तेजसु लाजै ॥
ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीपार्श्वनाथ० अर्घं ॥

कलि पौष इकादशि भाई, तब बारहभावन भाई।
अपने कर लोंच सुकीना, हम पूजे चर्न जजीना ॥३॥
ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां तपःकल्याणमंडिताय श्रीपार्श्वनाथ० अर्घं ॥

कलि चैत चतुर्थी आई, प्रभु केवलज्ञान उपाई ॥
तब वृष-उपदेश जु कीना, भवि जीवनकौं सुख दीना ॥
ओं ह्रीं चैत्रकृष्णचतुर्थीदिने केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथ० अर्घं ॥

सित श्रावन सातें आई, शिवनारि वरी जिनराई।
सम्मेदाचल हरि माना, हम पूजैं मोक्ष कल्याना ॥
ओं ह्रीं श्रावणशुक्लसप्तमीदिने मोक्षमंगलमंडिताय श्रीपार्श्वनाथ० अर्घं ॥

जयमाला।

कवित्त—पारसनाथ जिनेन्द्रतने वच पौन भखी जरते सुन पाये।
कियो सरधान लियो पद आन भये पद्मावती शेष कहाये ॥
नामप्रताप टरै संताप सुभव्यनको शिव शर्म दिखाये।
हो विश्वसेनके नंद भले गुन गावतु हैं तुमरे हरखाये ॥

दोहा—केकीकंठ समान छवि, वपु उतंग नव हाथ।
लच्छन उरग निहार पग, वंदू पारसनाथ ॥

छंद मोतियदाम—रची नगरी षट मास अगार। बने चहुँ गोपुर शोभ अपार ॥ सुकोट तनी रचना छवि देत। कंगूर-नपैं लहकै बहुकेत ॥ ३ ॥ बनारसकी रचना छविसार। करी बहुभांति धनेश तयार। तहां विश्वसेन नरेन्द्र उदार। करैं सुख बाम सुदे पटनार ॥४॥ तज्यो तुम आनत नाम विमान। भये तिनके वर नंदन आन ॥ तबै पुर इन्द्र नियोग जु आय। गिरिंद करी विधि न्हौन सु जाय ॥५॥ पिता घर सौंपि गये निज धाम। कुवेर करै वसु जाम सुकाम ॥ बढ़े जिन दौज मयंक समान। रमै बहु बालक निर्जर आन। भये जब अष्टमवर्ष कुमार। धरे अणुव्रत्त महासुखकार ॥ पिता जब आन करी अरदास। करो तुम व्याह वरो मम आस ॥७॥ करूं तब नाहिं कहे जगचंद। किये तुम काय कषाय जु मंद ॥ चढे गजराज कुमारन संग। सुदेखत गंगतनी सु तुरंग॥८॥ लख्यो इक रंक करै तप घोर। चहूं दिशि अग्नि बलै अति जोर ॥ कही जिननाथ अरे सुन भ्रात। करै बहु जीवतनी मत घात॥ भयो तब कोपि कहै कित जीव। जले तब नाग दिखाय सजीव ॥ लख्यो इह कारन भावन भाय। नये दिव ब्रह्मऋषीश्वर आय ॥१०॥ तबै सुर चार प्रकार नियोगि। धरी शिविका निज कंध मनोगि ॥ कियो वनमाहिं निवास जिनंद। धरे व्रत चारित आनँदकंद ॥११॥

गहे तहँ अष्टमके उपवास। गये धनदत्त तने जु अवास॥ दियो पयदान महासुख सार। भई पणवृष्टि तहां तिँह बार ॥१२॥ गये तब कानन माहिं दयाल। धर्‍यो तुम योग सबै अघ टाल॥ तबै वह धूमसुकेत अजान। भयो कमठाचरकौ सुर आन ॥१३॥ करै नभगौन लखे तुम धीर। सुपूरव वैर विचार गहीर॥ कियो उपसर्ग भयानक घोर। चली बहु तीक्षण पौन झकोर ॥१४॥ रह्यो दशहू दिशिमें तप छाय। लगी बहु अग्नि लखी नहिं जाय॥ सुरुंडनके विन मुंड दिखाय। परै जल मूसलधार अथाय ॥१५॥ तबै पदमावतिकंथ धनिंद। गहे जुग आय तहां जिनचंद॥ भग्यो तब रंक सुदेखत हाल। लह्यो तब केवलज्ञान विशाल ॥१६॥ दियो उपदेश महा हितकार। सुभव्यनि बोधि समेद पधार सुवर्णहभद्र सुकूट प्रसिद्ध। वरी शिवनारि लही वसु रिद्ध ॥१७॥ जजूं तुम चर्न दुहू कर जोर। प्रभू लखिये अब ही मम ओर॥ कहै 'बखतावर' 'रत्न' बनाय। जिनेश हमें भव पार लगाय ॥१८॥

घत्ता—जय पारसदेवं,सुरकृतसेवं, वंदत चर्न सुनागपती। करुनाके धारी, परउपगारी, शिवसुखकारी कर्म हती ॥१९॥
ओं ह्रीं पार्श्वनाथजिनेन्द्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

छंद मदावलिप्त कपोल—जो पूजै मन लाय भव्य पारसप्रभु नित ही। ताके दुख सब जांय भीति व्यापै नहिं कितही॥ सुख संपति अधिकाय पुत्रमित्रादिक सारे। अनुक्रमतै शिव लहै 'रत्न' इमि कहैं पुकारे ॥२०॥ (इत्याशीर्वादः)

११७–श्रीदीपावली वर्द्धमानजिनपूजा।

छन्द मत्तगयंद–श्रीमतवीर हरैं भवपीर, भरैं सुखसीर अनाकुलताई। केहरिअंक अरीकरदंक, नये हरिपंकतिमौलि सुआई॥ मैं तुमकौं इत थापतु हौं प्रभु, भक्ति समेत हिये हरखाई। हे करुणाधनधारक देव, इहां अब तिष्ठहु शीघ्रहि आई॥१॥

ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ ठः ठः।

ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

छंद अष्टपदी।

क्षीरोदधिसम शुचिनीर, कंचनभृंग भरों। प्रभु! वेग हरो भवपीर, यातैं धार करों॥ श्रीवीरमहा अतिवीर, सन्मति-नायक हो। जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मतिदायक हो॥१॥

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्व०॥

मलयागिरि चंदन सार, केसर संग घसा।
प्रभु भव-आताप निवार, पूजत हिय हुलसा॥श्रीवीर० चंदनं
तंदुलसित शशिसम शुद्ध, लीनों थार भरी।
तसु पुंज धरों अविरुद्ध, पावों शिवनगरी॥श्रीवीर०। अक्षतान्
सुरतरुके सुमन समेत, सुमन सुमनप्यारे।
सो मनमथभंजनहेत, पूजों पद थारे॥ श्रीवीर०॥पुष्पं॥
रसरज्जत सज्जत सद्य, मज्जत थार भरी।
पद जज्जत रज्जत अद्य, भज्जत भूख अरी॥श्रीवीर०॥नैवेद्यं॥

तमखंडित मंडितनेह, दीपक जोवत हों।
तुम पदतर हे सुखगेह, भ्रमतम खोवत हों ॥श्रीवीर०॥दीपं॥
हरिचंदन अगर कपूर, चूर सुगंध करा।
तुम पदतर खेवत भूरि, आठों कर्म जरा ॥श्रीवीर०॥धूपं॥
रितुफल कलवर्जित लाय, कंचन-थार भरा।
शिवफलहित हे जिनराय, तुमढिग भेंट धरा ॥श्रीवीर०॥फलं
जलफल वसु सजि हिमथार, तनमन मोद धरों।
गुण गाऊं भवदधितार, पूजत पाप हरों ॥ श्रीवीर० ॥ अर्घं

पंचकल्याणक। राग टप्पाचालमें।

मोहि राखो हो, सरना, श्रीवर्द्धमान जिनरायजी, मोहि० ॥
गरभ साढ़सित छठलियो तिथि, त्रिशला उर अघ हरना।
सुर सुरपति तित सेव करयो नित, मै पूजों भवतरना।मोहि०
ओं ह्रीं आषाढ़शुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीमहावीर० अर्घं॥

जनम चैतसित तेरसके दिन, कुंडलपुर कनवरना।
सुरगिर सुरगुरु पूज रचायो, मैं पूजों भवहरना ॥मोहि०॥
ओं ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीमहावीर० अर्घं॥

मगसिर असित मनोहर दसमी, ता दिन तप आचरना।
नृप कुमारघर पारन कीनो, मै पूजों तुम चरना॥ मोहि० ॥
ओं ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीमहावीर० अर्घं॥

शुकलदशैं वैसाखदिवस अरि, घात चतुक छय करना। के-
वललहि भवि भवसर तारे, जजौं चरन सुख भरना ॥मोहि०
ओं ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानकल्याणप्राप्ताय श्रीमहावीर० अर्घं॥

कातिक श्याम अमावस शिवतिय, पावापुरतैं वरना। गनफनिवृंद जजे तित बहुविधि, मैं पूजों भयहरना॥मोहि०॥

ओं ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीमहावीर० अर्घं०॥

जयमाला। छन्द हरिगीता २८ मात्रा।

गनधर असनिधर चक्रधर, हरधर गदाधर बरवदा।
अरु चापधर विद्यासुधर, तिरसूलधर सेवहिं सदा॥
दुखहरन आनँदभरन तारन, तरन चरण रसाल हैं।
सुकुमाल गुनमनिमाल उन्नत, भालकी जयमाल हैं॥१॥

घत्ता—जय त्रिशलानंदन, हरिकृतवंदन, जगआनंदन चंदवरं।
भवतापनिकंदन, तनकनमंदन, रहित सपंदन नयन धरं॥

छन्द तोटक—जय केवलभानुकलासदनं। भविकोकविकाशनकंदवनं॥ जगजीत महारिपु मोहहरं। रजज्ञानदगावर चूरकरं॥१॥ गर्भादिकमंगल मंडित हो। दुख दारिदको नित खंडित हो॥ जगमाहिं तुमी सत पंडित हो। तुम ही भवभावविहंडित हो॥२॥ हरिवंशसरोजनकौं रवि हो। बलवंत महंत तुम्हीं कवि हो॥ लहि केवल धर्मप्रकाश कियो। अबलौं सोइ मारग राजतियो॥३॥ पुनि आप तने गुनमाहिं सही। सुर मग्न रहैं जितने सबही॥ तिनकी वनिता गुन गावत हैं। लय माननिसों मनभावत हैं॥४॥ पुनि नाचत रंग उमंग भरी। तुअ भक्तिविषैं पग येम धरी॥ झननं झननं झननं झननं। सुरलेत तहां तननं तननं॥५॥ घननं घननं घनघंट बजे। दमदं दमदं मिरदंग सजे॥ गगनांगन गर्भ-

गता सुगता। ततता ततता अतता वितता॥ ६॥ धृगतां घृगतां गत बाजत है। सुरताल रसाल जु छाजत हैं॥ सननं सननं सननं नभमें। इकरूप अनेक जु धारि भमें॥७॥ कइ नारि सु बीन बजावति हैं। तुमरो जस उज्वल गावति हैं॥ करतालविषैं करताल धरें। सुरताल विशाल जु नाद करें॥८॥ इन आदि अनेक उछाह भरी। सुरभक्ति करै प्रभु-जी तुमरी॥ तुमही जगजीवनिके पितु हो। तुमही विन-कारनतै हितु हो।.९॥ तुमही सब विघ्नविनाशन हो। तुमही निज आनँद भासन हो॥ तुमही चितचिततदायक हो। ज-गमाहिं तुम्हीं सब लायक हो॥१०॥ तुमरे पनमंगलमाहिं सही। जिय उत्तम पुन्नलियो सब ही॥ हमको तुमरी सरनागत है। तुमरे गुनमें मन पागत है॥ ११॥ प्रभु मोहिय और सदा बसिये। तबलौं वसुकर्म नहीं नसिये॥ तबलों तुम ध्यान हिये वरतौ। तबलों श्रुतचिंतन चित्त रतौ॥ १२॥ तबलौं व्रत चारित चाहतु हों। तबलों शुभ भाव सुहागतु हों॥ तबलौं सतसंगति नित्त रहौ। तबलों मम संजम चित्त गहौ॥ १३॥ जबलों नहिं नाश करों अरिको। शिवनारि वरौं समता धरिको॥ यह द्यो तबलों हमको जिनजी। हम जाचतु हैं इतनी सुनजी॥ ४॥

घत्ता—श्रीवीरजिनेशा, नमितसुरेशा, नागनरेशा भगति भरा।
'वृंदावन' ध्यावै, विघननशावै, वांछित पावै शर्म वरा॥१५

ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा

दोहा—श्रीसनमतिके जुगलपद, जो पूजै धरि प्रीत।
'वृंदावन' सो चतुर नर, लहै मुक्ति-नवनीत ॥इत्याशीर्वादः

११८—अथ सप्तऋषिपूजा।

छप्पय—प्रथम नाम श्रीमन्व दुतिय स्वरमन्व ऋषीश्वर। तीसर मुनि श्रीनिचय सर्वसुन्दर चौथो वर॥ पंचम श्रीजयवान विनयलालस षष्ठम भनि। सप्तम जयमित्राख्य सर्व चारित्रधाम गनि॥ ये सातौ चारणऋद्धिधर, करूं तासु पद थापना। मैं पूजूं मनवचकायकरि, जो सुख चाहूं आपना॥

ओं ह्रीं चारणर्द्धिधरश्रीसप्तर्षीश्वरा। अत्रावतरत अवतरत संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठ. ठः। अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्।

गीता छंद—शुभतीर्थउद्भव जल अनूपम, मिष्ट शीतल लायके॥ भव तृषाकंद निकंद कारण, शुद्ध घट भरवायके॥ मन्वादि चारण ऋद्धिधारक, मुनिनकी पूजा करूं। ता करें पातिक हरें सारे, सकल आनंद विस्तरूँ॥

ओं ह्रीं श्रीमन्वस्वरमन्वनिचयसर्वसुन्दरजयवानविनयलालसजयमित्रार्षिभ्यो जलं० ॥

श्रीखण्ड कदलीनन्द केशर, मन्द मन्द घिसायके। तसुगंध प्रसरति दिगदिगन्तर, भरकटोरी लायके ॥मन्वा०॥चंदनं॥

अति धवल अक्षत खण्ड वर्जित, मिष्ट राजन भोगके। कलधौत थारा भरत सुन्दर, चुनित शुभ उपयोगके॥म०॥अक्षतं॥

बहु वर्ण सुवरण सुमन आछे, अमल कमल गुलावके। केतकी चम्पा चारु मरुआ, चुने निजकर चावके ॥मन्वा० ॥पुष्पं॥

पकवान नाना भांति चातुर, रचित शुद्ध नये नये।
सदमिष्ट लाडू आदि भर बहु,पुरटके थारालये ॥म०॥नैवेद्यं॥
कलधौत दीपक जडित नाना, भरित गोघृतसारसों। अति
ज्वलित जगमगजोति जाकी, तिमिरनाशनहारसों ।म०।दीपं॥
दिक्‌चक्र गंधित होत जाकर, धूप दशअंगी कही। सो लाय
मनवचकाय शुद्ध, लगायकर खेऊं सही ॥मन्वा०॥ धूपं॥
वर दाख खारक अमित प्यारे, मिष्ट चुष्ट चुनायके। द्रावडी
दाडिम चारु पुंगी, थाल भरभर भायके ॥मन्वा० ॥फलं॥
जल गन्ध अक्षत पुष्प चरु वर, दीप धूप सु लावना। फल
ललित आठों द्रव्य मिश्रित, अर्घ कीजे पावना ॥म०॥अर्घ॥

अथ जयमाला।

छंद त्रिभंगी–वंदू ऋषि राजा, धर्म जहाजा, निज पर काजा
करत भले। करुणाके धारी, गगन विहारी, दुख अपहारी,
भरम दले॥
काटत जमफंदा, भविजनवृन्दा, करत अनंदा चरणनमें।
जो पूजै ध्यावैं, मंगल गावैं, फेर न आवै भववनमें ॥१॥
छंद पद्धरी–जय श्रीमनु मुनिराजा महंत। त्रस थावरकी
रक्षा करंत॥ जय मिथ्यातम नाशक पतंग। करुणारस-
पूरित अंग अंग ॥१॥ जय श्रीस्वरमनु अकलंकरूप। पद
सेव करत नित अमर भूप॥ जय पंच अक्ष जीते महान। तप
तपत देह कंचन समान ॥२॥ जय निचय सप्त तत्त्वार्थभास।
तप रमातनौ तनमें प्रकाश॥ जय विषयरोध संबोधभान।

परणतिके नाशन अचल ध्यान ॥३॥ जय जयहि सर्वसुन्दर दयाल। लखि इन्द्जालवत जगतजाल॥ जय तृष्णाहारी रमण राम। निज परिणतिमें पायो विराम ॥ ४ ॥ जय आनँदघन कल्याणरूप। कल्याण करत सबको अनूप। जय मदनाशन जयवान देव। निरमद विरचित सब करत सेव ॥५॥ जय जेय विनयलालस अमान। सब शत्रु मित्र जानत समान॥ जय कृशितकाय तपके प्रभाव। छवि छटा उडति आनंददाय ॥६॥ जय मित्र सकल जगके सुमित्र। अनगिनत अधम कीने पवित्र॥ जय चंद्रवदन राजीव-नैन। कबहूं विकथा बोलत न वेन ॥७॥ जय सातौ मुनिवर एकसंग। नित गगन-गमन करते अभंग॥ जय आये मथुरापुर मंझार। तहँ मरी रोगको अति प्रचार ॥ ८ ॥ जय जय तिन चरणनिके प्रसाद। सब मरी देवकृत भई वाद॥ जय लोक करे निर्भय समस्त। हम नमत सदा नित जोरि हस्त ॥९॥ जय ग्रीषमऋतु पर्वतमंझार। नित करत अतापन योग सार॥ जय तृषा परीषह करत जेर। कहुं रंच चलत नहिं मन-सुमेर ॥१०॥ जय मूल अठाइस गुणन धार। तप उग्र तपत आनंदकार॥ जय वर्षाऋतुमें वृक्षतीर। तहं अति शीतल झेलत समीर ॥११॥ जय शीतकाल चौपट मंझार। कै नदी सरोवर तट विचार॥ जय निवसत ध्यानारूढ़ होय। रंचक नहिं मटकत रोम कोय ॥१२॥ जय मृतकासन वज्रासनीय। गोदूहन इत्यादिक गनीय॥ जय आसन नानाभांति धार।

उपसर्ग सहित ममता निवार ॥१३॥ जय जपत तिहारो नाम कोय। लख पुत्रपौत्र कुलवृद्धि होय ॥ जय भरे लक्ष अतिशय भंडार। दारिद्रतनो दुख होय छार ॥ जय चोर अग्नि डांकिन पिशाच। अरु ईति भीति सब नसत सांच ॥ जय तुम सुमरत सुख लहत लोक। सुर असुर नवत पद देत धोक ॥

रोला—ये सातों मुनिराज महातप लक्ष्मीधारी।
परम पूज्य पद धरै सकल जगके हितकारी ॥
जो मनवचतन शुद्ध होय सेवै औ ध्यावै।
सो जन मनरंगलाल अष्ट ऋद्धिनकौं पावै ॥

दोहा—नमन करत चरनन परत, अहो गरीबनिवाज।
पंच परावर्तननितैं, निरवारो ऋषिराज ॥

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

११९—चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रपूजा।

सोरठा—परम पूज्य चौबीस, जिहँ जिहँ थानक शिव गये।
सिद्धभूमि निशदीस, मनवचतन पूजा करौं ॥१॥

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्। ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत। ठः ठः। ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट्।

गीता छंद—शुचि क्षीरदधिसम नीर निरमल, कनकझारीमें भरौं। संसार पार उतार स्वामी, जोर कर विनती करौं ॥ सम्मेदगढ़ गिरनार चंपा, पावापुरि कैलाशकों। पूजौं सदा चौबीसजिन, निर्वाणभूमि निवासकों ॥१॥

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥

केसर कपूर सुगंध चंदन, सलिल शीतल विस्तरौं। भवपाप को संताप मेटो, जोरकर विनती करौं। सम्मे० ॥चंदनं॥
मोती समान अखंड तंदुल, अमल आनँदधरि तरौं। औगुन हरौ गुन करौ हमको, जोरकर विनती करौं।सम्मे०॥अक्षतं॥
शुभफूलरास सुवासरासित, खेद सब मनको हरौं। दुखधाम काम विनाश मेरो, जोरकर विनती करौं। सम्मे० ॥पुष्प॥
नेवज अनेक प्रकार जोग, मनोग धरि भय परिहरौं। यह भूख दूषन टार प्रभुजी, जोरकर विनती करौं।सम्मे०॥नैवेद्य॥
दीपक प्रकाश उजास उज्जल, तिमिरसेती नहिं डरौं। संशय-विमोहविभर्म-तमहर, जोर कर विनती करौं।सम्मे०॥दीपं॥
शुभ धूप परम अनूप पावन, भाव पावन आचरौं। सब क-रमपुंज जलाय दीजे, जोर कर विनती करौं। सम्मे० ॥धूपं॥
बहु फल मंगाय चढाय उत्तम, चारगतिसों निरवरौं। निहचै मुकतिफल देहु मोकों, जोरकर विनती करौं। सम्मे०॥फलं॥
जल गंध अक्षत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं। 'द्यानत' करो निरभय जगततैं, ज़ोरकर विनती करौं। सम्मे०॥अर्घं॥

जयमाला।

सोरठा—श्रीचौबीस जिनेश, गिरिकैलासादिक नमो।
तीरथ महाप्रदेश, महापुरुष निरवानतैं ॥१॥

चौपाई—नमों रिषभ कैलास पहारं। नेमिनाथ गिरनार निहारं॥ वासुपूज्य चंपापुर वंदौं। सन्मति पावापुर अभि-

नंदौं ॥२॥ बंदौं अजित अजितपददाता। बंदौं संभव भवदुख-
घाता ॥ बंदौं अभिनंदन गणनायक। बंदौं सुमति सुमतिके
दायक॥ बंदौं पदम मुकतिपदमाकर। बंदौं सुपार्स आशपा-
साहर॥ बंदौं चंद्रप्रभ प्रभुचंदा। बंदौं सुविधि सुविधिनिधिकं-
दा॥ बंदौं शीतल अघतपशीतल। बंदौं श्रियांस श्रियांस मही-
तल॥ बंदौं विमल विमल उपयोगी। बंदौं अनंत अनँतसुभोगी॥
बंदौं धर्म धर्मविसतारा। बंदौं शांति शांतिमनधारा॥ बंदौं
कुंथु कुंथुरखवालं। बंदौं अर अरिहर गुणमालं ॥६॥ बंदौं मल्लि
काममलचूरन। बंदौं मुनिसुव्रत व्रतपूरन॥ बंदौ नमि जिन
नमितसुरासुर। बंदौं पास पासभ्रमजगहर॥७॥ बीसों सिद्ध-
भूमि जा ऊपर। शिखरसमेदमहागिरि भूपर॥ एक बार
बंदे जो कोई। ताहि नरकपशुगति नहिं होई॥८॥ नरपति-
नृप सुरशक्र कहावै। तिहुँजग भोग भोगि शिव पावै॥
विघनविनाशक मंगलकारी। गुणविलास बंदौं नरनारी॥

घत्ता—जो तीरथ जावै, पाप मिटावै, ध्यावै गावै भगति करै।
ताको जस कहिये, संपति लहिये, गिरिके गुणको बुध उचरै॥

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

(अर्घके बाद विसर्जन करना चाहिये)

१२०—अथ संस्कृत स्वयंभूस्तोत्रम्।

येन स्वयंबोधमयेन लोका आश्वासिता केचन चित्तकार्ये।
प्रबोधिता केचन मोक्षमार्गे तमादिनाथं प्रणमामि नित्यम्॥
इन्द्रादिभिः क्षीरसमुद्रतोयैः संस्नापितो मेरुगिरौ जिनेन्द्रः।

यः कामजेता जनसौख्यकारी तं शुद्धभावादजितं नमामि ॥
ध्यानप्रबंधप्रभवेन येन निहत्य कर्मप्रकृतीः समस्ताः ।
मुक्तिस्वरूपां पदवीं प्रपेदे तं संभवं नौमि महानुरागात् ॥३॥
स्वप्ने यदीया जननी क्षपायां गजादिवह्न्यंतमिदं ददर्श ।
यत्तात इत्याह गुरुः परोऽयं नौमि प्रमोदादभिनंदनं तम् ॥
कुवादिवादं जयता महांतं नयप्रमाणैर्वचनैर्जगत्सु ।
जैनं मतं विस्तरितं च येन तं देवदेवं सुमतिं नमामि ॥५॥
यस्यावतारे सति पितृधिष्णे ववर्ष रत्नानि हरेर्निदेशात् ।
धनाधिपः षण्णवमासपूर्वं पद्मप्रभं तं प्रणमामि साधुं ॥६॥
नरेन्द्रसर्पेश्वरनाकनाथैर्वाणी भवंती जगृहे स्वचित्ते ।
यस्यात्मबोधः प्रथितः सभायामहं सुपार्श्वं ननु तं नमामि ॥
सत्प्रातिहार्यातिशयप्रपन्नो गुणप्रवीणो हतदोषसंगः ।
यो लोकमोहांधतमः प्रदीपश्चन्द्रप्रभं तं प्रणमामि भावात् ॥८॥
गुप्तित्रयं पंच महाव्रतानि पंचोपदिष्टा समितिश्च येन ।
बभाण यो द्वादशधा तपांसि तं पुष्पदंतं प्रणमामि देवं ॥९॥
ब्रह्मव्रतांतो जिननायकेनोत्तमक्षमादिर्दशधापि धर्मः ।
येन प्रयुक्तो व्रतबंधबुद्ध्या तं शीतलं तीर्थकरं नमामि ॥१०॥
गणे जनानंदकरे धरांते विध्वस्तकोपे प्रशमैकचित्ते ।
यो द्वादशांगं श्रुतमादिदेश श्रेयांसमानौमि जिनं तमीशं ॥
मुक्त्यंगनाया रचिता विशाला रत्नत्रयीशेखरता च येन ।
यत्कंठमासाद्य बभूव श्रेष्ठा तं वासुपूज्यं प्रणमामि वेगात् ॥
ज्ञानी विवेकी परमस्वरूपी ध्यानी व्रती प्राणिहितोपदेशी ।

मिथ्यात्वघाती शिवसौख्यभोजी बभूव यस्तं विमलं नमामि ॥
आभ्यंतरं बाह्यमनेकधा यः परिग्रहं सर्वमपाचकार ।
यो मार्गमुद्दिश्य हितं जनानां वन्दे जिनं तं प्रणमाम्यनंतं ॥
सार्द्धं पदार्था नव सप्ततत्त्वैः पंचास्तिकायाश्च न कालकायाः ।
षड्द्रव्यनिर्णीतिरलोकयुक्तिर्येनोदिता तं प्रणमामि धर्मम् ॥
यश्चक्रवर्ती भुवि पंचमोऽभूच्छ्रीनंदनो द्वादशको गुणानां ।
निधिप्रभुः षोडशको जिनेन्द्रस्तं शांतिनाथं प्रणमामि भेदात् ॥
प्रशंसितो यो न बिभर्ति हर्षं विराधितो यो न करोति रोषं ।
शीलव्रताद् ब्रह्मपदं गतो यस्तं कुंथुनाथं प्रणमामि हर्षात् ॥
यः संस्तुतो यः प्रणतः सभायां यः सेवितोऽन्तर्गुणपूरणाय ।
पदच्युतैः केवलिभिर्जिनस्य देवाधिदेवं प्रणमाम्यरं तम् ॥
रत्नत्रयं पूर्वभवांतरे यो व्रतं पवित्रं कृतवानशेषं ।
कायेन वाचा मनसा विशुद्ध्या, तं मल्लिनाथं प्रणमामि भक्त्या ॥
ब्रवन्नमः सिद्धिपदाय वाक्य,-मित्यग्रहीद्यः स्वयमेव लोचं ।
लौकांतिकेभ्यः स्तवनं निशम्य, वंदे जिनेशं मुनिसुव्रतं तं ॥
विद्यावतं तीर्थकराय तस्मा,-याहारदानं ददतो विशेषात् ॥
गृहे नृपस्याजनि रत्नवृष्टिः, स्तौमि प्रणामान्नयतो नमिं तम् ॥
राजीमतीं यः प्रविहाय मोक्षे, स्थितिं चकारापुनरागमाय ।
सर्वेषु जीवेषु दयां दधान,-स्तं नेमिनाथं प्रणमामि भक्त्या ॥
सर्पाधिराजः कमठारितोयै,-र्ध्यानस्थितस्यैव फणावितानैः ।
यस्योपसर्गं निरवर्तयत्तं, नमामि पार्श्वं महतादरेण ॥
भवार्णवे जंतुसमूहमेन,-माकर्षयामास हि धर्मपोतात् ।

मज्जंतमुद्वीक्ष्य य एनसापि, श्रीवर्द्धमानं प्रणमाम्यहं तं ॥
यो धर्मं दशधा करोति पुरुषः स्त्री वा कृतोपस्कृतं,
सर्वज्ञध्वनिसंभवं त्रिकरणव्यापारशुद्ध्यानिशं ।
भव्यानां जयमालया विमलया पुष्पांजलिं दापय-
न्नित्यं संश्रियमातनोति सकलं स्वर्गापवर्गस्थितिं ॥

१२१—अथ स्वयंभूस्तोत्र भाषा।

चौपाई—राजविषै जुगलनि सुख कियो। राज त्याग भुवि शिवपद लियो ॥ स्वयंबोध स्वंभू भगवान। वंदौं आदिनाथ गुणखान ॥ १ ॥ इन्द्र छीरसागरजल लाय। मेरु न्हवाये गाय बजाय ॥ मदनविनाशक सुखकरतार। वन्दौं अजित अजितपदकार ॥ शुकलध्यानकरि करमविनाशि। घाति अघाति सकल दुखराशि ॥ लह्यो मुकतिपदसुख अधिकार। वन्दौं संभव भवदुखटार ॥३॥ माता पच्छिम रयनमँझार। सुपने सोलह देखे सार ॥ भूप पूछि फल सुनि हरषाय। वंदौं अभिनन्दन मनलाय ॥४॥ सब कुवादवादी सरदार। जीते स्यादवादधुनिधार ॥ जैनधरमपरकाशक स्वाम। सुमतिदेवपद करहुँ प्रनाम ॥५॥ गर्भ अगाऊ धनपति आय। करी नगर शोभा अधिकाय ॥ बरसे रतन पंचदश मास। नमौं पदमप्रभु सुखकी रास ॥ ६ ॥ इन्द फनिंद नरिंद त्रिकाल। बानी सुनि सुनि होंहिं खुसाल ॥ द्वादशसभा ज्ञानदातार। नमौं सुपारसनाथ निहार ॥७॥ सुगुन छियालिस हैं तुममाहिं। दोष अठारह कोऊ नाहिं ॥

मोहमहातमनाशक दीप। नमौं चंद्रप्रभ राख समीप ॥८॥
द्वादशविधि तप करम विनाश। तेरहभेद चरित परकाश॥
निज अनिच्छ भवि इच्छकदान। वंदौं पुहुपदंत मनआन॥
भविसुखदाय सुरगतै आय। दशविध धरम कह्यो जिन-
राय॥ आप समान सबनि सुख देह। वंदौं पुहुपदंत मन
आन॥ समता सुधा कोपविषनाश। द्वादशांगवानी परकाश
चारसंघ आनँददातार। नमौं श्रियांस जिनेश्वर सार ॥११॥
रतनत्रयचिरमुकुटविशाल। सोभै कंठ सुगुन मनिमाल॥
मुक्तिनार भरता भगवान। वासुपूज वंदौं धर ध्यान ॥१२॥
परम समाधिस्वरूप जिनेश। ज्ञानी ध्यानी हित उपदेश॥
कर्मनाशि शिवसुख विलसंत। वंदौं विमलनाथ भगवंत॥
अन्तर बाहिर परिग्रह डारि। परमदिगम्बरव्रतको धारि॥
सर्वजीवहित-राह दिखाय। नमौं अनंत वचनमनलाय॥
सात तत्त्व पंचासतिकाय। अरथ नवों छदरब बहु भाय॥
लोक अलोक सकल परकाश। वन्दौं धर्मनाथ अविनाश॥
पंचम चक्रवरति निधिभोग। कामदेव द्वादशम मनोग॥
शांतिकरन सोलम जिनराय। शांतिनाथ वंदौं हरखाय॥
वहुथुति करै हरष नहिं होय। निंदे दोष गहैं नहिं कोय॥
शीलमान परब्रह्मस्वरूप। वन्दौं कुंथुनाथ शिवभूप ॥१७॥
द्वादशगण पूजे सुखदाय। थुतिवन्दना करै अधिकाय॥
जाकी निजथुति कवहुँ न होय। वन्दौं अरजिनवर पद
दोय ॥१८॥ परभव रतनत्रय-अनुराग। इहभव व्याहसमय
वैराग॥ बालब्रह्मपूरनव्रतधार। वन्दौ मल्लिनाथ जिन-

सार ॥१९॥ विन उपदेश स्वयं वैराग। थुति लौकांत करैं पगलाग ॥ नमः सिद्ध कहि सब व्रत लेहिं। बंदौं मुनिसुव्रत व्रत देहिं ॥२०॥ श्रावक विद्यावन्त निहार। भगतिभावसों दियो आहार ॥ बरसी रतनराशि ततकाल। बन्दौ नमिप्रभु दीनदयाल ॥२१॥ सब जीवनकी बन्दी छोर। रागरोष द्वै बन्धन तोर ॥ रजमति तजि शिवतियसों मिले। नेमिनाथ बन्दौं सुखनिले ॥२२॥ दैत्य कियो उपसर्ग अपार। ध्यान देखि आयो फनिधार॥ गयो कमठ शठ मुखकर श्याम। नमौं मेरुसम पारसस्वाम ॥२३॥ भवसागरतैं जीव अपार। धरमपोतमें धरे निहार॥ डूबत काढे दया विचार। वर्द्धमान बंदौं बहुवार ॥२४॥

दोहा—चवीसौं पदकमलजुग, बंदौं मनवचकाय।
'द्यानत' पढ़ै सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय॥

१२२—निर्वाणकांड [गाथा]

अट्ठावयम्मि उसहो चंपाए वासुपुज्जजिणणाहो। उज्जंते णेमिजिणो पावाए णिव्वुदो महावीरो ॥ १ ॥ वीसं तु जिणवरिंदा अमरासुर वंदिसा धुदकिलेसा। सम्मेदे गिरि सिहरे णिव्वाण०॥२॥ वरदत्तो य वरंगोसायरदत्तोय तारवरणयरे। आहुट्ठयकोडीओ णिव्वाण० ॥ ३ ॥ णेमिसामि पज्जण्णो संबुकुमारो तहेव अणिरुद्धो। बाहत्तरिकोडीओ उज्जंते सत्तसया सिद्धा ॥४॥ रायसुआ वेण्णि जणा लाडणरिंदाण पंचकोडीओ। पावागिरिवरसिहरे णिव्वाण० ॥५॥ पंडसु-

आतिण्णिजणा दविडणरिंदाण अठ्ठकोड़ीओ। सत्तुंजयगिरिसिहरे णिव्वाण० ॥६॥ संते जे बलभद्दा जदुबणरिंदाण अहकोड़ीओ। गजपंथे गिरिसिहरे णिव्वाण० ॥७॥ रामहणू सुग्गीओ गवयगवाक्खो य णीलमहणीलो। णवणवदीकोडीओ तुंगीगिरिणिव्वुदे वंदे ॥ ८ ॥ णंगाणंगकुमारा कोडीपंचद्धमुणिवरा सहिया। सुवण्णगिरिवरसिहरे णिव्वाण० ॥ ९ ॥ दहमुहरायस्स सुआ कोडीपंचद्धमुणिवरा सहिया। रेवाउहयतडग्गे णिव्वाण० ॥ १० ॥ रेवाणइए तीरे पच्छिम भायम्मि सिद्धवरकूडे। दो चक्की दह कप्पे आहुठ्ठ य कोडिणिव्वुदे वंदे ॥ ११ ॥ वडवाणीवरणयरे दक्खिणभायम्मि चूलिगिरिसिहरे। इन्दजीदकुंभयणो णिव्वाण० ॥१२॥ पावागिरिवरसिहरे सुवण्णभद्दाइमुणिवरा चउरो। चलणाणईतडग्गे णिव्वाण० ॥ १३ ॥ फलहोडीवरगामे पच्छिमभायम्मि दोणगिरिसिहरे। गुरुदत्ताइमुणिंदा णिव्वाण० ॥१४॥ णायकुमारमुणिंदो वालि महावालि चैव अज्झेया। अट्ठावयगिरिसिहरे णिव्वाण० ॥१५ अच्चलपुरवरणयरे ईसाणे भायमेढगिरिसिहरे। आहुठ्ठयकोडीओ णिव्वाण० ॥ १६ ॥ वंसत्थलवणणियरे पच्छिम भायम्मि कुंथुगिरिसिहरे। कुलदेसभूषणमुणी णिव्वाण० ॥१७॥ जसरहरायस्स सुआ पंचसयाइं कलिंगदेसम्मि। कोडिसिलाकोडिमुणी णिव्वाण० ॥१८॥ पासस्स, समवसरणे सहिया वरदत्तमुणिवरा पंच। रिस्सिंदे गिरिसिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥१९॥

अथ अइसयखेत्तकंडं—अतिशयक्षेत्रकांडं

पासं तह अहिणंदण णायद्दहि मंगलाउरे वंदे । अस्सारम्मे पट्टणि मुणिसुव्वओ तहेव वंदामि ॥ १ ॥ बाहूवलि तह वंदमि पोयणपुरहत्थिणापुरे वंदे । सांति कुंथव अरिहो वाणारसिए सुपासपासं च ॥ महुराए अहिछित्ते वीरं पासं तहेव वंदामि । जैवुमुणिंदो वंदे णिव्वुइपत्तोवि जंवुवणगहणे ॥ पंचकल्लाणठाणइं जाणवि संजादमज्झलोयम्मि । मणवयणकायसुद्धी सव्वं सिरसा णमस्सामि ॥ ४ ॥ अग्गलदेवं वंदमि वरणयरे णिवडकुंडली वंदे । पासं सिवपुरि वंदमि होलागिरिसंखदेवम्मि ॥ ५ ॥ गोमटदेवं वंदमि पंचसयं धणुहदेहउच्चंतं । देवा कुणंति वुट्ठी केसरिकुसुमाण तस्स उवरिम्मि ॥ ६ ॥ णिव्वाणठाण जाणिवि अइसयठाणाणि अइसए सहिया । संजादमिच्चलोए सव्वे सिरसा णमस्सामि ॥ ७ ॥ जो जण पढइ तियालं णिव्वुइकंडंपि भावसुद्धीए । भुंजदि णरसुरसुक्खं पच्छा सो लहइणिव्वाणं ॥

१२३—अथ निर्वाणकांड भाषा

दोहा—वीतराग वंदौं सदा, भावसहित सिरनाय ।
कहूँ कांड निर्वाणकी भाषा सुगम वनाय ॥१॥

चौ०—अष्टापद आदीश्वरस्वामि । वासुपूज्य चंपापुरि नामि॥
नेमिनाथस्वामी गिरनार । वंदौं भावभगतिउरधार ॥ २ ॥
चरम तीर्थंकरचरम शरीर । पावापुरि स्वामी महावीर ॥
शिखरसमेद जिनेसुर वीस । भावसहित वंदौं निशदीस ॥३॥

वरदतराय रु इंद मुनिंद । सायरदत्त आदिगुणवृंद ॥ नगर-तारवर मुनि उठकोडि । बंदौ भावसहित कर जोडि ॥ ४ ॥ श्रीगिरनार शिखर विख्यात । कोडि बहत्तर अरु सौ सात॥ संबु प्रदुम्नकुमर द्वै भाय । अनिरुध आदि नमूं तसु पाय ॥ ५ ॥ रामचंद्रके सुत द्वै वीर । लाडनरिंद आदि गुणधीर ॥ पांचकोडि मुनि मुक्ति मझार । पावागिरि बंदौ निरधार ॥६॥ पांडव तीन द्रविडराजान । आठकोडि मुनि मुकति पयान ॥ श्रीशत्रुंजयगिरिके सीस । भावसहित बंदौं निशदीस ॥७॥ जे बलभद्र मुकतिमैं गये । आठकोडिमुनि औरहु भये ॥ श्रीगजपंथ शिखर सुविशाल । तिनके चरण नमूं तिहुंकाल ॥८॥ राम हणू सुग्रीव सुडील । गवगवाख्य नील महानील ॥ कोडि निन्याणव मुक्तिपयान । तुंगीगिरि बंदौं धरि ध्यान ॥ ९ ॥ नंग अनंग कुमार सुजान । पांचकोडि अरु अर्ध प्रमान ॥ मुक्ति गये सोनागिरिशीश । ते बंदौ त्रिभुवनपति ईस ॥ १० ॥ रावणके सुत आदिकुमार । मुक्ति गये रेवातट सार ॥ कोडि पंच अरु लाख पचास । ते-बंदौ धरि परम हुलास ॥ ११ रेवानदी सिद्धवर कूट । पश्चिम दिशा देह जहँ छूट ॥ द्वै चक्री दश कामकुमार । ऊठ-कोडि बंदौं भव पार ॥ १२ ॥ बडवानी बडनयर सुचंग । दक्षिण दिश गिरिचूल उतंग ॥ इंद्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण । ते बंदौ भवसायरतर्ण ॥ सुवरण भद्र आदि मुनि । पावागिरिवरशिखरमझार ॥ चलना नदीतीरके पास ।

मुक्ति गये वंदौं नित तास ॥ १४ ॥ फलहोडी वडगाम अनूप। पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप ॥ गुरुदत्तादि मुनीसुर जहां । मुक्ति गये वंदौं नित तहां ॥ १५ ॥ बाल महाबाल मुनि दोय। नागकुमार मिले त्रय होय ॥ श्रीअष्टापद मुक्तिमझार । ते वंदौं नित सुरत सँभार ॥ १६ ॥ अचलापुरकी दिश ईसान । तहां मेढ़गिरि नाम प्रधान ॥ साढे तीन कोडि मुनिराय । तिनके चरण नमूं चितलाय ॥१७॥ वंसस्थल वनके ढिग होय । पश्चिमदिशा कुंथुगिरि सोय ॥ कुलभूषण दिशिभूषण नाम । तिनके चरण करूं प्रणाम॥१८॥ जसरथराजाके सुत कहे । देश कलिंग पांचसौ लहे ॥ कोटिशिला मुनि कोटि प्रमान । वंदन करूं जोर जुगपान ॥१९॥ समवसरण श्रीपार्श्वजिनंद । रेसिंदीगिरि नयनानंद ॥ वरदत्तादि पंच ऋषिराज । ते वंदौं नित धरम जिहाज ॥२०॥ तीनलोकके तीरथ जहां । नित प्रति वंदन कीजे तहां ॥ मनवचकायसहित सिर नाय । वंदन करहिं भविक गुणगाय ॥ २१ ॥ संवत सतरहसौ इकताल। अश्विन सुदि दशमी सुविशाल । 'भैया' वंदन करहिं त्रिकाल । जय निर्वाणकांड गुणमाल ॥ २ ॥ इति समाप्तं ॥

१२४–श्रीसम्मेदाचलपूजा ।

दोहा–सिद्धक्षेत्र तीरथ परम, है उतकृष्ट सुथान ।

शिखरसमेद सदा नमों, होय पापकी हान ॥ १ ॥

अगणित मुनि जहतैं गये, लोकशिखरके तीर।
तिनके पदपंकज नमूं, नाशै भवकी पीर ॥२॥

अडिल्ल—है उज्वल वह क्षेत्र सुअति निरमल सही। परम पुनीत सुठौर महा गुणकी मही। सकल सिद्धिदातार महा रमणीक है। वंदौं निज सुखहेत अचल पद देत है ॥३॥

सोरठा—शिखरसमेद महान, जगमै तीर्थप्रधान है।
महिमा अद्‌भुत जान. अल्पमती मै किमि कहों ॥

सुंदरी छंद—सरस उन्नत क्षेत्र प्रधान है। अति सु उज्वल तीर्थ महान है ॥ करहिं भक्ति सु जे गुण गायकें। वरहिं सुर शिवके सुख जायकें ॥

अडिल्ल—सुर हरि नर इन आदि और वंदन करें। भवसागरतै तिरे, नहीं भवमें परें। सफल होय तिन जन्मशिखर दरशन करै, जनमजनमके पाप सकल छिनमै टरै ॥

पद्धरीछंद—श्रीतीर्थंकर जिनवर जु वीश। अरु मुनि असंख्य सबगुणन ईश ॥ पहुँचे जहंतैं कैवल्यधाम। तिनको अब मेरी है प्रणाम ॥ ७ ॥

गीतिका छंद—सम्मेदगढ है तीर्थ भारी सबहिकों उज्वल करै। चिरकालके जे कर्म लागे दर्शतैं छिनमै टरैं ॥ है परम पावन पुण्यदायक अतुलमहिमा जानिये ! अरु है अनूप सुरूप गिरिवर तास पूजन ठानिये ॥८॥

दोहा—श्रीसम्मेदशिखर सदा, पूजौं मनवचकाय।
हरत चतुर्गतिदुःखकों, मनवांछित फलदाय ॥

ओं ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।
ओं ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

अष्टक

अडिल्ल–क्षीरोदधिसम नीर सुनिरमल लीजिये। कनक कलसमें भरकैं धारा दीजिये॥ पूजौं शिखरसमेद सुमनवच-काय जी। नरकादिक दुख टरें अचलपद पायजी॥

ओं ह्रीं विंशतितीर्थंकराद्यसंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यो सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्रभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥१॥

पयसों घसि मलयागिरिचंदन लाइये। केसरि आदि कपूर सुगंध मिलाइये॥ पू०। चंदनं॥२॥ तंदुल धवल सुवासित उज्वल धोयकै। हेमरतनके थार भरों शुचि होयकै॥ पूजौं०॥ अक्षतान्॥३॥ सुरतरुके सम पुष्प अनूपम लीजिये। कामदाहदुखहरणचरण प्रभु दीजिये॥ पूजौं०॥ पुष्पं॥४॥ कनकथार नैवेद्य सु षटरसतैं भरे। देखत क्षुधा पलाय सुजिन आगैं धरे॥ पूजौं०॥ नैवेद्यं॥५॥ लेकर मणिमय दीप सुज्योति प्रकाश है। पूजत होत सुज्ञान मोहतम नाश है॥ पूजौंशिखरसमेद०॥ नरका० दीपं॥६॥ दशविध धूप अनूप अगनिमैं खेवहूं। अष्टकर्मको नाश होत सुख लेवहूं॥ पूजौं०॥ फलं॥८॥ जल गंधाक्षतपुष्प सुनेवज लीजिये। दीप धूप फल लेकर अर्घ सु दीजिये॥ पूजौं०॥ अर्घ्यं॥९॥

पद्धरि छंद–श्रीविंशति तीर्थंकर जिनेंद्र। अरु असंख्यात

जहते मुनेंद्र ॥ तिनकों करजोरि करौं प्रणाम। जिनको पूजों तजि सकल काम ॥ महार्घं ॥

अडिल्ल–जे नर परम सुभावनतैं पूजा करैं। हरि हलि चक्री होंय राज छह खंड करैं ॥ फेरि होंय धरणेंद्र इंद्रपदवीधरैं। नानाविध सुखभोगि बहुरि शिवतिय वरैं ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिंक्षिपेत्) छंद जोगीरासा

श्रीसम्मेदशिखरगिरि उन्नत, शोभा अधिक प्रमानों। विंशति तिहिंपर कूट मनोहर, अद्भुत रचना जानो ॥ श्रीतीर्थंकर बीस तहांतैं, शिवपुर पहुंचे जाई। तिनके पद-पंकजजुग पूजौं, अर्घ प्रत्येक चढाई ॥ पुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥

नं० २४ अजितनाथ सिद्धवर कूट।

प्रथम सिद्धिवरकूट सुजानो, आनँद मंगलदाई। अजित-नाथ जहंतैं शिव पहुंचे पूजों मनवचकाई ॥ कोडि जु अस्सी एक अरब मुनि, चौवन लाख जु गाई। कर्म काटि निर्वाण पधारे, तिनकों अर्घ चढाई ॥२॥

ओं ह्रीं श्रसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसिद्धवरकूटतें, अजितनाथजिनेंद्रादि मुनि एक अर्ब असीकोटि चौवनलाख सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रे०अर्घं

नं० १४ संभवनाथ धवलकूट।

धवलदत्त है कूट दूसरो, सब जियको सुखकारी। श्री-संभवप्रभु मुक्ति पधारे पापतिमिरकों टारी ॥ धवलदत्त दे आदि मुनी, नवकोडाकोडी जानो। लाख बहत्तरि सहस बियालिस, पंचशतक ऋषि मानो ॥ कर्मनाशकरि शिवपुर

पहुंचे, वंदों शीश नवाई। तिनके पदयुग जजहुं भावसों, हरषि २ चितलाई ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखिरसिद्धक्षेत्रधवलकूटतैं सम्भवनाथजिनेन्द्रादि मुनि नौकोडाकोडीवहत्तरलाखब्यालीसहजारपांचसौसिद्ध पदप्राप्तेभ्यः सिद्ध क्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

नं० १६ अभिनंदननाथ आनंदकूट।

चौपाई—आनँदकूट महासुखदाय। अभिनंदन प्रभु शिवपुर जाय ॥ कोडाकोडि वहत्तर जान । सत्तर कोडि लख-छत्तिस मान ॥ सहस वियालिस शतक जु सात। कहे जिनागममैं इह भांत ॥ एकपि कर्म काटि शिव गये। तिनके पदजुग पूजत भये ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रे आनंदकूट श्रीअभिनंदनजिनेंद्रादि मुनि वहत्तरकोडाकोडी सत्तरकोडिछत्तीसलाखब्यालीसहजारसातसौसि-द्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

नं० १९ सुमतिनाथ अविचलकूट। अडिल्ल।

अविचल चौथो कूट महासुख धामजी। जहंतैं सुमति-जिनेश गये निर्वाणजी ॥ कोडाकोडी एक मुनीश्वर जानिये। कोटि चुरासी लाख वहत्तरि मानिये॥ सहस इक्यासी और सातसौ गाइये। कर्म काटि शिवगये तिन्हें शिर नाइये ॥ सो थानक मैं पूंजूं मनवचकायजी। पाप दूर होजांय अचलपद पाय जी ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रअविचलकूटतैं सुमतिनाथजिनेंद्रादि मुनि एक कोड़ाकोड़ी चौरासीकोड़ि वहत्तरलाख इक्यासीहजार सातसौ सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

नं० ८ पद्मप्रभमोहनकूट। अडिल्ल।

मोहन कूट महान परम सुंदर कह्यो। पद्मप्रभ जिनराज जहां शिवपुर लह्यो ॥ कोटि निन्याचन लाख सतासी जानिये। सहस तियालिस और मुनीश्वर मानिये ॥ सप्त सैंकरा सत्तर ऊपर वीस जू। मोक्ष गए मुनि तिन्हें नमूं नित शीसजू ॥ कहै जवाहरलाल दोयकर जोरिकै। अविनाशी पद दे प्रभु कर्मन तोरिकै ॥६॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रमोहनकूटतैं पद्मप्रभजिनेन्द्रादिमुनि निन्यानबे कोडि सतासीलाख तैंतालिसहजार सातसौ नब्बे सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

नं० २२ सुपार्श्वनाथ प्रभासकूट। सोरठा।

कूट प्रभास महान, सुंदर जनमन-मोहनो। श्रीसुपार्श्व-भगवान, मुक्ति गये अघ नाशिकैं ॥ कोडाकोडि उनचास, कोडि चुरासी जानिये। लाख बहत्तर खास, सात सहस हैं सात सौ ॥ और कहे ब्यालीस, जहंतैं मुनि मुक्ती गए। तिनहिं नमै नित शीश, दासजवाहर जोरकर ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रप्रभासकूटतैं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्रादि मुनि उनचास कोडाकोडी चौरासीकोडि बहत्तरलाख सात हजार सातसौ बियालिस सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥

नं० ६ चंद्रप्रभ ललितकूट।

दोहा—पावन परम उतंग है, ललितकूट है नाम। चंद्रप्रभ शिवकों गये, वंदौं आठों जाम ॥ कोडाकोडी जानिये, चौरासी ऋषिमान। कोडि बहत्तर अरुकहे, अस्सीलाख प्रमान सहस चुरासी पंचशत, पचपन कहे मुनिंद। वसुकरमनको

नाशकर, पायो सुखको कंद। ललितकूटतैं शिवगये, वंदौं शीश नवाय। जिनपद पूजौं भावसौं, निजहित अर्घ चढाय॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रललितकूटतैं चंद्रप्रभजिनेन्द्रआदि मुनि चौरासीकोड़ाकोड़ीवहत्तरकोडिअस्सीलाख चौरासीहजार पांचसौ पचपन सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥८॥

नं० ७ पुष्पदंत सुप्रभकूट। पद्धरी छंद।

श्री सुप्रभकूट सु नाम जान। जहँ पुष्पदंतको मुकति थान॥ मुनि कोडाकोडि कहे जु भाख। नव ऊपर नवधर कहे लाख॥ शतचारि कहे अरु सहससात। ऋषिअस्सी और कहे विख्यात॥ मुनि मोक्षगए हनि कर्मजाल। वंदौं कर जोरि नमाय भाल॥५॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र सुप्रभकूटतैं पुष्पदन्तजिनेंद्रादिमुनि एक कोडाकोडीनिन्यानवेलाख सातहजार चारसौ अस्सी सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं॥ ९॥

नं० १२ शीतलनाथ विद्युतकूट। सुन्दरी छंद।

सुभग विद्युतकूट सु जानिये। परम अदभुत तापर मानिये॥ गये शिवपुर शीतलनाथजी। नमहुं तिन इह करधर माथजी॥ मुनि जु कोडाकोडि अठारहू। मुनि जु कोडि बियालिस जानहू॥ कहे और जु लाखबत्तीस जू। सहसब्यालिस कहे यतीश जू॥ अवर नौसौ पांच जु जानिये। गए मुनि शिवपुरको मानिये॥ करहिं जे पूजा मन लायकैं। धरहिं जन्म न भवमें आयकैं॥१०॥

ओं ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रविद्युतकूटतैं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्रादि

मुनि अठारह कोडाकोडिव्यालीसकोडि बत्तीसलाख व्यालीसहजार नौसौ पांच सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १०॥

नं० ६ श्रेयांसनाथ संकुलकूट। जोगीरासा।

कूट जु संकुल परममनोहर, श्रीश्रेयान् जिनराई। कर्म-नाशकर शिवपुर पहुंचे, वंदौं मनवच काई ॥ छयानव कोडाकोडि जानो, छयानवकोडि प्रमानो ॥ लाख छयानवे सहस मुनीश्वर, साढे नव अब जानो ॥ ता ऊपर व्यालीस कहे हैं श्रीमुनिके गुण गावैं॥ त्रिविधयोग करि जो कोइ पूजै, सहजानँद तहँ पावै ॥ सिद्ध नमों सुखदायक जगमें, आनँदमंगलदाई। जजों भावसों चरण जिनेश्वर, हाथजोड शिरनाई॥ परम मनोहर थान सु पावन, देखत विघन पलाई ॥ तीन काल नित नमत जवाहर मेटो भवभटकाई। जहँतें जे मुनि सिद्ध भये हैं, तिनको शरण गहाई। जापद-को तुम प्राप्त भए हो, सो पद देहु मिलाई ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसंकुलकूटतैं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्रादि-मुनि छयानवे कोडाकोडी छयानवेकोड़ि छयानवेलाख नवहजार पांचसौ वियालिस सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

नं० २३ विमलनाथ सुवीरकुलकूट। कुसुमलता छंद।

श्रीसुवीरकुलकूट परम सुंदर सुखदाई, विमलनाथ भग-वान जहां पचमगति पाई। कोडि सु सत्तर सातलाख षट सहस जु गाई, सात सतक मुनि और वियालिस जानो भाई। दोहा—अष्टकर्मको नष्टकर मुनि अष्टमछिति पाय।

तिनप्रति अर्घ चढावहूं, जनम मरण दुखजाय ॥
त्रिमलदेव निरमल करण, सब जीवन सुखदाय ।
मोतीसुत वंदत चरण, हाथ जोर शिरनाय ॥१२॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसुवीरकुलकूटतैं श्रीविमलनाथजिनेंद्र आदिमुनि सत्तरकोडि सातलाख छहहजार सातसौब्यालीस सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥१२॥

नं० १३ अनंतनाथ स्वयंभूकूट । अडिल्ल ।

कूट स्वयंभू नाम परम सुंदर कह्यो । प्रभु अनंत जिननाथ जहां शिवपद लह्यो ॥ मुनि जु कोडाकोडि छयानवे जानिये । सत्तर कोडि जु सत्तरलाख प्रमानिये ॥ सत्तर सहस जु आर मुनीश्वर गाइये । सात सतक ता ऊपर तिनको ध्याइये ॥ कहैं जवाहरलाल सुनो मनलायकैं । गिरिवरकों नित पूजो अति सुखपायकैं ॥

सोरठा—पूजत विघन पलाय, ऋद्धिसिद्धि आनँद करै ।
सुरशिवको सुखदाय, जो मनवचपूजा करै ॥ ३॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रस्वयंभूकूटतैं अनंतनाथजिनेन्द्रादिमुनि छयानवेकोड़ाकोड़ी सत्तरकोडि सत्तरलाख सत्तरहजार सातसौ सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥१३॥

नं० १४ धर्मनाथ सुदत्तकूट । चौपाई ।

कूट सुदत्त महाशुभ जान । श्रीजिनधर्मनाथको थान ॥
मुनि कोड़कोडी उनईस । और कहे ऋषि कोडि उनीश ॥
लाख जु नव नवसहस सुजान । सात शतक पंचावन मान ॥

मोक्ष गये वे कर्मनचूर। दिवसरु रयन नमों भरपूर ॥ महिमा जाकी अतुल अनूप। ध्यावत वर इंद्रादिक भूप ॥ शोभत महा अचलपदपाय। पूजौं आनँद मंगलगाय ॥ दोहा—परम पुनीत पवित्र अति, पूजत शत सुरराय। तिह थानकको देखकर, मोतीसुत गुणगाय ॥ पावन परम सुहावनो, सब जीवन सुखदाय। सेवत सुरहरि नर सकल मनवांछित पदपाय ॥१४॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसुदत्तकूटतैं धर्मनाथजिनेन्द्रादिमुनिउन्नीस कोडाकोडी उन्नीसकोड़ि नौलाख नौहजार सातसौ पंचानवे सिद्धपदप्राप्तेभ्यो अर्घं ॥ १४ ॥

नं० २० शान्तिनाथ-शांतिप्रभकूट। सुगीतिका छंद।

श्रीशांतिप्रभ है कूट सुंदर, अति पवित्र सुजानिये। श्रीशांतिनाथ जिनेंद्र जहंतैं, परम धाम प्रमानिये ॥ नवजु कोडाकोडि मुनिवर लाख नव अब जानिये। नौ नहस नवसैं मुनि निन्यानव, हृदयमें धर मानिये ॥

दोहा—कर्मनाश शिवको गए, तिन प्रति अर्घ चढाय।
त्रिविधयोग करि पूज हैं, मनवांछित फलपाय ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रप्रशांतिप्रभकूटतैं शांतिनाथजिनेन्द्रादिमुनि नौकोड़ाकोड़ी नौलाख नौहजार नौसै निन्यानवे सिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

नं० २ कुन्थुनाथ ज्ञानधरकूट। गीतिका छंद।

ज्ञानधर शुभकूट सुंदर, परम मनमोहन सही। जहंतैं श्री-

प्रभु कुंथुस्वामी, गये शिवपुरकी मही। कोडा सु कोडि छ्यानवें, मुनि कोडिछ्यानव जानिये। अर लाखबत्तिस सहस छ्यानव, शतक सात प्रमानिये ॥

दोहा—और कहे व्यालीस मुनि, सुमिरों हिये मझार।
तिनपद पूजों भावसों, करै जु भवदधिपार ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रज्ञानधरकूटतैं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्रादि मुनि-छ्यानवे कोडाकोडी छ्यानवे कोडि बत्तीसलाख छ्यानवे हजार सातसौ वियालीस सिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामि० ॥

नं० ४ अरनाथ नाटककूट। दोहा-

कूट जु नाटक परमशुभ, शोभा अपरंपार। जहंतैं अरजिनराजजी, पहुंचे मुक्ति-मझार ॥ कोडिनिन्यानव जानि मुनि, लाखनिन्यानव और। कहे सहस निन्यानवैं वंदौं कर जुग जोर ॥ अष्ट कर्मको नष्टकरि, मुनि अष्टमक्षिति पाय। ते गुरु मो हिरदै वसौ, भवदधि पार लगाय ॥

सोरठा—तारणतरण जिहाज, भवसमुद्रके बीचमै। पकरो मेरी-बांह, डुबतसे राखो मुझे ॥ अष्टकरम दुखदाय, ते तुमने चूरे सबै। केवलज्ञान उपाय, अविनाशी पद पाइयो ॥ मोतीसुत गुणगाय, चरणन शीश नवायकै। मेटो भवभटकाय, मांगत अब वरदान यो ॥१७॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रनाटककूटतैं अरनाथजिनेद्रादिमुनि निन्यानवैकोडि निन्यानवैं लाख निन्यानवैं हजार सिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति ॥ १७ ॥

नं० ५ मल्लिनाथ सम्बलकूट । सुन्दरी छंद ।

कूट सम्बल परमपवित्र जू । गये शिवपुर मल्लिजिनेश जू ॥ मुनि जु छ्यानवकोडि प्रमानिये । पदजजते हिरदय सुख आनिये ॥ मोती दामछंद—भजो प्रभुनाम सदा सुख-रूप, जजौं मनमैं धर भाव अनूप । टरै अघपातिक जाहिं सुदूर, सदा जिनको सुख आनँदपूर ॥ डरैं ज्यों नाग गरुड को देखि, भजै गजजुत्थ जु सिंहहि पेख । तुमनाम प्रभू दुख हरण सदा, सुखपूर अनूपम होय मुदा ॥ तुम देव सदा अशरण शरणं, भट मोहबली प्रभुजी हरणं । तुम शरण गही हम आय अबै, मुझ कर्मबली दिढ चूर सबै ॥१८॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसम्बलकूटपै श्रीमल्लिनाथजिनेंद्रादि छ्यानवैकोडि मुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

नं० ६ मुनिसुव्रत निर्जरकूट । मदअवलिप्तकपोल छंद ।

मुनिसुव्रत जिननाथ सदा आनँदके दाई । सुंदर निर्जरकूट जहांतैं शिवपुर जाई ॥ निन्यानवकोडाकोडि कहे मुनि कोडि सत्याना । नवलख जोडि मुनिंद कहे नौसौ निन्याना ॥

सोरठा—कर्म नाशि ऋषिराज, पंचमगतिके सुख लहे ।
तारणतरणजिहाज, मो दुख दूर करो सकल ॥

भुजंगप्रयात—बली मोहकी फौज प्रभुजी भगाई, जग्यो ज्ञान-पंचम महा सुक्खदाई । समोशरण धरणेंद्रने तब बनायो, तबै देव सुरपति सबै शीश नायो ॥ जयो जय जिनेंद्र सुशब्दं उचारी, भये आज दर्शन सबै सुक्खकारी । गए सर्व पातक

प्रभू दूरहीतैं, जबै दर्श कीने प्रभू दूरहीतै ॥ सुनी नाथ श्रवनों जु तेरी बड़ाई, गही शरण हमने तुम्हारी सुहाई। वली कर्म नाशे जबै मुक्ति पाई, तिन्हें हाथ जोरें सदा शीश नाई॥
ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रनिर्जरकूटतैं मुनिसुव्रतनाथजिनेंद्रादिमुनि निंन्यानवैकोडाकोडि सत्तानवे कोडि नौलाख नौसौनिन्यानवै सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं नित्रणमीति स्वाहा ॥ १६ ॥

नं० ३ नमिनाथ मित्रधरकूट। जोगीरासा।

कूट मित्रधर परम मनोहर, सुंदर अति छविदाई । श्रीनमिनाथ जिनेश्वर जहँतै, अविनाशी पद पाई॥ नौसौ कोडाकोडी मुनिवर, एक अरब ऋषि जानो । लाख पैंतालिस सात सहस अरु,नौसै ब्यालिस मानो ॥
दोहा—वसु करमनको नाश कर अविनाशी पद पाय।
पूजों चरणसरोजकों, मनवांछित फलदाय ॥२०॥
ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रमित्रधरकूटतैं नमिनाथजिनेंद्रादिमुनि नौसौकोड़ाकोड़ि एकअरब पैंतालिसलाख सातहजार नौसौ ब्यालिस सिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्योऽर्घं निवपामीति स्वाहा ॥ २० ॥

नं० २६ पार्श्वनाथ। सुवर्णभद्रकूट।

दोहा—सुवरणभद्र जु कूटपै, श्रीप्रभुपारसनाथ।
जहंतैं शिवपुरको गये, नमों जोरिजुग हाथ ॥
त्रिभंगीछंद- मुनि कोडिबियासी लाख चुरासी, शिवपुरवासी सुखदाई। सहसहि पैंतालिस सातसौ ब्यालिस, तजिके आलस गुणगाई॥ भवदधितैं तारण पतितउधारण, सब

दुखहारण सुख कीजै। यह अरज हमारी सुनिं त्रिपुरारी शिवपदभारी मो दीजै॥

छंद—यह दर्शनकूट अनंतलह्यो। फलषोडशकोटि उप सकह्यो॥ जगमें यह तीर्थ कह्यो भारी। दर्शन करि पाप कटैं सारी॥

मोतीदामछंद—टरैं गति वंदत नर्क तिर्यंच। कबहुँ दुखको नहिं पावै रंच॥ यही शिवको जगमें है द्वार। अरे नर वंदौ कहत 'जवार'॥

दोहा—पारशप्रभुके नामतैं, विघन दूरि टरि जाय।
ऋद्धि सिद्धि निधि तासको, मिलिहै निसिदिन आय॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसुवर्णकूटतैं श्रीपार्श्वनाथादिमुनि वियासी करोड़ चुरासीलाखपैंतालिसहजारसातसौवियालीससिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं०॥२१॥

अडिल्ल—जे नर परम सुभावनतैं पूजा करैं। हरि हलि चक्री होंय राज्य षटखंड करै॥ फेरि होय धरणेंद्र इंद्रपदवी धरैं। नानाविधि सुख भोगि बहुरि शिवतिय वरैं॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

१२५—श्रीगिरनारक्षेत्र पूजा

दोहा—वंदौं नेमि जिनेश पद, नेमि-धर्म-दातार।
नेमधुरंधर परम गुरु, भविजन सुख कर्तार॥१॥
जिनवाणीको प्रणमिकर, गुरु गणधर उरधार।
सिद्धक्षेत्र पूजा रचौं, सब जीवन हितकार॥

उर्जयंत गिरिनाम तस, कह्यो जगत विख्यात।
गिरिनारी तासों कहत, देखत मन हर्षात ॥ ३ ॥

द्रुतविलंबित तथा सुन्दरी छंद–गिरिसु उन्नत सुभगाकार है। पंचकूट उत्तंग सुधार है ॥ वन मनोहर शिला सुहावनी। लखत सुंदर मनको भावनी ॥ अवर कूट अनेक बने तहां! सिद्ध थान सु अति सुंदर जहां॥ देखि भविजन मन हर्षावते। सकल जन वंदनको आवते ॥ ५ ॥

त्रिंभगी छंद–तहँ नेमकुमारा व्रत तप धारा कर्म विदारा, शिव पाई। मुनि कोडि वहत्तर सात शतक धर तागिरिऊपर सुखदाई॥ ह्वै शिवपुरवासी गुणके राशी विधिथिति नाशी ऋद्धि-धरा। तिनके गुणगाऊं पूज रचाऊं मन हर्षाऊं सिद्धिकरा ॥

दोहा–ऐसे क्षेत्र महान तिहिं, पूजों मन वच काय।
थापना त्रयवार कर, तिष्ठ तिष्ठ इत आय ॥

ओं ह्रीं श्रीगिरनारसिद्धक्षेत्र अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।

ओं ह्रीं श्रीगिरनारसिद्धक्षेत्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।

ओं ह्रीं श्रीगिरनारसिद्धक्षेत्र अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

अष्टक। कवित्त

लेकर नीर सुक्षीरसमान महा सुखदान सुप्रासुक लाई। दे त्रय धार जजों चरणा हरना मम जन्म जरा दुखदाई॥ नेमिपती तज राजमती भये बालयती तहँतैं शिवपाई ॥ कोडि वहत्तरि सातसौ सिद्ध मुनीश भये सु जजों हरषाई ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीगिरनारिसिद्धक्षेत्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

चंदनगारि मिलाय सुगंध हु, ल्याय कटोरीमें धरना। मोह-महातममेटनकाज सु चर्चतु हों तुम्हरे चरना॥नेम०॥चंदनं॥ अक्षत उज्वल ल्याय धरों, तहँ पुंज करो मनको हर्षाई। देहु अखयपद प्रभु करुणाकर, फेर न या भववासकराई। नेमि० ॥अक्षतान्॥ फूल गुलाब चमेली बेल कदंब सु चंपकबीन सु ल्याई। प्रासुकपुष्प लवंग चढ़ाय सु गाय प्रभू गुणकाम नशाई॥ नेम०॥ पुष्पं॥ नेवज नव्य करों भर-थाल सुकंचन भाजनमें धर भाई। मिष्ट मनोहर क्षेपत हों यह रोग क्षुधा हरियो जिनराई॥नेम०॥नैवेद्यं॥ धूप दशांग सुगंध ई कर खेवहुँ अग्निमँझार सुहाई। शीघ्रहि अर्ज सुना जिनजी मम कर्म महावन देउ जराई ॥ नेम०॥धूपं॥ ले फल सार सुगंधमई रसनाहृद नेत्रनको सुखदाई। क्षेपत हों तुम्हरे चरणा प्रभु देहु हमैं शिवकी ठकुराई॥नेम०॥फलं॥ ले वसु द्रव्य सु अर्घ करों धर थाल सुमध्य महा हरषाई। पूजत हों तुमरे चरणा हरिये वसुकर्मबली दुखदाई॥नेम०॥अर्घ

दोहा—पूजत हों वसुद्रव्य ले, सिद्धक्षेत्र सुखदाय।
निजहितहेतु सुहावनो, पूरण अर्घ चढाय ॥ पूर्णार्घं ॥१०॥

पंचकल्याणक अर्घ। छन्द पाइता।

कार्तिक सुदिकी छठि जानो। गर्भागम तादिन मानो॥
उत इंद्र जजैं उस थानी। इत पूजत हम हरषानी ॥ १॥

ओं ह्रीं कार्तिकशुक्लाषष्ट्यां गर्भमंगलप्राप्ताय नेमिनाथजिनेंद्राय अर्घं।

श्रावणसुदि छठि सुखकारी। तब जन्म महोत्सव धारी।

सुरराज सुमेर न्हवाई। हम पूजत इत सुखपाई ॥ २ ॥

ओं ह्रीं श्रावणशुक्लाषष्ठ्यां जन्ममंगलमंडिताय नेमिनाथजिनेंद्राय अर्घं ॥

सित सावनकी छठि प्यारी। तादिन प्रभु दीक्षा धारी॥
तप घोर वीर तहँ करना। हम पूजत तिनके चरणा ॥३॥

ओं ह्रीं श्रावणशुक्लषष्ठीदिने दीक्षामंगलप्राप्ताय नेमिनाथजिनेंद्राय अर्घं।

एकम सुदि आश्विन भाषा। तब केवलज्ञान प्रकाशा ॥
हरि समवसरण तब कीना। हम पूजत इत सुख लीना ॥

ओं ह्रीं आश्विनशुक्लाप्रतिपदि केवलज्ञानप्राप्तायनेमिनाथजिनेंद्राय अर्घं ॥

सित अष्टमि मास आषाढ़ा। तब योग प्रभूने छाडा।
जिन लई मोक्ष ठकुराई। इत पूजत चरणा भाई ५॥

ओं ह्रीं अषाढ़शुक्लषष्ठ्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय नेमिनाथजिनेंद्राय अर्घं।

अडिल्ल—कोडि बहत्तरि सप्त सैकड़ा जानिये। मुनिवर मुक्ति गये तहँतैं सु प्रमाणिये॥ पूजों तिनके चरण सु मनवचका-यकै। वसुविध द्रव्यमिलायसुगाय बजायकैं॥ पूर्णार्घं ॥

जयमाला

दोहा—सिद्धक्षेत्र गिरनारशुभ, सब जीवन सुखदाय।
कहों तासु जयमालिका, सुनतहि पाप नशाय॥

पद्धरीछंद—जय सिद्धक्षेत्र तीरथ महान। गिरिनारि सुगिरि उन्नत बखान॥ तहँ झूनागढ़ है नगर सार। सौराष्ट्रदेशके मधिविथार॥ २॥ तिस झूनागढ़से चले सोइ। समभूमि कोस वर तीन होइ॥ दरवाजेसे चल कोस-आध। इक नदी बहत है जल अगाध ॥३॥ पर्वत उत्तरदक्षिण सु दोय।

मधि बहत नदी उज्वल सु तोय ॥ ता नदीमध्य कइकुंड जान। दोनों तट मंदिर बने मान ॥ ४ ॥ तहँ वैरागी वैष्णव रहाय। भिक्षाकारण तीरथ कराय ॥ इक कोस तहां यह मच्यो ख्याल। आगै इक ब्रनदि बहत नाल ॥ ५ ॥ तहँ श्रावकजन करते सनान। धो द्रव्य चलत आगै सुजान। फिर मृगीकुंड इक नाम जान। तहँ बैरागिनके बने थान ॥ ६ ॥ वैष्णव तीरथ जहँ रच्यो सोइ। वैष्णव पूजत आनंद होइ ॥ आगे चल डेढ़ सु कोस जाव। फिर छोटे पर्वतको चढाव। ७॥ तहँ तीन कुंड सोहैं महान। श्रीजिनके युगमंदिर बखान ॥ मंदिर दिगंबरी दोय जान। श्वेतांबरके बहुते भमान ॥ ८ ॥ जहँ बनी धर्मशाला सु जोय। जलकुंड तहां निर्मल सु तोय ॥ तहँ श्वेतांबरगण दिशा जांय। ता कुंडमाहिं नितही नहांय ॥९॥ फिर आगैं पर्वतपर चढाउ। चढि प्रथम कूटको चले जाउ ॥ तहं दर्शन कर आगै सुजाय। तहँ दुतिय टोंकका दर्श पाय ॥१०॥ तहँ नेमनाथके चरण जान। फिर हैं उतार भारी महान ॥ तहँ चढकर पंचम टोंक जाय। अति कठिन चढाव तहां लखाय ॥ ११ ॥ श्रीनेमनाथका मुक्तिथान। देखत नयनों अति हर्षमान ॥ इक बिंब चरन-युग तहां जान। भवि· करत बंदना हर्ष ठान ॥ १२ ॥ कोउ करते जय जय भक्ति लाइ। कोऊ थुति पढते तहँ सुनाय ॥ तुम त्रिभुवनपति त्रैलोक्यपाल। मम दुःख दूर कीजै दयाल। १३ ॥ तुम राजऋद्धि न भुगती न कोइ।

यह अथिररूप संसार जोइ ॥ तज मातपिता घर कुटुम द्वार । तज राजसतीसी सती नार ॥ १४ ॥ द्वादशभावन भाई निदान ॥ पशुवंदि छोड दे अभयदान । शेसावनमें दीक्षा सुधार । तप करके कर्म किये सुछार ॥ १५ ॥ ताही वन केवल ऋद्धि पाय । इंद्रादिक पूजे चरण आय ॥ तहँ समदसरण रचियो विशाल । मणिपंथ वर्णकर अति रसाल ॥ १६ ॥ तहँ वेदी कोट सभा अनूप । दरवाजे भूमि व ी सुरूप॥ वसु प्रातिहार्य छत्रादि सार । वर द्वादशि सभा बनी अपार ॥ १७ ॥ करके विहार देशों मझार । भवि जीव करे भवसिंधु पार ॥ पुन टोंक पंचमीको सुजाय । शिव-नाथ लह्यो आनंद पाय ॥ १८ ॥ सो पूजनीक यह थान जान । वंदत जन तिनके पाप हान ॥ तहतैं सु बहत्तर कोडि और । मुनि सातशतक सब कहे ज़ोर ॥ १९ ॥ उस पर्वतसों सब मोक्ष पाय । सब भूमि सु पूजन योग्य थाय ॥ तहँ देश देशके भव्य आय । वंदन कर बहु आनंद पाय ॥ २ ॥ पूजन कर कीने पाप नाश । बहु पुण्यबंध कीनो प्रकाश ॥ यह ऐसो क्षेत्र महान जान । हम करी वंदना हर्ष ठान ॥ २१ ॥ उनईस शतक उनतीस जान । संवत अष्टमि सित फाग मान ॥ सब संग सहित वंदन कराय । पूजा कीनी आनंद पाय ॥ २२ ॥ अब दुःख दूर कीजे दयाल । कहै 'चंद्र' कृपा कीजै कृपाल ॥ मैं अलपबुद्धि जयमाल गाय । भवि जीव शुद्ध लीज्यो बनाय ॥ २३ ॥

घत्ता–तुम दयाविशाला सब क्षितिपाला, तुम गुणमाला कंठ धरी। ते भव्य विशाला तज जगजाला, नावत भाला मुक्तिवरी॥
ओं ह्रीं श्रीगिरनारसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ समाप्ता॥

१२६–श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्र पूजा।

दोहा–उत्सव किय पनवार जहँ, सुरगनयुत हरि आय।
जजों सुथल वसुपूज्यसुत, चंपापुर हर्षाय॥१॥

ओं ह्रीं श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्र! अत्रावतरावतर। संवौषट्।
ओं ह्रीं श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक। चाल नंदीश्वरपूजनकी।

सम अमिय विगतत्रस वारि, लै हिमकुंभ भरा। लख सुखद त्रिगदहरतार, दे त्रय धार धरा॥ श्रीवासुपूज्य जिनराय, निर्वृतिथान प्रिया। चंपापुर थल सुखदाय, पूजौं हर्ष हिया॥
ओं ह्रीं श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि०॥

कश्मीरी केशर सार, अति ही पवित्र खरी। शीतल चंदन-सँग सार लै भव तापहरी॥ श्री०॥ चंदनं॥ मणिद्युतिसम खंडविहीन, तंदुल लै नीके। सौरभयुत नव वर वीन, शालि महा नीके॥ श्री०॥ अक्षतान्॥ ३॥ अलि लुभन सुभन दृग घ्राण, सुमन जु सरद्रुमके। लै वाहिम अर्जुनवान, सुमन दमन क्षमके॥ श्री०॥ पुष्पं॥४॥ रस पुरित तुरित पकवान, पक्व यथोक्त घृती। क्षुधगदमदप्रदमन जान, लै विध युक्तकृती॥ श्री०॥ नैवेद्यं॥५॥ तमअज्ञप्रनाशक

सूर, शिवमग परकाशी । लै रत्नद्वीप द्युतिपूर, अनुपम सुखराशी ॥ श्री० ॥ दीपं ॥६॥ वर परिमल द्रव्य अनूप, सोध पवित्र करी । तस चूरण कर कर धूप, ले विधिकुंज हरी ॥ श्री०॥ धूपं ॥७॥ फल पक्व मधुररसवान, प्रासुक बहुविधके । लखि सुखद रसनदृगघ्रान, ले भद पद सिधके ॥ श्री० ॥ फलं ॥८॥ जल फल वसु द्रव्य मिलाय, लै भर हिमथारी ॥ वसुअंग धरापर ल्याय, प्रमुदित चित-धारी ॥ श्री०॥ अर्घं ॥९॥

अथ जयमाला ।

दोहा—भये द्वादशम तीर्थपति, चंपापुर निर्वान ।
तिन गुणकी जयमाल कछु, कहों श्रवण सुखदान ॥

पद्धरिछंद—जय जय श्री चंपापुर सु धाम । जहँ राजत नृप वसु-पूज नाम ॥ जय पौन पल्यसैं धर्महीन । भवभ्रमन दुःखमय लख प्रवीन ॥१॥ उर करुणाधर सो तम विडार । उपजे किरणावलिधर अपार ॥ श्री वासुपूज्य तिनके जु बाल । द्वादशम तीर्थकर्त्ता विशाल ॥२॥ भवरोग देहतैं विरत होय । वय बालमाहिं ही नाथ सोय ॥ सिद्धन नमि महाव्रत भार लीन । तप द्वादशविधि उग्रोग्र कीन ॥३॥ तहँ मोक्ष सप्तत्रय आयु येह । दश प्रकृति पूर्व ही क्षय करेह ॥ श्रेणीजु क्षपक आरूढ होय । गुण नवमभाग नवमाहिं सोय ॥ ४ ॥ सोलहवसु इक इक षट इकेय । इक इक इक इम इन क्रम सहेय पुन दशमथान इक लोभटार । द्वादशमथान सोलह

विडार ॥५॥ ह्वै अनँत चतुष्टय युक्त स्वाम। पायो सब सुखद सयोग ठाम ॥ तहं काल त्रिगोचर सर्व ज्ञेय। युगपत हि समय इकमंहि लखेय ॥ ६ ॥ कछु काल दुविध वृष अमिय वृष्टि। कर पोषे भविभुविधान्यसृष्टि ॥ इक मास आयु अवशेष जान ॥ जिन योगनकी सुपवृत्ति हान ॥७॥ ताही थल तृतिशितध्यान ध्याय। चतुदशमथानें निवसे जिनाय ॥ तहँ दुचरम समयमझार ईश। प्रकृति जु बहत्तर तिनहि पीश ॥ ८ ॥ तेरह नठ चरम समयमझार। करके श्रीजगतेश्वर प्रहार ॥ अष्टमि अवनी इक समयमद्ध। निवसे पाकर निज अचल रिद्ध ॥९॥ युत गुण वसु प्रमुख अमित गणेश। ह्वै रहे सदा ही इमंहि वेश ॥ तवहीतैं सो थानक पवित्र। त्रैलोक्यपूज्य गायो विचित्र ॥ १० ॥ मैं तसु रज निज मस्तक लगाय। वंदौं पुन पुन भुवि शीश नाय ॥ ताही पद वांछा उरमझार। धर अन्य चाहबुद्धी विडार ॥

दोहा—श्रीचंपापुर जो पुरुष, पूजै मन वच काय।
वर्णि "दौल" सो पाय ही, सुख सम्पति अधिकाय ॥

इत्याशीर्वादः।

१२६—श्रीपावापुर-सिद्धक्षेत्र-पूजा।

जिहिं पावापुर छित अघाति, हत सनमति जगदीश।
भये सिद्ध शुभथान सो, जजौं नाय निज शीश ॥

ओं ह्रीं श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्र ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।

ओं ह्रीं श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः !

ओं ह्रीं श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

अथ अष्टक । गीताछंद ।

शुचि सलिल शीतौ कलिलरीतौ श्रमन चीतो लै जिसो ॥ भर कनक झारी त्रिगद हारी दे त्रिधारी जिततृषो ॥ वर पद्मवन भर पद्मसरवर वहिर पावाग्राह ही । शिवधाम सन्मत स्वामि पायो, जजौं सो सुखदा मही ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीपावापुतुरसिद्धक्षेत्रेभ्यो वीरनाथजिनेन्द्रस्य जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

भव भ्रमन भ्रमत अशर्म तपकी, तपन कर तपताइयो । तसु वलयकंदन मलय-चंदन, उदक संग घिस ल्याइयो ॥ वरपद्म० ॥चंदनं०॥ तंदुल नवीन अखंड लीने, ले महीने ऊजरे । मणिकुंद इंदु तुषार द्युति-जित, कनरकाबीमें धरे ॥ वर० ॥ अक्षतान् ॥ मकरंदलोभन सुमन शोभन सुरभि चोभन लेय जी । मद समर हरवर अमर तरुके, प्रान-द्दग हरखेय जी ॥वरपद्म०॥पुष्पं०॥ नैवेद्य पावन छुध मिटावन सेव्य भावन युत किया । रस मिष्ट पूरति इष्ट सूरति लेयकर प्रभु हित हिया ॥वरपद्म०॥ नैवेद्यं० ॥ तमअज्ञनाशक स्वपरभाशक ज्ञेय परकाशक सही । हिमपात्रमें धर मौल्यविन वर द्योतधर मणि दीपही ॥वर०॥ दीपं ॥ आमोदकारी वस्तुसारी विध दुचारी-जारनी । तसु तूप कर कर धूप ले दश दिश-सुरभि-विस्तारनी ॥ वर० ॥धूपं॥ कल भक्ष पक्ष सुचक्य सोहन, सुक जनमन मोहने । वर सुरस पूरित त्वरित

मधुरत लेयकर अति सोहने ॥ वरपद्म० ॥ फलं ॥ जल गंध आदि मिलाय वसुविध थार स्वर्ण भरायकैं। मन प्रमुद भाव उपाय कर ले आय अर्घ बनायकै ॥वरपद्म०॥ अर्घ ॥९॥

अथ जयमाला।

दोहा—चरम तीर्थंकरतार श्री, वर्द्धमान जगपाल।
कलमलदलविधविकल ह्वै, गाऊँ तिन जयमाल ॥

पद्धरीछंद—जय जय सुवीर जिन मुक्तिथान। पावापुरवनसर शोभवान॥ जे सित अषाढ छठ स्वर्गधाम। तज पुष्पोत्तर सुविमान ठाम ॥१॥ कुण्डलपुर सिद्धारथ नृपेश। आये त्रिशला जननी उरेश॥ शित चैत्र त्रियोदशि युत त्रिज्ञान। जनमे तम अज्ञ-निवार भान ॥२॥ पूर्वाह्न धवल चउदिश दिनेश। किय न्हवन कनकगिरि-शिर सुरेश॥ वय वर्ष तीस पद कुमरकाल। सुख दिव्य भोग भुगतेविशाल ॥३॥ मारगसिर अलि दशमी पवित्र। चढ़ चंद्रप्रभा शिविका विचित्र॥ चलि पुरसों सिद्धन शीशनाय। धान्यो संजय वर शर्मदाय ॥४॥ गतवर्ष दुदश कर तप विधान। दिन शित वैशाख दशै महान॥ रिजुकूला सरिता तट स्व सोध। उपजायो जिनवर चरम बोध ॥५॥ तव ही हरि आज्ञा शिर चढाय। रचि समवसरण वर धनदराय॥ चउसंघ प्रभृति गौतम गनेश। युत तीस वरष विहरे जिनेश ॥ ६ ॥ भवि-जीवदेशना विविध देत। आये वर पावानगर खेत॥ कार्तिक अलि अन्तिस दिवस ईश। कर योग निरोध अघातिपीस॥

॥ ७ ॥ ह्वै अकल अमल इक समयमाहिं । पंचम गति पाई श्रीजिनाह ॥ तब सुरपति जिनरवि अस्त जान । आये तुरंत चढि निज विमान ॥ ८ ॥ कर वपु अरचा थुति विविध भांत । लै विविध द्रव्य परिमल विख्यात ॥ तब ही अग-नींद्र नवाय शीश । संस्कार देहकी त्रिजगदीश ॥ ९ ॥ कर भस्म वंदना जिन महीय । निवसे प्रभु गुन चितवन स्वहीय । पुनि नर मुनि गनपति आय आय । वंदी सो रज शिर नाय नाय ॥१०॥ तब हीसों सो दिन पूज्य मान । पूजत जिनगृह जन हर्ष मान ॥ मैं पुन पुन तिस भुवि शीशधार । वंदौं तिन गुणधर उर मझार ॥ ११ ॥ तिनही का अब भी तीर्थ एह । वरतत दायक अति शर्म गेह ॥ अरु दुखमकाल अवसान ताहि । वर्तैगो भवथितिहर सदाहि ॥ १२ ॥

कुसुमलता छंद—श्रीसन्मति जिन अंघ्रि पद्मयुग जजै भव्य जो मन वच काय । ताके जन्म जन्म संचित अघ जावहिं इक छिन माहिं पलाय ॥ धनधान्यादिक शर्म इंद्रपद लहै सो शर्म अतीन्द्री थाय । अजर अमर अविनाशी शिवथल वर्णो दौल रहै शिर नाय ॥ १३ ॥

ओं ह्रीं श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

छठा अध्याय।

शास्त्रसारसमुच्चय

१२८—पंचपरमेष्ठीके नाम।

अरहंत, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय, सर्व साधु ।
ॐ ह्रीं अ सि आ उ सा । ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

नोट—अ सि आ उ सा नाम पञ्चपरमेष्ठीका है।
ॐ में पञ्चपरमेष्ठीके नाम व २४ तीर्थंकरोंके नाम गर्भित हैं।

१२९—भूतकालके चौबीस तीर्थंकर।

१ श्रीनिर्वाण २ सागर ३ महासिंधु ४ विमलप्रभ ५ श्रीधर ६ सुदत्त ७ अमलप्रभ ८ उद्धार ९ अंगिर १० सन्मति ११ सिंधुनाथ १२ कुसुमांजलि १३ शिवगण १४ उत्साह १५ ज्ञानेश्वर १६ परमेश्वर १७ विमलेश्वर १८ यशोधर १९ कृष्णमति २० ज्ञानमति २१ शुद्धमति २२ श्रीभद्र २३ अतिक्रांत २४ शांति।

१३०—भविष्यत्कालके २४ तीर्थंकरोंके नाम।

१ श्रीमहापद्म २ सुरदेव ३ सुपार्श्व ४ स्वयंप्रभ ५ सर्वात्मभू ६ श्रीदेव ७ कुलपुत्रदेव ८ उदकदेव ९ प्रोष्ठिलदेव १० जयकीर्ति ११ मुनिसुव्रत १२ अरह (अमम) १३ निष्पाप १४ निष्कषाय १५ विपुल १६ निर्मल १७ चित्रगुप्त १८ समाधिगुप्त १९ स्वयंभू २० अनिवृत्त २१ जयनाथ २२ श्रीविमल २३ देवपाल २४ अनन्तवीर्य।

१३१—वर्तमानकालके २४ तीर्थंकरोंके नाम।

१ ऋषभनाथ २ अजितनाथ ३ सम्भवनाथ ४ अभिनन्दननाथ ५ सुमतिनाथ ६ पद्मप्रभ ७ सुपार्श्वनाथ ८ चंद्रप्रभ ९ पुष्पदंत १० शीतलनाथ ११ श्रेयांसनाथ १२ वासुपूज्य १३ विमलनाथ १४ अनंतनाथ १५ धर्मनाथ

१६ शांतिनाथ १७ कुंथुनाथ १८ अरहनाथ १९ मल्लिनाथ २० मुनिसुव्रतनाथ २१ नमिनाथ २२ नेमिनाथ २३ पार्श्वनाथ २४ वर्द्धमान।

१३२—तीर्थंकरोंके चिन्ह।

१ ऋषभनाथके बैल २ अजितनाथके हाथी ३ संभवनाथके घोड़ा ४ अभिंनदननाथके बंदर ५ सुमतिनाथके चकवा ६ पद्मप्रभुके कमल ७ सुपार्श्वनाथके सांथिया ८ चंद्रप्रभुके चंद्रमा ९ पुष्पदंतके नाकू १० शीतलनाथके कल्पवृक्ष ११ श्रेयांसनाथके गेंड़ा १२ वासुपूज्यके भैंसा १३ विमलनाथके सुअर १४ अनंतनाथके सेही १५ धर्मनाथके वज्रदंड १६ शांतिनाथके हिरण १७ कुंथुनाथके बकरा १८ अरहनाथके मच्छी १९ मल्लिनाथके कलश २० मुनिसुव्रतनाथके कछवा २१ नमिनाथके कमल २२ नेमिनाथके शंख २३ पार्श्वनाथके सर्प २४ महावीरके सिंह।

१३३—तीर्थंकरोंकी जन्मभूमि।

ऋषभदेवजी, अजितनाथजी, अभिनन्दनजी, सुमतिनाथजी, अनन्तनाथजी इनकी जन्मभूमि अयोध्या है। संभवनाथजीकी श्रावस्ती, पद्मप्रभुजीकी कौशाम्बी, सुपार्श्वनाथजी व पार्श्वनाथजीकी काशी, चन्द्रप्रभुजीकी चंद्रपुरी, पुष्पदंतजीकी काकंदी, शीतलनाथजीकी भद्रपुर, श्रेयांसनाथजीकी सिंहनादपुर, वासुपूज्यजीकी चंपापुर, विमल-

नाथजीकी कंपिला, धर्मनाथजीकी रत्नपुर, शांतिनाथजी कुंथनाथजी अरहनाथजीकी हस्तिनागपुर, मल्लिनाथजीकी नमिनाथजीकी मिथिला, मुनिसुव्रतनाथजीकी राजगृही, नेमिनाथजीकी द्वारावती [ह०] सूर्यपुर [उ०] और महावीर स्वामीकी जन्मभूमि कुंडलपुर है।

१३४—तीर्थंकरोंके पिताका नाम।

१ नाभिराय २ जितशत्रु ३ दृढ़राजा [उ०] जितारि [ह०] ४ संवर ५ मेघरथ ६ धरण ७ सुप्रतिष्ठित ८ महासेन ९ सुग्रीव १० दृढरथ ११ विष्णु १२ वसुपूज्य १३ कृतवर्मा १४ सिंहसेन १५ भानू १६ विश्वसेन १७ सूर्यसेन १८ सुदर्शन १९ कुम्भ २० सुमित्र २१ श्रीविजय २२ समुद्रविजय २३ अश्वसेन २४ सिद्धार्थ इसप्रकार क्रमशः चौबीस तीर्थंकरोंके पिताका नाम है।

१३५—तीर्थंकरोंकी माताका नाम।

१ मरुदेवी २ विजयसेना ३ सुषेणा ४ सिद्धार्था ५ मंगला ६ सुसीमा ७ पृथ्वीसेना ८ लक्ष्मणा ९ जयरामा [उ०] रामा [ह०] १०सुनन्दा ११ नन्दा [उ०] विष्णुश्री [ह०] १२ जायावती [उ०] पाटला [ह०] १३ जयश्यामा [उ०] शर्मा [ह०] १४ शर्मा [उ०] रेवती [ह०] १५ सुप्रभा [उ०] सुव्रता [ह०] १६ एरा १७ श्रीकान्ता [उ०] श्रीमती [ह०] १८ मित्र-सेना १९ प्रजावती [उ०] रक्षिता [ह०] २० सोमा [उ०]

पद्मावती [ह०] २१ वप्पिला [उ०] वप्रा [ह०], २२ सिवादेवी २३ वामादेवी २४ प्रियकारिणी [त्रिसला] इसप्रकार क्रमशः चौवीस तीर्थंकरोंकी माताका नाम है।

१३६–तीर्थंकरोंका निर्वाणक्षेत्र।

ऋषभदेवजीने कैलास पर्वतपरसे, वासुपूज्यजीने चंपापुरसे, नेमिनाथजीने गिरनारसे, महावीरजीने पावापुरसे निर्वाण प्राप्त किया है और शेष २० तीर्थकरोंने श्रीसम्मेद्शिखरजीसे निर्वाण प्राप्त किया है।

१३७–तीर्थंकरोंके शरीरकी ऊंचाई।

१ श्रीऋषभनाथजीके शरीरकी ऊँचाई ५०० धनुष, २ अजितनाथजीकी ४५० धनुष, ३ संभवनाथजीकी ४०० धनुष, ४ अभिनंदननाथजीकी ३५० धनुष, ५ सुमतिनाथजीकी ३०० धनुष, ६ पद्मप्रभुजीकी २५० धनुष, ७ सुपार्श्वनाथजीकी २०० धनुष, ८ चन्द्रप्रभजीकी १५० धनुष, ९ पुष्पदंतजीकी १०० धनुष, १० शीतलनाथजीकी ९० धनुष. ११ श्रेयांसनाथजीकी ८० धनुष, १२ वासुपूज्यजीकी ७० धनुष, १३ विमलनाथजीकी ६० धनुष, १४ अनंतनाथजीकी ५० धनुष, १५ धर्मनाथजीकी ४५ धनुष, १६ शांतिनाथजीकी ४० धनुष, १७ कुंथनाथजीकी ३५ धनुष, १८ अरहनाथजीकी ३० धनुष, १९ मल्लिनाथजीकी २५ धनुष, २० मुनिसुव्रतनाथजीकी २० धनुष, २१ नमि-

नाथजीकी १५ धनुष, २२ नेमिनाथजीकी १०, धनुष २३ पार्श्वनाथजीकी ९ हाथ और २४ महावीरजीकी ७ हाथ शरीर-की ऊँचाई है।

१३८—तीर्थंकरोंकी जन्मतिथि।

ऋषभदेवजीकी जन्मतिथि चैतवदि ९, अजितनाथजीकी माघसुदी १०, संभवनाथजीकी कार्तिकसुदी १५, अभिनद-नजीकी माघसुदी १२, सुमतिनाथजीकी चैतसुदी ११, [उ०] श्रावणसुदी ११ (ह०), पद्मप्रभुजीकी कार्तिकसुदी १३, पार्श्वनाथजीकी जेठसुदी १२, चंद्रप्रभुजीकी पौषवदी ११, पुष्पदन्तजी मगसिरसुदी १, शीतलनाथजीकी माघवदी १० श्रेयांसनाथजीकी फागुनवदी ११, वासुपूज्यजीकी फागुन सुदी १४, विमलनाथजीकीं माघसुदी १, अनंतनाथजीकी जेठवदी १२, धर्मनाथजीकी माह सुदी १३, शांतिनाथजी-की जेठवदी १४, कुंथुनाथजीकी वैसाख सुदी १, अरहनाथ जीकी मगसिरसुदी १४, मल्लिनाथजीकी मगसिरसुदी ११ मुनिसुव्रतनाथजीकी आषाढ़ सुदी १२, नमिजीकी आषाढ़ वदी १०, नेमिनाथजीकीश्रावण वदी ६ (उ०) वैसाखसुदी १३(ह०), पार्श्वनाथजीकी पौषवदी ११ और महावीरजीकी जन्म तिथि चैतसुदी १३ है।

१३९—पांच महाकल्याण।

१ गर्भकल्याण २ जन्मकल्याण ३ तपकल्याण ४ ज्ञान-कल्याण ५ मोक्षकल्याण।

१४०-चौंतीस अतिशय।

१ पसेवरहित शरीर २ मलमूत्ररहित शरीर ३ रक्त क्षीर-समान ४ आकृति शोभायमान ५ अतिरूपवान शरीर ६ सुगंधित शरीर ७ समचतुर्संस्थान ८ एकहजार आठ लक्षण-युक्त शरीर ९ वल विशेष १० मिष्ट वचन (यह दश अति-शय जन्मके हैं) १ शतयोजन सुभिक्ष २ आकाश गमन ३ अहिंसा ४ उपसर्गरहित ५ आहाररहित ६ चतुर्मुख दर्शन ७ समस्त विद्यामें स्वामित्व ८ छायारहित शरीर ९ नेत्रोंके पलक लगें नहीं १० नख केश वढें नहीं (यह दश अति-शय केवलज्ञानके हैं) १ सव भाषा मिश्रित मागधी भाषा २ सव जीवोंमें मित्रता ३ छहों ऋतुके फल फूलोंका एक ही समयमें फलना ४ दर्पण समान पृथ्वी ५ सुगंधित वायु ६ सम्पूर्ण जीवोंको आनन्द ७ एक योजनतक भूमि शुद्ध ८ गन्धोदकवृष्टि ९ आकाश निर्मल १० जय जय शब्द ११ चरणोंतल कमलोंकी रचना १२ धर्मचक्र सन्मुख चले १३ वायुकुमार हवा करें १४ अष्टमंगल द्रव्य (यह चोंदह अतिशय देवकृत हैं) इस प्रकार १०, १०, और १४ कुल ३४ हुये।

१४१-आठ महाप्रतिहार्य ।

१ अशोकवृक्ष २ पुष्पवृष्टि देवोंकृत ३ दिव्यध्वनि ४ चामर ५ छत्र ६ सिंहासन ७ भामण्डल ८ दुन्दुभि शब्द ।

१४२–चार अनंतचतुष्टय ।

१ अनन्तज्ञान २ अनन्तदर्शन ३ अनन्तसुख ४ अनन्तवीर्य ।

१४३–चार घातिया कर्म ।

१ ज्ञानावर्णकर्म २ दर्शनावर्णकर्म ३ मोहनीय कर्म ४ अंतरायकर्म ।

१४४–समवशरणकी ११ भूमियां ।

१ चैत्यभूमि २ खातिभूमि ३ लताभूमि ४ उपवनभूमि ५ ध्वजाभूमि ६ कल्पांगभूमि ७ गृहभूमि ८ सद्गणभूमि ९-११ तथा तीन पीठिका, ऐसे ११ भूमि हैं ।

१४५–समवशरणकी १२ सभाएं ।

१ पहली सभामें गणधरादि मुनिजन २ दूसरी सभामें कल्पवासी देवियां ३ तीसरी सभामें आर्यिकाएं और मनुष्यनी ४ चौथी सभामें भवनवासिनी देवियां ५ पांचवीं सभामें व्यन्तरणी देवियां ६ छठी सभामें ज्योतिष्क देवियां ७ सातवीं सभामें अपने अपने इन्द्रोंके साथ कल्पवासी देव ८ आठवीं सभामे भवनवासी देव ९ नवमी सभामें व्यन्तर देव १० दशवीं सभामें ज्योतिष्क देव ११ ग्यारहवीं सभामें मनुष्य १२ बारहवीं सभामें पशु ऐसे १२ सभा हैं ।

१४६–अठारह दोष ।

१ क्षुधा २ तृषा ३ जन्म ४ जरा ५ मरण ६ रोग

७ भय ८ मद ९ राग १० द्वेष ११ मोह १२ चिन्ता १३ रति १४ निद्रा १५ विस्मय १६ विषाद १७ खेद १८ स्वेद।

१४७—षोडश भावना।

१ दर्शनविशुद्धि २ विनयसम्पन्नता ३ शीलव्रतेष्वनतिचारः ४ अभीक्षणज्ञानोपयोग ५ संवेग ६ शक्तितस्त्याग ७ तप ८ साधुसमाधि ९ वैय्यावृत्यकरण १० अर्हन्तभक्ति ११ आचार्यभक्ति १२ बहुश्रुतिभक्ति १३ प्रवचनभक्ति १४ आवश्यकापरिहान १५ मार्गप्रभावना १६ प्रवचनवात्सल्य।

१४८—दशप्रकारके कल्पवृक्ष

१ वादित्रांग २ पात्रांग ३ भूषणांग ४ पानांग ५ भोजनांग ६ पुष्पांग ७ ज्योतिरांग ८ गृहांग ९ वस्त्रांग और १० दीपांग।

१४९—बारह चक्रवर्ती।

१ भरत महाराज २ सगर ३ मघवा ४ सनत्कुमार ५ शांतिजिन ६ कुंथुजिन ७ अरहजिन ८ सुभूमि ९ पद्मनाभि १० हरिषेण ११ जयसेन १२ ब्रह्मदत्त।

१५०—चक्रवर्तीके राज्यके सात अंग।

१ स्वामी २ मन्त्री ३ जनसमूह प्रजा ४ कोट ५ खजाना ६ मित्रगण ७ सेना।

१५१—चक्रवर्तीके चौदहरत्न।

१ सेनापति २ गृहपति ३ शिल्पकार ४ पुरोहित ५ स्त्री

६ हस्ती ७ अश्व ये सात सजीव रत्न हैं। १ काकिनीमणि २ चक्ररत्न ३ चूड़ामणि ४ चर्म ५ छत्र ६ खड्ग ७ दण्ड ये सात अजीव रत्न हैं।

१५२—चक्रवर्तीके नवविधि।

१ कालनिधि २ महाकालनिधि ३ माणवनिधि ४ पिंगलनिधि ५ नैसर्प्पनिधि ६ पद्मनिधि ७ पांडुकनिधि ८ शंखनिधि ९ नानारत्ननिधि।

१५३—चक्रवर्तीके दश भोग।

१ रत्ननिधि २ सुंदर स्त्रियां ३ नगर ४ आसन ५ शय्या ६ सैन्य ७ भोजन ८ पात्र ९ नाट्यशालाएं १० वाहन।

१५४—नवनारायण।

१ त्रिपृष्ट २ द्विपृष्ट ३ स्वयंभू ४ पुरुषोत्तम ५ पुरुषसिंह ६ पुण्डरीक ७ दत्त ८ लक्ष्मण ९ कृष्ण।

१५५—नव प्रतिनारायण।

१ अश्वग्रीव २ तारक ३ मेरुक ४ निशुंभ ५ मधु (मधुकैटभ) ६ बली ७ महलारण ८ रावण ९ जरासंध।

१५६—नव बलभद्र।

१ विजय २ अचल ३ भद्र ४ सुप्रभ ५ सुदर्शन ६ आनंद ७ नन्दन (नन्द) ८ पद्म (रामचन्द्र) ९ राम (बलभद्र)।

१५७–नव नारद ।

१ भीम २ महाभीम ३ रुद्र ४ महारुद्र ५ काल ६ महाकाल ७ दुर्मुख ८ नरकमुख ९ अधोमुख ।

१५८–ग्यारह रुद्र ।

१ भीमबली २ जितशत्रु ३ रुद्र ४ विश्वानल ५ सुप्रतिष्ठ ६ अचल ७ पुण्डरीक ८ अजितधर ९ जितनाभि १० पीठ ११ सात्यकी ।

१५९–चौबीस कामदेव ।

१ बाहुबली २ अमिततेज ३ श्रीधर ४ दशभद्र ५ प्रसेनजीत ६ चन्द्रवर्ण ७ अग्निमुक्ति ८ सनत्कुमार (चक्रवर्ती) ९ वत्सराज १० कनकप्रभु ११ सेघवर्ण १२ शांतिनाथ (तीर्थंकर) १३ कुंथुनाथ (तीर्थंकर) १४ अरहनाथ (तीर्थंकर) १५ विजयराज १६ श्रीचन्द्र १७ राजा नल १८ हनुमान १९ बलराजा २० वसुदेव २१ प्रद्युम्न २२ नागकुमार २३ श्रीपाल २४ जंबूस्वामी ।

१६०–चौदह कुलकर ।

१ प्रतिश्रुति २ सन्मति ३ क्षेमंकर ४ क्षेमंधर ५ सीमंकर ६ सीमंधर ७ विमलवाहन ८ चक्षुष्मान् ९ यशस्वी १० अभिचंद्र ११ चंद्राभ १२ मरुदेव १३ प्रसेनजित १४ नाभिराजा ।

१६१–बारह प्रसिद्ध पुरुष ।

१ नाभि २ श्रेयांस ३ बाहुबली ४ भरत ५ रामचन्द्र

६ हनुमान ७ सीता ८ रावण ९ कृष्ण १० महादेव ११ भीम १२ पार्श्वनाथ।

१६२—विदेहक्षेत्रके विद्यमान बीसतीर्थंकर।

१ सीमंधर २ युगमंधर ३ बाहु ४ सुबाहु ५ सुजात ६ स्वयंप्रभु ७ वृषभानन ८ अनंतवीर्य ९ सूरप्रभ १० विशालकीर्त्ति ११ वज्रधर १२ चंद्रानन १३ भद्रबाहु १४ भुजंगम १५ ईश्वर १६ नेमप्रभ (नमि) १७ वीरसेण १८ महाभद्र १९ देवयश २० अजितवीर्य।

१६३—चौदह गुणस्थान।

१ मिथ्यात्व २ सासादन ३ मिश्र ४ अविरत सम्यक्त्व ५ देशविरत ६ प्रमत्तविरत ७ अप्रमत्तविरत ८ अपूर्वकरण ९ अनिवृत्तिकरण १० सूक्ष्मसांपराय ११ उपशांतकषाय वा उपशांतमोह १२ क्षीणकषाय वा क्षीणमोह १३ सयोगकेवली १४ अयोगकेवली।

१६४— ग्यारह प्रतिमा।

१ दर्शनप्रतिमा २ व्रतप्रतिमा, ३ सामायिकप्रतिमा, ४ प्रोषधोपवासप्रतिमा, ५ सचित्तत्यागप्रतिमा, ६ रात्रिभुक्तित्यागप्रतिमा, ७ ब्रह्मचर्यप्रतिमा, ८ आरम्भत्यागप्रतिमा, ९ परिग्रहत्यागप्रतिमा, १० अनुमतित्यागप्रतिमा, ११ उद्दिष्टत्यागप्रतिमा।

१६५—श्रावकके १७ नियम।

१ भोजन, २ अचितवस्तु, ३ गृह, ४ संग्राम, ५ दिशा-

गमन, ६ औषधिविलेपन, ७ तांबूल, ८ पुष्पसुगन्ध, ९ नांच, १० गीतश्रवण, ११ स्नान, १२ ब्रह्मचर्य, १३ आभूषण, १४ वस्त्र, १५ शैय्या, १६ औषध खानी, १७ घोड़ा बैलादिककी सवारी।*

१६६—बाईस परीषह।

१ क्षुधापरीषह २ तृषा परीषह ३ शीतपरीषह ४ उष्णपरीषह ५ दंशमशकपरीषह ६ नग्नपरीषह ७ अरतिपरीषह ८ स्त्रीपरीषह ९ चर्यापरीषह १० निषद्यापरीषह, ११ शय्यापरीषह १२ आक्रोशपरीषह, १३ वधपरीषह, १४ याच्ञा परीषह, १५ अलाभपरीषह, १६ रोगपरीषह १७ तृणस्पर्शपरीषह, १८ मलपरीषह, १९ सत्कारपुरस्कार परीषह, २० प्रज्ञापरीषह २१ अज्ञानपरीषह २२ अदर्शन परीषह।

१६७—सप्त व्यसन।

दोहा—जूआ खेलन मांसमद, वेश्याविसन शिकार।
चोरी परस्मनीरमन, सातों व्यसन विसार॥

१६८—बाईस अभक्ष्य।

पांच उदम्बर—उदम्बर [गूलर], २ कठूम्बर ३ वड़फल, ४ पीपलफल, ५ पाकर फल [पिलखन फल]

तीन मकार १ मद्य २ मांस, ३ मधु,।

---

* नोट—प्रतिदिन जिन चीजोंकी जरूरत हो उसका प्रमाण करै कि आज यह करूंगा शेषका प्रतिदिन त्याग करै।

शेष १४ अभक्ष्य—ओला, विदल, रात्रिभोजन, वहुवीजा, वैगन, कन्दमूल, वगैर जाना फल, अचार, विष, माटी, वरफ तुच्छ फल, चलित रस, माखन।

१६९—दशलक्षण धर्म।

१ उत्तमक्षमा, २ मार्दव, ३ आर्जव, ४ सत्य, ५ शौच, ६ संयम, ७ तप, ८ त्याग, ९ अकिंचन १० ब्रह्मचर्य।

१७०—तीनप्रकारका लोक।

१ ऊर्ध्वलोक २ मध्यलोक ३ पाताललोक।

१७१—सात नरक।

१ धर्मा २ वंशा ३ मेघा ४ अंजना ५ अरिष्टा ६ मघवी ७ माघवी।

१७२—नरकोंके ४९ पटल।

पहले नरकमें १३ पटल, दूसरे नरकमें ११ पटल, तीसरे नरकमें ९ पटल, चौथे नरकमें ७ पटल, पांचवें नरकमें ५ पटल, छठे नरकमें ३ पटल, सातवें नरकमें १ पटल, इस प्रकार सातौ नरकोंमें ४९ पटल हैं।

१७३—नरकोंके ४९ इन्द्रकविल।

पहले नरकमें इन्द्रक विले १३, दूसरे नरकमें ११ तीसरे नरकमें ९ चौथे नरकमें ७ पांचवे नरकमें ५ छठेमें ३ सातवें नरकमें १, इस प्रकार सातौ नरकोंमें कुल ४९ इंद्रकविले हैं।

१७४–नरकोंके श्रेणिबद्ध बिलोंकी सख्या।

प्रथम नरकमें श्रेणीबद्ध बिले ४४२० दूसरे नरकमें २६८४ तीसरे नरकमें १४७६, चौथे नरकमें ७००, पांचवें नरकमें २६० छठे नरकमें ६० और सातवें नरकमें ४ ऐसे सातों नरकोंमें ९६०४ इन्द्रकबिले हैं।

१७५–नरकोंके प्रकीर्णक बिल।

प्रथम नरकमें प्रकीर्णक बिल २९,९५,५६७ दूजे नरकमें २४,९७,३०५ तीजे नरकमें ८४,९८,५१५ चौथे नरकमें ९,९९,२२३ पांचवें नरकमें २,९९,७३५ छठे नरकमें ९९,९७२ सातवें नरकमें नहीं है। इसप्रकार तिरासी ८३ लाख नब्बे ९० हजार तीन ३ सौ सैंतालीस ४७ प्रकीर्णक बिल हैं।

१७६–चारप्रकारका दुःख।

१ क्षेत्रजनित दुःख २ शरीरजनित दुःख ३ मानसिक दुःख ४ असुरकुमार देवोंकृत दुःख।

१७७–छयानवे कुभोगभूमि।

लवण समुद्रके दोनों किनारोंपर २४-२४ कुभोगभूमियां हैं, इसीप्रकार कालोदधि समुद्रके दोनों किनारोंपर २४-२४ कुभोगभूमियां हैं ऐसे कुल ९६ हुई।

१७८–पांच मंदरगिरि।

जम्बूद्वीपमें मन्दर [मेरु] गिरि १, धातकीखंडमें २ और पुष्करद्वीपमें २ इसतरह ५ मंदरगिरि हैं।

१७९—बीस यमकगिरि।

सीता नदीके पूर्व तटपर 'चित्र' नामा एक यमकगिरि है, पश्चिम तटपर 'विचित्र' नामा एक यमकगिरि है, सीतोदा नदीके पूर्व तटपर 'यमक' नामवाला एक यमगिरि है और पश्चिम तटपर 'मेघ' नामवाला एक यमकगिरि है, इसप्रकार एक मेरुसम्बन्धी चार यमगिरि हैं ऐसे पांचौ मेरुसम्बन्धी २० यमगिरि हैं।

१८०—एकसौ सरोवर।

देवकुरु भोगभूमिमें सरोवर ५, उत्तरकुरु भोगभूमिमें सरोवर ५, दोनों ओरके दोनों भद्रशाल वनोंमें ५-५ ऐसे एक मेरुसम्बन्धी २० और पांचों मेरुके १०० सरोवर हैं।

१८१—एक हजार कनकाचल

सीता और सीतोदा महानदियोंमें देवकुरु भोगभूमि और उत्तरकुरु भोगभूमिके २ क्षेत्र तथा इन ही सीता और सीतोदा महानदियोंमें पूर्व और पश्चिम भद्रशालके २ क्षेत्र, इन चारों क्षेत्रोंमें पांच पांच द्रह हैं, ऐसे इन बीस द्रहोंके किनारेपर पक्तिरूप पांच पांच कांचनगिरि हैं, ऐसे १ मेरुके २०० कांचनगिरि और पांचों मेरुके १००० कांचनगिरि हैं।

१८२—चालीस दिग्गज पर्वत।

पूर्व भद्रशालमें 'पद्मोत्तर' और 'नील' २ दिग्गज देवकुरु में 'सस्तिक' और 'अंजन' २ दिग्गज, पश्चिम भद्रशालमें कुमुद और पलाश २ दिग्गज, उत्तरकुरुमें अवतंश और

रोचन २ दिग्गज ऐसे एक मेरुसंबंधी आठ दिग्गज हैं। इसप्रकार ५ मेरुसम्बन्धी ४० दिग्गज हुए।

१८३–सौ वक्षार पर्वत।

१ माल्यवान २ महासौमनस ३ विद्युतप्रभ ४ गंधमादन ये चारों गजदन्त पर्वत मेरुकी ईशानादि चारों विदिशाओंमें हैं। १ चित्रकूट २ पद्मकूट ३ नलिन ४ एकशल ये चारों वक्षार पर्वत सीता नदीके उत्तर तटपर भद्रशालवेदीसे आगे क्रमसे हैं। १ त्रिकूट २ वैश्रवण ३ अंजनात्मा ४ अंजन ये चारों वक्षार पर्वत सीता नदीके दक्षिण तटपर देवारण्य वेदीसे आगे क्रमसे हैं। १ श्रद्धावान २ त्रिजयवान ३ आशीविष ४ सुखावह ये चारों वक्षार पर्वत पश्चिम विदेह सीतोदा नदीके दक्षिण तटपर भद्रशाल वेदीसे आगे क्रमसे हैं। १ चन्द्रमाल २ सूर्यमाल ३ नागमाल ४ देवमाल ये चारों वक्षार पर्वत पश्चिम विदेह सीतोदा नदीके उत्तर तटपर देवारण्य वेदीसे आगे क्रमसे हैं। ४ गजदन्त पर्वत, १६ वक्षार पर्वत मिलकर २० वक्षार हुवे, यह एक मेरुसंबन्धी हैं, पांचों मेरुके १०० हुए। इसतरह वक्षार पर्वत १०० हैं।

१८४–साठ विभंगानदी।

१ गाधवती २ द्रहवती ३ पंकवती यह तीनों नदी सीता नदीके उत्तरवाले वक्षार पर्वतोंके बीच बीचमें हैं। १ तप्तजला २ मत्तजला ३ उन्मत्तजला यह तीनों नदियां सीतानदीके

दक्षिण तटवाले वक्षार पर्वतके बीच बीचमें हैं। १ क्षारोदा २ सीतोदा ३ श्रोतोवाहिनी यह तीनों नदियां सीतोदानदी के दक्षिण तटवाले वक्षार पर्वतोंके बीच बीचमें हैं। १ गम्भीर-मालिनी २ फेनमालिनी ३ उर्मिमालिनी यह तीनों नदियां सीतोदानदीके उत्तर तटवाले वक्षार पर्वतोंके बीच बीचमें हैं। ये बारह विभंगानदी एक मेरुसम्बन्धी हैं, ऐसे पांचों मेरुसम्बन्धी विभंगादी ६० हैं॥

१८५-एकसौ आठ विदेहक्षेत्र।

१ कच्छा २ सुकच्छा ३महाकच्छा ४कच्छकावती ५ आवर्ता ६ लांगलावर्ता ७ पुष्कला ८ पुष्कलावती यह आठों विदेहक्षेत्र सीतानदीके उत्तर तटपर भद्रसाल वेदीसे आगे लगाकर क्रमसे जानना। १ वत्सा २ सुवत्सा ३ महावत्सा ४ वत्स-कावती ५ रम्या ६ सुरम्या ७ रमणीया ८ मंगलावती यह आठ विदेहक्षेत्र सीतानदीके दक्षिण तटपर देवारण्यकी वेदीके उरेसे लगाकर क्रमसे हैं। १ पद्मा २ सुपद्मा ३ महापद्मा ४ पद्मकावती ५ शंखा ६ नलिनी ७ कुमुदा ८ सरिता यह आठ विदेहक्षेत्र सीतोदानदीके दक्षिण तटपर भद्रसाल वेदीसे आगे क्रमपूर्वक जानना। १ वप्रा २ सुवप्रा ३ महावप्रा ४ वप्रकावती ५ गन्धा ६ सुगन्धा ७ गन्धिला ८ गन्ध-मालिनी यह आठ विदेहक्षेत्र सीतोदानदीके उत्तरतटपर देवारण्यवेदीके उरेसे लगाय क्रमसे हैं। यह सब बत्तीस देश विदेहके एक मेरुसंबन्धी हैं, पांचोंमेरुके १६० विदेहक्षेत्र हैं।

१८६–पन्द्रह कर्मभूमि।

पांचों भरतक्षेत्रोंमें ५ कर्मभूमि, पांचों ऐरावत क्षेत्रोंमें ५ कर्मभूमि, देवकुरु और उत्तरकुरुक्षेत्रको छोड़कर विदेहक्षेत्रों में ५ कर्मभूमि, ऐसे कर्मभूमि १५ हैं।

१८७–तीस भोगभूमि।

देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रोंमें उत्तम भोगभूमि २, हरि और रम्यकक्षेत्रोंमें मध्यम भोगभूमि २, हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्रोंमें जघन्य भोगभूमि २ ऐसे एक मेरु सम्बन्धी ६ भोगभूमि हैं, पांचों मेरुकी ३० भोगभूमि हैं।

१८८–चौंतीस वर्षधर पर्वत।

१ हिमवान २ महाहिमवान ३ निषध ४ नील ५ रुक्मी ६ शिखरी यह छह कुलाचल एक मेरुके हैं, ऐसे पाचों मेरुके ३० हुए और धातकीखण्डके दक्षिण और उत्तरमें इष्वाकार पर्वत २ और पुष्करार्द्धद्वीपके दक्षिण उत्तरमें इष्वाकार पर्वत २ इसप्रकार सब मिलकर वर्षधर पर्वत ३४ हैं

१८९–मेरुके तीस सरोवर।

१ पद्म २ महापद्म ३ तिगिंछ ४ केसरी ५ पुण्डरीक ६ महापुण्डरीक यह एक मेरुसम्बन्धी छै सरोवर हैं, इस-तरह पांचों मेरुके सरोवर ३० हैं।

१९०–सत्तर महानदी।

१ गंगा २ सिंधु ३ रोहित ४ रोहितास्या ५ हरित ६

हरिकान्ता ७ सीता ८ सीतोदा ९ नारी १० नरकांता ११ स्वर्णकूला १२ रूप्यकूला १३ रक्ता १४ रक्तोदा यह १४ महानदी एक मेरुसंबंधी हैं, पांचों मेरुकी ७० महानदी हैं।

१९१—बीस नाभिगिरि।

१ श्रद्धावान २ विजयवान ३ पद्मवान ४ गन्धवान यह यह एक मेरुसंबन्धी ४ नाभिगिरि हैं, पांचों मेरुके २० नाभिगिरि हैं।

१९२—एकसौ सत्तर विजयार्ध पर्वत।

१६० विजार्ध पर्वत तो १६० विदेहक्षेत्रमें और ५ भरतक्षेत्रमें, ५ ऐरावतक्षेत्रमें इसतरह विजयार्ध पर्वत १७० हैं।

१९३—एकसौ सत्तर वृषभगिरि पर्वत।

१६० वृषभगिरि तो विदेहक्षेत्रोंमें, ५ भरतक्षेत्रमें और ५ ऐरावतक्षेत्रमें ऐसे वृषभगिरि १७० हैं।

१९४—चौबीस लौकांतिक देव।

१ सारस्वत २ आदित्य ३ वह्नि ४ अरुण ५ गर्दतोय ६ तुषित ७ अव्याबाध ८ अरिष्ट ९ अग्न्याभ १० सूर्याभ ११ चन्द्राभ १२ सत्याभ १३ श्रेयस्कर १४ क्षेमंकर १५ वृषभेष्ट १६ कामचर १७ निर्माणरज १८ दिगंतरक्षित १९ आत्मरक्षित २० सर्वरक्षित २१ मरुत २२ वसु २३ अश्व २४ विश्व।

१९५–आठ ऋद्धि।

१ अणिमा २ महिमा ३ लघिमा ४ गरिमा ५ प्राप्ति ६ प्राकाम्य ७ ईशत्व ८ वशित्व।

१९६–पांच लब्धि।

१ क्षायोपशम लब्धि २ विशुद्धलब्धि ३ देशनालब्धि ४ प्रायोग्यलब्धि ५ करणलब्धि।

१९७–दशप्रकारका सम्यग्दर्शन।

१ आज्ञा सम्यक्त्व २ मार्ग सम्यक्त्व ३ बीज सम्यक्त्व ४ उपदेश सम्यक्त्व ५ सूत्र सम्यक्त्व ६ संक्षेप सम्यक्त्व ७ विस्तार सम्यक्त्व ८ अर्थ सम्यक्त्व ९ अवगाढ-सम्यक्त्व १० परमावगाढ़ सम्यक्त्व।

१९८–सात मौनसमय।

१ भोजन समय २ मैथुन समय ३ वमन समय ४ स्नान समय ५ मलमोचन समय ६ सामायिक समय ७ पूजन समय।

१९९–भोजनके सात अन्तराय।

१ हड्डी २ मांस ३ पीव (राध) ४ रक्त ५ गीला चमड़ा ६ विष्टा ७ मराहुआ प्राणी इनके दृष्टिगोचर होनेसे श्रावकको भोजनका त्याग करना चाहिये।

२००–पांचप्रकारके ब्रह्मचारी।

१ उपनयन २ अदीक्षित ३ अवलंब ४ गूढ़ ५ नैष्ठिक।

२०१–छः आर्यकर्म।

१ इज्या २ वार्ता ३ दत्ति ४ संयम ५ स्वाध्याय ६ तप।

२०२–दश पूजा।

१ अर्हन्तपूजा २ सिद्धपूजा ३ आचार्यपूजा ४ उपाध्यायपूजा ५ सर्वसाधुपूजा ६ जिनबिम्बपूजा ७ शास्त्रपूजा ८ जिनवाणीपूजा ९ सम्यग्दर्शनपूजा १० दशलक्षणधर्मपूजा।

२०३–चारप्रकारके ऋषि।

१ राजर्षि २ ब्रह्मर्षि ३ देवर्षि ४ परमर्षि।

२०४–बारह अनुप्रेक्षा।

१ अध्रुवानुप्रेक्षा २ अशरणानुप्रेक्षा ३ संसारानुप्रेक्षा ४ एकत्वानुप्रेक्षा ५ अनेकत्वानुप्रेक्षा ६ अशुचित्वानुप्रेक्षा ७ आस्रवानुप्रेक्षा ८ संवरानुप्रेक्षा ९ निर्जरानुप्रेक्षा १० लोकानुप्रेक्षा ११ बोधदुर्लभानुप्रेक्षा १२ धर्मानुप्रेक्षा।

२०५–दशप्रकारका प्रायश्चित्त।

१ आलोचना २ प्रतिक्रमण ३ उभय ४ विवेक ५ व्युत्सर्ग ६ तप ७ छेद ८ परिहार ९ उपस्थापन १० मूल ऐसे दश प्रायश्चित्त हैं।

२०६–बारहप्रकारका तप।

१ अनशन २ अवमौदर्य ३ व्रतपरिसंख्यान ४ रसपरित्याग ५ विविक्तशय्यासन ६ कायक्लेश ऐसे ६ बाह्य-तप हैं और १ प्रायश्चित २ विनय ३ वैय्यावृत्य ४ स्वा-

ध्याय ५ व्युतसर्ग ६ ध्यान ऐसे ६ आभ्यन्तर तप, सब मिलकर वारहप्रकार हैं।

२०७–पांचप्रकारका स्वाध्याय।

१ वाचना २ पृच्छना ३ अनुप्रेक्षा ४ आम्नाय ५ धर्मोपदेश इसप्रकार स्वाध्याय ५ पांचप्रकार है।

२०८–दशप्रकारका धर्मध्यान।

१ अपायविचय २ उपायविचय ३ जीवविचय ४ अजीवविचय ५ विपाकविचय ६ विरागविचय ७ भवविचय ८ संस्थानविचय ९ आज्ञाविचय १० हेतुविचय ऐसे धर्म्यध्यान १० प्रकार है।

२०९–सात परमस्थान।

१ सज्जाति २ सद्‌गृहीत्व ३ परिव्राज्य ४ सुरेन्द्रता ५ साम्राज्य ६ परमार्हन्त्य ७ परिनिर्वाण।

२१०–ग्यारहप्रकारकी निर्जरा।

१ सातिशयमिथ्यादृष्टि २ सम्यग्दृष्टि ३ श्रावक ४ विरत (मुनि) ५ अनंतवियोजक ६ दर्शनमोहक्षपक ७ उपशमक ८ उपशांतमोह ९ क्षपक १० क्षीणमोह ११ जिन इसतरह निर्जराके स्थान ११ हैं॥

२११ मतिज्ञानके ३३६ भेद।

मतिज्ञान ४ प्रकार १ अवग्रह २ ईहा ३ अवाय ४ धारणा। मतिज्ञान विषयक पदार्थ १२–१ वहु २ अल्प ३ वहुविध

४ एकविध ५ क्षिप्र ६ अक्षिप्र ७ निःसृत ८ अनिःसृत ९ उक्त १० अनुक्त ११ ध्रुव १२ अध्रुव। यह पदार्थ व्यक्त-रूप हैं जिसे अर्थावग्रह कहते हैं और यही पदार्थ अव्यक्त-रूप हैं जिसे व्यंजनावग्रह कहते हैं। अर्थावग्रहका ज्ञान पांचों इन्द्री और छठे मनसे होता है। व्यंजनावग्रहका ज्ञान मन और नेत्रके सिवा चारों इन्द्रीसे होता है इसकारण अर्थावग्रहके भेद $=४\times१२\times६=२८८$ और व्यंजनावग्रहके भेद $१\times१२\times४=४८$ इसप्रकार $२८८+४८=३३६$ कुल भेद हैं।

२१२—मोक्षशास्त्रम्।

(आचार्य श्रीमदुमास्वामिविरचितम्)

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्गः॥१॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्॥२॥ तन्निसर्गादधिगमाद्वा॥३॥ जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्॥४॥ नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः॥५॥ प्रमाणनयैरधिगमः॥६॥ निर्देशस्वामित्वसाधनाऽधिकरणस्थितिविधानतः॥७॥ सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च॥८॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम्॥९॥ तत्प्रमाणे॥१०॥ आद्ये परोक्षम्॥११॥ प्रत्यक्षमन्यत्॥१२॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्॥१३॥ तदिंद्रियानिन्द्रियनिमित्तम्॥१४॥ अवग्रहेहाऽवायधारणाः॥१५॥ बहुबहु-

विधक्षिप्राऽनिःसृताऽनुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥१६॥ अर्थस्य ॥१७॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥१८॥ न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥१९॥ श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥२०॥ भवप्रत्ययोऽवधि-र्देवनारकाणाम् ॥२१॥ क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥ ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥२३॥ विशुद्ध्य-प्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥२४॥ विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्यो-ऽवधिमनःपर्यययोः ॥२५॥ मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वप-र्यायेषु ॥२६॥ रूपिष्ववधेः ॥२७॥ तदनन्तभागे मनःपर्य-यस्य ॥२८॥ सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥२९॥ एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥३०॥ मतिश्रुतावधयो-विपर्ययश्च ॥३१॥ सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥३२॥ नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूतानयाः ॥

ज्ञानदर्शनयोस्तत्त्वं नयानां चैव लक्षणम् ।
ज्ञानस्य च प्रमाणत्वमध्यायेऽस्मिन्निरूपितम् ॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ।

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौ-दयिकपारिणामिकौ च ॥१॥ द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥ सम्यक्त्वचारित्रे ॥३॥ ज्ञानदर्शनदानला-भभोगोपभोगवीर्याणि च ॥४॥ ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतु-स्त्रित्रिपंचभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥५॥ गति-कषायलिंगमिथ्यादर्शनाऽज्ञानासंयताऽसिद्धलेश्याश्चतुश्चतु-स्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥६॥ जीवभव्याऽभव्यत्वानि च ॥७॥

उपयोगो लक्षणम् ॥८॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥९॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥१०॥ समनस्काऽमनस्काः ॥११॥ संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥१४॥ पञ्चेन्द्रियाणि ॥१५॥ द्विविधानि ॥१६॥ निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥१७॥ लब्ध्युपयोगो भावेन्द्रियम् ॥१८॥ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुश्रोत्राणि ॥१९॥ स्पर्शरसगंधवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥२०॥ श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥२१॥ वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥२२॥ कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥२३॥ संज्ञिनः समनस्काः ॥२४॥ विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥२५॥ अनुश्रेणि गतिः ॥२६॥ अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥२८॥ एकसमयाऽविग्रहा ॥२९॥ एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः ॥३०॥ सम्मूर्छनगर्भोपपादाज्जन्म ॥३१॥ सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥ जरायुजांडजपोतानां गर्भः ॥३३॥ देवनारकाणामुपपादः ॥३४॥ शेषाणां सम्मूर्छनं ॥३५॥ औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ॥३६॥ परं परं सूक्ष्मं ॥३७॥ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥३८॥ अनंतगुणे परे ॥३९॥ अप्रतीघाते ॥४०॥ अनादिसंबंधे च ॥४१॥ सर्वस्य ॥४२॥ तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३ निरुपभोगमंत्यं ॥४४॥ गर्भसंमूर्छनजमाद्यं ॥४५॥ औपपादिकं वैक्रियिकं ॥४६॥ लब्धिप्रत्ययं च ॥४७॥ तैजसमपि ॥४८॥

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥४९॥ नारकसंमूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥ न देवाः ॥५१॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥५२॥ औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥५३॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

रत्नशर्करावालुकापंकधूमतमोमहातमःप्रभा भूमयो घनांबुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः ॥१॥ तासु त्रिंशत्पंचविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैकनरकशतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमं ॥२॥ नारका नित्याऽशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥३॥ परस्परोदीरितदुःखाः ॥४॥ संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥५॥ तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदश द्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्वानां परा स्थितिः ॥६॥ जंबूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥७॥ द्विर्द्विर्विष्कंभाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥८॥ तन्मध्यमेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कंभो जंबूद्वीपः॥९॥भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाःक्षेत्राणि ॥ १० ॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः॥११॥हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥१२॥ मणिविचित्रपार्श्वा उपरिमूले च तुल्यविस्ताराः ॥ १३ ॥ पद्ममहापद्मतिगिंछकेशरिमहापुंडरीकपुंडरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥१४॥ प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कंभो ह्रदः ॥१५॥ दशयोजनावगाहः ॥ १६ ॥

तन्मध्ये योजनं पुष्करं ॥ १७ ॥ तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥ तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः ॥१९॥ गंगासिंधुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकांतासीतासीतोदानारीनरकांतासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१॥ शेषास्त्वपरगाः ॥ २२ ॥ चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गंगासिंध्वदयो नद्यः ॥ २३ ॥ भरतः षड्विंशतिपंचयोजनशतविस्तारः षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥२४॥ तद्द्विगुण द्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहहांताः ॥२५॥ उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥२६॥ भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्यां ॥२७॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थताः ॥ २८ ॥ एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥२९॥ तथोत्तराः ॥३०॥ विदेहेषु संख्येयकालाः ॥३१॥ भरतस्य विष्कंभो जंबूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥३२॥ द्विर्धातकीखंडे ॥३३॥ पुष्करार्द्धे च ॥३४॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्यः ॥३५॥ आर्याम्लेच्छाश्च ॥३६॥ भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः । ॥३७॥ नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमांतर्मूहूर्ते ॥३८॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥३९॥

इति तत्त्वार्थधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥ १ ॥ आदितस्त्रिषु पीतांतलेश्याः ॥२॥

दशाष्टपंचद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यंताः ॥३॥ इंद्रसामानिकत्रायस्त्रिंशत्पारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ॥४॥ त्रायस्त्रिंशल्लोकपालवर्ज्या व्यंतरज्योतिष्काः ॥५॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥६॥ कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥ ७ ॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥ परेऽप्रवीचाराः ।९॥ भवनवासिनोसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः॥१०॥व्यंतराः किन्नरकिंपुरुषमहोरगगंधर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥ ११ ॥ ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके॥ तत्कृतः कालविभागः ॥ वहिरवस्थिताः ॥१५॥ वैमानिकाः ॥ १६ ॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥ उपर्युपरि ॥ सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलांतवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयंतजयंतापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ १९ ॥ स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्या विशुद्धींद्रियावधिविषयतोधिकाः ॥ गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥ पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥२२॥ प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥२३॥ ब्रह्मलोकालया लौकांतिकाः ॥२४॥ सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥२५॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥२६॥ औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥ स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपम-त्रिपल्योपमार्ध

हीनमिताः ॥२८॥सौधर्मैशानयोर्सागरोपमेऽधिके ॥२९॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त॥ ३०॥ त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपंचदशभिरधिकानि तु ॥३१॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥३२॥ अपरा पल्योपममधिकं ॥३३॥ परतः परतः पूर्वापूर्वानंतराः ॥३४॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥३५॥ दशवर्षसहस्राणि प्रथमायां ॥३६॥ भवनेषु च ॥३७॥ व्यंतराणां च ॥४०॥ तदष्टभागोऽपरा ॥४१॥ लौकांतिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषां ॥४२॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥१॥ द्रव्याणि ॥२॥ जीवाश्च ॥३॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥ आआकाशादेकद्रव्याणि॥६॥निष्क्रियाणि च॥ असंख्येयाः प्रदेशाधर्माधर्मैकजीवानां ॥८॥ आकाशस्यानंताः ॥ संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानां ॥१०॥ नाणोः ॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥ धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानां॥१४॥असंख्येयेभागादिषु जीवानां॥प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥१६॥ गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥१७॥ आकाशस्यावगाहः ॥१८॥ शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानां॥१९॥ सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥२०॥ परस्परोपग्रहो जीवानां ॥२१॥ वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य ॥२२॥ स्पर्शरसगंधवर्णवंतः पुद्गलाः॥२३॥शब्दबंधसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतम-

श्छायातपोद्योतवंतश्च ॥२४॥ अणवस्कन्धाश्च ॥ भेदसंघा-तेभ्य उत्पद्यंते ॥भेदादणुः ॥ भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥२८॥ सद्द्रव्यलक्षणं ॥२९॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ तद्भावा-व्ययं नित्यं ॥३१॥ अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥३२॥ स्निग्धरूक्ष-त्वाद्बन्धः ॥ ३३ ॥ न जघन्यगुणानां ॥ ३४ ॥ गुणसाम्ये सदृशानां ॥ ३५ ॥ द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥ ३६ ॥ बंधेऽ-धिकौपारिणामिकौ च ॥ ३७ ॥ गुणपर्ययवद्द्रव्यं ॥ ३८ ॥ कालश्च ॥ ३९ ॥ सोऽनंतसमयः ॥ ४० ॥ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥ ४१ ॥ तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

कायवाङ्मनःकर्म योगः ॥ १ ॥ स आस्रवः ॥ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ सकषायाकषाययोः सांपरायिकेर्या-पथयोः ॥ इंद्रियकषायव्रतक्रियाः पंचचतुःपंचपंचविंश-तिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥५॥ तीव्रमंदज्ञाताज्ञातभावाधि-करणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥ ६ ॥ अधिकरणं जीवा-जीवाः ॥ ७ ॥ आद्यं संरंभसमारंभारंभयोगकृतकारितानुम-तकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥ ८ ॥ निर्वर्तनानि-क्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परं ॥ ९ ॥ तत्प्रदोष-निह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावर्णयोः ॥ दुःखशोकतापाक्रंदनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थानान्य-सद्वेद्यस्य ॥११॥ भूतव्रत्यनुकंपादानसरागसंयमादियोगः क्षांतिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥ १२ ॥ केवलिश्रुतसंघधर्मदे-

वावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥१३॥ कषायोदयात्तीव्रपरिणा-श्चारित्रमोहस्य ॥१४॥ बह्वारंभपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥ माया तैर्यग्योनस्य ॥१६॥ अल्पारंभपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥ स्वभावमार्दवं च ॥१८॥ निःशीलव्रतित्वं च सर्वेषां ॥ १९ ॥ सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबाल-तपांसि दैवस्य ॥२०॥ सम्यक्त्वं च ॥ २१ ॥ योगवक्रता-विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥ २२ ॥ तद्विपरीतं शुभस्य ॥ २३ ॥ दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नता शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिमार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥ परात्मनिंदाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥२५॥ तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥ विघ्नकरणमंतरायस्य ॥२७॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतं ॥१॥ देशसर्वतोऽणुमहती तत्स्थैर्यार्थं भावना पंच पंच ॥ ३ ॥ वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पंच ॥४॥ क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचीभाषणं च पंच ॥ ५ ॥ शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसद्धर्माविसंवादाः पंच ॥ ६ ॥ स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसं-

स्कारत्यागाः पंच ॥ ७ ॥ मनोज्ञामनोज्ञेंद्रियविषयरागद्वेष-
वर्जनानि पंच ॥८॥ हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनं ॥९॥
दुःखमेव वा ॥ १० ॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि
च सत्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनियेषु ॥ ११ ॥ जगत्का-
यस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थं ॥ १२ ॥ प्रमत्तयोगा-
त्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥१३॥ असदभिधानमनृतं ॥ १४ ॥
अदत्तानानं स्तेयं ॥१५॥ मैथुनमब्रह्म ॥१६॥ मूर्छा परिग्रहः
॥१७॥ निःशल्यो व्रती ॥१८॥ आगार्यनगारश्च ॥ १९ ॥
अणुव्रतोऽगारी ॥२०॥ दिग्देशानर्थदंडविरतिसामायिक-
प्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसं-
पनश्च ॥२१॥ मारणांतिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥२२॥
शंकाकांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेर-
तीचाराः ॥२३॥ व्रतशीलेषु पंच पंच यथाक्रमं ॥२४॥ बंध-
वधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥२५॥ मिथ्योपदे-
शरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमंत्रभेदाः॥
स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानो-
न्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ॥ २७ ॥ परविवाहकरणेत्वरि-
कापरिगृहीतापरिगृहीतागमनानंगक्रीडाकामतीव्राभिनिवे-
शाः ॥२८॥ क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्य-
प्रमाणातिक्रमाः ॥२९॥ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धि-
स्मृत्यंतराधानानि ॥३०॥ आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानु-
पातपुद्गलक्षेपाः ॥ ३१ ॥ कंदर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्या-

धिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥३२॥ योगदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥३३॥ अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥३४॥ सचित्तसंबंधसंमिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥३५॥ सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमः ॥३६॥ जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबंधनिदानानि ॥ ३७ ॥ अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानं ॥ ३८ ॥ विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥३९॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बंधहेतवः ॥ १ ॥ सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बंधः ॥२॥ प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥ ३ ॥ आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रांतरायाः ॥४॥ पंचनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपंचभेदाः यथाक्रमं ॥५॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानां ॥६॥ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥७॥ सदसद्वेद्ये ॥८॥ दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपुंसकवेदा अनन्तानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥९॥ नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥ १० ॥ गतिजातिशरीरांगोपांगनि-

मीणबंधनसंघातसंस्थानसंहननस्पर्शरसगंधवर्णानुपूर्व्यगुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्तिसेतराणि तीर्थंकरत्वंच ॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥ दानलाभभोगोपभोगवीर्याणां ॥ आदितस्तिसृणामंतरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥ सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥१५॥ विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥१६। त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ अपरा द्वादशमहूर्ता वेदनीयस्य ॥१८॥ नामगोत्रयोरष्टौ ॥१९॥ शेषाणामंतर्मुहूर्त्ता ॥२०॥ विपाकोनुभवः ॥२१॥ स यथानाम ॥२२॥ ततश्च निर्जरा ॥२३॥ नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनंतानंतप्रदेशाः ॥२४॥ सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यं ॥ २५ ॥ अतोऽन्यत्पापं ॥२६॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रेऽष्टमोध्यायः ॥८॥

आस्रवनिरोधः संवरः ॥१॥ स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ॥२॥ तपसा निर्जरा च ॥३॥ सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥ ईर्याभाषैणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥५॥ उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्माः ॥६॥ अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिंतनमनुप्रेक्षाः ॥७॥ मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ॥८॥ क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्री-

चर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाच्ञालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥ ९ ॥ सूक्ष्मसांपरायच्छद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥१०॥ एकादश जिने ॥११॥ बादरसांपराये सर्वे ॥१२॥ ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥ दर्शनमोहांतराययोरदर्शनालाभौ ॥१४॥ चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाच्ञासत्कारपुरस्काराः ॥१५॥ वेदनीये शेषाः ॥१६॥ एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नेकोनविंशतिः ॥१७॥ सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातमिति चारित्रं ॥१८॥ अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥१९॥ प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरं॥२०॥ नवचतुर्दशपंचद्विभेदायथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥२१॥ आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः ॥२२॥ ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥ २३ ॥ आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानां॥२४॥ वाचनाप्रच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ॥२५॥ बाह्याभ्यंतरोपध्योः ॥२६॥ उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानमांतर्मुहूर्तात् ॥२७॥ आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥२८॥ परे मोक्षहेतू ॥२९॥ आर्त्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ॥३०॥ विपरीतं मनोज्ञस्य ॥३१॥ वेदनायाश्च ॥३२॥ निदानं च ॥३३॥ तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानां ॥३४॥ हिंसानृस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविर-

तयोः ॥३५॥ आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यं ॥ शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥३७॥ परे केवलिनः ॥३८॥ पृथक्त्वैकत्व-वितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्तीनि ॥ ३९ ॥ त्र्येकयोगकाययोगायोगानां ॥४०॥ एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥४१॥ अवीचारं द्वितीयं ॥४२॥ वितर्कः श्रुतं ॥४३॥ वीचारोर्थव्यंजनयोगसंक्रांतिः ॥४४॥ सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानंतवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशांतमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥४५॥ पुलाकवकुशकुशीलनिर्ग्रंथस्नातका निर्ग्रंथाः ॥४६॥ संयमश्रुतप्रतिसेनातीर्थलिंगलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥४७॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणांतरायक्षयाच्च केवलं ॥१॥ बंधहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥२॥ औपशमिकादिभव्यत्वानां च ॥३। अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥ ४ ॥ तदनंतरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकांतात् ॥ ५ ॥ पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥६॥ आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालांबुवदेरंडबीजदग्निशिखावच्च ॥७॥ धर्मास्तिकायाभावात् ॥ ८ ॥ क्षेत्र कालगतिलिंगतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनांतरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥९॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यजनसंधिविवर्जितरेफं। साधुभिरत्र

मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥१॥ दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति। फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुंगवैः ॥२॥ तत्त्वार्थसूत्रकर्त्तारं गृध्रपिच्छोपलक्षितं। वंदे गणींद्रसंयातमुमास्वामिमुनीश्वरं ॥३॥

इति तत्त्वार्थसूत्रापरनाम तत्त्वार्थाधिगममोक्षशास्त्रं समाप्तं ॥

२१३–छहढाला।

सोरठा–तीन भुवनमें सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार नमौं त्रियोग सम्हारिकैं ॥१॥

पहिली ढाल। चौपाई (१५ मात्रा)

जे त्रिभुवनमें जीव अनंत। सुख चाहैं दुखतैं भयवंत ॥ तातैं दुखहारी सुखकारि। कहैं सीख गुरु करुणा धारि ॥२॥ ताहि सुनो भवि मन थिर आन। जो चाहो अपनो कल्यान॥ मोह महामद पियो अनादि। भूलि आपको भरमत वादि ॥३॥ तास भ्रमनकी है बहु कथा। पै कछु कहूं कही मुनि जथा ॥ काल अनंत निगोदमझार। बीत्यो एकेंद्रिय-तन धार ॥४॥ एक स्वासमें अठदश बार। जन्म्यो मरयो भरयो दुख भार ॥ निकसि भूमि जल पावक भयो। पवन प्रतेक वनस्पति थयो ॥५॥ दुर्लभ लहि ज्यों चिंतामणी। त्यों परजाय लही त्रसतणी ॥ लटपिपीलि अलि आदि शरीर। धरधर मरयो सही बहु पीर ॥६॥ कबहूं पंचेंद्रिय पशु भयो। मन-विन निपट अज्ञानी थयो॥ सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर। निबल

पशू हति खाये भूर ॥७॥ कबहूं आप भयो बलहीन। सबल-निकरि खायो अतिदीन ॥ छेदन भेदन भूखपियास। भार-वहन हिम आतप त्रास ॥८॥ वध बंधन आदिकदुख घने। कोटि जीभतैं जात न भने ॥ अतिसंक्लेश भावतैं मरयो। घोर शुभ्रसागरमें परयो ॥९॥ तहां भूमि परसत दुख इस्यो वीछू सहस डसैं तन तिस्यो ॥ तहां राधशोणितवाहिनी। कृमिकुलकलित देह-दाहिनी ॥१०॥ सेमरतरुजुत दलअसि-पत्र। असि ज्यों देह विदारैं तत्र ॥ मेरुसमान लोह गलि-जाय। ऐसी शीत उष्णता थाय ॥११॥ तिलतिल करहिं देहके खंड। असुर भिडावैं दुष्टप्रचंड ॥ सिंधुनीरतै प्यास न जाय। तौ पण एक न बूंद लहाय ॥१२॥ तीनलोकको नाज जु खाय। मिटै न भूख कणा न लहाय ॥ ये दुख बहु सा-गरलौं सहै। कर्मजोगतैं नरतन लहै ॥१३॥ जननी उदर वस्यो नवमास। अंग सकुचतैं पाई त्रास ॥ निकसत जे दुख पाये घोर। तिनको कहत न आवै ओर ॥१४॥ बालपनेमें ज्ञान न लह्यो। तरुणसमय तरुणीरत रह्यो ॥ अर्धमृतकसम बूढ़ापनो। कैसें रूप लखै आपनो ॥१५॥ कभी अकामनि-र्जरा करै। भवनत्रिकमें सुरतन धरै ॥ विषय चाह दावालन दह्यो। मरत विलाप करत दुख सह्यो ॥१६॥ जो विमानवासी हू थाय। सम्यकदर्शन विन दुख पाय॥ तहँतैं चय थावर-तन धरै। यों परिवर्तन पूरे करै ॥१७॥

दूसरी ढाल। पद्धरि छंद।

ऐसैं मिथ्या दृगज्ञानचरन। वश भ्रमत भरत दुख जन्म-

मरण ॥ तातैं इनको तजिये सुजान । सुन तिन संछेप कहूं बखान ॥१॥ जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व । सरधै तिनमाहिं विपर्ययत्व ॥ चेतनको है उपयोगरूप । विन मूरति चिन-मूरति अनूप ॥ पुदगल नभ धर्म अधर्मकाल । इनतै न्यारी है जीवचाल ॥ ताकों न जान विपरीत मान । करि, करै देहमें निज पिछान ॥३॥ मैं सुखी दुखी मैं रंक राव । मेरो धन गृह गोधन प्रभाव ॥ मेरे सुत तिय मैं सबल दीन । बे रूप सुभग मूरख प्रवीन ॥४॥ तन उपजत अपनी उपज जानि । तन नशत आपको नाश मान ॥ रागादि प्रगट जे दुःखदैन । तिनहीको सेवत गिनहि चैन ॥ शुभअशुभबंधके फलमंझार । रति रति करै निजपद विसार ॥ आतमहितहेतु विराग ज्ञान । ते लख आपको कष्टदान ॥ ६ ॥ रोकी न चाह निजशक्ति खोय । शिवरूप निराकुलता न जोय । याही प्रतीतजुत कछुक ज्ञान । सो दुखदायक अज्ञान जान ॥ ७ ॥ इनजुत विषयनिमें जो प्रवृत्त । ताको जानो मिथ्याचरित्त ॥ या मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह । अब जे गृहीत सुनिये सु तेह ॥ जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव । पोषैं चिर दर्शन मोह एव ॥ अंतररागादिक धरैं जेह । बाहर धन अन्तरतैं सनेह ॥९॥ धारैं कुलिंग लहि महतभाव । ते कुगुरु जनमजल उपलनाव । जे रागरोषमलकरि मलीन । बनिताग-दादिजुत चिन्हचीन ॥ १० ॥ ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव । शठ करत न तिन भवभ्रमनछेव ॥ रागादिभाव हिंसा

समेत। दर्वित त्रसथावर मरनखेत ॥११॥ जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म। तिन सरधै जीव लहै अशर्म॥ याकौं गृहीतमिथ्यात जान। अब सुन गृहीत जो है कुज्ञान ॥ १२ ॥ एकांतवाद दूषित समस्त। विषयादिकपोषक अप्रशस्त॥ कपिलादिरचित श्रुतको अभ्यास। सो है कुबोध बहु देन त्रास ॥१३॥ जो ख्यातिलाभ पूजादि चाह। धरि करत विविधविध देहदाह। आतम अनात्मके ज्ञानहीन। जे जे करनी तनकरनछीन ॥१४॥ ते सब मिथ्याचारित्र त्यागि। अब आतमके हितपंथ लागि॥ जगजालभ्रमनको देय त्यागि। अब दौलत, निज आतम सुपागि ॥ १५॥

तीसरी ढाल। नरेंद्रछंद (जोगीरासा)

आतमको हित है सुख सो सुख आकुलता विन कहिये। आकुलता शिवमाहिं न तातै, शिवमग लायो चहिये। सम्यकदर्शन ज्ञान चरन शिव,-मग सो दुविध विचारो। जो सत्यारथरूप सु निश्चय, कारन सो व्यवहारो॥१॥ परद्रव्यनितैं भिन्न आपमें रुचि, सम्यक्त भला है। आप रूपको जानपनो, सो सम्यकज्ञानकला है॥ आपरूपमें लीन रहै थिर, सम्यकचारित सोई। अब व्यवहार मोखमग सुनिये, हेतु नियतको होई॥ २॥ जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बंध रु संवर जानो। निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्योंको त्यों सरधनो॥ है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो। तिनको सुनि सामान्यविशेषै, दृढ़ प्रतीत उर आनौ

॥३॥ बहिरातम अंतरआतम परमातम जीव त्रिधा है। देह जीवको एक गिनै, बहिरातमतत्त्व मुधा है ॥ उत्तम मध्यम जघन त्रिविधिके अंतरआतमज्ञानी। द्विविध संगविन शुध-उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी॥ मध्यम अंतर आतम हैं जे, देशव्रती आगारी। जघन कहे अविरतसमदृष्टी तीनों शिवमगचारी॥ सकल निकल परमातम द्वैविध तिनमें घाति निवारी। श्रीअरहंत सकल परमातम लोकालोकनिहारी ।५। ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्ममल-वर्जित सिद्ध महंता। ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनंता॥ बहिरातमता हेय जानि तजि,अंतरआतम हूजै। परमातमको ध्याय निरंतर, जो नित आनँद पूजै ॥६॥ चेतनता विन सो अजीव हैं, पंच भेद ताके हैं। पुदगल पंच वरन, रसपन गंध, दु फरस वसु जाके हैं ॥ जिय पुद्गलको चलन सहाई, धर्म-द्रव्य अनरूपी। तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन विनमूर्ति निरूपी ॥७॥ सकल द्रव्यको वास जासमैं, सो अकाश पिछानों। नियत वरतना निशिदिन सो व्यवहारकाल परिमानो। यौं अजीव अब आस्रव सुनिये, मनवचकाय त्रियोगा। मिथ्या अविरत अरु कषायपरमादसहित उपयोगा॥ ये ही आतमके दुखकारन, तातैं इनको तजिये। जीवप्रदेश बँधे विधिसों सो बंधन कबहुं न सजिये ॥ शमदमसों जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये। तपबलतै विधिझरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये ॥९॥ सकल करमतैं रहित

अवस्था, सो शिव थिरसुखकारी। इहिविधि जो सरधा तत्त्वनकी, सो समकित व्योहारी॥ देव जिनेंद्र गुरू परिग्रह विन, धर्म दयाजुत सारो। यहू मान समकितको कारन, अष्टअंगजुत धारो॥१०॥ वसुमद टारि निवारि त्रिशठता, षट अनायतन त्यागो। शंकादिक वसुदोष विना, संवेगादिक चित पागो। अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, अव संक्षेपहु कहिये विन जानेतैं दोष गुननको, कैसे तजिये गहिये॥११॥ जिनवचमैं शंका न धारि वृष, भवसुखवांछा भानै। मुनितन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै। निजगुन अर पर अवगुन ढाकै, वा जिनधर्म वढावै। कामादिककर वृषतैं चिगते, निजपरको सु दृढावै॥ धर्मसों गउवच्छप्रीतिसम, कर जिनधर्म दिपावै। इन गुनतैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावै॥ पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय तो न मद ठानै। मद न रूपको मद न ज्ञानको धन वलको मद भानै॥१३॥ तपको मद न मद जु प्रभुताको, करै न सो निज जानै। मद धारै तौ येहि दोष वसु, समकितको मल ठानै॥ कुगुरुकुदेवकुवृषसेवककी नहिं प्रशंस उचरै है। जिनमुनि जिनश्रुत विन कुगुरादिक तिन्हैं न नमन करै है॥१४॥ दोषरहित गुनसहित सुधी जे, सम्यकदरश सजे हैं। चरितमोहवश लेश न संजम पै सुरनाथ जजे हैं॥ गेहीपै गृहमें न रचै ज्यों, जलमें भिन्न कमल है। नगरनारिको प्यार यथा, कादेमें हेम अमल है॥

प्रथम नरक विन षटभू ज्योतिष, वान भवन षँड नारी। थावर विकलत्रय पशुमें नहिं, उपजत समकितधारी ॥ तीनलोक तिहुँ कालमाहिं नहिं, दर्शनसम सुखकारी। सकल धरमको मूल यही इस, विन करनी दुखकारी ॥ १६ ॥ मोक्षमहलकी परथम सीढी, या विन ज्ञान चरित्रा। सम्यकता न लहै सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा। 'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै। यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक नहिं होवै ॥१७॥

चौथी ढाल।

दोहा–सम्यक श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यकज्ञान।
स्वपर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रकटावन भान ॥१॥

रोला छंद–सम्यकसाथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधो। लक्षण श्रद्धा जान, दुहूमें भेद अबाधो ॥ सम्यककारण जान, ज्ञान कारज है सोई। युगपद होतैं हू, प्रकाश दीपकतैं होई ॥२॥ तास भेद दो हैं परोक्ष, परतछ तिनमाहीं। मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतैं उपजाहीं ॥ अवधिज्ञानमनपर्जय, दो हैं देशप्रतच्छा। द्रव्यक्षेत्रपरिमान लिये जानैं जिय स्वच्छा ॥ सकल द्रव्यके गुन अनंत, परजाय अनंता। जानैं एकै काल, प्रगट केवलिभगवंता॥ ज्ञान समान न आन, जगतमें सुखको कारन। इह परमामृत जन्म, जरामृतरोग,निवारन॥कोटि जनम तप तपै, ज्ञान विन कर्म झरैं जे। ज्ञानीके छिनमांहि गुप्तितैं सहज टरैं ते। मुनिव्रत धार अनंत बार,ग्रीवक उपजायो।

पै निजआतमज्ञान विना सुख लेश न पासो ॥ ५ ॥ तातैं जिनवरकथित, तत्त्व अभ्यास करीजे । संशय विभ्रम मोह, त्याग आपो लखि लीजै ॥ यह मानुषपरजाय, सुकुल सुनिवो जिनवानी । इहविधि गये न मिलै, सुमणि ज्यों उदधिसमानी ॥६॥ धन समाज गज बाज राज, तो काज न आवै । ज्ञान आपको रूप भये फिर अचल रहावै । तास ज्ञानको कारन, स्वपरविवेक बखान्यो । कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आन्यो ॥७॥ जे पूरव शिव-गये, जांय अब आगैं जै हैं । सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं ॥ विषयचाह-दव-दाह, जगतजन अरनि दझावै । तासु उपाय न आन ज्ञानघनवान बुझावै ॥८॥ पुण्यपाप-फल मांहि, हरख विलखौ मत भाई । यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसैं थिर थाई ॥ लाख बातकी बात, यहै निश्चय उर लावो ॥ तोरि सकल जगदंदफंद, निज आतम ध्यावो ॥९॥ सम्यकज्ञानी होइ, बहुरि दृढ चारित लीजे । एकदेश अरु सकलदेश, तस भेद कहीजे ॥ त्रसहिंसाको त्याग वृथा, थावर न सँघारै । परवधकार कठोर निंद्य नहिं वयन उचारै ॥१०॥ जल मृतिका बिन और नाहिं कछु गहै अदत्ता । निज बनिताविन सकल, नारिसौं रहै विरत्ता अपनी शक्ति विचार परिग्रह थोरो राखै । दश दिशि गमन-प्रमान, ठान तसु सीम न नाखै ॥११॥ ताहूमें फिर ग्राम गली गृह बाग बजारा । गमनागमन प्रमान ठान अन

सकल निवारा ॥ काहूके धनहानि, किसी जय हार न चीतैं। देय न सो उपदेश, होय अघ बनिज कृषीतैं॥ कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै ॥ असि धनु हल हिंसोपकरन, नहिं दे जस लाधै ॥ रागरोष-करतारकथा, कबहूं न सुनीजे। और हु अनरथदंड, हेतुअघ तिन्हैं न कीजे ॥१३॥ धर उर समताभाव सदा, सामायिक करिये । पर्वचतुष्टयमाहिं पाप तजि प्रोषध धरिये ॥ भोग और उपभोग नियमकरि ममतु निवारै। मुनिको भोजन देय फेर, निज करहि अहारै ॥१४॥ बारह-व्रतके अतीचार, पन पन न लगावै। मरनसमय सन्यास धारि, तसु दोष नशावै ॥ यों श्रावकव्रत पाल स्वर्ग, सोलम उपजावै। तहतैं चय नरजन्म पाय मुनि ह्वै शिव जावै ॥१५॥

पांचवीं ढाल। सखीछंद (मात्रा १४)

मुनि सकलव्रती बडभागी। भवभोगनतैं वैरागी ॥ वैराग्य उपावन माई। चिंतो अनुप्रेक्षा भाई ॥१॥ इन चिंतत समरस जागै। जिमि ज्वलन पवनके लागै ॥ जबही जिय आतम जानै। तबही जिय शिवसुख ठानै ॥२॥ जोवन गृह गोधन नारी॥ हय गय जन आज्ञाकारी ॥ इंद्रिय भोग छिन थाई। सुरधनु चपला चपलाई ॥३॥ सुर असुर खगाधिप जेते। मृग ज्यों हरि काल दले ते ॥ मणि मंत्र तंत्र बहु होई। मरते न बचावै कोई ॥४॥ चहुंगतिदुख जीव भरे हैं। परिवर्तन पंच करै हैं ॥ सबविधि संसार असारा। यामें

सुख नाहिं लगारा ॥५॥ शुभ अशुभ-करमफल जेते। भोगै जिय एकहि तेते ॥ सुत दारा होय न सीरी। सब स्वारथके हैं भीरी ॥ ६ ॥ जलपय ज्यों जियतन मेला। पै भिन्न भिन्न नहिं भेला ॥ तो प्रगट जुदे धन धामा। क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा ॥ ७ ॥ पल-रुधिर राध-मल-थैली। कीकस वसादितें मैली ॥ नव द्वार बहैं घिनकारी। अस देह करै किम यारी ॥ ८ ॥ जो जोगनकी चपलाई। तातै ह्वै आस्रव भाई ॥ आस्रव दुखकार घनेरे। बुधिवंत तिन्हैं निरवेरे ॥ जिन पुण्यपाप नहिं कीना। आतम अनुभव चित दीना ॥ तिन ही विधि आवत रोके। संवरलहि सुख अवलोके ॥१० निज काल पाय विधि झरना। तासौं निजकाज न सरना ॥ तप करि जो कर्म खपावै। सोई शिवसुख दरसावै ॥ ११ ॥ किनहू न करचो न धरै को। षटद्रव्यमयी न हरै को ॥ सो लोकमाहिं विन समता। दुख सहै जीव नित भ्रमता ॥१२॥ अंतिम ग्रीवकलौंकी हद। पायो अनंतविरियां पद ॥ पर सम्यकज्ञान न लाध्यो। दुर्लभ निजमें मुनि साध्यो ॥१३॥ जे भाव मोहतै न्यारे। दृग ज्ञान व्रतादिक सारे ॥ सो धर्म जबै जिय धारै। तबही सुख सकल निहारै ॥१४॥ सो धर्म मुनिनकरि धरिये। तिनकी करतूति उचरिये ॥ ताको सुनिकै भवि प्रानी। अपनी अनुभूति पिछानी ॥१५॥

छट्टीढाल (हरिगीता छंद)

षटकाय जीव न हननतैं सबविधि दरबहिंसाटरी। रागादि

भाव निवारतैं हिंसा न भावित अवतरी॥ जिनके न लेश मृषा न जल तृन हू विना दीयो गहैं। अठदशसहस विधि शीलधर चिद्ब्रह्ममें नित रम रहैं ॥१॥ अंतर चतुर्दश भेद बाहिर संग दशधातैं टलैं। परमाद तजि चउकर मही लखि समिति ईर्यातैं चलै॥ जग सुहितकर सब अहितहर श्रुति-सुखद सब संशय हरे। भ्रमरोग-हर जिनके वचन मुखचंद्रतैं अमृत झरैं ॥२॥ छयालीस दोष विना सुकुल श्रावकतणे घर अशनको। लें तप बढ़ावन हेत नहिं तन पोषते तजि रसनको॥ शुचि ज्ञान संजम उपकरन लखिकें गहें लखिकें धरैं। निर्जंतु थान विलोकि तन-मलमूत्र-श्लेषम परिहरै ॥३॥ सम्यक् प्रकार निरोधि मन-वच-काय आतम ध्यावते। तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगन उपल खाज खुजावते॥ रसरूप-गंध तथा फरस अरु शब्द शुभ असुहावने। तिनमें न राग विरोध पचेंद्रियजयन पद पावने ॥४॥ समता सम्हारै थुति उचारै बंदना जिनदेवको। नित करैं श्रुतरति धरैं प्रतिक्रम तजें तन अहमेवको॥ जिनके न न्हौन न दंतधोवन लेश अंबर आवरन। भूमाहिं पिछली रयनिमें कछु शयन एकाशन करन॥५॥ इक बार दिनमें लें अहार खडे अलप निज पानमें। कचलौंच करत न डरत परिषहसों लगे निज ध्यानमें। अरिमित्र महल मसान कंचन काच निंदन थुति करन। अर्घावतारन असिप्रहारनमें सदा समताधरन॥ तप तपैं द्वादश धरैं वृष दश रतनत्रय सेवें सदा। मुनिसाथमें वा

एक विचरें चहैं नहिं भवसुख कदा॥ यों है सकल संजम चरित सुनिये स्वरूपाचरन अब । जिस होत प्रगटै आपनी निधि मिटै परकी प्रवृति सब ॥ ७ ॥ जिन परम पैनी सुबुधि छैनी डारि अंतर भेदिया। वरनादि अरु रागादितै निज भावको न्यारा किया॥ निजमाहिं निजके हेतु निजकर आपको आपै गह्यो। गुनगुनी ज्ञाता ज्ञानज्ञेय मझार कछु भेद न रह्यो॥ ८॥ जहँ ध्यान ध्याता ध्येयको न विकल्प वचभेद न जहां। चिद्भाव कर्म चिदेश करता चेतना किरिया तहां ॥ तीनों अभिन्न अखिन्न शुध उपयोगकी निश्चल दशा। प्रकटी जहां दृग ज्ञान व्रत ये तीनधा एकै लशा॥ ९॥ परमान नय निक्षेपको न उदोत अनुभव में दिखै। दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा नहिं आन भाव जु मोविखै॥ मैं साध्य साधक मै अबाधक कर्म अरु तसु फलनितैं। चितपिंड चंड अखंड सुगुन,-करंडच्युत पुनि कलनितैं ॥१०॥ यों चिंत्य निजमें थिर भये तिन अकथ जो आनँद लह्यो। सो इंद्र नाग नरेंद्र व अहमिंद्रकै नाहीं कह्यो॥ तब ही शुकलध्यानाग्निकर चउघाति विधिकानन दह्यो। सब लख्यो केवलज्ञानकरि भविलोककों शिवमग कह्यो ॥ ११ ॥ पुनि घाति शेष अघाति विधि छिनमाहिं अष्टमभू बसैं। वसुकर्म विनशै सुगुन वसु सम्यक्त्व आदिक सब लसै॥ संसार-खार अपार पारावार तिर तीरहिं गये। अविकार अकल अरूप शुध चिद्रूप अविनाशी भये॥ १२॥

निजमांहि लोक अलोक गुन परजाय प्रतिबिंबित थये। रहि हैं अनंतानंतकाल यथा तथा शिव परनये॥ धनि धन्य हैं जे जीव नरभव पाय यह कारज किया। तिनही अनादी भ्रमन पंचप्रकार तजि वर सुखलिया॥ १३॥ मुख्योपचार दुभेद यों बड़भागि रत्नत्रय धरैं। अरु धरैंगे ते शिव लहैं तिन सुजस जल जगमल हरैं॥ इमि जानि आलस हानि साहस ठानि यह सिख आदरो। जबलों न रोग जरा गहै तबलों जगत निज हितकरो॥ १४॥ यह राग आग दहै सदा तातै समामृत सेइये। चिर भजे विषय कषाय अब तो त्याग निजपद बेइये॥ कहा रच्यो परपदमें न तेरो पद यहै क्यों दुख सहै। अब दौल, होउ सुखी स्वपद रचि दाव मत चूको यहै॥ १५॥

दोहा—इक नव वसु इक वर्षकी, तीज शुकल वैशाख।
करचो तत्त्व उपदेश यह, लखि बुधजनकी भाख॥१६॥
लघुधी तथा प्रमादतैं, शब्द अर्थकी भूल।
सुधी सुधार पढो सदा, जो पावो भवकूल॥ १७॥

इति श्री पं० दौलतरामजीकृत छहढाला समाप्त।

२१४—अरहन्तपासाकेवली।

काशी निवासी कविवर बृन्दावनदासजी कृत।

दोहा—श्रीमत वीरजिनेशपद, वन्दों शीस नवाय। गुरु गौतमके चरन नमि, नमों शारदा माय॥१॥ श्रेणिक नृपके पुण्यतें भाषी गणधर देव। जगतहेत अरहन्त यह, नाम

'केवली सेव' ॥२॥ चन्दनके पासाविषै, चारों ओर सुजान। एक एक अक्षर लिखो श्री 'अरहंत' विधान ॥३॥ तीन वार डारो तबै, करिवर मन्त्र उचार। जो अक्षर पांसा कहै, ताको करो विचार ॥४॥ तीन मन्त्र हैं तासुके, सात सातही वार। थिर ह्वै पांसा ढारियो करिकैं शुद्ध उचार ॥५॥ जानि शुभाशुभ तासुतैं, फल निज उदयनियोग। मन प्रसन्न ह्वै सुमरियो, प्रभुपद सेवहु जोग ॥६॥

प्रथम मन्त्र—ओं ह्रीं श्री बाहुबलि लंबबाहु ओं क्षां क्षीं क्षुं क्षे क्षै क्षों क्षः उद्र्ध्व भुजा कुरु कुरु शुभाशुभं कथय कथय भूतभविष्यति वर्तमानं दर्शय दर्शय सत्यं ब्रूहि सत्यं ब्रूहि स्वाहा।

(प्रथम मंत्र सात वार जपना)

दूसरा मंत्र—ओं ह्रः ओं सः ओं क्षः सत्यं वद सत्यं वद स्वाहा

(सात वार जपना)

तीसरा मन्त्र ओं ह्रीं श्रीं विश्वमालिनी विश्वप्रकाशिनी अमोघवादिनी सत्यं ब्रूहि सत्यं ब्रूहि राह्यि राह्यि विमालिनी स्वाहा।

(यह मन्त्र भी सात वार जपना)

---

* मन एकत्र करि विनय सहित अपना अभिप्राय विचारकरि श्री अरहंत भगवानके नामाक्षरका पाँसा तीन वेर ढालना जो जो वरन पड़े तिस वरनका भेद पाके फलका निश्चय करना। जिन मार्गमें यह बड़ा निमित्त है इसे हमने लिखा है कि अपना वा पराया उपकार होय। (वृन्दावन)

अथ अकारादि प्रथम प्रकरण।

अअअ। जो परे तीन अकार। तो जानि सुखविस्तार॥ कल्याणमंगल होय। सम्मान बाढ़ै सोय ॥१॥ लक्ष्मी वसै नित धाम। व्यापारमें बहु दाम॥ परदेशमें धन लाभ। संग्राममें जय लाभ ॥२॥ नृपद्वारमें सन्मान। संकट कटै प्रमान। सब रोग अरु दुर्भागि। तत्काल जावे भागि ॥३॥ प्रगटै सकल कल्यान। यामें न संशय जान। यह महा उत्तम अंक फल अटल जासु निशंक ॥४॥

अअर। दो अकारपर परै रकार। मध्यम फल है सुनो विचार। जो कारज चिन्तो मनमाहिं सो तौ शीघ्र होनको नाहिं ॥५॥ पूरब पाप उदय है जानि। सोई करत काजकी हानि। तातै इष्टदेव आराधि। कुल देवीको पूजि सुसाधि॥ तासु जजब आराधन किये। किंचित होय काज सुनि हिये॥ मध्यम प्रश्न परयो हैं येह। मति मानो यामें सन्देह ॥७॥

अअह। जहं दो अकारके अन्त माहिं। हंकार परै सो शुभ कहाहिं। धनधान्य समागम लाभ होय। परदेश गयो जो चहै सोय ॥८॥ तो मनवांछितकी सिद्धि जान। अरु मित्र बंधुसों प्रीति मान। तत्काल शत्रुको होय नाश। तब विघ्न मिटै अनयास तास ॥९॥ घरमें प्रगटै मंगलविभूति। तब पुण्य प्रभाव प्रबल अकूत। यह उत्तम प्रश्न सुनो पुमान। यों कहत केवली गुनिनियाम ॥१०॥

अअत। जहं दुइ अकार पर है तकार। तहं शुभ फल

जानो है उदार। बहु मित्र मिलें भू वस्त्र ताहिं। अरु पुत्र पौत्र है सदन माहिं ॥ रोगीको रोग विनाश होय। क्रूर ग्रहको निग्रह भि होय॥ जो मित्र बन्धु परदेश होय। घर आवै अति मन मुदित सोय॥१२॥ कुलवृद्धि तथा सज्जन महान। तिनसों नित प्रीति बढ़ै सयान। दिन दिन अति लाभ मिले पुनीत। यह प्रश्न केवली कहत प्रीति॥१३॥

अरअ। दुइ अकारके मध्य रकार। पांसा परै तासु सुविचार॥ उत्तम फलकारी यह होत। नित नव मंगल होत उदोत॥१४॥ पूरब जो धन गयो नसाय। सो सब तोहि मिलेगो आय। राजा करहिं बहुत सनमान, वसन भूमि हय देवहि दान॥१५॥ भ्राता मित्र समागम होहि। सब विधि सदनमहोच्छव तोहि। सकल पापको होय विनाश। धर्मवृद्धि नित करै प्रकाश॥१६॥

अरर। जो अरर प्रगटै वरन। तो सकल मंगल करन। धनलाभ सूचक येह। दशदिश विमल जस तेह॥१७॥ जहं जाय वह मतिवंत। तहं लहै पूजा संत॥ ह्वै इष्टबन्धु मिलाप। उद्यम विषै श्री आप॥१८॥ जल चोर पावक मरी। ये सकहिं नहिं कछु करी। सब शत्रु कीजै हान। प्रगटै सकल कल्याण॥१९॥ जिन धरमके परभाव। यह जान ह्वै सद्भाव। उत्तम कहत फल अङ्क। उत्तम गह्यो निःशंक।२०।

अरहं। अरहं परे जो वरन। सौभाग्यसम्पतिकरन। तो जो मनोरथ होइ। अनयास पूजै सोय॥२१॥ कछु क्लेश

हूवै घरमाहिं। तसु रंच ही भय नाहिं। निज इष्ट पूजहु जाय। सब विघन जांय नसाय ॥२२॥ मन सोच तजि थिर होहि। आनन्द मंगल तोहि। सब सिद्ध ह्वै है काज। अरहं कहत महाराज ॥२३॥

अरत। जब अरत पासा ढरै। तब सकल सुख विस्तरै। तोहि तिया प्रापति होय। सुत होय पौत्रपि होय ॥ २४ ॥ कुलतोत सब सोभंत। तब भाल तिलक लसंत। जहं जाहुगे तुम भीत। तहं लहहु पूजा नीत ॥ २५ ॥ जनमध्य हो तुमकेम। ताराविषैं शशि जेम। यह रुचिर प्रश्न सुजान। मनमें धरो प्रभु ध्यान ॥ २६ ॥

अहंअ। जो अहंअ छबि देय। तो सुनहु पूछक भेय। पहिले कछुक दुख होय। फिर नाश ह्वै है सोय ॥ ५७ ॥ धनलाभ दिन दिन बढै। अरु सुजनसंगम चढ़ै। जो काम चिन्तहु वृद्ध। सो सकल ह्वै है सिद्ध ॥ २८ ॥

अहंर। जब अंहर सु दरसाय। तब अरथलाभ कराय। जस लाभ पृथ्वीलाभ। यह देख परत सुसाभ (?) ॥ २९ ॥ राजादि बन्धूवर्ग। सब करहि आदर सर्ग। भ्रातादि इष्टमिलाप। धनधान्य आगम व्याप ॥ ३० ॥ व्यवहार अरु परदेस। सब ओर उत्तम तेस। सब सोच संशय हरहु। शुभ तुमहिं धीरज धरहु ॥ ३१ ॥

अहंहं। जो अहंहं है अंक। सो कहत हैं फल बंक। दीखे न कारज सिद्ध। यह काज तोर सुबुद्ध ॥३२॥ धन नाश ह्वै

है तोहि। तन क्लेश पीड़ा होहि। व्यापारमें धनहान। परदेश सिद्धि न जान॥ ३३॥ तिहि हेत कर भविजीव। जिन जजन भजन सदीव। जप दान होम समाज। तब होइ कछु इक काज॥ ३४॥

अहंत। अक्षर अहंत परै। तब सकल शुभ विस्तरै। कल्याणमंगल धाम। सुत भ्रमत मिलहिं सुदाम॥ ३५॥ उद्यम विषै धन धान्य। संपतिसमागम मान्य। रनके विषैं सब जीत। तोहि लाभ निश्चय मीत॥ ३६॥ अरु होय बन्दीमोच्छ। निरबाध है यह पच्छ॥ तुव ह्वै मनोरथ सिद्ध। मति मान संशय वृद्ध॥ ३७॥

अतअ। अह अतअ भाषत बरन। कल्याणमंगलकरन। उद्यममें श्री विस्तरन। सब विघ्नग्रहभयहरन॥ ३८॥ सुतपौत्रलाभ निहार। वांछित मिले मनिहार। दिन आठवें कछु तोहि। कछु श्रेष्ठ भावी होइ॥ ३९॥

अतर। जो अतर अक्षर ढरै। तो सकल मंगल करै। वाजित्र सदन सुनाय। घरमाहिं अनँद बधाय॥४०॥ प्रियबन्धुचिन्ता होहि। तसु मोद मंगल होहि॥ धनधान्यसंजुत होय। घर शीघ्र आवै सोय॥ ४१॥ गजवाजि रथआरूढ। भूषन वसनजुत मूढ़। संयुत अमित कल्यान। निरभै मिलै भयमान॥ ४२॥

अतहं। अतहं ढरै जो अंक। सो अशुभ कहत निशंक। नहिं लाभ दीखत भाय। धन हाथहू को जाय॥ ४३॥

है इष्टबन्धुवियोग। तियतनयसंपतियोग। राजादि चोरु मरी। है शत्रु सबही घरी॥ ४४॥ तिहि विघननाशन हेत। करदेवजजन सुचेत। तिहि पुण्यके परभाव। घर होइ मंगल चाव॥ ४५॥

अतत। जहं अतत आवै वरन। धनलाभ तहं बुधि वरन। संपदा सुख विस्तरन। सब सिद्धि बांछितकरन॥ ४६॥ प्रिय इष्ट बन्धू मिलन। सबलाभ दिन-प्रतिदिनन॥ उद्यम तथा रनथान। तुव ध्रुव विजय बुधिवान॥४७॥ वादानुवाद मंझार। तुव जीत होय उदार। यामें न संशय करहु शुभ जानि धीरज धरहु॥४८॥

इति अकारादि प्रथम प्रकरण।

अथ रकारादि द्वितीय प्रकरण।

रअअ। आदि रकार अकार दुइ, जब ये प्रगटें वर्न। तब धन सम्पति लाभ बहु, सुजनसमागम कर्न॥ ४९॥ सोना रूपा ताम्र बहु, वसनाभरन सुरत्न। प्राप्त होय निश्चय सकल, चिन्तित वित जुतजत्न॥५०॥ अन्तरैन दीखै सुपन, माला सुमन सुजान। हयगजरथ आरूढ़ अरु, देवागमन विमान॥५१॥

रअर। आदि रकार अकार पुनि, तापर परै रकार। सुनि पूछक तैं तासु फल, है अभिमत दातार॥५२॥ देशप्रजाको लाभ है, खेती वर व्यापार। धन पावै परदेशमें, घरमें सब सुखसार॥५३॥ संगर संकट घोरमें, कुलदेवी सुख-

दाय। करै सहाय प्रसाद तसु, सब विधि सिद्धि लहाय॥

रअहं। आदि रकार अकार पर,, हं प्रगटे जब आय। भयकारी धनहानि यह, क्लेश अशेष कराय ॥ ५५ ॥ यह कारज कर्तव्य नहिं, लाभ नाहिं या माहिं। बांधवमित्र वियोगता अस यह सगुन कहाहिं ॥ ५६ ॥ जहं कहुं जाहु विदेश तहँ, सिद्ध न होवै काज। तातैं थिर ह्वै कछुक दिन, सुतिरहु श्रीजिनराज ॥५७॥

रअत। रअत परै पांसा कहै, मग धन लूटहिं चोर। द्रव्यहानि होवहि बहुत, अशुभ फलहि चहुँओर ॥ ५८ ॥ नाव बुझै पावक लगै, रोगरु कष्ट कुजोग। कियो काज विनशै सकल, अशुभ करमके भोग ॥ ५९ ॥ तातै शोक न कीजिये, भावीगति बलवान। थिर ह्वै निशिदिन सुमिरिये, कृपासिंधु भगवान ॥६०॥

ररअ। ररअ अंग आवै जहां, तब ऐसौ फल जान। तब चित चंचल चपल अति, सुनि प्रच्छक मतिमान ॥६१॥ तैं चाहत अर्थागमन, मूलनाश तसु होइ। राजदण्ड चौराग्नि भय, तनदुख तोहि बहोइ ॥६२॥ तनय तिया बांधवनिसों ह्वै है तोहि वियोग। अबतैं तिसरे बरसमहँ, कटहिं सकल दुखभोग ॥६४॥

ररर। तिहुँ रकारको फल सुनो, मनवांछितफलदाय। धरा धान्य धनलाभ तोहि, मिलहिं वस्तु सब आय। ६४॥ तिया तनय सुत बन्धु धन,, इष्टबन्धुसंयोग। कृत उत्तम

कल्याण तोहि, मिलै सकल संभोग ॥६५॥ महालाभ उद्यम-विषैं, सदन तथा परदेश। सुफल काज तुव होय नित, यामें भ्रम नहिं लेश ॥६६॥

ररहं। दुइ रकारपर हं परै, तव मनवांछित होय। शोभनीक सुख संपदा, सहज मिलावै सोय ॥६७॥ मंगल दुंदुभि होई धुनि, अरथलाभ बहु तोहि। मिलि हैं वसुधा देश पुर, यह प्रति भासत मोहि ॥६८॥ जौन काज तुम चित धरउ, तुरित होइ है तौन। भूपति अति आनँद करै, तिन प्रति मंगल मौन ॥६९॥

ररत। ररत बरन यह कहत है, सुन पृछक चित लाय। परतियकी अभिलाषतै, किये अनर्थ उपाय ॥७०॥ अरथ-नाश तातैं भयो, अरु विग्रह घरमाहिं। राजदण्ड तैने सहे, यामें संशय नाहिं ॥७१॥ तातै परतिय परिहरहु, शुभमारग पग देहु। ब्रह्मचरजजुत प्रभु भजो, नरभवको फल लेहु ॥

रहंअ। रहंअकार आवै जहां, तहँ उत्तम फल जान। वनितापुत्रधनागमन, बन्धुसमागम मान ॥ ७३ ॥ अरथ लाभ जसलाभ पुनि, धरमलाभ ह्वै तोहि। रन विदेश व्यापारमें, विजय तुरन्तहि होहि ॥७४॥

रहंर। रहंर आवै जवहिं तव, विषम काज जिय जान। उद्यम सुफल न होय कछु, घर बाहर हैरान ॥ ७५ ॥ शत्रु बहुत सुख कतहुं नहिं, तातैं तजि यह काज। जग सुख निष्फले जानि जिय, भजो सदा जिनराज ॥ ७६ ॥

रहंहं। हंजुग आदिरकार कइ, सुनिये पूछनहार। अशुभ उदय फल अशुभ है, जानहु निज उर धार ॥७७॥ मति विश्वास करो हिये, मित्र बन्धु जिय जानि। शत्रु होय ये परिनवहिं, करहिं वित्तकी हानि ॥ ७८ ॥ धन चिन्ता नित करत हो, सो सुपनेहुँ नहिं होइ। धरम चिन्ति कुल देव भजि, तातै कछु सुख जोइ ॥ ७९ ॥

रहंत। रहं तासुपर प्रगट त, सुनि फल पूछनहार। याको फल मैं कहा कहौं, सब सुखको दातार ॥ ८० ॥ विद्या लाभ कवित्तता, सुफल लाभ व्यवहार। बनिता सुतको है, द्रव्यलाभ व्यापार ॥ ८१ ॥ मित्रबन्धु वसनाभरण। सहित समागम होइ। चहहु सुखित परिवार सों, कुलदेवीकृत जोइ ॥ ८२ ॥

रतअ। रतअ वरन पांसा कहत, तुव सम्मुख सौभाग। अरथागम कल्याणकर, असन सुखद अनुराग ॥८३॥ मंत्र-जन्त्र औषधिविषैं, सकल सिद्ध भ्रुव होइ। चित चिन्तित पुत्रादि सुख, निश्चय पैहैं सोइ ॥८४॥

रतर। रतर वरन पासा कहत, सुनि पूछक गहि मौन। उद्यममें लक्ष्मी बसै, ज्यों पंखेमें पौन ॥ ८५ ॥ तातैं उद्यम करहु तुम, अरथलाभ तहं होइ। तनय धरनि धरनी मिलै, नृप सनमाने सोय ॥ ८६ ॥ वसन मिलै घोड़ा मिलै, अनायास है काज। शुभ मंगल तोहि सर्वदा, सेये श्रीजिनराज ॥ ८७ ॥

रतहं। रतहं कहत बिचारिकै, सुनि पूछक दे कान। पहिले कष्ट बहुत सहे, सो सब गये सुजान ॥८८॥ धनकी चिन्ता रहतचित, सो सब पूरन होहि। वनिता सुत वसनाभरन, निश्चय मिलिहैं तोहि ॥८९॥ आधि व्याधि दुख नसहिं सब, चिन्ता करहु न कोय। देवधर्मपरसादसों, काज सफल सब होय ॥९०॥

रतत। रतत वरन सुनि पूछक, सकल सुफल तुव काम। मनवांछित धनसम्पदा, पै हौ अति अभिराम ॥९१॥ जो कारज चितवत रहौ, अनायास सो होय। मनमें मति संशय करो, धर्मवृद्धि फल जोय ॥९२॥ शिवहित चाहत तप धरन, तामहं ह्वै है सिद्ध। गहो जिनेश्वर कथित तप, ज्यों होवै सुखवृद्धि ॥९३॥

अथ हंकारादि तृतीय प्रकरण। चौपाई।

हंअअ। हं अअ वर्न परे जहँ आई। तासु सुनो फल है दुचिताई॥ सूचत कष्टरु चित्त विनाशं। लोकविषैं निरआदरभासं ॥९४॥ संगरमें नहिं जीत दिखावै। उद्यममें नहिं लाभ लहावै। जाहु जहां कछु कारज हेती। सिद्ध न होय तहां तुम सेती ॥९५॥ त्याग करो यह कारज यातें। सेवहु श्रीजिनधर्मसुधा तें। धर्म विना सुखको नहिं लेखा। श्री भगवान कहैं जिन देखा ॥९६॥ रोग निवार अरोग शरीरं। पुष्ट महा वलपौरुष धीरं। चाहत हो परदेश सिधारो। होय मिलाप तहां शुभ सारो ॥९७॥

हंअर। हंअर भापत है सुख सारा। होय मनोरथ सिद्ध तुम्हारा॥ अर्थ तिया मुदमंगलताई। आनन्दसंजुत बांधव भाई॥९८॥ उद्यममें धन प्रापति जानो। देशविदेश जहां ममभानो। रोगीको रुग जाय नशाई। बांधवमित्र मिलै सब आई॥९९॥ देव अराधहु भाव लगाई। सो मनवांछित सिद्ध कराई। ज्यों विनमूल पादपै जानो, त्यों विन-धर्म न आनंद पानो॥१००॥

हंअहं। हं अरुहंमधि जत्र अकारं। तो सुनि पूछनहार विचारं। कोमल चित्त तुमार दिखाई। शत्रु सुमित्र गिनो समताई॥ १०१॥ तासहितै धन आप गंवायो। कालसुभाव नहीं लख पायो। है कलिकालकराल पियारे। तै अति साधु सूभाग सुधारे॥१०२॥ जो कछु पूर्व भयो धनहान। सो सब तोहि मिलेसुखदान। है तुमको नित प्रापति आगे। निश्चय जान अर्थ अनुरागे॥ १०३॥

हंअत। हंअत आय जनावत तातै। मंगल मंजु समाज-सुधातैं। पुत्र सुमित्र समागम होई। देशाराधन लाभ वहोई॥१०४॥ धनकी चिंता करत हो; शीघ्रहि पैहो सोय। द्रव्य पुत्र वनिता वसन सकल प्रापती होय॥१०५॥ क्लेश व्याधि अब मिट गई, देव धरम परसाद। सुफल काज नित जानि जिय, भजहु जिनेश्वरपाद॥ १०६॥

हंरअ। हंरअ आय दिखावत ऐसो। चिन्तित काज सरै तुव तैसो। धान्यधनादिक लाभ दिखाई। कीरत देश

दिशन्तर जाई ॥ १०७ ॥ भूप करै सम्मान तुम्हारा । देश धरा धन देय उदारा ॥ प्रीति करै तुमसों सब कोई । या महं संशय रंच न होई ॥१०८॥

हंरर । हंरर अक्षर भाषत सांचा । तो मनमें उद्वेग उमाचा वित्त कछू अब छीजइ भाई । पीछे होय सुखी अधिकाई ॥ संपत संतत मित्र पियारे । होहिं सदा तोहि मंगलकारे ॥ अर्थ बढ़ै घरमें सुखदाई । कीरति देशदिशन्तर जाई ॥११० श्रीजिनधर्मप्रभाव विचारो । है यह कारज सिद्ध तुम्हारो । यामें संशय रञ्च न मानो । सेवहु श्रीजिनराज सयानो ॥

हंरहं । मध्यरकार जहां छवि देई । हंजुग आदिरु अन्त परेई । उत्तम लाभ लसै फल ताको । पुत्रविवाह भविष्यति जाको ॥११२॥ नारि मिलै घर संपत आवै । वैर मिटै हित प्रीति जनावै ॥ संगर वादविवादमंझारी । होय विजय तुव आनंदकारी ॥११३॥ दीखत है शुभभाग तिहारो । यामें संशय रञ्च न धारो ॥ श्रीजिनचन्दपदाम्बुज ध्यावो । ताकरि पूरण पुन्य कमावो ॥११४॥

हंरत । हरंत वर्न बखानत ऐसे । कारज सिद्ध लसै सब जैसे । उद्यममें लछमी चिरलाभं । जुद्धरुजूत विजै तुम साजं ॥ लाभलसैं सब ठौर तुम्हारे । हानि हमें नहिं दीखत प्यारे ॥ किंचित सोच बसै मनमाहीं । तासु हमें कछु संशय नाहीं ॥११६॥ शीघ्र मिटै वह शोच तुम्हारा । है घर मंगल मंजुल सारा । श्रीजिनधर्म अराधहु जाई । संजम दान करो सुखदाई

हंहंअ। हं जुग अन्त अकार उचारो। कारज सिद्ध समस्त तुम्हारो॥ धामविषै धन है अधिकाई। पुत्र सुपौत्र बढ़ै सुखदाई॥११८॥ बांधवमित्रसमागम सूचै। जो परदेशविषै अविषूचै (?) संवत एकमंझार पियारे! हैं लछिलाभ तुमें अधिकारे॥११९॥ इष्टपदांबुज सेवहु जाई। सर्व मनोरथ सिद्ध कराई॥ मंगल प्रश्न हिये रखि लीजै। श्रीजिनवैन सुधारस पीजै॥१२०॥

हंहंर। हं जुग अन्त रकार पुकारै। मंगल मोद ससस्त तुम्हारै। पुत्र विवाह अवश्यक होऊ। जज्ञ विधान बने कछु सोऊ॥१२१॥ तासु प्रसाद सु सम्पति भूरी। हूवै धनधान्य वस्त्र परचूरी। मंगलधाम बढ़ै अधिकाई। जाहु जहां तहंलाभ लहाई॥१२२॥ देव जजौ जपि दान करीजै, संजम होम सबै विधि कीजै॥ पुन्य किये सुख सम्पति नाना। बाल गुपाल सबै यह जाना॥१२३॥

हं हं हं। हंतिहुं याय परै जब पासा। है तहं मंगलमंखादिर सा॥ सर्व मनोरथ सिद्धि प्रकासै। अर्थ सुलाभ प्रजा जुत भासै॥ १२४॥ भूमि मिलै रनमें जय पावै। उद्यममें बहुलच्छि कमावै॥ बांधव मित्रनसों अति नेहं। रोपत है वरधर्म सुगेहं॥ १२५॥ आनन्द सर्व भविष्यति तोही। यों प्रतिभासत है सुनि मोही॥ कारज सिद्धि समस्त तुम्हारा। सेवहु धर्म लहो भव पारा॥१२६॥

हंहंत। हंजुग अन्त तकार दिखाई। उत्तम लाभ सबै

तसु भाई ॥ चाहत हौ परदेश पधारे। है तहं सिद्धि मनोरथ त्यारे ॥ १२७॥ खेती वानिजमें सब ठाई। सर्व फलै मनवांछित भाई। श्रीधनधान्य सुकंचन आदी। जे सुख सम्पति अर्थ अनादी ॥१२८॥ ते सब तोहि मिलै मनमाने। देव गुरूपदभक्ति विधाने ॥ यों सुनि चित्तविषैं थिर होई। श्रीजिनराज भजो भ्रम खोई ॥१२९॥

हंतअ। हंतअ वरन परे जब पासा। तो सुनि अर्थ प्रतच्छ प्रकासा॥ तैं चितमें परसंपति चाहै। लोभ बढ्यो तोहि देखत का है॥ १३॥ तोष किये धन प्रापति होई। वेद पुरान पुकारत योई॥ लोभ निवारि करो सब चिन्तं। भावि जु होय सो होवहु मित्तं ॥१३१॥ जाय वितीतै जब कछु काला। अर्थ सुलाभ तबै तुव भाला ॥ यामें संशय रञ्च न आनो। भाषत श्रीअरहंत प्रमानो।

हंतर। हंतर यों दरशावत आई। तो मनमें परिवित्त बसाई॥ चिन्तत है सोइ प्रापति होई। ताकरि सम्पति आनि मिलोई॥ १३२॥ अर्थ समागम कीर्ति अनिंद्या। प्रापति है तोहि सुन्दर विद्या॥ जो, कछू पूरब द्रव्य गंवायौ। सो सब आनि मिलै मन भायौ १३४॥ जो तुम कारज चेतहु प्यारे। सो सब होई सिद्धि तुमारे॥ यों जिय जानि तजो दुचिताई। सेवहु श्रीपरमातम जाई ॥१३५॥

हंतहं। हं जुगके मधि होइ तकारं। तासु सुनो फल पूछनहारं॥ तो मनमें विपरीत लसी है चोरि जूथकी ताप बसी

है ॥१३६॥ ता करिके दुःख पाप सहै हो। लोकविषैं अपकीर्ति लहै हो ॥ नास भयो जसराज तुम्हारो। यों लघु सीख सुनो उर धारो ॥१३७॥ अन्य कछू करतव्य विचारो। तामहँ वांछित सिद्ध तुमारो ॥ अर्थ वढ़ै धन धर्म वढ़ाई। यों दरसावत श्रीगुरु भाई ॥१३८॥

हंतत। हंतत भाषत उत्तम तोही। जो मन वांछहु होवहि सोही ॥ मंगल धाम मिलै धनधान्यं। जाहु विदेश तहां वहु मान्यं ॥१३९॥ मन्त्र सु जन्त्ररु भेष जताई। सैन्य सुथंभन मोहन भाई। अं र जिती जगमें वर विद्या। तोहि मिलैं भ्रम त्याग निषिद्या ॥१४०॥

अथ तकारादि चतुर्थ प्रकरण।

तअअ। जहं तअअ चरन पासा ढरन्त। तहं सुनि पूछक जो फल कहंत ॥ जो करहु देव पूजा पुनीत। तो पैहो अभिमत फल विनीत ॥१४१॥ सुत पौत्र सुखद धन धान्य लाहु। यह मिलै तोहि वांछित उछाहु ॥ व्यापारमांहि वहु मिले दर्व। अरु जूत विजय तै लहै सर्व ॥१४२॥ यामें मति चिन्ता मानु मित्त। निज इष्ट देव पद भजउ नित्त ॥ विन पुन्य नहीं सुख जगत मांहि। जिमि वीज विना नहिं तरु लगाहिं॥

तअर। जव तअर प्रगटै होवै सुजान। तव मध्यम फल जानो निदान ॥ चित चाहहु वनिता पुरुष आदि। सो आस तजहु सुनि भेदवादि ॥१४४॥ निजभावीवश ये मिलहि सर्व। परिवार कुटुम्वादिक सुदर्व ॥ पहले जो कछु

धन भयो हानि । सोऊ मिलें अब ही सयान ॥१४५॥ कछु काल व्यतीत भये समस्त । ह्वै अर्थ लाभ तुमको प्रशस्त ॥ यह जान हिये निरधार वीर । भजि श्रीपति पद सब टरै पीर ॥

तअहं । तत्ता अकार हंकार आय । हे पूछक तोसों इमि-कहाय । दिनरात तोहि धनहेत चाह । मनमें यह वर्तत है कि नाह ॥ १४७ ॥ सो पुन्य बिना कहु केम होय । हैं दिन तेरे अति नष्ट होय ॥ कछु दिवस वितीत भये प्रमान । धन-लाभ होय तोको निदान ॥ १४८ ॥ तातै जो सुख चाहहु विनीत । तो पुन्यहेत कर जतन मीत ॥ जिनराज पदाम्बु-जभृंग होय । अन अन्यशरण ह्वै सेव सोय ॥

तअत । यह तअत कहत फल प्रगट आय । सुनि पूछक तै मन मुदित काय । मनवांछित हो सो होय सिद्ध । परदेशतीर्थयात्रा प्रसिद्ध ॥ १५० ॥ इक मास व्यतीत भये प्रमान । तोहि अर्थ परापत ह्वै सुजान । अरु तन निरोगजुत पुष्ट होय । आनन्द लहै संशय न कोय ॥

तरअ । यह तरअ कहत डङ्का बजाय । धनचिन्ता तेरे मन वसाय ॥ तै कीन चहत परदेश गौन । यह जातहि कारज सिद्ध तौन ॥१५२॥ बहु वस्त्र आभरन अर्थ आद । तिय तनय लाभ ह्वै है अबाद ॥ पितु मातु बन्धुसों मिलन होय । यह गुरुसेवा फल जान सोय ॥१५३॥ तातैं नित प्रति चतुर जीव । सुखकारन सेवो प्रभु सदीव । कल्यानखान भगवान एक । तिनको सुमिरौ तजि कुमति टेक ॥१५४॥

तरर। यह तरर प्रकाशक प्रगट मित्त। सुनि पूछक तुव चित दुखित नित्त। तुव घर दरिद्र अतिही दिखाय। तातें नित चाहत धन उपाय ॥१५५॥ निशिवासर चिन्ता यही तोहि। किहि भांति होहि धनलाभ मोहि। यह तीन वरष जब बीत जाय। तव सब सुन्दरफल तोहि मिलाय॥ जो और काज मत धरहु तौन। है लाभ तासुमहं सुजसहौन॥ तातै जो सुखकी धरहु चाह। तो नाहिं जिनेसुर सों निवाह।

तरहं। तरहं अक्षर भाषत प्रतच्छ। कल्याणसंपदा स्वच्छ लच्छ। सब विघ्न निघ्न पलमाहिं होय। जिनधर्म प्रभाव सुजान सोय ॥ १५८॥ अरथागम अरु वर पुत्र होय। रनमहँ तोहि जीत सकै न कोय। बांधवसह प्रीति बढ़ै अपार। घरमें नहिं कछु विग्रह लगार॥ १५९॥ सब पापताप तेरो विलाय। नित धर्म बढ़े आनन्ददाय। तातै सुखहित हे चतुरजीव। भगवान चरन सेवो सदीव॥१६०॥

तरत। यह तरत कहत फल सुन विनीत। तुव मन धन-कारन दुखित मीत। बहु दिनतैं सोच रहत शरीर। मन समाधान अब करहु बीर॥ १६१॥ मंगलमुदजुत धनलाभ होय। प्रिय बंधुसमागम सहज सोय। परदेशगमन जो करहु तत्र। धन लाभ होहि सुखदाय जत्र॥१६२॥ वादा-नुवादमें विजय-जान। ह्वै सभ्यशिरोमणि शशि समान। यह मंगलीक शुभ सगुनराज। तैं जपि नित श्रीजिन महाराज॥१६२॥

तहंत्र। त वरनपर हंतापर अकार। जब प्रगटै तब सुनिये विचार। सब विघ्नमूल संकट नशाय। जहं जाहु तहां वांछित मिलाय ॥१६४॥ धन धान्य वसन गो महिषि घोट। सब मिलहिं तोहि हितहेत जोट। जात्रातीरथ परदेश सार। रनरंग शैल अरु उदधिपार ॥१६५॥ जहं जाहु तहां सब सुफल काज। मनमें संदेह न करहु आज॥ यह पुन्य कल्पतरु फल सुआन। भजि चरणकमल करुनानिधान ॥१६५॥

तहंर। त वरनपर हं तापर रकार। ताको फल कडुक सुनो विचार। ह्वै दुःख क्लेश पुनि अर्थहानि। भयरोग व्याधि उपजैं निदान ॥१६७॥ सुत मित्र वियोग अशुभ नियोग। पुनि जैहौं कहु तहं विपतिभोग। तुव सदनमांहि बरतत कलेश। कलिहारी नारी कुटिलभेश ॥१६८॥ यह पाप तोहि दुख देत आय। अब तोष गहो मनवचनकाय। अरहन्तदेवसों करहु प्रीति। जिमि मिले सकल सुख सहजरीति ॥१६९॥

तहंहं। तत्तापर हं हं ढरै आय। तब सुनि पूछक फल चित्त लाय। रनजूतविवादविषैं कदापि, मतिजाहु केवली कहत आप ॥१७०॥ तहं गये हानि है विजय नाहिं। है क्लेश कठिन निहचै कहाहिं। यह दैवीदोष लखै सुजान। धर्मार्थवस्तु की करत हान ॥१७१॥ उद्वेग कलह तुव सदन मांहि। सत बंधु मित्र अरि सम लखाहि। सब पाप उदय यह जानि लेहु। दुख हेत धरमसों करहु नेहु॥ १७२॥

तहंत। तत मध्य परै हंकार पास। तब मध्यम प्रश्न करे प्रकाश। जो मनमें वांछा करहु मित्त। नहिं सिद्ध होइ सो कुदिन कित्त ॥१७३॥ मति खेद करो अघ उदय जान। भावीगम अमिट प्रबल प्रमान। मति मरन चेत जड़बुद्धि त्याग। सुख चहसि तु करि प्रभुसों सुराग ॥१७४॥

ततत्र। जब ततअ वरन प्रगटै अकोप। तब शुभफल कहत निशान रोप। तोहि महा सौख्यको लाभ होय। धनधान्यसमागम मिलै सोय ॥१७५॥ राजा दे वसनाभरन घोट। व्यापारमाहिं धन लाभ पोट। दुहिताविवाह सुतजलमसंग। मंगल सब तो कहँ है अभंग ॥१७६॥

ततर। यह ततर वरन पासा भनंत। आनंद सदा ध्रुव तोहि संत। सुत बंधु धरा धनधान्यलाह। परदेश जाहु तहँ अति उछाह ॥१७७॥ बहु मित्रबंधुसों होय प्रीति। भय शत्रुजनित सब ह्वै वितीति। गो महिष अश्व द्वारे बँधाय। यामें न मोहि संशय दिखाय ॥१७८॥

ततहं। ततहं अक्षर तोहि कहत एहु। भो पूछक तू उद्यम करेहु। तहं होहि लाभ तोको प्रसिद्धि। चिंतार्चिंतत सब विधि होय वृद्धि ॥ १७९ ॥ तीरथहिण्डन पूजन विधान। सब ह्वै है तेरे मनसमान। रोगीको रोग विनाश होय। भोगीको भोग मिलै सु जोय ॥१८० मनमें मति खेद करो गुमान। तोहि होय सकल कल्याणखान। नित देवधर्म गुरु ग्रन्थ सेव। मनवांछित सुखसंपदा लेव ॥१८१॥

ततत। तीनौं तकार जब उदय होय। तब अकल सकल फल कहत सोय। मनवांछित कारज सिद्धि जानि। कल्याणकारिनी प्रश्न मानि ॥१८२॥ घर पुत्र पौत्रको जनम होय। धन आगम सुखद विवाह सोय। पहिले जो अरथ गयो विनास। सो आन मिलै अनयास पास ॥ १८३ ॥ बैरीको बैर मिटै समस्त। तोहि मिलहिं मित्र बांधव प्रशस्त। निज धर्मबुद्धि ह्वै है सयान। सर्वथा जान संशय न आन ॥१८४॥

कविनामकुलनामादि।

दोहा—लालविनोदीने रची, संस्कृतबानीमाहँ। वृन्दावन भाषा लिखी, कछु इकताकी छाहँ ॥ १८५ ॥ भूल चूक उर छिमा करि, लीजो पण्डित शोध। बालबुद्धि मोहि जानिकै, मति कीजो उर क्रोध ॥१८६॥ श्रीमतवीरजिनेश पद, बन्दौं बारंबार। विघ्नहरन मंगलकरन, अशरनशरन उदार ॥ १८७ ॥ धरमचंदके नंदको, 'वृन्दावन' है नाम। अग्रवाल गोती जगत गोइल है सरनाम ॥१८८॥ काशीवासी तासुने भाषा भाषी एह। जिनमतके अनुसार करि, श्रीजिननरपदनेह ॥ १८९ ॥ सम्वतसर विक्रमविगत, चन्द रन्ध्र दिग चन्द। माघकृष्ण आठैं गुरू, पूरन जयति जिनंद ॥

सातवां अध्याय समाप्त।

आठवां अध्याय।

आरतीसंग्रह

२१५–पंचपरमेष्ठी आदिकी आरती।

इहविधि मंगल आरति कीजै। पंच परमपद भाज सुख लीजै ॥ टेक ॥ पहली आरति श्रीजिनराजा। भवदधिपार-उतारजिहाजा ॥ इहविधि० ॥१॥ दूसरि अरति सिद्धनकेरी। सुमरनकरत मिटै भवफेरी ॥इहविध०॥२॥ तीजी आरति सूर मुनिंदा। जनममरनदुख दूर करिंदा ॥इहविध०॥३॥ चौथी आरति श्रीउवझाया। दर्शन देखत पाप पलाया ॥४॥ पांचमि आरति साधु तिहारी। कुमतिविनाशन शिव-अधिकारी ॥ इहविध० ॥ ५ ॥ छट्ठी ग्यारहप्रतिमा धारी। श्रावक वंदों आनँदकारी ॥ इहविध० ॥६॥ सातमि आरति श्रीजिनवानी 'द्यानत' सुरगमुकति सुखदानी ॥इहविध० ॥ ७ ॥

२१६–आरती श्रीजिनराजकी।

आरति श्रीजिनराज तिहारी, करमदलन संतन हितकारी ॥ टेक ॥ सुरनरअसुर करत तुम सेवा। तुमही सब देवनके देवा ॥ आरति श्री० ॥ १ ॥ पंचमहाव्रत दुद्धर धारे। राग-रोष परिणाम विदारे ॥ आरति श्री० ॥ २ ॥ भवभय भीत शरन जे आये। ते परमारथपंथ लगाये ॥आरति श्री०॥३॥ जो तुम नाथ जपै मनमाहीं। जनममरनभय ताको नाहीं ॥ आरति श्री० ॥ ४ ॥ समवसरनसंपूरन शोभा। जीते क्रोध-

मानछललोभा ॥ आरति श्री० ॥ ५ ॥ तुम गुण हम कैसे करि गावैं। गणधर कहत पार नहिं पावैं ॥ आरति श्री० ॥ ६ ॥ करुणासागर करुणा कीजे। 'द्यानत' सेवकको सुख दीजे ॥ आरति श्री० ॥ ७ ॥

२१७—आरती मुनिराजकी

आरति कीजै श्रीमुनिराजकी, अधमउधारन आतमकाजकी ॥ आरति कीजै० ॥ टेक ॥ जा लच्छीके सब अभिलाखी। सो साधन करदमवत नाखी ॥ आरतिकीजै० ॥ १ ॥ सब जग जीत लियो जिन नारी। सो साधन नागनिवत छारी ॥ आरति० ॥२॥ विषयन सब जगजिय वश कीने। ते साधन विषवत तज दीने ॥ आरति० ॥ ३ ॥ भुविको राज चहत सब प्रानी। जीरन तृणवत त्यागत ध्यानी ॥ आरति० ॥४॥ शत्रु मित्र दुखसुख सम मानै। लाभ अलाभ बराबर जानै ॥ आरति०॥५॥ छहोकायपीहरव्रत धारें। सबको आप समान निहारें ॥ आरति० ॥६॥ इह आरती पढै जो गावै। 'द्यानत' सुरगमुकति सुख पावै ॥ आरति कीजै० ॥७॥

(२१८)

किस विधि आरती करौं प्रभु तेरी। आतम अकथ उस बुध नहिं मेरी ॥टेक॥ समुदविजयसुत रजमति छारी। यों वहि थुति नहिं होय तुम्हारी ॥ १ ॥ कोटि स्तम्भ वेदी छवि सारी। समोशरण थुति तुमसे न्यारी ॥ २ ॥ चारि ज्ञान युत तिनके स्वामी। सेवकके प्रभु अन्तर्यामि ॥ ३ ॥ सुनके

वचन भविक शिव जाहिं ॥ सो पुद्गलमें तुम गुण नाहिं ॥ ४ ॥ आतम ज्योति समान बताऊं। रवि शशि दीपक मूढ बताऊँ ॥५॥ नमत त्रिजगपति शोभा उनकी । तुम सोभा तुममें जिनमें जिन गुणकी ॥६॥ मानसिंह महाराजा गावें । तुम महिमा तुम ही बन आवै ॥ ७ ॥

२१९-निश्चय आरती ।

इह विधि आरती करौं प्रभु तेरी । अमल अबाधित निज गुणकेरी ॥ टेक ॥ अचल अखंड अतुल अविनाशी । लोका-लोक सकल परकाशी ॥इहविध० ॥१॥ ज्ञानदरससुखबल गुणधारी । परमातम अविकल अविकारी ॥इहविध० ॥२॥ क्रोधआदि रागादि न तेरे । जनम जरामृत कर्म न नेरे ॥ इहविध०॥३॥ अवपु अबंध करणसुखनासी । अभय अनाकुल शिवपदवासी ॥इहविध० ॥४॥ रूप न रेख न भेख न कोई । चिन्मूरति प्रभु तुम ही होई ॥इहविध०॥५॥ अलख अनादि अनत अरोगी । सिद्ध विशुद्ध सुआतमभोगी ॥ इहविध० ॥६॥ गुन अनंत किम वचन बतावै । दीपचंद भवि भावन भावैं ॥ इहविध० ॥७॥

२२०-आत्माकी आरती ।

करौं आरती आतम देवा, गुणपरजाय अनंत अभेवा ॥करौं०॥टेक॥ जामें सब जग जो जगमाहीं । वसत जगतमें जगसम नाहीं ॥करौं०॥१॥ ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ध्यावे । साधु सकल जिहँको गुण गावें ॥ करौं० ॥ २ ॥ विन जाने जिय

चिरभव डोले। जिहँ जाने ते शिवपट खोले ॥करौं०॥३॥ व्रती अविरती विधव्योहारा। सो तिहुँकालकरमसों न्यारा॥करौं० ॥४॥ गुरुशिख उभय वचनकरि कहिये। वचनातीत दशा तस लहिये ॥करौं०॥५॥ स्वपरभेदको खेद उछेदा। आप आपमें आप निवेदा ॥करौं०॥६॥ सो परमातम शिव-सुख-दाता। होहि 'विहारीदास' विख्याता॥ करौं० ॥७॥

२२१–आरती श्रीवर्द्धमानजीकी।

करौं आरती वर्द्धमानकी। पावापुर निरवान थानकी। करौं० ॥टेक॥ राग-विना सब जग तन तारे। द्वेष विना सब करम विदारे ॥ करौं० ॥१॥ शील-धुरंधर शिव-तिय-भोगी। मनवचकायन कहिये योगी ॥करौं०॥२॥ रतनत्रय निधि परिगह-हारी। ज्ञानसुधाभोजनव्रतधारी॥करौं०॥३॥ लोक अलोक व्याप निजमाही। सुखमय इन्द्रिय सुखदुख नाहीं ॥करौं०॥४॥ पंचकल्याणकपूज्य विरागी। विमलदिगंबर अंबरत्यागी ॥करौं०॥५॥ गुनमनि-भूषन भूषित स्वामी। जगतउदास जगंतरजामी ॥करौं० ६॥ कहैं कहां लौं तुम सब जानो। 'द्यानत' की अभिलाष प्रमानौं ॥७॥

२२२–आरती निश्चयआतमाकी ।

चौपाई–मंगलिआरति आतमराम। तनमंदिर मन उत्तम ठाम ॥मंगल० ॥ टेक॥ समरसजलचंदन आनंद। तंदुल तत्त्वस्वरूप अमंद ॥मंगल०॥१॥ समयसारफूलनकी माल।

अनुभव-सुख नेवज भरि थाल ॥ मंगल० ॥२॥ दीपकज्ञान ध्यानकी धूप। निरमल भाव महाफलरूप ॥ मंगल० ॥३॥ सुगुण भविकजन इकरँगलीन। निहचै नवधा भक्ति प्रवीन॥ मंगल०॥४॥ धुनि उतसाह सु अनहद गान। परम समाधि-निरत परधान ॥मंगल० ॥५॥ बाहिज आतमभाव बहावै। अंतर ह्वै परमातम ध्यावै ॥ मंगल० ॥६॥ साहब सेवकभेद मिटाय। 'द्यानत' एकमेक होजाय ॥ मंगल० ॥७॥

उपर्युक्त आरतियोंमेंसे इच्छानुसार एक या दो आरती बोलकर नीचे लिखा श्लोक, दोहा और मंत्र पढ़कर आरतीको मस्तकपर चढ़ावे।

२२३–दीप धूप चढानके मंत्रादि।

ध्वस्तोद्यमांधीकृतविश्वविश्वमोहांधकारप्रतिघातदीपान्।
दीपैः कनत्कांचनभाजनस्थैर्जिनेन्द्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥

दोहा–स्वपरप्रकाशनज्योति अति, दीपक तमकर हीन।
जासों पूजौं परमपद, देवशास्त्रगुरु तीन ॥१॥

ओं ह्रीं मोहतिमिरविनाशनाय देवशास्त्रगुरुभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा

धूप चढ़ाते समय अथवा धूपकी आशिका लेते समय नीचे लिखा श्लोक दोहा और मन्त्र बोलना चाहिये।

दुष्टाष्टकर्मेन्धनपुष्टज्वालसंधूपने भासुरधूमकेतून्।
धूपैर्विधूतान्य सुगंधिगंधैर्जिनेन्द्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥

दोहा–अग्निमांहि परिमलदहन, चंदनादि गुणलीन।
जासों पूजौं परमपद देवशास्त्रगुरु तीन ॥२॥

ओं ह्रीं अष्टकर्मविनाशनाय देवशास्त्रगुरुभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

नौवां अध्याय।

भावनासंगूह।

२२४—बारहभावना भगौतीदासकृत।

पंच परमपद वंदन करों। मनवचभाव-सहित उर धरों॥ बारहभावन पावन जान। भाऊं आतम गुण पहिचान॥१॥ थिर नहिं दीखै नयनों वस्त। देहादिक अरु रूप समस्त॥ थिर विन नेह कौनसों करों। अथिर देख ममता परिहरों॥ अशरण तोहि शरण नहिं कोय। तीनलोकमें दृगधर जोय॥ कोइ न तेरा राखनहार। कर्मनवश चेतन निरधार॥ ३॥ अरु संसारभावना एह। परद्रव्यनसों करै जु नेह॥ तू चेतन वे जड़ सरवंग। तातैं तजहु परायो संग॥ ४॥ जीव अकेला फिरै त्रिकाल। ऊरध मध्यभुवन पाताल॥ दूजा कोइ न तेरे साथ। सदा अकेलो भ्रमै अनाथ॥ ५॥ भिन्न सदा पुदगलतै रहै। भर्मबुद्धितैं जडता गहै॥ वे रूपी पुदगलके खंध। तू चिनमूरति सदा अबंध॥६॥ अशुचि देख देहादिक अंग। कौन कुवस्तु लगी तो संग॥ अस्थी मांस रुधिगदगेह। मल मूत्रनि लख तजहु सनेह॥ ७॥ आस्रव परसों करै जु प्रीत। तातैं बंध बढहि विपरीत॥ पुदगल तोहि अपनपो नाहिं। तू चेतन वे जड सब आँहि॥८॥ संवर परको रोकन भाव। सुख होवेको यही उपाव। आवैं नहीं नये जहँ कर्म। पिछले रुकि प्रगटै निजधर्म॥९॥ थिति

पूरी ह्वै खिर खिर जाहिं। निर्जर भाव अधिक अधिकांहिं॥ निर्मल होय चिदानँद आप। मिटै सहस परसंग मिलाप॥ लोकमांहिं तेरो कछु नाहिं। लोक अन्य तू अन्य लखाहिं॥ वह सब षटद्रव्यनको धाम। तू चिन्मूरति आतमराम॥ दुर्लभ परको रोकनभाव। सो तो दुर्लभ है सुनु राव। जो तेरो है ज्ञान अनंत। सो नहिं दुर्लभ सुनो महंत॥१२॥ धर्मस्वभाव आपही जान। आप स्वभाव धर्म सोइ मान। जब वह धर्म प्रगट तोहि होय। तब परमातम पद लख सोय॥ येही बारह भावन सार। तीर्थंकर भावहिं निर धार॥ ह्वै वैराग्य महाव्रत लेहि। तब भवभ्रमण जलांजुलि देहि॥१४॥ भैया भावहु भाव अनूप। भावत होहु तुरत शिवभूप॥ सुख अनंत विलसो निश दीश। इम भाख्यो स्वामी जगदीश॥इति॥

२२५–बारहभावना भूधरदासकृत।

दोह–राजा राणा छत्रपति, हाथिनके असवार।
मरना सबको एकदिन, अपनी अपनी वार॥
अपनी अपनी वार सर्वप्राणी जु अवशि मर जावै।
अन्य समस्त पदारथ जगमैं कोऊ थिर न रहावै॥
ये परवस्तु मोहवश मनमें रागरु द्वेष बढावै।
तातैं परमें रागरोष तज जो उत्तम पद पावै॥१॥

दलबलदेई देवता, मात पिता परिवार। मरती विरियां जीवको, कोई न राखनहार॥ कोइ न राखनहार जीवके जब अंतिम दिन आवै॥ औषध यंत्र मंत्रकी शरना गहे

भि कोइ न वचावै । रत्नत्रय धर्महि इक सरना यही सर्व जन गावै । तातैं सबकी सरन छार गहु धर्म मुक्तिपद पावै ॥ दामविना निर्धन दुखी तृष्णावश धनवान । कहूं न सुख संसारमें, सब जग देख्यो छान ॥ सबजग देख्यो छान, सबहि प्राणी अति दुःख जु पावै । कर्म बली नट चारूं गतिमैं, बहु विध नाच नचावै । गद विन तन पावै तो धन नहिं, धन पा तुरत नसावै । तातैं भवतन-भोग-राग तज शिवमग लहि शिव जावै ॥ ३ ॥ आप अकेलो अवतरै, मरै अकेलो होय । यूं कबहूं इस जीवको, साथी सगा न कोय ॥ साथी सगा न कोइ मरनकर जब परभवमें जावै । मात पिता सुत दारा प्रियजन कोइ न साथी आवै ॥ पुण्य पाप या धर्महि साथी, तन धन यहीं रहावै । सुख दुख सबही इकला भुगतै इकला चहुंगति धावै ॥ ४ ॥ जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपनो कोय । घर संपति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ॥ पर है परिजन लोय होय नहिं वस्तु जाति कुल थारा । मोहकर्मवश परको अपने समझै सोइ गँवारा ॥ तू है दर्शन ज्ञानमयी चैतन्य आतमा न्यारा । तातैं पर जड़ त्याग आप गहि जो होवै निस्तारा ॥ ५ ॥ दिपै चामचाद-रमढी, हाड पींजरा देह । भीतर यासम जगतमें, अवर नहीं घिनगेह ॥ अवर नहीं घिनगेह देहसम अशुचि पदारथ कोई । अस्थिमांसमलमूत्र अशुचि सब याही तनतैं होई । चंदन केशर आदि वस्तु तन परसत शुचिता खोवै । ऐसे तनमैं राचि रह्यो तब कैसैं शिवमग जोवै ॥ ६ ॥

सोरठा—मोहनींदके जोर, जगवासी घूमै सदा।
कर्मचोर चहुं ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं॥

गीता—नहीं सुख या जीवको यह कर्म आस्रव नित करै। मन वचन तनके योगतैं नित शुभ अशुभ कर्महि वरै॥ तिन करमके बंधन भये तिन उदयतैं सुख दुख लहो। तातैं मिथ्यात प्रमाद आदिक तजहु जातैं शिव गहो॥ सतगुरु देय जगाय, मोहनींद जब उपशमै। तब कछु बनहिं उपाय, कर्मचोर आवत रुकैं॥ रुकै तब ही कर्म आस्रव किये संवर चावसों॥ अरु महाव्रत पन समिति गुप्ती तीन दश वृष भावसों॥ परिषह सहन अरु भावना चितचिंतये नित ही सही। तातैं जु होवै कर्म संवर यही जिनधुनिमें कही॥८॥

दोहा—ज्ञानदीपतपतेल भर, घर शोधै भ्रम छोर। याविध विन निकसै नहीं, पैठे पूरव चोर॥ पैठे पूरव चोर कर्म सब रहे देह घरमाहीं। बारहविध तपअग्नि जलाये कर्मचोर जलजांहीं॥ उदयभोग सविपाक निर्जरा पकै आम तरु डाली। तपसों ह्वै अविपाक पकावै पालविषै जिम माली॥ पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार। प्रबल पंच इंद्री-विजय, धार निर्जरा सार॥ धार निर्जरा सार सार संवर पूर्वक जो हो है। वही निर्जरा सार कही अविपाक निर्जरा सो है॥ उदयभये फल देय निर्जरै सो सविपाक कहावै। तासों जियका काज न सरिहै सो सब व्यर्थहि जावै॥१०॥ चौदह राजु उतंग नभ, लोक

पुरुष संठान। तामैं जीव अनादितै, भरमत हैं विन ज्ञान ॥ भरमत हैं विन ज्ञान लोकमै कभी न हित उपजाया। पंच परावृत करते करते सम्यकज्ञान न पाया। अब तू मोहकर्मको हरकर तज सब जगकी आसा। जिनपद ध्याय लोकशिर ऊपर करले निज थिर वासा॥११॥ धनकनकंचन राजसुख, सवहि सुलभकर जान। दुर्लभ है संसारमें, एक जथारथ ज्ञान ॥ एक जथारथ ज्ञान सु दुर्लभ है जगमैं अधिकाना। थावर त्रस दुर्लभ निगोदतैं नरतन संगति पाना ॥ कुल श्रावक रतत्रय दुर्लभ अरु षष्ठम गुनथाना। सवतैंदुर्लभ आतम ज्ञान सु जो जगमांहिं प्रधाना ॥ १२ ॥ जाचे सुरतरु देय सुख, चिंतत चिंता रैन। विन जाचे विन चिंतये धर्म सकल सुख दैन ॥ धर्म सकल सुखदैन रैन दिन भवि जीवन मन भाता। षद्‌दर्शन ईसा मूसा महमदका मत न सुहाता॥ वीतराग सर्वज्ञदेव गुरु धर्म अहिंसा जानो। अनेकांत सिद्धांत सप्त तत्त्वनको कर सरधानो ॥१३॥ दोहा–भूधर कवि कृत भावना, द्वादश जगपरधान। तापर इक अलपज्ञने छंद रचे हित जान ॥१४॥ इति ॥

२२६–बारहभावना बुधजनकृत।

गीताछंद–जेती जगतमै वस्तु तेती अथिर परणमती सदा। परणमनराखन नाहिं समरथ इंद्र चक्री मुनि कदा। सुतनारि यौवन और तन धन जान दामिनि दमकसा। ममता न कीजे धारि समतामानि जलमैं नमकसा॥ १ ॥

चेतन अचेतन सब परिग्रह हुआ अपनी थिति लहैं। सो रहैं आप करार माफिक अधिक राखे ना रहैं॥ अब शरण काकी लेयगा जब इंद्र नाही रहत हैं। शरण तो इक धर्म आतम जाहि मुनिजन गहत हैं॥ २॥ सुर नर नरक पशु सकल हेरे कर्मचेरे बन रहे। सुख शासता नहिं भासता सब विपतिमें अतिसन रहे॥ दुख मानसी तो देवगतिमैं नारकी दुख ही भरै। तिर्यंच मनुज वियोग रोगी शोक संकटमैं जरै॥ ३॥ क्यों भूलता शठ फूलता है देख परिकरथोकको। लाया कहां लेजायगा क्या फौज भूषण रोकको॥ जनमत मरत तुझ एकलेको काल केता होगया। सँग और नाहीं लगे तेरे सीख मेरी सुन भया॥४॥ इंद्रीनतैं जाना न जावै तू चिदानंद अलक्ष है। स्वसंवेदन करत अनुभव होत तब परत्यक्ष है॥ तन अन्य जड जानो सरूपी तू अरूपी सत्य है। कर भेदज्ञान सो ध्यान धर निज और बात असत्य है॥५॥ क्या देख राचा फिरै नाचा रूपसुंदरतन लहा। मलमूत्र भांडा भरा गाढा तू न जानै भ्रम गहा॥ क्यों सूग नाहीं लेत आतुर क्यों न चातुरता धरै। तुहि काल गटकै नाहिं अटकै छोड तुझको गिर परै॥६॥ कोइ खरा अरु कोइ बुरा नहिं वस्तु विविभ स्वभाव है। तू वृथा विकलप ठान उरमैं करत राग उपाव है॥ यूं भाव आस्रवं बनत तू ही द्रव्य आस्रव सुन कथा। तुझ हेतुसे पुद्गल करम न निमित्त हो देते व्यथा॥७॥ तन भोग जगत

सरूप लख डर भविक गुरशरणा लिया। सुन धर्म धारा भर्म गारा हर्षि रुचि सन्मुख भया॥ इंद्री अनिंद्री दाबि लीनी त्रस रु थावर बँध तजा। तब कर्म आस्रव द्वार रोके ध्यान निजमैं जा सजा॥८॥ तज शल्य तीनों वरत लीनो बाह्य-भ्यंतर तपतपा। उपसर्ग सुरनर जड पशूकृत सहा निज आतम जपा॥ तब कर्म रसविन होन लागे द्रव्यभावन निर्जरा। सब कर्म हरकै मोक्ष वरकै रहत चेतन ऊजरा॥९॥ विच लोक नंतालोक माहीं लोकमैं द्रव सब भरा। सब भिन्न भिन्न अनादिरचना निमितकारणकी धरा॥ जिनदेव भाषा तिन प्रकाशा भर्मनाशा सुन गिरा। सुन मनुष तिर्यक नारकी हुइ ऊर्ध्व मध्य अधोधरा॥१०॥ अनँतकाल निगोद अटका निकस थावर तनधरा। भूवारितेजबयार व्हैकै वेइँद्रिय त्रस अवतरा॥ फिर हो तिइन्द्री वा चौइन्द्री पंचेंद्री मनबिन बना। मनयुत मनुषगतिहोन दुर्लभ ज्ञान अति दुर्लभ घना॥११॥ जिय! न्हान धोना तीर्थ जाना धर्म नाहीं जपजपा। तननग्न रहना धर्म नाहीं धर्म नाहीं तप-तपा॥ वर धर्म निज आतम स्वभावी ताहि विन सब निष्फला। बुधजन धरम निज धार लीना तिनहिं कीना सब भला। दोहा—अथिराशरणसंसार है, एकत्वअनित्यहि जान। अशुचि आस्रव संवरा, निर्जर लोक वखान॥ बोध-रु दुर्लभ धरम ये, बारह भावन जान। इनको भावै जो सदा क्यों न लहै निर्वान॥१४॥

२२७-बारहभावना जयचंदजीकृत।

दोहा-द्रव्यरूपकरि सर्व थिर, परजय थिर है कौन। द्रव्यदृष्टि आपा लखो, पर्जय नयकरि गौन ॥१॥ शुद्धातम अरु पंच गुरु, जगमैं सरनौ दोय। मोह उदय जियके वृथा, आन कलपना होय ॥ २ ॥ परद्रव्यनतैं प्रीति जो, है संसार अबोध। ताको फल गति चारमें, भ्रमण कह्यो श्रुत शोध ॥३॥ परमारथतैं आतमा, एक रूप ही जोय। कर्मनिमित विकलप घने, तिन नासे शिव होय ॥ ४ ॥ अपने अपने सत्त्वकूं, सर्व वस्तु विलसाय। ऐसें चितवै जीव तब, परतै ममत न थाय ॥५॥ निर्मल अपनी आतमा देह अपावन गेह। जानि भव्य निज भावको, यासों तजो सनेह ॥६॥ आतम केवल ज्ञानमय, निश्चय-दृष्टि निहार। सब विभाव परिणाममय, आस्रव भाव विडार ॥७॥ निज स्वरूपमै लीनता, निश्चय संवर जानि। समिति गुप्ति संजम धरम, धरैं पापकी हानि ॥८॥ संवरमय है आतमा, पूर्व कर्म झड़ जाय। निज स्वरूपको पायकर, लोक शिखर जब थाय ॥९॥ लोक स्वरूप विचारिकै, आतम रूप निहार। परमारथ व्यवहार मुणि, मिथ्याभाव निवारि ॥१०॥ बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहिं। भवमें प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कहाहिं ॥ ११ ॥ दर्शज्ञानमय चेतना, आतमधर्म बखानि। दयाक्षमादिक रतनत्रय, यामैं गर्भित जान ॥१२॥

२२८–बारहभावना।

चाल छन्द १४ मात्रा।

१ अनित्यभावना–जोबनगृह गोधननारी। हयगयजन आज्ञाकारी॥ इन्द्रीयभोग छिन थाई। सुरधनु. चपला चपलाई॥१॥

२ असरनभावना–सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरिकाल दले ते। मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई॥२॥

३ संसारभावना–चहुंगति दुख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करे हैं। सबविधि संसार असारा, यामें सुख नाहिं लगारा॥

४ एकत्वभावना–शुभ अशुभ करमफल जेते, भोगै जिय एकहि तेते। सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथके हैं भीरी॥

५ अन्यत्व भावना—जलपय ज्यों जियतन मेला, पै भिन्न नहिं भेला। तौ प्रगट जुदे धनधामा, क्यों ह्वै इक मिल सुत रामा॥५॥

६ अशुचित्व भावना–यह रुधिर राधमल थैली, कीकस वसादितैं मैली॥ नवद्वार बहै घिनकारी, अस देह करै किम यारी॥६॥

७ आस्रव भावना—जो जोगनकी चपलाई, तातै ह्वै आस्रव भाई। आस्रव दुखकारि घनेरे, बुधवंत तिन्हैं निरवेरे॥

८ संवर भावना–जिन पुण्य पाप नहिं कीना, आतम

अनुभव चित दीना। तिनही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके ॥८॥

९ निर्जरा भावना–निजकाल पाय विधि झरना, तासौं निज काज न सरना। तपकरि जो करम खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै ॥९॥

१० लोक भावना–किन हू न करयो न धरै को, षट-द्रव्यमयी न हरै को। ता लोकमाहि विन समता, दुखसहै जीव नित भ्रमना ॥१०॥

११ बोधदुर्लभ भावना–अंतिम ग्रीवकलोंकी हद, पायो अनंत विरियां पद। पर सम्यकज्ञान न लाध्यो, दुर्लभ निजमें मुनि साध्यो ॥११॥

१२ धर्म भावना–जो भाव मोहतै न्यारे, दृग ज्ञानव्रता-दिक सारे। सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारै ॥१२॥ सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूत उचरिये। ताको सुनिके भविप्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी ॥

२२°–वज्रनाभि चक्रवर्तीकी वैराग्यभावना।

दोहा–बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जगमांहि।
त्यों चक्री नृप सुख करै, धर्म विसारै नाहिं ॥

योगीरासा वा नरेंद्रछंद।

इहविध राज करै नरनायक, भोगै पुण्य विशालो। सुख सागरमें रमत निरंतर, जात न जान्यो कालो ॥ एक दिवस शुभ कर्मसँजोगे क्षेमंकर मुनि बंदे। देख सिरीगुरुके पदपंकज

लोचन अलि आनंदे ॥२॥ तीन प्रदक्षिण दे शिर नायो, कर पूजा थुति कीनी। साधुसमीप विनय कर बैठ्यो चरननमैं दिठि दीनी॥ गुरु उपदेश्यो धर्मशिरोमणि, सुन राजा वैरागे। राजरमा वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे ॥३॥ मुनिसूरजकथनीकिरणावलि, लगत भरम बुधि भागी। भव-तनभोगस्वरूप विचार्यो, परम धरम अनुरागी॥ इह संसार महावन भीतर, भ्रमते ओर न आवै। जामन मरण जरा दों दाझै जीव महादुख पावै ॥४॥ कबहूं जाय नरक थिति भुंजै, छेदन भेदन भारी। कबहूं पशु परजाय धरै तहँ, बध बंधन भयकारी॥ सुरगतिमैं परसंपति देखे राग उदय दुख होई। मानुषयोनि अनेक विपतिमय, सर्व सुखी नहिं कोई ॥५॥ कोइ इष्ट वियोगी विलखै, कोइ अनिष्ट सँयोगी। कोइ दीन दरिद्रि विगूचे, कोई तनके रोगी॥ किसही घर कलिहारी नारी कै बैरी सम भाई। किसहीके दुख बाहिर दीखै, किस ही उर दुचिताई ॥६॥ कोई पुत्र विना नित झूरै, होइ मरै तब रोवै। खोटी सततिसों दुख उपजै, क्यों प्रानी सुख सोवै॥ पुन्य उदय जिनके तिनके भी नाहिं सदा सुख साता। यह जगवास जथारथ देखे, सब दीखै दुखदाता ॥७॥ जो संसार विषै सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागै। काहेको शिवसाधन करते, संजमसों अनुरागै॥ देह अपावन अथिर घिनावन, यामैं सार न कोई। सागरके जलसों शुचि कीजै, तो भी शुद्ध न होई ॥८॥ सात कुधातुभरी मलमूरत चाम लपेटी सोहै।

अंतर देखत या सम जगमें अवर अपावनको है ॥ नवमल-द्वार स्त्रवैं निशिवासर, नाम लिये घिन आवै । व्याधि उपाधि अनेक जहां तहँ, कौन सुधी सुख पावै ॥९॥ पोषत तो दुख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावै । दुर्जनदेहस्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढावै ॥ राचनजोग स्वरूपन याको विरचनजोग सही है । यह तन पाय महातप कीजै यामैं सार यही है ॥ ॥१०॥ भोग बुरे भवरोग बढ़ावैं, वैरी हैं जग जीके । वेरस होंय विपाक समय अति, सेवत लागैं नीके ॥ वज्रअगिनि विषसे विषधरसे, ये अधिके दुखदाई । धर्मरतनके चोर चपल अति, दुर्गतिपंथ सहाई ॥११॥ मोहउदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै । ज्यों ज्यों भोग सँजोग मनोहर, मन-वांछित जन पावै । तृष्णा नागिन त्यों त्यों डंकै, लहर जहरकी आवै ॥१२॥ मैं चक्रीपद पाय निरंतर, भोगे भोग घनेरे । तौ भी तनक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे ॥ राजसमाज महा अघकारन, वैरबढ़ावनहारा । वेश्यासम लछमी अति चंचल, याका कौन पत्यारा ॥१३॥ मोहमहा-रिपु वैर विचारचो, जगजिय संकट डारे । घरकाराग्रह वनि-ता वेड़ी परिजन जन रखवारे ॥ सम्यकदर्शन ज्ञानचरन तप, ये जियके हितकारी । येही सार असार और सव, यह चक्री चितधारी ॥१४॥ छोडे चौदह रत्न नवों निधि, अरु छोडे सँग साथी । कोडि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी ॥ इत्यादिक संपति वहुतेरी, जीरण तृणसम त्यागी ।

नीति विचार नियोगी सुतकों, राज दियो वड़भागी ॥१५॥ होय निशल्य अनेक नृपति सँग, भूषण वसन उतारे। श्री-गुरु चरनधरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे ॥ धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरजधारी। ऐसी संपति छोड बसे वन, तिन पद धोक हमारी ॥१६॥

दोहा–परिगहपोट उतार सब, लीनो चारित पंथ।
निज स्वभावमें थिर भये, वज्रनाभि निरग्रंथ ॥

२३०–सोलह कारण भावना।

चौपाई–आठदोषमद आठ मलीन, छह अनायतन शठता तीन। ये पचीस मल वर्जित होय, दर्शविशुद्धि-भावना सोय ॥१॥ रत्नत्रयधारी मुनिराय, दर्शनज्ञान चरित समुदाय। इनकी विनय विषै परवीन, दुतिय भावना सो अमलीन ॥२॥ शीलधारि धारै समचेत, सहस अठारह अंग समेत। अतीचार नहिं लागै जहां, तृतिय भावना कहिये तहां ॥३॥ आगमकथित अरथ अवचार, यथाशक्ति निजबुधि अनुसार। करै निरंतर ज्ञान अभ्यास, तुरिय भावना कहिये तास ॥ ४ ॥

दोहा–धर्म धर्मके फलविषै, परतैं प्रीति विशेख।
यही भावना पंचमी, लिखी जिनागम देख ॥ ५ ॥

चौपाई–औषधि अभय ज्ञान आहार, महादान ये चार प्रकार। शक्ति समान सदा निरवहै, छठी भावना

धारक वहै ॥ ६ ॥ अनसन आदि मुक्ति दातार, उत्तमतप बारह परकार। बल अनुसार करै जो कोय, सो सातमी भावना होय ॥७॥ यतीवर्गको कारन पाय, विघन होत जो करै सहाय । साधुसमाधि कहावै सोय, यही भावना अष्टमि होय ॥८॥ दशविध साधु जिनागम कहे, पथ पीडित रागादिक गहे । तिनकी जो सेवा सतकार, यही भावना न मी सार ॥९॥ परमपूज्य आतम अरहंत, अतुल अनंत चतुष्टयवंत । तिन की थुति नित पूजा भाव, दशमि भावना भवजलनाव ॥१०॥ जिनवरकथित अर्थ अवतार, रचना करै अनेक प्रकार । आचारजकी भक्ति विधान, एकादशमि भावना जान ॥११॥ विद्यादायक विद्यालीन, गुणगरिष्ट पाठक परवीन। तिनके चरन सदा चित रहै, वहु श्रुत भक्ति बारमी यहै ॥१२॥ भगवतभाषित अरथ अनूप, गणधरग्रंथित ग्रंथ स्वरूप। तहां भक्ति वरतै अमलान, प्रवचनभक्ति तेरमी जान ॥१३॥ षट आवश्यक क्रिया विधान, तिनकी कबहूँ करै न हान। सावधान वरतै थित चित्त, सो चौदहवीं परम पवित्त ॥१४॥ कर जप-तप पूजाव्रत भाव, प्रगट करै जिनधर्मप्रभाव। सोई मारग-परभावना, यही पंचदशमी भावना ॥१५॥ चार प्रकार संघसों प्रीति, राखै गाय वत्सकी रीति। यह सोलहमी सब सुखदान, प्रवचन वातसल्य अभिधान ॥

दोहा—सोलह कारन भावना, परम पुण्यको खेत। भिन्नभिन्न

अरु सोलहों, तीर्थकरपद देत ॥ बंध प्रकृति जिनमतविषै, कही एक सो वीस । सौ सतरह मिथ्यातमैं, बांधत हैं निशदीस ॥ तीर्थंकर आहार द्विक, तीन प्रकृति ये जान । इनको बंध मिथ्यातमैं, कह्यो नहीं भगवान ॥ तातै तीर्थंकर प्रकृति, तीनों समकित माहिं । सोलहकारणसों बधैं, शिवको निश्चय जाहिं ॥

सोरठा—पूज्यपाद मुनिराय, श्री सरवारथ सिद्धिमें ।
कह्यो कथन इस न्याय, देख लीजिये सुबुधिजन ॥

दशवां अध्याय।

परमार्थजकडी संग्रह

२३१—जकडी भूधरकृत

अब मन मेरे बे, सुन सुन सीख सयानी । जिनवर चरना बे, कर कर प्रीति सुज्ञानी ॥ करप्रीत सुज्ञानी शिवसुखदानी धन जीतब है पंचदिना । कोटिबरस जीवो किसलेखै, जिन चरणांबुज भक्ति विना ॥ नरपरजाय पाय अति उत्तम गृहबसि यह लाहा लेरे । समझ समझ बोलैं गुरुज्ञानी, सीख सयानी मन मेरे ॥१॥ तू मति तरसै बे, संपति देख पराई बोये लुनि ले बे, जो निज पूर्वकमाई ॥ पूर्वकमाई संपति पाई देखि, देखि मति झूर मरै । बोय बँबूल शूल-तरु भोंदू, आमनकी क्यों आस करै ॥ अब कछु समझ बूझ नर तासौं, ज्यौं फिर परभव सुख दरसै । कर निज-ध्यान दान तप सं-

जम, देखि विभवपर मत तरसै ॥२॥ जो जगदीसै वे, सुंदर अर सुखदाई। सो सब फलिया वे, धरम-कल्प-द्रुम भाई॥ सो सब धर्म कल्पद्रुमके फल, रथ पायक बहु रिद्धि सही। तेज तुरंग तुंग गज नौ निधि, चौदह रतन छखंड मही॥ रति उनहार रूपकी सीमा सहस छ्यानवै नारि वरै। सो सब जान धर्मफल भाई जो जग सुंदर दृष्टि परै ॥३॥ लगैं असुंदर वे, कंटकबान घनेरे। ते रस फलिया वे, पापकनकतरुकेरे॥ ते सब पापकनकतरुके फल, रोग सोग दुख नित्य नये। कुथित शरीर चीर नहिं तापर, घरघर फिरत फकीर भये॥ भूख प्यास पीडै कन मांगै, होत अनादर पग पगमैं। ये परतच्छ पापसंचितफल, लगै असुंदर जे जगमैं इस भववनमैं वे, ये दोऊं तरु जानो। जो मन मानै वे, सोई सींच सयाने॥ सींच सयाने जो मन मानै, वेर वेर अब कौन कहै। तू करतार तुही फल भोगी. अपने सुखदुख आप लहै॥ धन्य धन्य जिनमारग सुंदर, सेवनजोग तिहूंपनमैं। जासौं समुझि परै सब 'भूधर' सदा शरण इस भव वनमैं ॥५॥

२३२—जकडी रूपचंदकृत।

चेतन अचरज भारी, यह मेरे जिय आवै। अमृतवचन हितकारी, सदगुरु तुमहिं पढावै॥ सद्गुरु तुमहिं पढावै चित दै, अरु तुमहू हौ ज्ञानी। तबहू तुमहि न क्यों हू आवै, चेतन तत्त्व-कहानी॥ विषयनकी चतुराई कहिये, को सरि

करै तुम्हारी। विन गुरु फुरत कुविद्या कैसै, चेतन अचरज भारी ॥१॥ चेतन चतुर सयाने, काहे तुम भ्रम भूले। विषय जु देखि रवाने, कहा जानि जिय फूले ॥ कहा जानि जिय फूले चेतन, तुम तौ विधिना बांचे । सुद्ध सुभाव सहज सुख छोरि जु, इंद्रियसुख-रस-राचे ॥ भोजन सेज वेषकर जुवती, गीतादिक जु रवाने । भये सुवा भव-सेंबरद्रुमके चेतन चतुर सयाने ॥२॥ मोहमहामदमाते, वादि अनादिगँवायौ। अपने धरमनि घातें, विषयनिसौं मन लायौ ॥ विषयनिहीसौं मन लायौ तुम, बाहिर सुंदर दीठे। विषफल परिहर शेष कटुक हैं, सेवत ही सुख मीठे। कामभोगभ्रमभाव भुलाने, रुचै न सदगुरुबातें। हित अनहित कछु समझत नाहीं, मोहमहामदमातें ॥३॥ इंद्रिनिकौ सुख सेये, सुखलव दुख अधिकायौ। सविष सुभोजन जेंये, कब कौनैं सुख पायौ ॥ कब कौनै सुख पायौ चेतन, ये सुख उहकै स्वादै । फरस दन्ति, रस मीन, गंध अलि रूप सलभ मृगनादै ॥ एक एक इंद्रिनिको यह दुख, पाचौं तुमहिं बँधे ये। सावधान किन होहु बंध है, इंद्रिनको सुख सेये ॥४॥ इह संसार मँझारे, सुरनरवर पद पाए। स्वकृतकरमअनुसारे सुख सेये मन भाये ॥ सुख सेये मन भाये तुम चिर, इंद्रिनि रचि सुख माने। तब हू त्रिपति भई नहिं कब हू, अरु तिसना अधिकाने। अब रतनत्रयपथ धरि शिवपुर, जाहु जु होहु सुखारे। रूपचंद कत दुख देखत हो, इह संसार मंझारे ॥

२३३—जकडी रूपचंदकृत ।

राग गौड़ो ।

चेतन चिर भूल्यो भम्यौ, देख्यौ चित न विचारि ।
करम कुसंगति वहि पर्‌यौ, इह भवगहन मझारि ॥
इहभवगहनमझारि मूरख, दुखदवानल नित दह्यो ।
मिथ्यातपितसौं दिष्टि छाई, मुकतिपंथ न तैं लह्यो ॥
तू पंच-इन्द्री-सुखत्रिषा वसि, विषय-खार-सलिल छम्यौ ।
निज सुखसुधारसविमुख चहुँगति, चेतन चिर भूल्यो भम्यौ ॥
चहुँगति चिर भ्रमतहिं गयौ, रहियौ कहुं न थिराय ।
कर्मप्रकृतिपेर्‌यौ फिर्‌यौ, देख्यौ लोक शिराय ॥
देखियौ लोकशिराय सवतैं, ऊंच नीच परजै धरै ।
करम अरु नोकरमरूपी, सकलपुदगल आहरै ॥
परिनयौ परपरनति निरंतर, काज कछु भूलि न भयौ ।
परम-रत्नत्रय-लवधि विनु, चहुं गति चिर भ्रमतहिं गयौ ॥
गाफिल ह्वैके कहा रह्यौ, अपनी सुरत विमारि ।
विषय कषायनिरत भयौ, दीने योग पसारि ॥
दीने नियोग पसारि तीनौं, सुभासुभरसपरिनयौ ।
आश्रये संतत करम वहुविधि, तोहि तिनि आवरि लयौ ॥
जिय कछु सुधिवुधि तोहि नाहीं, मूढमोहग्रहनि गह्यौ ।
गुन सील सरवस खोय अपनौ, गाफिल ह्वैके कहा रह्यौ ॥
चेति चतुरमति चेतना, परपरनतिहिं निवारि ।
दर्शनज्ञानचरित्रमय, अपनी वस्तु सँभारि ॥

अपनी वस्तु सँभारि विसरी, कहा इत उत भटक ही।
वहिरमुख भूल्यो भया कत, छोडि कन तुष झटक ही॥
निजवस्तु अन्तरगत विराजित, चिदानंद निकेतना।
स्वानुभवबुद्धि प्रजुंजि देखहि, चेति चतुरमतिचेतना॥
इह संसारकुवासतैं, दुख देखे चिरकाल।
अब तू यातै विरचकरि, छोडि सकल भ्रमजाल॥
छोडि सकल भ्रमजाल चेतन, रतनत्रय आराध ही॥
आपुने बलहिं सँभार अतिबल, करम-बैरिनि साध ही॥
समरसीभाव सुभावपरनति, सदा रहहि उदासतैं।
'रूपचंद' सहजहीं छूटहिं, इह संसारकुवासतैं॥

२३४—जकडी दौलतरामकृत।

अब मन मेरा बे, सीखवचन सुन मेरा। भजि जिनवर पद बे, ज्यौं विनसै दुख तेरा॥ विनसै दुख तेरा भववन-केरा मनवचतन जिनचरन भजौ। पंचकरनवश राख सु-ज्ञानी, मिथ्यामतमग-दौर तजौ। मिथ्यामतमग पगि अनादितै, तै चहुँगति कीन्हा फेरा। अबहू चेत अचेत होय मत, सीख वचन सुन मेरा॥१॥ इस भववनमैं बे, तै साता नहिं पाई। वसुविधिवश ह्वै बे, तैं निजसुधि विसराई॥ तैं निज-सुधि विसराई भाई, तातै विमल न बोध लहा। परपरनति मैं मगन भयो तू, जन्म जरा-मृत-दाह-दहा॥ जिनमत सारसरोवरकौं अब,—गाहि लागि निजचिंतनमैं। तो दुख-दाह नशै सब नातर, फेर फँसै इस भववनमैं॥२॥ इस

तनमैं तू वे, क्या गुन देख लुभाया। महा अपावन वे, सतगुरु याहि बताया॥ सतगुरु याहि अपावन गाया, मलमूत्रादिकका गेहा। कृमिकुलकलित लखत घिन आवै, यासों क्या कीजै नेहा॥ यह तन पाय लगाय आपनी, परनति शिवमगसाधनमैं। तो दुखदंद नशै सब तेरा, यही सार है इस तनमें ॥३॥ भोग भले न सही, रोग शोकके दानी। शुभगतिरोकन वे दुर्गतिपथ अगवानी॥ दुर्गतिपथ अगवानी हैं जे, जिनकी लगन लगी इनसौं। तिन नानाविध विपति सही है, विमुख भयौ निजसुख तिनसौं॥ कुंजर झख अलि शलभ हिरन इन, एक अक्षवश मृत्यु लही। यातैं देख समझ मनमांहीं, भवमें भोग भले न सही ॥४॥ काज सरै तब वे जब निजपद आराधै। नशै भवावलि वे निराबाधपद लाधै॥ निराबाधपद लाधै तब तोहि, केवलदर्शनज्ञान जहां। सुख अनंत अति-इंद्रियमंडित, वीरज अचल अनंत तहां॥ ऐसा पद चाहै तो भज निज बार बार अब को उचरै। 'दौलत' मुख्य उपचार रत्नत्रय, जो सेवै तो काज सरै।

२३५–जकडी दौलतरामकृत।

वृषभादि जिनेश्वर ध्याऊं, शारद अंबा चित लाऊं। द्विविध-परिग्रह-परिहारी, गुरु नमहूं स्वपर हितकारी॥ हितकारि ताकर देवश्रुत गुरु, परख निजउर लाइये। दुखदायकुपथविहाय शिवसुख,-दाय जिनवृष ध्याइये॥ चिरतैं कुमगपगि मोहठगकरि, ठग्यौ भव-कानन परयौ। व्याली-

सद्विकलख जौनिमैं, जर-मरन-जामनदवजरयौ ॥१॥ जब मोहरिपु दीन्हीं घुमरिया, तसवश निगोदमै परिया। तहां स्वास एककेमाहीं, अष्टादश मरन लहाहीं ॥ लहि मरन अंतमुहूर्तमैं, छयासठ सहस शत तीन ही। षटतीस काल अनंत यौं दुख, सहे उपमा ही नहीं॥ कबहू लही वर आयु छिति-जल,-पवन-पावक तरुतणी। तस भेद किंचित कहूं सो सुन कह्यौ जो गोतमगणी॥ २॥ पृथिवी द्वयभेद बखाना, मृदु माटीकठिन पखाना। मृदु द्वादशसहस बरसकी, पाहन बाईस सहसकी॥ पुनि सहस सात कही उदक त्रय, सहसवर्ष समीरकी। दिन तीन पावक दश सहस तरु, प्रभृति नाश सुपीरकी॥ विनघात सूक्ष्म देहधारी, घातजुत गुरुतन लह्यौ। तहँ खनन तापन जलन व्यंजन, छेद-भेदन दुख सह्यौ॥ शंखादि दुइंद्री प्रानी, थिति द्वादशवर्ष बखानी। यूकादि तिइंद्री हैं जे, वासर उनचास जियैं ते॥ जीवे छमास अली प्रमुख, व्यालीस सहसउरगतनी। खगकी बहत्तरसहस नव-पूर्वांग सरिसृपकी भनी॥ नरमत्स्यपूरवकोटकी थिति कर-मभूमि बखानिये। जलचरविकलविन भोगभू-नर-पशु त्रिपल्य प्रमानिये॥ ४॥ अघवश करि नरक बसेरा, भुगतैं तहँ कष्ट घनेरा। छेदै तिलतिल तन सारा, छेपैं द्रहपूतिम-झारा॥ मझार वज्रानिल पचावें, धरहिं शूली ऊपरें। सींचें जु खारे वारिसों दुठ, कहैं व्रण नीके करें॥ वैतरणि-सरिता समलजल अति दुखद तरु सेंवलतने। अति

भीमवन असिक्रांत समदल, लगत दुख देवें घने ॥५॥ तिस भूमें हिम गरमाई, सुरगिरि सम अस गल जाई। तामें थिति सिंधु तनी है, यों दुखद नरक अवनी है ॥ अवनी तहांकीतैं निकसि, कबहूं जनम पायौ नरौ। सर्वांग सकुचित अति अपावन, जठरजननीके परौ ॥ तहँ अधोमुख जननी-रसांश, थकी जियौ नव मास लौं। ता पीरमें कोउ सीर नाहीं, सहै आप निकास लौं ॥ ६ ॥ जनमत जो संकट पायौ, रसनातें जात न गायौ। लहि बालपने दुखभारी ॥ तरुनापौलयौ दुखभारी दुखकारि इष्ट वियोग अशुभ,-सँयोग सोग सरोगता। परसेव ग्रीषमसीतपावस, सहै दुख अतिभोगता ॥ काहू कुतिय काहू कुबांधव, कहुं सुता व्यभिचारिणी। किसहू विसन-रत पुत्र पुष्ट, कलत्र कोऊ पररिणी ॥ ७ ॥ वृद्धापनके दुख जेते, लखिये सब नयननतें ते। मुख लाल बहै तन हालै, विन शक्ति न वसन सँभालै ॥ न संभाल जाके देहकी तो, कहो वृषकी का कथा। तबही अचानक आन जम गहै, मनुजजन्म गयौ वृथा ॥ काहू जनम शुभ ठान किंचित, लह्यो पद चउदेवको। अभियोग किल्विष नाम पायौ, सह्यौ दुख परसेवको॥ तहँ देख महा सुररिद्धी, झूरचो विषयनकरि गृद्धी। कबहूं परिवार नसानौ, शोकाकुल ह्वै विलसानौ॥ विललाय अति जब मरन निकटयौ, सह्यो संकट मानसी। सुरविभव दुखद लगी तबै जब, लखी माल मलानसी ॥ तबही जु सुर उपदेशहित

समुझाइयौ समुझ्यौ न त्यौं। मिथ्यात्वजुत च्युत कुगति पाई, लहै फिर सो स्वपद क्यों॥ यों चिर भव-अटवी गाही, किंचितसाता न लहाही। जिनकथित धरम नहिं जान्यो, परमाहिं अपनपो मान्यो॥ मान्यो न सम्यक त्रयातम आतम अनातममैं फस्यो। मिथ्याचरन दृग्ज्ञान रंज्यौ, जाय नवग्रीवक बस्यो॥ पै लह्यो नहिं जिनकथित शिवमग, वृथा भ्रम भूल्यो जिया। चिदभावके दरसावविन सब गये अहले तप किया॥१०॥ अब अद्भुत पुण्य उपायो, कुल जात विमल तू पायो। यातें सुन सीख सयाने, विषयनसों रति मत ठाने॥ ठाने कहा रति विषयमें ये, विषम विषधर-सम लखो। यह देह मरत अनंत इनकों, त्यागि आतमरस चखो॥ या रसरसिकजन बसे शिव अब, बसें पुनि बसि है सही। 'दौलत' स्वरचि परविरचि सतगुरु, सीख नित उर धर यही॥

२३६—जकडी रामकृष्णकृत।

अरहंतचरन चित लाऊं। पुन सिद्ध शिवंकर ध्याऊं॥ बंदौं जिनमुद्राधारी। निर्ग्रंथ यती अविकारी॥ अविकार करुणावंत बंदौं, सकललोकशिरोमणी। सर्वज्ञभाषित धर्म प्रणमूं, देय सुख संपति घनी॥ ये परममंगल चार जगमें, चारु लोकोत्तम सही। भवभ्रमत इस असहाय जियको, और रक्षक कोउ नहीं॥१॥ मिथ्यात्व महारिपु दंड्यो। चिरकाल चतुर्गति हंड्यो॥ उपयोग-नयन-गुन खोयो। भरि नींद निगोदे

सोयौ ॥ सोयौ अनादि निगोदमैं जिय, निकर फिर थावर भयौ । भू तेज तोय समीर तरुवर, थूल सूच्छमतन लयौ ॥ कृमि कुंथु अलि सैनी असैनी व्योम जल थल संचरचौ । पशुयोनि बासठलाख इसविध, भुगति मर मर अवतरयौ ॥ अति पाप उदय जब आयौ । महानिद्य नरकपद पायौ ॥ थिति सागरोंबंध जहां है । नानाविध कष्ट तहां है ॥ है त्रास अति आताप वेदन, शीत बहुयुत है मही । जहां मार मार सदैव सुनिये, एक क्षण साता नहीं ॥ मारक परस्पर युद्ध ठान, असुरगण क्रीडा करै । इहविधि भयानक नरकथानक, सहैं जी परवश परैं ॥ ३ ॥ मानुषगतिके दुख भूल्यो । बसि उदर अधोमुख झूल्यो ॥ जनमत जो संकट सेयो । अविवेक उदय नहिं वेयो ॥ वेयो न कछु लघुबालवयमें, वंशतरुकों-पल लगी । दलरूप यौवन वयस आयौ, काम-दौं-तब उर जगी ॥ जब तन बुढापो घटचो पौरुष, पान पकि पीरो भयो । झड़ि परयो काल-बयार बाजत, बादि नरभव यौं गयौ ॥४॥ अमरापुरके सुख कीने । मनवांछित भोग नवीने ॥ उरमाल जबै मुरझानी । विलप्यो आसन-मृतु जानी ॥ मृतु जान हाहाकार कीनौं, शरन अब काकी गहौं । यह स्वर्ग-संपति छोड अब मैं, गर्भवेदन क्यों सहौं ॥ तब देव मिलि समुझाइयो, पर कछु विवेक न उर बस्यो । सुरलोक-गिरिसों गिरि अज्ञानी, कुमति-कादौं फिर फँस्यो ॥५॥ इहविध इस मोही जीनें । परिवर्तन पूरे कीनें ॥ तिनकी बहु कष्टकहानी ।

सो जानत केवलज्ञानी ॥ ज्ञानी विना दुख कौन जाने, जगत-वनमें जो लह्यो । जरजन्ममरणस्वरूप तीछन,त्रिविध दावानल दह्यो ॥ जिनमतसरोवरशीतपर अब, बैठ तपन बुझाय हो । जिय मोक्षपुरकी बाट बूझौ, अब न देर लगाय हो ॥ यह नरभव पाय सुज्ञानी । कर कर निजकारज प्रानी ॥ तिर्यंचयोनि जब पावै । तब कौन तुझे समझावै ॥ समुझाय गुरु उपदेश दीनो, जो न तेरे उर रहै । तो जान जीव अभाग्य अपनो, दोष काहूको न है ॥ सूरज प्रकाशै तिमिर नाशै, सकल जगको तम हरै । गिरि-गुफा-गर्भ-उदोत होत न, ताहि भानु कहा करै ॥७॥ जगमाहिं विषयवन फूल्यो । मनमधुकर तिहिंविच भूल्यो ॥ रसलीन तहां लपटान्यो । रस लेत न रंच अघान्यो ॥ न अघाय क्यों ही रमै निशदिन, एक छन भी ना चुकै । नहिं रहै बरज्यो बरज देख्यो बार बार तहां ढुकै ॥ जिनमतसरोज-सिधांतसुंदर, मध्य याहि लगाय हो । अब 'रामकृष्ण' इलाज याको, किये ही सुखपाय हो ॥८॥

२३७–जकडी जिनदासकृत ।

राग आसासिंधु ।

थिर चिर देवा गधणर सेवा, कर गुनमाला ज्ञान । थिर चिर जीवा भरमनि-भमता, करि करुना परिनाम ॥ करि करुनापरिनाम सु जंता, गुणकरि सबै समाना । कर्मतणी थिति घटि बधि दीसै, निश्चय केवलज्ञाना ॥ यों जाने विनु

जतन करीजै, परिहरिये परपीड़ा। मूर्ख होय जिन आप बँधायो, ज्यौं कुसियाला कीड़ा ॥१॥ ज्यौं कुसियाला अपनी लाला, फंदति आपौआप। त्यौं तू आला विकलपमाला, बंधति पुन्नरु पाप ॥ पुन्नरु पाप दुवै दिढ़बंधन, लोकशिखर किम जावै। थिर चर होय चहूंगति भीतर, रह्यो चिदानँद छावै ॥ चितमैं चेत चमक्त नाहीं, साथि सरूपी कूड़ा इंद्री पंचतणे वसि पड़करि, विषय विनोदां बूड़ा ॥ विषय विनोदां आप विरोध्या, जात निगोद अपार। तहँ काल अनंता दुःख सहंता एकलडौ निरधार ॥ एकलडौ निरधार निरंतर, जामन मरन करंतौ। कर्मविपाकतणै वसि पडियौ, फिर फिर दुख सहंतौ ॥ बरजै कौन स्वयंकृत कर्महिं यौंहि अनादि सुभावै। वांछित कहौ सुक्ख किमि पावै, दंसणतणौ अभावै ॥ ३ ॥ दंसण गुण विन जात जिके दिन, सो दिन धिक धिक जानि। धन्य सोहि सोहि परभिन्नो, भ्रांति न मनमहिं आनि ॥ भ्रांति सुमिथ्यादृष्टीलच्छन, संशयरहित सुदिष्टी। यौं जाने विन गह्यौ गहीजै, पद पावै परमिष्टी ॥ ए दुइ भेद जिनागम कहिया, ते मनमैं अवधारै। सुद्ध सुसम्यकदरसन कारन, मिथ्यादृष्टि निवारै ॥४॥ मिथ्याती मुनिवर अवर सु तरुवर, सहैं कलेश अनेक। तप तप्यो न तपियौ, खप्यौ न खपियौ दोऊं रहितविवेक ॥ दोऊं रहितविवेक जीव इक, कर्म बँधै इक छोड़ै। आस्रव बंध उदय नहिं समझत, क्योंकर कर्महिं तोड़ै ॥ दंसण-णाण-चरण-

गणरयणा, मूरख छिन न सँभाले। काचसमान विषयसुख सांटै ते गहि तीनौं रालै ॥५॥ गहि तीनो रयणा तनमन वयणा, चर निज चरन सयान। डंडसि करुणा खंडसि मयणा, मंडसि धरमहि ध्यान॥ मंडसि ध्यान कर्मछयकारण, कारण काज दिखावै। काज सुदंसण ज्ञान सकति सुख, सहजहि चारौं पावै॥ बहुड़ि न कोई रहै कृतकर्मह, जो जग जीवा ताणै। एक समयमैं केवलज्ञानी, अतीत अनागत जाणै ॥६॥ अतीत अनागत देखत जानत, सो हम लख्यौ न देव। जो हूं देखत देखि जु हरखत, हरखि करत तसु सेव॥ हरखि हरखि तसु सेव करंता, जिन आपनसौ कीनौं। मोहनधूलि धरी सिर ऊपरि, ठगि रणयत्तो लीनौं॥ अब श्रीकुंदकुंदगुरुरयणा, जिन विन घड़ि न सुहावै। आपणडा-गुण सहज सुनिर्मल, यौं जिनदासहि गावै ॥७॥ इति॥

ग्यारहवां अध्याय।

कथासंग्रह

२३८—निशिभोजनभुंजन कथा

दोहा—नमौं सारदा सार बुध, करैं हरैं अघ लेप।
निशिभोजनभुंजन कथा, लिखूं सुगम संक्षेप ॥१॥

जम्बूद्वीप जगत विख्यात।भरतखंड छवि कहिय न जात॥ तहां देश कुरुजांगल नाम। हस्तनागपुर उत्तम ठाम॥ यशोभद्र भूपत गुण बास। रुद्रदत्त द्विज मोहित

तास ॥ अश्वमास तिथि दिनआराध पहिली पड़वा कियो सराध ॥ वहुत विनय सों नगरी तने । न्योंत जिमाये व्राह्मण घने ॥ दान मान सवहीको दियो । आप विप्र भोजन नहिं कियो॥इतने राय पठायो दास । मोहित गयो रायके पास॥ राज काज कछु ऐसे भयो । करम करावत सव दिन गयो ॥ घरमें रात रसोई करी । चुल्हे ऊपर हांड़ी धरी ॥ हींग लेन उठि वाहर गई । यहां विधाता औरहि ठई॥मेंढक उछल परो तामांहि। त्रिया तहां कछु जानो नाहिं॥ वैगन छौंक दिये तत्काल । मैंढक मरो होय वेहाल ॥ तवहुं विप्र नहिं आयो धाम । धरी उठाय रसोई ताम ॥ पराधीनकी ऐसी वात । औसर पायो आधी रात ॥ सोय रहे सव घरके लोग । आग न दीवा कर्म संयोग । भूखो मोहित निकसे प्रान ॥ ततछिन वैठो रोटी खान ॥ वैंगन भोलै लीनो ग्रास । मेंढक मुँहमें आयो तास ॥ दांतन तले चव्यौ नहिं जवै । काढ़ धरो थालीमें तवै ॥ प्रात हुए मैंढक पहिचान । तौ भी विप्र न करी गिलान ॥ थिति पूरी कर छोड़ी काय । पशुकी योनी उपजो जाय ॥

सोरठा—घुघूं कागं विलावं, सावरं गिरधं पखेरुआ । सूकरं अजगरं भाव, वाघं गोहं जलमें मगंरं । दश भव इहविधि थाय, दशों जन्म नरकहिं गयो । दुर्गति कारण पाय फल्यौ पाप वटवीजवत् ॥

दोहा—निशि भोजन करिये नहीं, प्रगट दोष अविलोय ।
परभव सव सुख संपजे, यह भव रोग न होय ॥

छप्पय (छन्द)

कीड़ी बुधबल हरे, कम्प गः करे कसारी। मकड़ी कारण पाय कोढ़ उपजे दुख भारी ॥ जुआं जलोदर जने फांस गल विथा बढ़ावै। बाल सवे सुरभंग वमन माखी उपजावे ॥ तालुवे छिद्र बीछू भखत और व्याधि बहु करहि सब। यह प्रगट दोष निश असनके परभव दोष परोक्ष फल।

जो अघ इह भव दुख करे, परभव क्यों न करेय, डसत सांप पीड़ै, तुरत लहर क्यों न दुख देय। सुवचन सुन डाहारजै, मूरख मुदित न होय। मणिधर फण फेरे सही, नहीं साप वह होय ॥ सुवचन सतगुरुके वचन, और न सुवचन कोय। सतगुरु वही पिछानिये, जा उर लोभ न होय। ५॥ भूधर सुवचन सांभलो, स्वपर पक्षकर चौन। समुद्ररेणुका जो मिलै, तोड़े तैं गुण कौन ॥ इति ॥

२३१–अठारह नातेकी कथा।

मालवदेश उज्जयनीविषै राजा विश्वसैन तहां सुदत्त नाम श्रेष्ठी वसै सोलह कोटिको धनी सो वसन्ततिलका नाम वेश्यापर आसक्त होय ताहि अपने घरमें राखी, सो गर्भवती भई, जब रोग सहित देह भई, तब घरमेंसे काढि दई। बहुरि वसन्ततिलका दुखी होकर अपने घर आई तो उसके गर्भतें एक पुत्र और एक पुत्री साथही जुगल उत्पन्न होनेके कारण खेदखिन्न हुई तब क्रोधित होकर तिन दोऊ बालकनको जुदे २ कम्बलमें लपेटि पुत्रीको तो दक्षिण द्वारपर डाली

सो प्रयागनिवासी वनजारेने लेकर अपनी स्त्रीको सौंपा, कमला नाम धरा, अरु पुत्रको उत्तर द्वारपर डाला सो साकेतपुरेके एक सुभद्र वनजारेने अपनी स्त्री सुव्रताको दिया और धनदेव नाम धरा। बहुरि पूर्वोपार्जित कर्मके वशतैं धनदेव और कमलाके साथ विवाह हुआ, स्त्री-भरतार हुए, पाछै धनदेव व्यापार करने वास्ते उज्जयनी नगरी गया तहां वसन्ततिलका वेश्यासों लुब्ध भया तब ताके संयोगतैं वसन्ततिलकाके पुत्र भया वरुण नाम धरा, उधर एक दिन कमलाने निमित्तज्ञानी मुनिसे इसकी कुशल वार्ता पूंछी सो मुनिने पूर्वभवसों लेकर वर्तमानतक सकल वृत्तान्त कहा।

इनका पूर्व भव वर्णन।

इसी उज्जयनी नगरीविषैं, सोमशर्मा नाम ब्राह्मण ताकी काश्यपी नाम स्त्री, तिनके अग्निभूत सोमभूत नामके दोय पुत्र, सो दोनों कहांतैं पढ़कर आवैं थे, मार्गमें जिनदत्त मुनिको ताकी माता जो जिनमती नाम अर्जिकाकूं शरीर समाधान पूछता देखा और जिनभद्रनामा मुनिको सुभद्रनामा अर्जिका पुत्रकी स्त्री थी सो शरीर समाधान पूछती देखा। तहां दोनों भाईने हास्य करीकी तरुणाकै वृद्ध स्त्री और वृद्धकैं तरुणी स्त्री, विधाताने अच्छी विपरीत रचना करी। सो हास्यके पापतै सोमशर्म्मा तो वसन्ततिलका वेश्या हुई, बहुरि अग्निभूत सोमभूत दोनों भाई मरिकरि वसन्त तिलकाके पुत्र पुत्री जुगल हुए तिनने कमला अरु धनदेव

नाम पाये। बहुरि काश्यपी ब्राह्मणीका जीव धनदेवके संयोगतैं वरुण नाम पुत्र भया। इसप्रकार पूर्वभवका उज्ज-यनी नगरीविषैं सकल वृत्तान्त सुननेसे कमलाको पहिले जन्मका जातिस्मरण हुआ। तब वह बसन्ततिलकाके घर गई तहां वरुण पालनेमें झूलै था सो ताको कहती भई कि हे बालक! तेरे साथ मेरे छै नाते हैं सो सुन--

१ प्रथम तो मेरा भरतार जो धनदेव ताके संयोगतैं तू पैदा भया सो मेरा भी (सौतेला) पुत्र है २-दूजे धनदेव मेरा भाई है ताका तूं पुत्र तातैं मेरा भतीजा भी है। ३-तीजे तेरी माता बसन्ततिलका सो ही मेरी माता है तातैं सहोदर है। ४-चौथे तू मेरे भरतार धनदेवका छोटा भाई तिसकारण मेरा देवर भी है। ५-पांचवें धनदेव मेरी माता बसन्ततिलकाका भरतार है तातैं धनदेव मेरा पिता भया ताका तूं छोटा भाई तातै काका हुवा ६-छठें धनदेव मेरा पुत्र ताका तूं पुत्र तातैं तू मेरा पोता भी है।

इसप्रकार वरुणके साथ छह नाते कहत हती सो बसंत-तिलका तहां आई और कमलाको बोली कि तूं कौन है सो मेरे पुत्र सों इसप्रकार छै नाते सुनावै है? तब कमला बोली तेरे साथ भी मेरे छह नाते हैं सो सुन-

१ प्रथम तो तू मेरी माता है क्योंकि धनदेवके साथ तेरे ही उदरसे युगल उपजी हूं। २ दूजे धनदेव मेरा भाई ताकी तू स्त्री तातें मेरा भौजाई भी हैं। ३ तीजे तू मेरी

माता ताका भर्तार धनदेव मेरा पिता भया ताकी तू माता तातैं मेरी दादी भी है। ४ चौथे मेरा भरतार धनदेव ताकी तू स्त्री तातें मेरी सं तिन भी है। ५ पांचवें धनदेव तेरा पुत्र सो मेरा भी पुत्र ताकी स्त्री तातें मेरी पुत्रवधू भी है। ६ छठे मैं धनदेवकी स्त्री तू धनदेवकी माता सो मेरी सासू भी है। इसप्रकार वेश्या नाते सुनकर चित्तमें विचारने लगी त्योंही तहां धनदेव आया ताकों देखि कमल बोली कि तुम्हारे साथ भी मेरे छह नाते हैं सो सुनो—१ प्रथम तो तू और मैं इसी वेश्याके उदरसों जुगल उपजे सो मेरा भाई है। २ दूजे तेरा मेरा विवाह भया सो मेरा पति भी है। ३ तीजे वसन्ततिलका मेरी माता ताका तू भरतार तातै मेरा पिता भी है। ४ चौथे वरुण तेरा छोटा भाई सो मेरा काका भया ताका तू पिता सो काकाका पिता सो मेरा दादा भी भया। ५ पांचवें मैं वसन्ततिलकाकी सौत अरु तू मेरा सौतिनिपुत्र तातैं तू मेरा भी पुत्र है। ६ छठे तू मेरा भरतार तातैं तेरी माता वसन्ततिलका मेरी सासु भई और सासुके तुम भरतार तातें मेरे ससुर भी भये।

इस प्रकार एक ही जन्ममें इन प्राणियोंके परस्पर अठारह नाते ये ताको उदाहरण (दृष्टांत) कहा कि इस भांति संसारकी विचित्र विडंबना है इसमें कुछ सन्देह नहीं।

इस प्रकार अठारह नातेका व्यौरा

समाप्त।

२४०–अथ ज्येष्ठजिनवर कथा।

चौपाई–वंदौं ऋषभदेव जिनराज। पुनि सादर वन्दौं सुख साज॥ गोतम बन्दौं शुभमति लहौं। कथा जेठ जिनवरकी कहौं॥१॥ आरज खण्ड देश गुजरात। खंभपुरी नगरी सुविख्यात। चन्द्रसिखर राजा गुनवन्त। रानी चन्द्रमतीको कन्त॥२॥ विप्र सोमशर्मा इक बसै। सौमिल्या बनिता तसु लसै। जज्ञ बालक जाको सेतजान। सोमश्री ता त्रिया बखान॥३॥ सोम विप्रको मरन जु भयो। यज्ञ बालकको अति दुख थयो॥ सोमश्री सो सासू कही। नूतन कलस भरनकोदई॥ विप्रनके घर देहु पठाय। अरु पीपरको सींचउ जाय॥ आज्ञाले पनिघटपैं गई। मिली सखी तहं ठाढ़ी भई॥५॥ तापे जेठ जिनाली वर्त। आज सखी नगरी सब कर्त॥ सुनि कर मोनश्री सुधि भई। भरि ले घट चैत्यालय गई॥६॥ तिनगुरु पारसलियो व्रतसही। जैसीविधि ग्रन्थनमें कही॥ उत्तमविध चोवीस जो वर्ष। मध्यम बारह लेखन हर्ष॥७॥ लैव्रत पूजा जिनकी करी। मिथ्या बुद्धि सकल परिहरी॥ काहु दुष्ट सासू सों कही। बहू गई चैत्यालय सही॥८॥वह कलसा जिनवरपर ढरचा। सुनते ब्राह्मणि कोप जो करचा॥ सोमश्री घरमें जब गई। सासु बचन कटुबोलत भई॥९॥तू घरमें आवैगी जबै॥ मेरी घटल्यावेगी जबै। ऐसे वचन सासुके सुने। सोमश्री दव मस्तक धुनै॥१०॥ वह गई तहां जहा हतो कुम्हार। भैया

मेरो वचन सम्हार ॥ सोनेको तू कंकन लेहु कलस तीस हमको देहु। तव तुम्हार कंकन नहिं लयो। तिन कल साले ताको दयो ॥ धनि पुत्री तू करि व्रत अवै। मेरेते घट लीजै सवै ॥१२॥ मास जेष्ठ तौ यह व्रत करौ। कछुक पुन्य मेरो अनुसरौ। तवतिन तापेतै घट लियो। भरि जल जाय सासुको दियो ॥१३॥ व्रत मनमोद कुम्हार जो मरयौ। श्रीधर राजा सो अवतरयौ ॥ करि व्रत सोमश्री जो मरी। श्रीधरके पुत्री अवतरी ॥१४॥ कुम्भश्री है ताको नाम। राखै चित्त जिनेश्वर धाम ॥ ऐसे करत वहुत दिन गये। मुनिउहै वनमें आये नये ॥१५॥ परिजन सहित राय संग-गयौ। नगर लोग आनन्दित भयौ ॥ द्वैविध कर्मकिया पर-कास। सुनिकस गयो चित्तको त्रास ॥१६॥ वहां सोमल्या देखी दुखी। मन कुचौल अरु नेक न सुखी। पूछै राय कहा इनकीन। जाते भई महा आधीन ॥१७॥ सुनिमुनि अवधि ज्ञान परकास। यह है सोमश्रीकी सासु ॥ निंद्यो व्रत जिन-वरको तवै। ताको दुख भुगतत हैं अवै ॥१८॥ कुम्भ रोग माथेमें भयो। पूरव पापनको फल लयौ। सोमश्री मर उप-जी सुता। सो यह कुम्भश्री गुण युता॥ सुनि कुम्भश्री जोडे हाथ। मोपर कृपा करौ मुनिनाथ ॥ यह मेरी सासूको जीव। दीखत दुखित रु विकल शरीर ॥२०॥ एसी विध उपदेशो अवै। जाते जाइ दुक्ख भजि सवै। मुनिवर कहै याहि तू छुवै। अरु गन्धोदक ऊपर चुवै ॥२१॥ अरु सेवौ जिन-

वरके पांय। सब दरिद्र दुख वेग मिटांय। तब कुम्भश्री कियो उपगार। दुर्गन्धाको गयो विकार ॥ सोमिल्या रु अर्जिका भई। तप करि प्रथम स्वर्गमें गई॥ कुम्भश्री फिर यह व्रत करयो। दूजे स्वर्ग देव अवतरयो॥ २३॥ परम्परा वह जे हैं मुक्ति। भविजन करौ सबे व्रत युक्ति॥ सत्रहपर अट्ठावन जान। पण्डितजन सम्बत्सर मान ॥२४॥ जेष्ठशुक्ल गुरुएकादसी। नगरगहेली शुभ मति वसी॥ जो यह करै भव्य व्रत कोय। सो नर नारि अमरपति होय ॥२५॥ रोग सोग दुखसंकट जाय। ताकी जिनवर करी सहाय। जो नर नारि इक चित्त करै। मन वांछित सुख संपति वरै ॥२६॥ इति

२४१—सुगंधदशमीव्रतकथा।

चौपाई—वर्द्धमान वंदों जिनराय। गुरु गौतम वंदों सुखदाय॥ सुगंधदशमीव्रतकी कथा। वर्द्धमानी सुप्रकाशी यथा॥१॥ मगधदेश राजगृहि नाम। श्रेणिक राज करै अभिराम। नाम चेलना गृह पटरानि। चंद्ररोहिणीरूप-समान॥२॥ नृप बैठ्यो सिंहासन परे। वनमाली फल लायो हरे॥ कर प्रणाम वच नृपतै कह्यो। प्रमोदचित्तसे ठाड़ो रह्यो॥३॥ वर्द्धमान आये जिनस्वामि। जिन जीत्यो उद्धत अरि काम॥ इतनी सुनत नृपति उठ चला। पुरजनयुत दलबलसे भला॥४॥ समोसरण वंदे भगवान। पूजा भक्ति धार बहुमान॥ नरकोठा बैठ्यो नृप जाय। हाथ जोड़

पूछ्यो शिरनाय ॥५॥ सुगंधदशमीव्रत फल भाख । ता नरकी कहिये अब साख ॥ गणधर कहैं सुनो मगधेश । जंबुद्वीप विजयार्ध प्रदेश ॥६॥ शिवमंदिरपुर उत्तरश्रेणि । विद्याधर प्रीतंकर जैनि ॥कमलावती नारि अति रूप । सुरकन्यासे अधिक अनूप ॥ आगरदत्त वसे तहां साह । जाके जिनव्रतमें उत्साह ॥ धनदत्ता वनिता गृह कही । मनोरमा ता पुत्री सही ॥८॥ मुनि सुगुप्त गृहपर आइयो । देख मुनींद्र दुःख पाइयो ॥ कन्या मुनिकी निंदा करी । कुछ मनमें शंका नहिं धरी ॥९॥ नग्नगात दुर्गंध शरीर । प्रगटपनै देही नहिं चीर ॥ मुख तांबूल हतो मुनि अंग । नाख्यो सुखको कीनो भंग ॥१०॥ भोजन अंतराय जब भयो । मुनि उठ जाय ध्यान वन दियो ॥ समताभाव धरै उरमांहि । किंचित खेद चित्तमें नाहिं ॥११॥ बीती अवधि समय कछु गयो । मनोरमाको काल सु भयो ॥ भई गधी पुनि कुकरी ग्राम । अपर ग्राम भइ सूकरि नाम ॥१२॥ मगध सुदेश तिलकपुर जान । विजयसेन तहँका नृप मान ॥ चित्ररेखा ता रानी कही । तस पुत्री दुर्गंधा भई ॥१३॥ एक समय गुरु वंदन गयो । पूजा कर बिमतीको ठयो ॥ मो पुत्री दुर्गंध शरीर । कहो भवांतर गुणगभीर ॥१४॥ राजा वचन मुनीश्वर सुने । मुनि विरतांत रायसे भने ॥ सब विरतांत हाल जो जान । मुनि राजासे कह्यो बखान ॥१५॥ सुन दुर्गंधा जोडे हाथ । मोपर कृपा करो मुनिनाथ ॥ ऐसा व्रत उपदेशो

मोहि। जामों तनु निरोग अब होहि ॥१६॥ दयावंत बोले मुनिराय। सुन पुत्री व्रत चित्त लगाय॥ समताभाव चित्तमें धरो। तुम सुगंधदशमी व्रत करो ॥१७॥ यह व्रत कीजे मनवचकाय। यासों रोग शोक सब जाय॥ दुर्गंधा विनवै मुनि पांय। कहिये सविधि महामुनिराय ॥१८॥ ऐसे वचन सुने मुनि जबै। तब बोले पुत्री सुन अबै ॥ भादों शुक्लपक्ष जब होय। दशमी दिन आराधो सोय ॥१९॥ पंचामृतकी धारा देव। मनमें राखो श्रीजिनदेव॥ शीतल जिनकी पूजा करो। मिथ्या मोह दूर परिहरो ॥ ॥२०॥ व्रतके दिन छोड़ो आरंभ। यासों मिटै कर्मका दंभ ॥ याके करत पाप छय जाय। सो दश वर्ष करो मनलाय ॥२१॥ जब यह व्रत संपूरन होय। उद्यापन कीजे चित जोय॥ दश श्रीफल अमृत-फल जान। नीबू सरस सदा फल आन ॥ २२ ॥ दश दीजे पुस्तक लिखवाय। इह विधि सब मुनि दई बताय ॥ विधि सुन दुर्गंधा व्रत लयो। सब दुर्गंध ततच्छिन गयो ॥ २३ ॥ व्रतकर आयु जो पूरण करी। दशवें स्वर्ग भई अप्सरी ॥ जिनचैत्यालय वंदन करै। सम्यकभाव सदा उर धरै ॥२४॥ भरतक्षेत्र महँ मध्य सुदेश। भूतितिलकपुर बसै अशेष॥ राजा महीपाल तहँ जान। मदनसुंदरी त्रिया बखान ॥२५॥ दशवें दिवसों देवी आन। ताके पुत्री भई निदान॥ मद-नावती नाम धर तास। अति सुरूप तनु सकल सुवास ॥२६॥ बहुत बात को करै बखान। सुरकन्या मान्यो

उन्मान ॥ कोशांबीपुर मदन नरेन्द्र । रानी सती करै आनंद ॥२७॥ पुरुषोत्तम नृप सुन्दर जान । विद्यावंत सुगुणकी खान ॥ जो सुगंध मदनावलि जाय । सो पुरुषोत्तमको परनाय ॥२८॥ राजा मदनसुन्दरी वाल । सुखसों जात न जान्यो काल ॥ एक दिवस मुनिवर वंदियो । धर्मश्रवण मुनिवरपै कियो ॥२९॥ हाथ जोड़ पूछै तव राय । महा मुनींद्र कहो समुझाय ॥ मो गृह रानी मदनावली । ता शरीर शौरभता भली ॥ ३० ॥ कौन पुन्यसे सुभग सुरूप । सुरवनितासों अधिक अनूप ॥ राजा वचन मुनीश्वर सुने । सव विरतांत रायसों भने ॥ ३१ ॥ जैसें दुर्गंधा व्रत लह्यो । तैसी विधि नरपतिसों कह्यो ॥ सुने भवांतर जोड़े हाथ । दीक्षाव्रत दीजै मुनिनाथ ॥३२॥ राजाने जव दीक्षा लई । रानी तवै अर्जिका भई ॥ तप कर अंत स्वर्गको गई । सोलम स्वर्ग प्रतेंद्र सो भई ॥३३॥ वाइस सागर काल जो गयो । अंतकाल ता दिवसों चयो ॥ भरत सु क्षेत्र मगध तहँ देश । वसुधा अमर केतुपुरवेश ॥ ३४ ॥ ता नृप गेह जनम उन लह्यो । जो प्रतेंद्र अच्युत दिव कह्यो ॥ कनककेतु कंचनद्युति देह । वनिता भोग करै शुभ गेह ॥३५॥ अमरकेतु मुनि आगम भयो । कनककेतु तहँ चंदन गयो ॥ सुन्यो सुधर्म श्रवण संयोग । तजे परिग्रह अरु भवभोग ॥३६॥ घाति घातिया केवल लयो । पुनि अघाति हनि शिवपुर गयो ॥ व्रत सुगंधदशमी विख्यात । ता फल भयो सुरभियुत गात ॥३७॥

यह व्रत पुरुष नारि जो करैं। तिह दुख संकट भूलि न परै॥ शहर गहैली उत्तम वास। जैनधर्मको जहां प्रकाश॥ सब श्रावक व्रत संयम धरै। पूजादानसों पातक हरै॥ उपदेशी विश्वभूषण सही। हेमराज पंडितने कही ॥३९॥ मन वच पढ़ै सुनै जो कोय। ताको अजर अमरपद होय॥ यासों भविजन पढो त्रिकाल। जो छूटै भवके भ्रमजाल ॥४०॥

२५२—अनंतचौदशव्रत कथा।

दोहा—अनंतनाथ वंदों सदा, मनमैं कर बहु भाव।
सुर असुरहि सेवत जिन्हें, होय मुक्तिपर चाव॥

चौपाई—जंबूद्वीप द्विपनमें सार। लख योजन ताको विस्तार॥ मध्य सुदर्शन मेरु बखान। भरतक्षेत्र ता दक्षिण मान ॥२॥ मगधदेश देशों शिरमणी॥ राजगृही नगरी अति वनी॥ श्रेणिक महाराज गुणवंत। रानि चेलना गृहशोभंत ॥३॥ धर्मवंत गुण तेज अपार। राजा राय महा गुणसार॥ एक दिवस विपुलाचल वीर। आये जिनवर गुणगंभीर ॥४॥ चार ज्ञानके धारक कहे। गौतम गणधर सो संग रहे॥ छह ऋतुके फल देखे नैन। वनमाली ले चाल्यो ऐन ॥५॥ हर्ष सहित वनमाली गयो। पुष्पसहित राजा पर गयो॥ नमस्कार कर जोडे हाथ। मोपर कृपा करो नरनाथ॥ ६॥ विपुलाचल उद्यान महंत। महावीर जिन तहां वसंत॥ सुन राजा अति हर्षित भयो। बहुत दान मालीको दयो ॥७॥ सप्तध्वनि वाजे वाजंत। प्रजा सहित राजा चालंत॥

दे प्रदक्षिणा बैठो राव। जिनवर देव कियो चित चाव ॥८॥
द्वैविध धर्म कह्यो समझाय। जासों पाप सर्व जर जाय॥
खग तहँ आयो एक तुरंत। सुंदर रूप महा गुणवंत ॥९॥
नमस्कार जिनवरको करयो। जयजयकार शब्द उच्चरयो॥
ताहि देखि अचरज अति कियो। राजा श्रेणिक पूछत भयो
॥२०॥ सेना सहित महा गुणखानि। को यह आयो सुंदर
बानि॥ याकी बात कहो समझाय। ज्ञानवंत मुनिवर गुरु-
राय ॥११॥ गौतम बोले बुद्धि अपार। विजयानगर कह्यो
अतिसार॥ मनोकुंभ राजा राजंत। श्रीमती रानीको कंत
॥१२॥ ताका पुत्र अरिंजय नाम। पुण्यवंत सुन्दर गुणधाम॥
पूरव्रतप कीनो इन जोय। ताको फल भुगतै शुभ सोय
॥१३॥ ताकी कथा कहूं विस्तार। जंबूद्वीप द्वीपनिमें सार॥
भरतक्षेत्र तामें सुखकार। कौशलदेश विराजै सार॥ १४॥
परम सुखद नगरी तहँ जान। विप्र सोमशर्मा गुणखान॥
सोमिल्या भामिनि ता कही। दुखदरिद्रकी पूरित मही
॥१५॥ पूरब पाप किये अति घने। तिनके फल भुगते ही
बने॥ सुन राजा याका विरतांत। नगर नगर सो भ्रमै
दुखांत ॥१६॥ देश विदेश फिरे सुखआश। तोहु न पावै
सुक्ख निवास॥ भ्रमत भ्रमत सो आयो तहां। समोशरण
जिनवरको जहां ॥१७॥

दोहा—अनंतनाथ जिनराजका समोशरण तिहिबार।
सुर नर अति हर्षित भये, देख महाद्युतिसार ॥१८॥

विप्र देख अतिहर्षित भयो। समोशरण वंदनको गयो॥ वंदि जिनेश्वर पूछै सोइ। कहा पाप मैं कीनो होइ॥ १९॥ दरिद्र पीड़ा रहै शरीर। सो तो व्याधि हरो गंभीर॥ गण-धर कहै सुनो द्विजराय। अनंतव्रत कीजै सुखदाय॥२०॥ तबै विप्र बोल्यो कर भाय। किसविध होय सो देहु बताय॥ किसप्रकार या व्रतको करों। कहो विधान चित्तमें धरों॥ भाद्वमास सुक्खकी खान। चौदस शुक्ल कही सुखदान॥ कर स्नान शुद्ध होजाय। तब पूजै जिनवर सुखदाय॥२२॥ गुरु वंदना करै चितलाय। या विधिसों व्रत लेय बनाय॥ त्रिकाल पूजन श्रीजिनदेव। रात्रि जागरण कर सख लेव ॥ २३ ॥ गीत रु नृत्य महोत्सव जान। धारा जिनवर करो बखान॥ वर्ष चतुदश विधिसों धरै। ता पीछे उद्यापन करै ॥ २४॥ करै प्रतिष्ठा चौदह सार। जासों पाप होइ जर छार। झारी थौर जु अधिक अनूप। स्वर्ण कलश देवै शुभ रूप॥२५॥ दीवट झालर संकल माल। और चंदोवे उत्तम जाल॥ छात्र सिंहासन विधिसों करै। तातैं सर्व पाप परिहरै ॥ २६ ॥ चार प्रकार दान दीजिये। जासों अतुल सुक्ख लीजिये। अंतसमय लेवै सन्यास। तातैं मिलै स्वर्गका वास॥ २७॥ उद्यापनकी शक्ति न होय। कीजै व्रत दूनो भवि लोइ॥ विप्र कियो व्रत विधिसों आय। सब दुख ताके गये विलाय॥ २८॥ अंतकाल धरके सन्यास। तातैं पायो स्वर्ग निवास॥ चौथे स्वर्ग देव सो जान। महाऋद्धि

ताके जु बखान ॥२९॥ विजयारध गिरि उत्तम ठौर। कांचीपुर पत्तन शिरमौर। राजा तहँ अपराजित बीर। विजया तासु प्रिया गंभीर॥ ३० ॥ ताको पुत्र अरिंजय नाम। तिन यह आय कियो परनाम। कंचनमय सिंहासन आन। तापर नृप बैठो सुखखान ॥ ३१ ॥ व्योम पटल विनशत लख संत। उपज्यो चित वैराग महंत। राज्य पुत्रको दियो बुलाय। आप लई दीक्षा शुभ भाय ॥३२॥ सही परीषह दृढ़ चित धार। तातैं कर्म भये अति छार॥ घाति घातिया केवल भयो। सिद्धि बुद्धि सो पद निर्मयो ॥३३॥ रानीने व्रत कीनो सही। देवदेह दिव अच्युत लही॥ यहां सु सुख भुगते अधिकाय। तहांसों आय भयो नरराय ॥३४॥ राजऋद्धि पाई शुभसार। फिर तपकर विधि कीने छार॥ तहांसों मुक्तीपुरको गयो। ऐसो तिन व्रतको फल लयो ॥ ३५ ॥ ऐसो व्रत पालै जो कोइ। स्वर्ग मुक्तिपद पावै सोइ। विनयसागर गुरु आज्ञा कारी। हरि किल पाठ चित्तमें धरी ॥ ३६ ॥ तब यह कथा करी मन ल्याय। यथा शास्त्रमें वरणी आय॥ विधिपूर्वक पालै जो कोय। ताको अजर अमर पद होय ॥ ३७ ॥

२४३—रत्नत्रयव्रत कथा।

दोहा—अरहनाथको वंदिके, वंदों सरस्वति पांय।
रत्नत्रयव्रतकी कथा, कहूँ सुनो मनलाय ॥१॥

चौपाई—जंबूद्वीप भरत शुभ खेत। मगधदेश सुख संपति

हेत ॥ राजगृही तहँ नगरि बसाय। राजा श्रेणिक राज कराय ॥२॥ विपुलाचल जिनबीर कुँवार। केवलज्ञान विराजत सार ॥ माली आय जनावो दयो। ततछिन राजा वंदन गयो ॥३॥ पूजा वंदन कर शुभ सार। लाग्यो पूछन प्रश्न विचार ॥ हे स्वामी रत्नत्रयसार। व्रत कहिये जैसा व्यवहार ॥४॥ दिव्यध्वनि भगवान बताय। भादोंसुदि द्वादश शुभ भाय। कर स्नान स्वच्छ पट श्वेत। पहिनो जिनपूजनके हेत ॥५॥ आठों द्रव्य लेय शुभ जाय। पूजो जिनवर मनवचकाय ॥ जीरण नूतन जिनके गेह। बिंब धरावो तिनमैं तेह ॥६॥ हेमरूप्य पीतलके यंत्र। तांबा यथा भोजके पत्र ॥ यंत्र करो बहु मन थिर देव। रत्नत्रयके गुण लिख लेव ॥७॥ निशंकादि दर्शन गुण सार। संशयरहित सु ज्ञान अपार। अहिंसादि महाव्रत सार। चारितके ये गुण हैं धार ॥८॥ ये तीनोंके गुण हैं आदि। इन्हें आदि जेते गुण वाद ॥ शिवमारगके साधनहेत। ये गुण धारै व्रती सुचेत ॥९॥ भादों माघ चैत्रमें जान। तीनों काल करो भवि आन। याविधि तेरह बरस प्रमान। भावन भावै गुणहि निधान ॥१०॥ लवंगादि अष्टोत्तर आन। जपो मंत्र मनकर श्रद्धान ॥ पुनि उद्यापन विधि जो एह। कलशा चमर छत्र शुभ देह ॥११॥ संघ चतुर्विधको आहार। वस्त्राभरण देहु शुभसार ॥ बिंबप्रतिष्ठा आदि अपार। पूजो श्रीजिन हो भवपार ॥१२॥

दोहा—इसविध श्रीमुख धर्म सुन, भन्यो चित्तधर भाय ।
कौनैं फल पायो प्रभू, सो भाखो समुझाय ॥१३॥

चौपाई—जंबूद्वीप अलंकृत हेर । रह्यो ताहि लवणोदधि घेर ॥ मेरु सु दक्षिण दिश है सार । है सो विदेह धर्म अवतार ॥१४॥ कच्छवती सुदेश तहँ बसै । वीतशोकपुर तामैं लसै ॥ वैस्त्रिवनाम तहांको राय । करै राज सुरपतिसम भाय ॥१५॥ मालीने जु जनावो दयो । विपुलबुद्धि प्रभु वनमैं ठयो ॥ इतनी सुन नृप वंदन गयो । दान बहुत मालीको दयो ॥१६॥ हे स्वामी रत्नत्रय धर्म । मोसों कहो मिटै सब भर्म ॥ तब स्वामीने सब विधि कही । जो पहिले सो प्रकाशी सही ॥१७॥ पंचामृत अभिषेक सु ठयो । पूजा प्रभुकी कर सुख लयो ॥ जागरणादि ठयो बहु भाय । इसविध व्रतकर वैस्त्रिवराय ॥१८॥ भावसहित राजा व्रत कर्‍यो । धर्मप्रतीत चित्त अनुसर्‍यो ॥ षोडशभावन भावत भयो । अंत समाधिमरण तिन कियो ॥१९॥ गोत्र तीर्थंकर बांध्यो सार । जो त्रिभुवनमैं पूज्य अपार ॥ सर्वारथसिद्धि पहुंच्यो जाय । भयो तहां अहमेंद्र सुभाय ॥२०॥ हस्त मात्र तन ऊँचो भयो । तेतिससागर आयु सु लयो ॥ दिव्यरूप सुखको भण्डार । सत्यनिरूपण अवधि विचार ॥२१॥ सौधर्मेंद्र विचारी घरी । यक्षेश्वरको आज्ञा करी ॥ वेग देश निर्माप्यो जाय । थाप्यो सुथरापुर अधिकाय ॥२२॥ कुंभपुर राजा तहँ बसै । देवी प्रजावती तिस लसै ॥ श्रीआदिक तहँ देवी

आय। गर्भ-सोधना कीनी जाय ॥२३॥ रत्नवृष्टि नृप आंगन भई। पंद्रह मास लों बरसत गई॥ सर्वार्थसिद्धिसों सुर आय। परजावती कुक्ष उपजाय ॥२४॥ मल्लिनाथ शुभ नाम जु पाय। द्वैजचंद्रसम बढत सुभाय॥ जब विवाह मंगलविधि भई। तब प्रभु चित विरागता लई॥२५॥ दीक्षा धर बनमै प्रभु गये। घातिकर्म हनि निर्मल ठये॥ केवल ले निर्वाण सु जाय। पूजा करी सुरन सब आय ॥२६॥ यह विधान श्रेणिकने सुन्यो। व्रत लीने चित अपने गुण्यो॥ भक्ति विनयकर उत्तम भाय। पहुँचे अपने गृहको आय ॥२७॥ याविधि जो नरनारी करै। सो भवसागर निश्चय तरै॥ नलिनकीर्ति मुनि संस्कृत कही। ब्रह्मज्ञान भाषा निर्मयी ॥२८॥ इति ॥

२४४—अथदशलक्षणव्रत कथा।

दोहा—प्रथम वंदि जिनराजको, शारद गणधर पांय।
दशलक्षणव्रतकी कथा, कहूं सुगम सुखदाय ॥१॥

चौपाई—विपुलाचल श्रीवीरकुमार। आये भविभवभंजनहार॥ सुनि श्रेणिकनृप वदन गयो। सर्व लोकसँग आनंद भयो॥२॥ श्रीजिन पूजे मनधर चाव। स्तुति करी जोड़कर भाव॥ धर्मकथा तहँ सुनी विचार। दानशील तप भेद अपार॥३॥ भव दुखघायक दायक शर्म। भाख्यो प्रभु दशलच्छन धर्म॥ ताकौ सुनि श्रेणिक रुचि धरी। गुरु गौतमसों विनती करी॥ दशलच्छनव्रतकथा रसाल। मुझको भाखहु दीन-

दयाल ॥ तब गुरु गौतमगणधर कही । सुन जिनधुनिमें भाखी वही ॥५॥ खंड धातुकी पूर्व विदेह । मेरुतैं दक्षिण-दिश तेह ॥ सीतोदा नदि तीर जु सही । पुरी विशालाक्षा शुभ कही ॥६॥ भूपति पीतंकर तहँ वसै । रानी प्रियकारिणि तस लसै ॥ सुता मृगांकरेखा तस जान । मतिशेखर तस मंत्रि प्रधान ॥७॥ शशीप्रभा ताकी तिय सही । सुता काम-सेना तस भई । राजसेठ गुणसागर जान । तस तिय शील सुभद्रा मान ॥८॥ सुता मदनरेखा अवतरी । रूप कला गुण लक्षण भरी ॥ लक्षभद्रनामा कुतवाल । तस तिय शशिरेखा गुणमाल ॥९॥ रोहिणि कन्या ताकै भई । चारों कन्या मिल सखि थई । शास्त्र पढीं इक गुरुके पास । बढ़्यो सनेह पर-स्पर जास ॥१०॥ रितु वसंत आयो निरधार । कन्या चारों वनहिं मझार ॥ गई सु मुनिवर देखे एक । वंदन थुति कीनी सविवेक ॥११॥ चारों कन्या मुनिसों कही । तिय परजाय ज्यों छूटै सही ॥ ऐसो व्रत उपदेशहु अवै । जासों नरतन पावैं सवै ॥१२॥ बोले मुनि दशलक्षण सार । यह व्रत किये होहु भवपार ॥ कन्या बोली किहँविध करैं । किस दिनतैं यह व्रत हम धरै ॥१३॥ तब गुरु बोले वचन रसाल । भादव मास कह्यो सुखमाल ॥ शुकलपंचमी दिनसों लेय । पचामृत अभिषेक करेय ॥१४॥ पूजार्चन कीजे शुभ सही । जिन चौ-बीसतणी सुख मही ॥ उत्तमक्षमा आदि सुखसार । दशमों ब्रह्मचर्य गुणधार ॥१५॥ तीनकाल अति भक्ती करौ । तीन-

काल पुष्पांजलि धरै ॥ इस विधि दश वासर आंचरो। नियमित व्रत शुभकारज करो॥ उत्तम व्रत दश अनसन किये। मध्यम व्रत कुछ कांजी लिये ॥ अथवा दश एकासन करो। भूमिशयन ब्रह्मचर्य जु धरो ॥१७॥ या विधि दश बरसहि लग करै। भावसहित व्रत-विधि अनुसरै ॥ फिर व्रतका उद्यापन करै। दान सुपात्रनको विस्तरै ॥१८॥ औषध अभय शास्त्र आहार। चार संघको दे चित धार ॥ रचि मंडल पूजा कीजिये। छत्र चमर आदिक दीजिये ॥१९॥ जो उद्यापन-शक्ति न होय। तो दूनो व्रत कीजै लोय ॥ यह व्रत पुण्य-तणो भंडार। क्रमसों परभव दे शिवसार ॥२०॥ तब च्या-रों कन्या व्रत लियो। भक्तिभाव लखि मुनि व्रत दियो ॥ यथाशक्ति व्रत पूरण करयो। उद्यापन विधिसों आचरयो ॥२१॥ अंतकाल वे कन्या चार। सुमरण कियो पंच नवकार॥ चारों मरणसमाधि सु कियो। दशवें स्वर्ग जन्म तिन लियो ॥२२॥ सोलह सागर आयू लही। धर्मध्यान नित सेवैं सही॥ सिद्धछेत्र सब करहिं विहार। छायक सम्यक उदय अपार ॥२३॥ नानाविध सुख भोगैं जहां। दुखका लेस न जानै तहां ॥ यह तो कथा रही इह ठौर। आगैं सुनो भई जो और ॥२४॥ सब दीपनमधि जंबूदीप। दक्षण लवणसमुद्रसमीप ॥ भरतक्षेत्र राजत है तहां। आर्यखंड राजै शुभ जहां ॥२५॥ तामैं मालवदेश विशाल। उज्जयनी नगरी सुखसाल ॥ थूल-भद्र ताको नरपती। लक्ष्मीमति रानी गुणमती ॥२६॥ क्रम

से चयकर वे सुर चार। आये रानी उदर मझार॥ प्रथम सुपुत्र देवप्रभ भयो। दूजो सुत गुणचंद्र जु थयो॥२७॥ तीजो पद्मप्रभ बलवीर। चौथो पद्मसारथी धीर॥जन्म महोत्सव तिनके करे। अशुभ दोषग्रह सबही टरे॥२८॥ पठनयोग्य जब चारों भये। नृपने गुरु समीप पठ दये॥ सब विद्या पढ़ लीनी सार। व्याहयोग्य तब भये कुमार॥ निकलप्रभ राजाकी सुता। चारोंने परणी गुणयुता॥ प्रथम सुताका ब्राह्मी नाम। दुतिय कुमारी सो गुणधाम॥ तीजी रूपवती सुकुमाल। मृगनेत्री चौथी गुणशाल॥ व्याह महोच्छव कियो अपार। सुखसों रहने लगे कुमार॥३१॥ कुछ दिन राज कियो भूपाल। मन वैराग्य भयो इक काल॥ भवतन भोग लखे निस्सार। दीक्षा ग्रहन कियो सुविचार॥३२॥ बडे पुत्रको राज्य सु दियो। वनमें जाकर मुनिव्रत लियो॥ तपकर पायो केवलज्ञान। हनि अघाति पहुंच्यो शिवथान॥३३॥ सुखसों राज करै चउ भ्रात। पुरजन सुख भोगै दिन रात॥ चारों भ्राता चतुर सुजान। पूरब पुण्यतणो फल मान॥३४॥ नितप्रति धर्मध्यान आचरैं। पापक्रियातै अतिशय डरैं॥ इकदिन मन उपज्यो वैराग। राजपाट सब दीने त्याग॥३५॥ वनमें जाकर मुनिव्रत धार। करने लगे करम संहार॥ करत करत तप बहु दिन गये। घाति करम सब छय कर दये॥३६॥ तब उपज्यो तिन केवलज्ञान। सुर आये जय जय कर गान॥ कियो महोच्छव अतिसुखमान। कर कल्यान गये निज-

थान ॥३७॥ विविध देशमें कियो विहार। दे उपदेश भव्य-जन तार ॥ करम अघाति किये सब नास। सिद्धालय कीनो चिरबास ॥३८॥ दशलच्छनव्रतको फल यही। पायो चारों कन्या सही ॥ तातैं सब जन तनमन धार। दशलच्छन व्रत धारो सार ॥३९॥ यह व्रत कर बहुजन सुर भये। सुरसुख भोगि मुकतिमैं गये ॥ गुरु गौतम गणधर यह कही। कर श्रद्धान धरो व्रत सही ॥ भट्टारक श्रीभूषणवीर। तिनके चेला गुणगंभीर ॥ ब्रह्मज्ञानसागर सुविचार। कही कथा दशलच्छनसार ॥४१॥ पढै सुनै जो नर यह कथा। दशलच्छनव्रत धारैं तथा ॥ दशलच्छन वृष भावैं जोय। सो अवश्य शिवतियपिय होय ॥४२॥इति॥

२४५–श्रीरविव्रतकथा

चौपाई--श्रीसुखदायक पार्स जिनेश। सुमति सुगति दाता परमेश। सुमिरों शारदपद अरविन्द। तिनकर व्रत प्रगट्यो सानंद॥वाणारसि नगरी सुविशाल। प्रजापाल प्रगट्यो भूपाल ॥ मतिसागर तहं सेठ सुजान। ताको भूप करै सन्मान ॥ २ ॥ तासु-तिया गुणसुंदरि नाम। सात पुत्र ताके अभिराम ॥ षट्सुत भोग करै परणीत। बालरूप गुणधर सुविनीत ॥ ३ ॥ सहस्रकूट शोभित जिनधाम। आये यतिपति खंडित काम। सुनि मुनि आगम हर्षित भये। सर्व लोग वंदनको गये ॥ ३ ॥ गुरुवाणी सुनिकै गुणवती। सेठिन तबै करी वीनती ॥ प्रभो सुगमव्रत देहु बताय। जासों रोग

शोक सब जाय ॥५॥ करुणानिधि भाखहिं मुनिराय। सुनो भव्य तुम चित्त लगाय॥ जब अषाढ़ सुदि पक्ष विचार। तब कीजे अंतिम रविवार॥६॥ अनशन अथवा लघु आहार। लवणादिक जु करै परिहार॥ नवफलयुत पंचामृतधार। वसुप्रकार पूजो भवहार॥७॥ उत्तम फल इक्यासी जान। नवश्रावक घर दीजै आन॥ या विधकर नववर्ष प्रमाण। जातै होय सर्व कल्याण॥ ८॥ अथवा एक वर्ष इक सार। कीजै रविव्रत मनहिं विचार॥ सुन साहुन निज घरको गई व्रत निंदाकर निंदित भई॥ ९ ॥ व्रत निंदातैं निर्धन भये। सातहि पुत्र अवधपुर गये॥ तहँ जिनदत्त सेठ घर रहै। पूर्व दुःकृतका फल लहै ॥१०॥ मात पिता गृह दुःखित सदा। अवधि सहित मुनि पूछे तदा॥ दयावंत मुनि ऐसें कह्यो। व्रतनिंदासैं तुम दुख लह्यो॥ ११॥ सुनि गुरुवचन वहुरि व्रत लयो। पुण्य थयो घरमें धन भयो॥ भविजन सुनो कथा संबंध। जहँ रहते थे वे सब नंद ॥ १२ ॥ एक दिवस गुणधर सुकुमार। घास लेय आओ गृहद्वार॥ क्षुधा-वंत भावजपै गयो। दंत विना नहिं भोजन दयो ॥ १३॥ वहुरि गयो जहाँ भूल्यो दंत। देख्यो तासों अहिलिपटंत॥ फणिपतिकी तहँ विनती करी। पद्मावति प्रगटी तिहिं घरी ॥ १४ ॥ सुंदर मणिमय पारसनाथ। प्रतिमा एक दई तिहिं हाथ॥ देकर कह्यो कुंवरकर भोग। करो क्षणक पूजासंयोग ॥ १५ ॥ आन बिंब निज घरमें धरचो। तिहँकर तिनको

दारिद हरचो ॥ सुखविलास सेवै सब नन्द। नितप्रति पूजैं पास जिनंद ॥ १६ ॥ साकेतानगरी अभिराम। सुंदर बनवायो जिनधाम ॥ करी प्रतिष्ठा पुण्यसंयोग। आये भविजन संग सु लोग ॥१७॥ संघ चतुर्विधिको सनमान। कियो दियो मनवांछित दान ॥ देख सेठ तिनकी संपदा। जाय कही भूपतिसों तदा ॥ १८ ॥ भूपति तब पूछयौ विरतंत। सत्य कह्यो गुणधर गुणवंत ॥ देख सुलक्षन ताको रूप। अति आनंद भयो सो भूप ॥ भूपतिगृह तनुजा सुंदरी। गुणधरको दीनी गुणभरी ॥ करविवाह मंगल सानंद। हय गय पुरजन परमानंद॥२०॥मनवांछित पाये सुख भोग। विस्मित भये सकल पुरलोग ॥ सुखसों रहत बहुत दिन गये। तब सब बंधु बनारस गये ॥२१॥ मात पिताके परसे पांय। अति आनँद हिरदै न समाय ॥ विघटयो सबको विषम वियोग। भयो सकल पुरजन संयोग ॥२२॥ आठ सात सोलहके अंक। रविव्रत कथा रची अकलंक ॥ थोडो अरथ ग्रंथ विस्तार। कहै कवीश्वर जो गुणसार ॥ २३ ॥ यह व्रत जो नर नारी करैं। कबहूं दुर्गतिमें नहिं परैं ॥ भावसहित ते शिवसुख लहैं। भानुकीर्ति मुनिवर इमि कहैं ॥२४॥

२४६–पुष्पांजलिव्रतकथा।

दोहा–वीरदेवको प्रणमिकर, अर्चा करों त्रिकाल।
पुष्पांजलिव्रतकी कथा, सुनो भव्य अब टाल ॥१॥

चौपाई–पर्वत विपुलाचलपर आय। समोशरण जिन-

वरका पाय ॥ तिहं सुन राजा श्रेणिक राय। वंदन चले प्रियायुत भाय ॥२॥ वंदन कर पूछत नृप तबै। हे प्रभु पुष्पांजलिव्रत अबै ॥ मांसों कहो करों चितलाय। कौने कियो कहा फल पाय ॥ बोले गौतम वचन रसाल। जंबूद्वीपमध्य सुविशाल। सीतानदि दक्षिण दिशि सार। मंगलावती सुदेश मझार ॥४॥

दोहा—रतनसंचयपुर तहां, वज्रसेन नृपराय।
जयवंती वनिता लसै, पुत्र विना ही थाय ॥५॥

चौपाई—पुत्रचाह जिनमंदिर गई। ज्ञानोदधि मुनि वंदित भई॥ हे मुनिनाथ कहो समझाय। मेरे पुत्र होय कै नाय ॥६॥

दोहा—मुनि बोले हे बालकी, पुत्र होय शुभ सार। भूमी छह खंड साधि है मुक्ति तनों भरतार ॥७॥ सुनकर मुनिके वचन तब, उपज्यो हर्ष अपार। क्रमसों पूरे मास नव, पुत्र भयो शुभ सार ॥८॥ यौवन वयसको पायकर, क्रीडा मंडप सार। तहां व्योमसों आइयो, खग भूपर तिसवार ॥ ९ ॥ रत्नशिखरको देखकर, बहुत प्रीति उरमाहिं। मेघवाहनने पांचसौं, विद्या दीनी ताहि ॥१०॥

चौपाई—दोनों मित्र परस्पर प्रीति। गये मेरु वंदन तज भीति ॥ सिद्धकूट चैत्यालय वंदि। आये सब जन मन-आनंदि ॥११॥ ताकी सखी जनाई सार। वेग स्वयंवर करो तयार ॥ भूरि भूप आये तत्काल। माल रत्नशेखर गल डाल ॥१२॥ धूमकेतु विद्याधर देख। क्रोध कियो मन-

माहिं विशेख ॥ कन्याकाज दुष्टता धरी। विद्याबल बहु माया करी ॥१३॥ युद्ध रत्नशेखरसों करचो। बहुत परस्पर विद्याधऱ्यो ॥ जीत रत्नशेखर तिसबार। पाणिग्रहण कियो व्यवहार ॥१४॥ मदनमजूषा रानी संग। आयो अपने गेह असंग ॥ वज्रसेनको कर नमस्कार। मात तात मन सुक्ख अपार ॥१५॥ एकदिना मंदिर-गिरयोग। पहुंचे मित्रसहित सब लोग ॥ चारण मुनि बन्दे तिहि बार। सुन्यौ धर्म चित भयो उदार ॥१६॥ हे मुनि पूर्वजन्म संबंध। तीनोंके तुम कहो निबंध ॥ तब मुनि कहैं सुनो चितधार। एक मृणानल-नगर सुखकार ॥१७॥ नृपमंत्री इक तहँ श्रुतकीर्ति। बंधु-मती वनिता अति प्रीति ॥ एक दिना बन क्रीड़ा गयो। नारीसंग रमत सो भयो ॥१८॥ पापी सर्प सो भक्षण करी। मंत्री मृतक लखी निज नरी ॥ भयो विरक्त जिनालय जाय। दिक्षा लीनी मन हर्षाय ॥ १९ ॥ यथाशक्ति तप कुछ दिन करचो ॥ पीछे भ्रष्ट भयो तप टरचो ॥ गृह आरंभ करन चित ठन्यो। तब पुत्री मुख ऐसे भन्यौ ॥२०॥ तात जु-मेरु चढे किहिं काज। फिर भवसिंधु पडे तज लाज ॥ यों सुन प्रभावती वचसार। मंत्री कोप कियो अधिकार ॥ २१ ॥ तब विद्याको आज्ञा करी। पुत्रीको ले वनमैं धरी ॥ विद्या जब वनमैं ले गई। प्रभावती मन चिंता भई ॥ २२ ॥ अर-हत-भक्ति चित्तमें धरी। तब विद्या फिर आई खरी ॥ हे पुत्री तेरा चित जहां। वेग बोल पहुंचाऊँ तहां ॥२३॥ पुत्री

कही कैलाशके भाव। जिनदर्शनको अधिकहिं चाव॥
पूजा करके बैठी वहां। पद्मावति आई सो तहां॥ २४॥
इतने मध्य देव आइयो। प्रभावतीने प्रश्न ज़ु कियो॥ हे
देवी कहिये किस काज। आये देवी देव ज़ु आज॥२५॥
पद्मावति बोली वच सार। पुष्पांजलिव्रत है सुअवार॥ भादों
मास शुक्ल पंचमी। पंचदिवस आरंभ न अमी॥ २६॥
प्रोषध यथाशक्ति व्यवहार। पूजो जिन चौबीसी सार॥
नानाविधिके पुष्प ज़ु लाय। करै एक माला ज़ु वनाय
॥२७॥ तीन काल वह माला देय। वहुत भक्तिसों विनय
करेय॥ जपै जाप शुभ मंत्र विचार। याविधि पंचवर्ष
अवधार॥२८॥ उद्यापन कीजे पुनि सार। चारप्रकार दान
अधिकार॥ उद्यापनकी शक्ति न होय। तो दूनो व्रत
कीजै लोय॥२९॥ यह सुन प्रभावतीव्रत लियो। पद्मावती
किरपाकर दियो॥ स्वर्ग मुक्ति फलका दातार। है यह
पुष्पांजलिव्रत सार॥३०॥

दोहा—पद्मावति उपदेशसों, लीनो व्रत शुभ सार।
पृथ्वी परसु प्रकाशिके, कियो भक्तिचितधार॥३१॥
तपविद्या श्रुतकीर्तिने, पाई अति ज़ु प्रचंड।
प्रभावती व्रत खंडने, आई सो वलवंड॥ ३२॥

चौपाई—वासर तीन व्यतीते जवै। पद्मावति पुनि आई तवै॥
विद्या सव भागी ततकाल। कियो सन्यासमरण तिस वाल
॥३३॥ कल्प सोलवें मुख्य सु जान। देव भयो सो पुण्य

प्रमान ॥ तहां देवने कियो विचार। मेरा तात भ्रष्ट आचार ॥३४॥ मै संबोधों वाकों अबै। उत्तमगति वह पावै तबै ॥ यही विचार देव आइयो। मरणसन्यास तातको कियो ॥३५॥ वाही स्वर्ग भयो सो देव। पुण्यप्रभाव लियो फल एव ॥ बंधुमती माताको जीव। उपज्यो ताही स्वर्ग अतीव ॥३६॥

दोहा—प्रभावतीका जीव तू, रत्नशेखर भयो आय।
माताको जो जीव थो, मदनमॅजूषा थाय ॥३७॥

चौपाई—श्रुतिकीर्तिको जीव जु तहां। मंत्री मेघवाहन है यहां। ये तीनोंके सुन पर्याय। भई सु चिंता अंग न माय ॥३८॥ सुन व्रतफल अरु गुरुकी बानि। भयो सुचित व्रत लीनों जानि॥ अपने थाने बहुरि आइयो। चक्रवर्तिपद भोग सु कियो ॥३९॥ समय पाय वैरागी भयो। राजभार सब सुत को दयो॥ त्रिगुप्ति मुनिके चरणों पास। दिक्षा लीनी परम हुलास ॥४०॥ रत्नशेखर दिक्षा ली जबै। भयो मेघ-वाहन मुनि तबै॥ भवि जीवोंको अति सुखकार। केवल-ज्ञान उपायो सार ॥४१॥ घातिकर्म निर्मूल सु करै। पाछें मुक्तिपुरी अनुसरै॥ इहविधि व्रत पालै जो कोइ। अजर अमर पद पावै सोइ॥ ४२॥ इति॥

बारहवां अध्याय।

उपदेशसंग्रह।

२४७—फूलमाल पच्चीसी।

दोहा—जैन धरम त्रेपन क्रिया, दया धरम संयुक्त।
यादौं वंश विषै जये, तीन ज्ञान करि युक्त॥

भयो महोत्सव नेमिको, जूनागढ़ गिरनार।
जाति चुरासिय जैनमत, जुरै क्षोहनी चार ॥२॥
माल भई जिनराजकी, गूंथी इन्द्रन आय ॥
देशदेशके भव्य जन, जुरे लेनको धाय ॥ ३ ॥

छप्पय–देश गौड़ गुजरात चौड़ सोरठि वीजापुर। करनाटक कशमीर मालवी अरु अमरेधुर ॥ पानीपत हींसार और वैराट लहा लघु। काशी अरु सरहट्ट मगध तिरहुत पट्टन सिंधु ॥ तंह बंग चंग वन्दर सहित, उदधि पारला जुरिय सव। आये जु चीन मह चीन लग, माल भई गिरनारि जव

नाराच छन्द–सुगन्ध पुष्प वेलि कुंदि केतकी मंगायके। चमेली चंप सेवती जूहीगुही जु लायकें। गुलाव कंज लायची सवै सुगन्ध जातिके। सुमालती महा प्रमोद लै अनेक भांति के ॥५॥ सुवर्णतार पोई वीच मोती लाल लाइया। सु हीर पन्न नील पीत पद्म जोति छाइया ॥ शची स्त्री विचित्र भांति चित्त देवनांइ है। सुइन्द्रने उछाहसों जिनेन्द्रको चढ़ाइ है ॥६॥ सुमागहीं अमोल माल हाथ जोरि वानिये। जुरी तहां चुरासि जाति रावराज जानिये ॥ अनेक और भूपलोग सेठ साहुको गनें। कहालुं नाम वर्णिये सु देखते सभा वनें। ॥ ७ ॥ खण्डेलवाल, जैसवाल, अग्रवाल, आइया। वघेरवाल, पोरवाल देशवाल, छाइया ॥ सहेलवाल दिल्लिवाल, सेतवाल जातिके। वढ़ेलवाल पुष्पमाल श्री श्रीमाल पांतिके ॥८॥ सु ओसवाल पल्लिवाल

चूरुवाल चौसखा। पद्मावतीय पोरवाल परवार अठैसखा। गंगेरवाल बन्धुराल तोर्णवाल सोहिला। करिन्दवाल पल्लिवाल मेडवाल खोंहिला ॥१॥ लमेंचु और माहुरे महिसुरी उदार हैं। सुगोलवार गोलपूर्व गोलहू सिंघार हैं ॥ बंधनौर मागधी विहारवाल गूजरा। सुखण्ड राग होय और जानराज बूसरा॥ भुराल और सोरठ और मुराल चितोरिया। कपोल सोमराठ वर्ग हूंमड़ा नागौरिया॥ सीरागहोड़ भंडिया कनोजिया अजोधिया। मिवाड़ मालवान और जोधड़ा समोघिया ॥११॥ सुभट्टनेर रायवल्ल नागरा रुधाकरा। सुकन्थरारु जालुरारु वालमीक भाकरा॥ परवार लाड़ चोड़कोड़ गोड़ मोड़ संभारा। सु खण्डिआत श्री खण्ठा चतुर्थ पंचमंभरा ॥१२॥ सु रत्नाकार भोजकार नारसिंह है पुरी। सु जम्बूवाल और क्षेत्रब्रह्म वेश्य लौ जुरी॥ आई है चुरासि जाति जैनधर्मकी घनी। सवै विराजि गोठियों जु इन्द्रकी सभा बनी ॥१३॥ सुमाल लेनको अनेक भूप लोग आवहीं। सुएक एक तें सुमांग मालको बढ़ावहीं ॥ कहैं जु हाथ जोरि-जोरि नाथ माल दीजिये। मंगाय देउं हेमरत्न सो भण्डार कीजिये ॥१४॥ बघेरवाल बांकड़ा हजार बीसे देत हैं। हजार दे पचास परवार फेरि लेत हैं। सु जैसवाल लाख देत माल लेत चोंपसों। जु दिल्लिवाल दोय लाख देत हैं अगोपसों॥१५॥ सु अग्रवाल वोलिये जु माल मोहि दीजिये। दिनार देहुं एक लक्ष सो गिनाय लीजिये। खण्डे-

लवाल बोलिया जु दोय लाख देउंगो, सुवांटिके तमोल मै जिनेन्द्र माल लेउंगो ॥ १६ ॥ झुंसभरी कहैं सुमेरि खानि लेहु जायकैं । सुवर्ण खानि देत हैं चित्तौड़िया बुलायके ॥ अनेक भूप गांव देउ रायसो चन्देरिका । खजान खोली कोठरी सु देत हैं अमेरिका ॥१७॥ सुगोड़वाल यों कहैं गयन्द बीस लीजिये । मंगाय देव हेमदन्त माल मोहि दीजिये ॥ परमारके तुरंग सजि देत हैं विना गिने । लगाम जीन पाहुडे जड़ाउ हेमके बने ॥१८॥ कनौजिया कपूर देत गाड़िया भरायके । सुहीरा मोती लाल देत ओसवाल आयके ॥ सु हूंमडा हंकारहीं हमैं न माल देउगे । भराइये जिहाजमें कितेक दाम लेउगे ॥१९॥ कितेक लोग आयके खडेथे हाथ जोरिके । कितेक भूप देखिके चले जु बाग मोरिकें ॥ कितेक सूम यों कहैं जु कैसे लक्षि देत हो । लुटाय माल आपनों सु फूलमाल लेत हो ॥२९॥ कई प्रवीन श्राविका जिनेन्द्रको वधावहीं । कई सुकण्ठ रागसों खड़ी जु माल गावहीं । कईसु नृत्यकों करै लहैं अनेक भावहीं । कई मृदंग तालपै सु अंगको फिरावहीं ॥२१॥ कहैं गुरु उदारधी सु यों न माल पाइये ॥ कराइये जिनेन्द्र यज्ञ विम्ब भराइये ॥ चलाइये जु संघजात संघही कहाइये । तवै अनेक पुण्यसों अमोल माल पाइए ॥२२॥ संवोधि सर्व गोटिसो गुरू उतारके लई । बुलायकें जिनेन्द्र माल संघरायको दई । अनेक हर्षसों करैं जिनेन्द्रतिलक पाइये । सुमाल श्रीजिनेन्द्रकी विनोदीलाल गाइए ॥२३॥

दोहा—माल भई भगवन्तकी, पाई संग नरिन्द ।
लालविनोदी उच्चरै सबको जयति जिनन्द ॥२४॥
माला श्री जिनराजकी, पावै पुण्य संयोग ।
यश प्रगटै कीरति बढ़े, धन्य कहैं सब लोग ॥२५॥इति॥

२४८—धर्म पच्चीसी ।

दोहा—भव्य कमल रवि सिद्ध जिन, धर्मधुरन्धर धीर ।
नमूं सदा जगतमहरण, नमूं त्रिविध गुरु वीर ॥
चौपाई—मिथ्याविषयनमें रत जीव। तातें जगमें भ्रमें सदीव ॥ विविधप्रकार गहे परजाय । श्रीजिनधर्म न नेक सुहाय ॥२६॥ धर्म विना चहुंगतिमें फिरै। चंरासीलख फिर फिर धरै ॥ दुखदावानलमाहिं तपंत । कर्म करै फल भोग लहंत ॥३॥ अति दुर्लभ मानुष परजाय। उत्तमकुल धन रोग न काय ॥ इस अवसरमें धर्म न करै । फिर यह अवसर कबको वरै ॥४॥ नरकी देह पाय रे जीव। धर्म विना पशु जान सदीव ॥ अर्थ काममें धर्म प्रधान। ता बिन अर्थ न काम न मान ॥ ५॥ प्रथम धर्म जो करै पुनीत। शुभ-संगति आवै कर प्रीति ॥ विघ्न हरे सब कारज सरै। धन-सों चारों कोने भरै ॥६॥ जन्म जरा मृत्यु वश होय । तिहूं काल जग डोलै सोय ॥ श्रीजिनधर्मरसायनपान। कबहुं न रुचि उपजै अज्ञान ॥ ७॥ ज्यों कोई मूरख नर होय। हलाहल गहै अमृत खोय ॥ त्यों शठ धर्मपदारथ त्याग। विषयनसों ठानै अनुराग ॥ ८॥ मिथ्यागृहगहिया जो

जीव। छांडि धर्मविषयन चित दीव॥ ज्यों सठ कल्पवृक्षको तोड़। वृक्ष धतूरेकी भू जोड़ ॥९॥ नरदेही जानो परधान। विसर विषय कर धर्म सुजान ॥ त्रिभुवन इन्द्रतने सुख भोग। पूजनीक हो इन्द्रन जोग ॥१०॥ चन्द्र विना निशि गज विन दंत। जैसें तरुण नारि विन कंत ॥ धर्म विना त्यों मानुष देह। तातैं करिये धर्म सुनेह ॥ ११ ॥ हय गय रथ पायक वहु लोग। सुभट वहुत दल चमर मनोग॥ ध्वजा आदि राजा विन जान। धर्म विना त्यों नरभव मान॥१२॥ जैसे गंध विना है फूल। नीरविहीन सरोवर धूल ॥ ज्यों विन धन शोभित नहिं भौन। धर्म विना त्यों नर चितौन ॥१३॥ अरचे सदा देव अरहंत। चर्चें गुरुपद करुणावंत॥ खरचे दाम धरमसों प्रेम। रुचे विषय सुफेल नरएम॥१४॥ कमला चपल रहै थिर नाहिं। यौवन रूप जरा लिपटाहिं॥ सुत मित नारी नावसंयोग । यह संसार स्वप्नका भोग ॥१५। यह लख चित धर शुद्ध स्वभाव। कीजे श्रीजिन-धर्म उपाव॥ यथाभाव तैसी गति गहैं। जैसी गति तैसा सुख लहै ॥१६॥ जो मूर्ख है धर्म कर हीन। विषय अंध रवि-व्रत नहिं कीन॥ श्रीजिनभाषित धर्म न गहै। सो निगोद-को मारग लहै ॥१७॥ आलस मन्दबुद्धि है जास। कपटी विषय मग्न शठ तास॥ कायरता नहि परगुण ढकै। सो तिर्यंच योनि लह सकै ॥१८॥ आरत रुद्र ध्यान नित करै। क्रोध आदि मतसरता धरै॥ हिंसक वैर भाव अनुसरै।

सो पापिष्ट नरकगति परै ॥ १९ ॥ कपटहीन करुणा चित माहिं। है उपाधि ये भूलै नाहिं ॥ भक्तिवन्त गुणवन्त जो कोय। सरल स्वभाव जो मानुष होय ॥ २० ॥ श्रीजिन-वचनमग्न तपवान। जिन पूजै दे पात्रहि दान ॥ रहैं निरंतर विषय उदास। सोही लहे स्वर्ग आवास ॥ २१ ॥ मानुष योनि अंतकी पाय। सुन जिनवचन विषय विसराय॥ गहे महाव्रत दुर्द्धर वीर। शुक्लध्यान धर लहै शिवधीर ॥२२॥ धर्म करत सुख होय अपार। पाप करत दुख विविधप्रकार॥ बालगुपाल कहैं सब नार। इष्ट होय सोई अवधार ॥२३॥ श्रीजिनधर्म मुक्तिदातार। हिंसा कर्म परत संसार ॥ यह उपदेश जान बड़भाग। एक धर्मसों कर अनुराग ॥२४॥ व्रतसंजम जिनपद थुति सार। निर्मल सम्यकभाव जु धार॥ अंत कषाय विषय कृष करो। जो तुम मुक्ति कामिनी वरो॥

दोहा—बुधकुमदनिशशिसुखकरन, भो दुखनाशन जान।
कह्यो ब्रह्म जिनदास यह, ग्रंथ धर्मकी खान ॥ २६ ॥
द्यानत जे बांचें सुनें, मनमें करे उछाय।
ते पावें सुख शांति भी, मनवांछित फलदाय ॥२७॥

२४९—ज्ञानपच्चीसी।

सुरनरतिरियगयोनिमें, नरकनिगोद भमंत। महामोहकी नींदसों, सोये काल अनंत ॥१॥ जैसैं ज्वरके जोरसों, भोजन-की रुचि जाय। तैसैं कुकरमके उदय, धर्मवचन न सुहाय ॥२॥ लगै भूख ज्वरके गये, रुचिसों लेय अहार। अशुभ गये

शुभके जगे, जानै धर्मविचार ॥३॥ जैसे पवनझकोरतैं, जलमें उठे तरंग। त्यों मनसा चंचल भई, परिगहके परसंग ॥४॥ जहां पवन नहिं संचरे, तहां न जलकल्लोल। त्यों सब परिगह त्यागतै, मनसा होय अडोल ॥५॥ ज्यों काहू विषधर डसै, रुचिसों नीम चबाय। त्यों तुम ममतासों मढे, मगन विषयसुख पाय ॥६॥ नीम रसन परसै नहीं, निर्विष तन जब होय। मोह घटै ममता मिटै, विषय न वांछै कोय ॥७॥ ज्यों सछिद्र नौका चढे, बूडहि अंध अदेख। त्यों तुम भवजलमें परे, बिन विवेक धर भेख ॥८॥ जहां अखंडित गुण लगै, खेवट शुद्ध विचार। आतमरुचि नौका चढ़े पावहु भवजल पार ॥९॥ ज्यों अंकुश माने नहीं, महामत्त गजराज। त्यों मन तृष्णामें फिरै, गिनैं न काज अकाज ॥ १० ॥ ज्यौं नर दाव उपायकै, गहि आनै गज साधि। त्यों या मन वशकरनकों, निर्मल ज्ञान समाधि ॥ ११ ॥ तिमिर रोगसों नैन ज्यों, लखै औरकी और। त्यों तुम संशयमें परे, मिथ्यामतिकी दौर ॥१२॥ ज्यों औषध अंजन किये, तिमिररोग मिट जाय। त्यों सतगुरु उपदेशतैं, संशय वेग विलाय ॥१३॥ जैसे सब यादव जरे, द्वारावतिकी आगि। त्यौं मायामें तुम परे कहां जाहुगे भागि ॥१४॥ दीपायनसों ते बचे, जे तपसी निरग्रंथ। तजि माया समता गहो, यहै मुकतिको पंथ ॥१५॥ ज्यों कुधातुके फेंटसों, घटबढ कंचनकांति। पापपुण्यकर त्यों भये, मूढ़ातम बहुभांति ॥ १६ ॥

कंचन निजगुण नहिं तजै, हीन बानके होत। घटघट अंतर आतमा, सहजस्वभाव उदोत ॥१७॥ पन्नापीट पकाइये, शुद्ध कनक ज्यों होय। त्यों प्रघटै परमातमा, पुण्यपापमल खोय ॥१८॥ पर्वराहुके ग्रहणसों, सूरसोम छबिछीन। संगति पाय कुसाधुकी, सज्जन होय मलीन ॥ १९ ॥ निंबादिक चंदन करै, मलयाचलकी बास। दुर्जनतैं सज्जन भये, रहत साधुके पास ॥२०॥ जैसे ताल सदा भरै, जल आवै चहुंओर। तैंसे आस्रवद्वारसों, कर्मबंधको जोर ॥२१॥ ज्यों जल आवत मूंदियै, सूखै सरवरपानि। तैसे संवरके किये, कर्मनिर्जरा जानि ॥२२॥ ज्यों बूटीसंयोगतैं, पारा मूर्छित होय। त्यों पुदगलसों तुम मिले, आतमशक्ति समोय ॥२३॥ मेलि खटाई माजिये, पारा परघट रूप। शुक्लध्यान अभ्यासतैं, दर्शन ज्ञान अनूप ॥२४॥ कहि उपदेश 'बनारसी' चेतन अब कछु चेत। आप बुझावत आपको, उदय करनके हेत ॥२५॥

तेरहवां अध्याय।

भजन संगह।

(२५०)

देखोजी आदीश्वर स्वामी, कैसा ध्यान लगाया है। कर ऊपर कर सुभग विराजे, आसन थिर ठहराया है॥ देखोजी० ॥टेक॥ जगतविभूति भूतिसम तजकर, निजानंद

पद ध्याया है। सुरभति श्वासा आशावासा, नाशादृष्टि सुहाया है। देखोजी०॥ १ ॥ कंचन वरन चलै मन रंच न, सुरगिरि ज्यों थिर थाया है। जासपास अहि मोर मृगी हरि, जातिविरोध नशाया है। देखोजी० ॥२॥ सुध उपयोग हुतासनमें जिन, वसुविध समिध जलाया है। श्यामलि अलिकावलि सिर सोहै, मानों धूआं उडाया है। देखोजी० ॥३॥ जीवन मरन अलाभ लाभ जिन, तृणमनिको समभाया है। सुरनरनाग नमहिं पद जाके, 'दौल' तास जस गाया है। देखोजी० ॥४॥

(२५१)

जिनवर-आनन-भान-निहारत, भ्रमतम-घान नशाया है। जिनवर० ॥टेक॥ वचन-किरन प्रसरनतैं भविजन, मन-सरोज सरसाया है। भवदुखकारन सुखविस्तारन, कुपथ सुपथ दरशाया है। जिनवर० ॥१॥ विनशायी कज जल सरसाई, निशिचर समर दुराया है। तस्कर प्रबल कषाय पलाये, जिन धन बोध चुराया है। जिनवर० ॥२॥ लखियत उडु न कुभाव कहूं अब, मोह उलूक लजाया है। हंस-कोकको शोक नस्यो निज, परनति चकवी पाया है। जिनवर० ॥३॥ कर्मबंधकज-कोश बँधे चिर, भवि अलि मुंचन पाया है। 'दौल' उजास निजातम-अनुभव, उर-जग-अंतर छाया है। जिनवर० ॥४॥

(२५२)

पद्मासद्म पद्मपद पद्मा-मुक्तिसद्म-दरसावन हैं। कलि-

मलगंजन मनअलिरंजन, मुनिजनसरन सुपावन है। पद्मा-सद्म० ॥टेक॥ जाकी जन्मपुरी कुशंबिका सुरनरनागरमावन है। जास जन्मदिन पूरब षट-नवमास रतन बरसावन है। ॥ पद्मासद्म० ॥१॥ जा तप-थान पपोसा गिरि सो आत्म-ध्यान-थिर-थावन हैं। केवल जोत उदोत भई सो, मिथ्या-तिमिर-नसावन हैं। पद्मासद्म० ॥ २ ॥ जाको शासनपचा-नन सो कुमति-मतंगनशावन है। रागविना सेवकजनतारक, पै तसु तुषरुष भाव न है। पद्मापद्म० ॥ ३ ॥ जाकी महि-माके वरननसों, सुरगुरुबुद्धिथकावन है। 'दौल' अल्पमति-को कहबो जिम, शिशुकगिरिंद-धकावन है। पद्मासद्म०॥४॥

(२५३)

अजित जिन विनती हमारी मानजी, तुम लागे मेरे प्रानजी ॥ टेक ॥ तुम त्रिभुवनमें कलपतरोवर, आश भरो भगवानजी ॥ अजित० ॥ १ ॥ वादि अनादि गयो भव भ्रमतैं, भयो बहुत हयरानजी। भागसंजोग मिलै अब दीजै, मनवांछित वरदानजी ॥ अजित० ॥२॥ ना हम मांगैं हाथी घोड़ा, ना कछु संपति आनजी। भूधरके उर बसो जगत गुरु, जबलों पद निरवानजी ॥ अजित० ॥ ३ ॥

(२५४)

पारस-पद-नख प्रकाश, अरुन वरन ऐसो। पारस० ॥टेक॥ मानो तप, कुंजरके, सीसको सिंदूर पूर, रागरोष-काननको-दावानल जैसो ॥ पारस० ॥ बोधमई प्रातकाल,

ताको रवि उदय लाल, मोक्षवधू-कुच-प्रलेप, कुंकुमाभ तैसो। पारस० ॥ कुशल-वृक्ष-दल उलास, इहिविधि बहु गुण-निवास भूधरकी भरहु आस, दीनदासके सो । पारस० ॥३॥

(२५५)

देखे जिनराज आज, राजरिद्धि पाई । देखे० ॥ टेक ॥ पहुपवृष्टि महाइष्ट देव दुंदुभी सुमिष्ट, शोक करै भ्रष्ट सो अशोकतरु बडाई ॥ देखे० ॥ १ ॥ सिंहासन झलमलात, तीन छत्र चितसुहात, चमर फरहरात मनों, भगति अति बढाई ॥ देखे० ॥ २ ॥ द्यानत भामंडलमें, दीसै परजाय सात, बानी तिहुँकाल झरै, सुरशिवसुखदाई ॥ देखे० ॥

(२५६)

चंदजिनेश्वर नाम हमारा, महासेनसुत जगत पियारा ॥ चंद० ॥टेक॥ सुरपति नरपति फनिपति सेवत, मानि महा उत्तम उपगारा । मुनिजन ध्यान धरत उरमाही, चिदानंद पदवीका धारा ॥ चंद० ॥१॥ चरन सरन बुधजन जे आये, तिनपाया अपना पद सारा ॥ मंगलकारी भवदुखहारी, स्वामी अद्भुत उपमावारा ॥ चंद ० ॥२॥

(२५७)

उरग-सुरग-नरईश शीस जिस, आतपत्र त्रिधरे । कुंदकुसुम-सम चमर अमरगन, ढोरत मोद परे ॥ उरग०॥ टेक ॥ तरु अशोक जाको अवलोकत, शोक थोक उझरे । पारजात संतानकादिके, बरसत सुमन वरे ॥ उरग० ॥१॥ सुमणि विचित्र

पीठ अंबुजपर राजत जिन सुथिरे। वर्णविगति जाकी धुनिको सुनि, भवि भवसिंधु तरे॥ उरग०॥२॥ साढेबारहकोडिजातिके, बाजत तूर्य खरे। भामंडलकी दुति अखंडने, रवि शशि मंद करे॥उरग०॥३॥ ज्ञान अनंत अनंत दर्शबल, शर्म अनंत भरे। करुणामृतपूरित पद जाके, दौलत हृदय धरे॥

(२५८)

हमारी वीर हरो भव पीर। हमारी०॥ टेक ॥ मै दुख पतित दयामृतसर तुम, लखि आयो तुम तीर। तुम परमेश मोखमगदर्शक, मोहदवानलनीर॥ हमारी०॥१॥ तुम विन हेत जगतउपकारी, शुद्ध चिदानँद धीर। गनपतिज्ञानसमुद्र न लंघे, तुमगुनसिंधु गहीर॥ हमारी० ॥२॥ याद नहीं मैं विपद सही जो धर धर अमित शरीर। तुमगुन चिंतत नशत दुःख भय, ज्यों घन चलत समीर॥ हमारी०॥ ३॥ कोटिवारकी अरज यही है, मैं दुख सहूं अधीर। हरहु वेदनाफंद दौलको, कतर करम-जंजीर॥ हमारी० ॥४॥

(२५९)

अरि-रज-रहसि-हनन प्रभु अरहन, जैवंतो जगमें। देव अदेव सेव कर जाकी, धरहिं मौलि पगमें॥अरिरज०॥टेक॥ जा तन अष्टोत्तर सहस्र लक्खन लखि कलिल शमै। जा वच-दीपशिखातैं मुनि विचरैं शिवमारगमें॥ अरिरज०॥१॥ जास पासतै शोकहरनगुन, प्रगट भयो नगमें। व्यालमराल कुरंग सिंघको, जातिविरोधगमें॥ अरिरज० ॥२॥

जा-जस-गगन-उलंघन कोऊ, क्षम न मुनीगनमें। दौल नाम तसु सुरतरु है या, भवमरुथलमगमें ॥ अरिरज०॥ ३ ॥

(२६०)

हे जिन मेरी, ऐसी बुधि कीजै। हे जिन०॥ टेक ॥ राग-रोषदावानलतैं बचि, समतारसमें भीजै ॥ हे जिन० ॥१॥ परमें त्याग अपनपो निजमें, लाग न कबहू छीजै। हे जिन० ॥२॥ कर्म कर्मफलमाहि न राचै, ज्ञानसुधारस पीजै ॥ हे जिन० ॥३॥ मुझ कारजके तुम कारन वर, अरज दौलकी लीजै ॥हे जिन०॥४॥

(२६१)

शामरियाके नाम जपेतैं छूट जाय भव भामरिया। शामरियाके० ॥टेक॥ दुरित दुरित पुन पुरत-फुरत गुन, आतमकी निधि आगरियां। विघटत है पर दाहचाह झट, गटकत समरसगागरिया। शामरियाके० ॥१॥ कटत कलंक करमकलसायनि, प्रगटत शिवपुरडागरिया। फटत घटाघनमोह छोह हट, प्रगटत भेदज्ञानधरियां ॥ शाम० ॥ २ ॥ कृपाकटाक्ष तुमारीतैही, युगलनागविपदा टरिया। धार भए सो मुक्तिरमावर, दौल नमैं तुव पागरियां ॥ शामरियाके०॥

(२६२)

शिवमग दरसावन रावरो दरस ॥ शिवमग०॥ टेक ॥ परपदचाहदाहगदनाशन, तुमवच-भेषजपान सरस ॥ शिवमग० ॥ १ ॥ गुण चितवत निज अनुभव प्रगटै, विघटै

विधिठग दुविध तरस ॥ शिवमग० ॥ २ ॥ दौल अवाची संपत सांची, पाय रहै थिर राचि स्वरस ॥ शिव० ॥ ३ ॥

(२६३)

मै आयो जिन सरन तिहारी । मै चिर दुखी विभाव भावतै, स्वाभाविक निधि आप विसारी ॥ मैं० ॥१॥ रूप निहार धार तुम गुन सुन, वैन सुनत भवि शिवमगचारी । यों मम कारजके कारन तुम तुमरी सेव एव उर धारी ॥मै०॥ मिल्यो अनंत जन्मतैं अवसर, अब विनऊं हे भवसरतारी । परमें इष्ट अनिष्ट कल्पना, दौल कहै झट मेट हमारी ॥मै०॥

(२६४)

प्यारी लागै म्हानै जिन छवि थारी ॥ प्यारी० ॥ टेक ॥ परमनिराकुल-पद-दरसावत, बर विरागता-कारी । पट-भषन-विन पै सुंदरता, सुरनरमुनिमनहारी ॥ प्यारी० ॥ १ ॥ जाहि विलोकत भवि निजनिधि-लहि, चिरविभावता टारी। निरनिमेषत देख सचीपति, सुरता, सफल विचारी ॥ प्यारी० ॥२॥ महिमा अकथ होत लखि जाको, पशुसम समकितधारी । दौलत रहो ताहि निरखनकी, भवभव टेव हमारी ॥ प्यारी० ॥३॥

(२६५)

दीठा भागनतैं जिन पाला, मोहनाशनेवाला । दीठा० ॥टेक॥ शुभग निसंक रागविन यातैं, वसन न आयुध वाला ॥दीठा० ॥१॥ जास ज्ञानमें जुगपत भासत, सकल पदारथ-माला ॥दीठा० ॥२॥ निजमें लीन हीन इच्छा पर,-हितमत

वचन रसाला ॥दीठा० ॥३॥ लखि जाकी छवि आतम-निधि-निज, पावत होत निहाला ॥दीठा० ॥४॥ दौल जासगुन चिंततरत है, निकट विकट भवनाला ॥ दीठा० ॥५॥

(२६६)

थारै तो वैनामैं सरधान घणो छै म्हारै, छवि निरखत हिय सरसावै। तुम धुनिघन परचहनदहनहर, वरसमता-रसझर वरसावै ॥ थारै तो० ॥१॥ रूप निहारत ही बुध है सो निजपर चिह्न जुदे दरसावै। मैं चिदंक अकलंक अमल थिर, इंद्रिय-सुख-दुख-जड फरसावै ॥ थारै तो० ॥२॥ ज्ञानविरागसुगुनतुम-तनकी, प्रापतिहित सुरपति तरसावै। मुनि वडभाग लीन तिनमै नित, दौल धवल-उपयोग रमावै ॥ थारै तो० ॥ ३ ॥

(२६७)

आज मैं परम पदारथ पायो, प्रभुचरनन चित लायो ॥ आज मैं० ॥ टेक ॥ अशुभ गये शुभ प्रगट भये हैं, सहज कल्पतरु छायो ॥आज०॥१॥ ज्ञान शक्ति तप ऐसी जाकी, चेतन-पद दरसायो ॥आज मैं० ॥२॥ अष्ट कर्मरिपु जोधा जीते, शिवअंकूर जमायो ॥ आज० ॥३॥

(२६८)

नेमिप्रभूकी श्यामवरन छवि, नैनन छाय रही ॥ नेमि० ॥ टेक ॥ मणिमय तीन पीठपर अंबुज, तापर अधर ठही ॥ नेमि० ॥ १ ॥ मार मार तप धार जार विधि, केवलरिद्धि लही। चार तीस अतिशय दुति-मंडित, नवदुगदोष नहीं ॥

नेमि० ॥ २ ॥ जाहि सुरासुर नमत सतत, मस्तकतै परस महीं। सुरगुरु-वर-अंबुज-प्रफुलावन, अदभुतभान सही ॥ नेमि० ॥३॥ धर अनुराग विलोकत जाको, दुरित नसैं सब ही। दौलत महिमा अतुल जासकी, कापै जात कही ॥नेमि०

(२६६)

प्रभु मोरी ऐसी बुधि कीजिये, रागदोष दावानलसे बच समतारसमें भीजिये ॥ प्रभु० ॥ टेक ॥ परमें त्याग अपनपो निजमें, लाग न कबहू छीजिये। कर्मकर्मफलमांहि न राचत ज्ञानसुधारस पीजिये ॥प्रभु० ॥१॥ सम्यग्दर्शन ज्ञानचरन-निधि, ताकी प्रापति कीजिये। मुझ कारजके तुम बड़कारन, अरज दौलकी लीजिये ॥ प्रभु० ॥२॥

(२७०)

और अबै न कुदेव सुहावै, जिन थांके चरनन रति जोरी॥ और० ॥ १ ॥ काम-कोह-वश गहैं असन असि, अंक-निशक धरैं तिय गौरी। औरनके किम भाव सुधारैं, आप कुभाव-भार-धरधोरी ॥ और० ॥१॥ तुम विनमोह अकोह-छोहविन, छके शांतरसपीय कटोरी। तुम तज सेय अमेय भरी जो, विपदा जानत हो सब मोरी ॥और०॥२॥ तुम तज तिन्हैं भजै शठ जो सो, दाख न चाखत खात निबोरी। हे जगतार उधार दौलको, निकट विकट-भवजलधि हिलोरी॥और

२७१—राग धनश्री।

प्रभु थांको लखि मम चित हरषायो ॥ टेक ॥ सुंदर चिंता-

रतन अमोलक, रंक पुरष जिम पायो॥ प्रभु० ॥१॥ निर्मल रूप भयो अब मेरो, भक्तिनदी-जल न्हायो॥ प्रभु० ॥२॥ भागचंद अब मम करतलमें, अविचल शिवथल आयो॥प्रभु०॥

२७२—राग मल्हार।

प्रभु म्हाकी सुधि, करुना करि लीजै ॥ टेक ॥ मेरे इक अवलंबन तुम ही, अब न विलंब करीजै ॥प्रभु०॥१॥ अन्य कुदेव तजे सब मैंने, तिनतैं निजगुन छीजै ॥ प्रभु० ॥ २ ॥ भागचंद तुम सरन लियो है, अब निश्चल पद दीजै ॥प्रभु०॥

(२७३)

केवलजोति सुजागीजी, जब श्रीजिनवरकै ॥ केवल० ॥ टेक ॥ लोकालोकविलोकत जैसैं, हस्तामल बड़भागीजी ॥ केवल० ॥१॥ हरिचूडामणिशिखा सहज ही, नमत भूमितै लागीजी ॥ केवल० ॥ २ ॥ समवसरन-रचना सुर कीनी, देखत भ्रम जन त्यागीजी ॥ केवल० ॥ ३ ॥ भक्तिसहित अरचा तब कीनी, परमधरमअनुरागीजी ॥ केवल० ॥ ४ ॥ दिव्य ध्वनि सुनि सभा दुवादश, आनँदरसमें पागीजी ॥ केवल० ॥५॥ भागचंद प्रभुभक्ति चहत है, और कछू नहिं मांगीजी ॥ केवल० ॥६॥

(२७४)

सोई है सांचा महादेव हमारा, जाके नाहीं रागरोष-मद-मोहादिक विस्तारा ॥ सोई है० ॥टेक॥ जाके अंग न भस्म-लिप्त है, नहिं रुण्डनकृतहारा। भूषण व्याल न भाल चंद्र

नहिं, शीश जटा नहिं धारा ॥ सोई है० ॥ १ ॥ जाके गीत न नृत्य न मृत्यु न, बैल तणो न सवारा। नहि कोपीन न काम कामिनी, नहि धन धान्य पसारा ॥सोई है०॥२॥ सो तो प्रगट समस्त वस्तुको, देखन जाननहारा। भागचंद ताहीको ध्यावत, पूजत वारंवारा ॥सोई है० ॥३॥

(२७५)

शेष सुरेश नरेश रटै तोहि, पार न कोई पावै जू ॥शेष० ॥टेक॥ कापै नपत व्योम विलसत सौं, को तारे गिन लावै जू ॥ शेष० ॥ १ ॥ कौन सुजान मेघबूंदनकी, संख्या समुझ सुनावै जू ॥ शेष० ॥२॥ भूधर सुजस-गीत-संपूरन गणपति भी नहिं गावै जू ॥ शेष० ॥ ३ ॥

(२७६)

स्वामीजी सांची सरन तिहारी ॥ स्वामीजी० ॥ टेक ॥ समरथ शांत सकल गुन पूरे, भयो भरोसो भारी ॥स्वामीजी० ॥१॥ जनमजरा जगवैरी जीते, टेव मरनकी टारी। हमहूको अजरामर करियो, भरियो आस हमारी ॥ स्वामीजी०॥२॥ जनमै मरैं धरै तन फिर फिर, सो साहिब संसारी। भूधर परदालिद क्यों दलिहै, जो है आप भिखारी ॥स्वामीजी०॥

(२७७)

वंदों नेमि उदासी, मद मारवेको। वंदों० ॥टेक॥ रजमतिसी तिन नारी छारी, जाय भए वनवासी ॥वंदों० ॥१॥ हय गय रथ पायक सब छांडे, तोरी ममता फांसी। पंच

महाव्रत दुर्द्धर धारे, राखी प्रकृति पचासी ॥ वंदों० ॥२॥ जाके दरशन ज्ञान विराजत, लहि वीरज सुखरासी। जाकों वंदत त्रिभुवननायक, लोकालोक-प्रकाशी ॥ वंदों० ॥३॥ सिद्ध शुद्ध पर-मातम राजैं, अविचल-थान निवासी। द्यानत मन-अलि प्रभुपदपंकज,—रमत रमत अघ जासी ॥वंदों०॥

२७८—राग वसंत।

मोहि तारो हो देवाधिदेव, मैं मनवचतनकरि करौं सेव ॥टेक॥ तुम दीनदयाल अनाथ-नाथ, हम हूको राखहु आप साथ मोहि० ॥१॥ यह मारवाड संसार देश, तुम चरण-कल्पतरु हरकलेश ॥मोहि० ॥२॥ तुम नाम रसायन जीव पीय, द्यानत अजरामर भवतरीय ॥मोहि० ॥३॥

२७९—राग वसंत।

तुम ज्ञानविभव फूली वसंत, यह मधुकर सुखसों रमंत ॥तुम० ॥टेक॥ दिन वडे भए वैरागभाव, मिथ्यामत रजनी-को घटाव। तुम० ॥१॥ यहु फूली फैली सुरुचि वेल, ज्ञाता-जन समता संग केलि ॥ तुम०॥२॥ द्यानत वानी पिकमधुर-रूप, सुरनर पशु आनँद घन-सरूप ॥ तुम० ॥३॥

(२८०)

त्रिभुवनमें नामी, कर करुना जिनस्वामी ॥ त्रिभुवनमें० ॥टेक॥ चहुंगति जन्म मरनकिम भाख्यो, तुम सब अंतर-जामी ॥ त्रिभुवनमें ॥१॥ करमरोगके वैद तुमहि हो, करौं पुकार अकामी। त्रिभुवनमें ॥२॥ द्यानत पूरव-पुण्य-उदयतै सरन तिहारी पामी। त्रिभुवनमें० ॥३॥

(२८१)

मै बंदा स्वामी तेरा ॥ मैं॰ ॥टेक॥ भवभंजन आदि निरंजन, दूर दुःख मेरा ॥ मैं॰ ॥१॥ नाभिराय नंदन जगवंदन, मैं चरननका चेरा ॥ मैं॰ ॥२॥ द्यानत ऊपर करुना कीजे, दीजे शिवपुर डेरा ॥ मै॰ ॥३॥

(२८२)

स्वामी श्रीजिन नाभिकुमार! हमको क्यों न उतारो पार ॥ स्वामी॰ ॥टेक॥ मंगल मूरत है अविकार, नाम भजैं भजैं विघन अपार। स्वामी॰ ॥१॥ भवभयभंजन महिमासार, तीनलोक जिय तारनहार ॥ स्वामी॰ ॥२॥ द्यानत आए शरन तुम्हार, तुमको है सब शरम हमार। स्वामी॰॥

(२८३)

नेमजी तो केवलज्ञानी, ताहीकों मैं ध्याऊं ॥नेमिजी॰॥ ॥टेक॥ अमल अखंडित चेतन मंडित, परम पदारथ पाऊं ॥ नेमिजी॰ ॥१॥ अचल अबाधित निज गुण छाजत, वचनन कैसे बताऊं। नेमिजी॰ ॥२॥ द्यानत ध्याइए शिवपुर जाइए, बहुरि न जगमें आऊं ॥ नेमिजी॰ ॥ ३ ॥

(२८४)

हम आए हैं जिनभूप! तेरे दरशनको ॥ हम॰ ॥ टेक॥ निकसे घर आरतिकूप तुम पद-परशनको ॥ हम॰ ॥ १ ॥ वैननिसों सुगुन निरूप, चाहैं दर्शनको ॥ हम॰ ॥२॥ द्यानत ध्यावें मन रूप, आनँद बरसनको ॥ हम॰ ॥ ३ ॥

(२८५)

तुम तार करुणा धार स्वामी आदिदेव निरंजनो ॥तुम० ॥टेक। सार-जग आधार नामी, भविकजनमनरंजनो ॥तुम० ॥१॥ निराकार जमी अकामी, अमल देह अमंजनो ॥तुम०॥ करहु द्यानत मुकतिगामी, सकल भवभयभंजनो ॥ तुम० ॥

(२८६)

इक अरज सुनो साहिब मेरी ॥ इक० ॥ टेक ॥ चेतन एक बहुत जड घेरयों, दई आपदा बहुतेरी ॥ इक० ॥ १ ॥ हम तुम एक दोय इन कीने, बिनकारन बेरी गेरी ॥ इक० ॥ २ ॥ द्यानत तुम तिहुं जगके राजा, करो जु कछु करुणा नेरी ॥ इक० ॥ ३ ॥

(२८७)

जिन साहिब मेरे हो, निवाहिये दासको ॥जिन०॥टेक॥ मोहमहातम घोर भरयो है, कीजिये ज्ञानप्रकाशको ॥ ॥ जिन० ॥ १ ॥ लोभ रोगके वैद प्रभुजी, औषध द्यो गद-नासको ॥जिन० ॥ २ ॥ द्यानत क्रोधकी आग बुझावो, बरस छिमाजलरासको ॥ जिन० ॥ ३ ॥

(२८८)

सांचे चंद्रप्रभू सुखदाय ॥ सांचे० ॥ टेक ॥ भूमि सेत अम्रत बरषाकरि, चंद नामतैं शोभा पाय ॥ सांचे० ॥१॥ नरबरदाई कौन बड़ाई, पशुगन तुरत किये सुरराय ॥ सांचे० ॥२॥ द्यानत चंद असंखनिके प्रभु, सारथ नाम जपों मनलाय ॥ सांचे० ॥ ३ ॥

(२८९)

काम सरै सब मेरे, देखे पारसस्वाम ॥ काम० ॥टेक॥ सप्तफना अहि सीस-विराजै, सात पदारथ धाम ॥काम०॥१॥ पद्मासन शुभ बिंब अनुपम, श्यामघटा अभिराम ॥काम० ॥२॥ इंद फनिंद नरिंदनिस्वामी, द्यानत मंगल ठाम ॥काम०

(२९०)

जिनरायके पांय सदा सरनं ॥ जिनरायके० ॥ टेक ॥ भवजलपतित-निकारन कारन, अंतर पापतिमिर हरनं ॥ ॥ जिनरायके ॥१॥ परसी भूमि भई तीरथ सो, देवमुकुट-मनि-छविधरनं ॥ जिनरायके० ॥२॥ द्यानत प्रभु-पग-रज कब पावै, लागत भागत है मरनं ॥ जिनरायके० ॥३॥

(२९१)

मोहि तारो जिनसाहिबजी ॥मोहि०॥टेक॥ दास कहाऊं क्यों दुख पाऊं, मेरी ओर निहारो ॥ मोहि० ॥ १ ॥ षट-काया-प्रतिपालक स्वामी, सेवककों न विसारो ॥ मोहि० द्यानत तारन-तरन विरद तुम, और न तारनहारो ॥ मोहि०॥

(२९२)

दास तिहारो हूं, मोहि तारो श्रीजिनराय ॥ दास तिहारो भक्त तिहारो, तारो श्रीजिनराय ॥ दास० ॥ टेक ॥ चहुँ-गति दुखकी आगतैं अब, लीजै भक्त बचाय ॥दास०॥१॥ विषय-कषाय-ठगनि ठग्यो, दोनोंतैं लेहु छुड़ाय ॥ दास० ॥२॥ द्यानत ममता नाहरीतैं, तुम बिन कौन उपाय ॥दास०

(२६३)

जिनवरमूरत तेरी, शोभा कहिय न जाय ॥ जिनवर० ॥टेक॥ रोम रोम लखि हरख होत है, आनंद उर न समाय जिनवर० ॥१॥ शांतरूप शिवराह बतावै, आसन ध्यान उपाय ॥ जिनवर० ॥२॥ इंद फनिंद नरिंद विभव सब, दीसत हैं दुखदाय ॥ जिनवर० ॥३॥ द्यानत पूजै ध्यावै गावै, मन वच काय लगाय ॥ जिन० ॥४॥

(२६४)

प्रभु तुम चरन सरन लीनों, मोहि तारो करुणाधार ॥ प्रभु०॥टेक॥ सात नरकतैं नवग्रीवकलों, रुल्यो अनंती बार ॥प्रभु०॥१॥ आठ करम वैरी बड़े तिन, दीनों दुःख अपार ॥ प्रभु० ॥ २ ॥ द्यानतकी यह वीनती मेरी, जनम मरन निरवार ॥प्रभु०॥३॥

(२६५) राग कन्हारा ।

शरन मोहि वासुपूज्य जिनवरकी ॥ शरन० ॥ टेक ॥ अधम-उधारन पतित-उबारन, दाता रिद्धि अमरकी ॥शरन० ॥१॥ असरन-सरन-अनाथनाथजी, दीनदयाल नजरकी ॥शरन०॥ द्यानत बालजती जगबंधू, बंधहरन, शिवकरकी ॥

(२६६)

अब मोहि तारलै शांतिजिनंद ॥ अब० ॥ टेक ॥ कामदेव तीर्थंकर चक्री, तीनोंपद सुखवृंद ॥ अब० ॥ १ ॥ सुरनरजुत धरमामृत बरसत, शोभा पूरन चंद ॥अब०॥ २ ॥ द्यानत तीनों लोक विघन छय, जाको नाम करंद ॥ अब० ॥ २ ॥

(२९७)

अब मोहि तारलै कुंथु जिनेश ॥ अब० ॥ टेक ॥
कुंथादिक प्रानी प्रतिपालक, करुणासिंधु महेश अब० ॥१॥
सम्यकरत्नत्रयपदधारक, तारक जीव अशेष ॥अब०॥ २ ॥
द्यानत शोभासागर स्वामी, मुक्ति-वधू-परमेश ॥अब०॥३॥

(२९८)

अब मोहि तारलै अर भगवान ॥ अब० ॥ टेक ॥ दीप बिना शिवराह-प्रकाशक, भवतम-नाशकभान ॥ अब० ॥१॥ ज्ञानसुधारकजोत सदा धर, पूरनशशि सुखदान ॥ अब० ॥ भ्रमतपवारन जगहित-कारन, द्यानत मेघ समान ॥अब०॥

(२९९)

भजरे मनुवा प्रभु पारसको ॥ भजरे० ॥ टेक ॥ मन-वच काय लाय लौ इनकी, छाडि सकल भ्रम आरसको ॥ भजरे० ॥ १ । अभयदान दे दुख सब हरलै, दूर करै भवकारसको ॥ भजरे०॥ २ ॥ द्यानत गावै भगति वढावै, चाहै पावै ता रसको ॥ भजरे० ॥ ३ ॥

(३००)

लगन मोरी पारससों लागी ॥ लगन० ॥ टेक ॥ कमठ-मान-भंजन मनरंजन, नाग किये बड़भागी ॥ लगन० ॥१॥ संकट-चूरत मंगल पूरत, परमधरम अनुरागी ।लगन०॥ द्यानत नाम सुधारस स्वादत, प्रेम-भगति-मति पागी ॥ लगन०॥३॥

(३०१)

प्रभुजी मोहि फिकर अपार ॥ प्रभुजी० ॥टेक॥ दानव्रत

नहिं होत हमपैं, होहिंगे क्यों पार ॥ प्रभुजी० ॥ १ ॥ एक गुनथुति कहि सकत नहिं, तुम अनंत भंडार। भगति तेरी बनत नाहीं, मुकतिकी दातार ॥प्रभुजी० ॥ २ ॥ एक भवके दोष केई, थूल कहूं पुकार। तुम अनंत जनम निहारे, दोष अपरंपार ॥प्रभुजी०॥ नाम दीनदयाल तेरो, तरनतारन-हार। बंदना द्यानत करत है, ज्यों बनै त्यों तार ॥प्रभुजी०॥

३०२—राग आसावरी जोगिया ताल धीमो तेतालो।

करम देत दुख ओर, हो साइयां ॥ करम० ॥टेक॥ कई परावृत पूरन कीने, संग न छांडत मोर, हो साइयां ॥ करम० ॥१॥ इनके वशतैं मोहि बचाओ, महिमा सुनि अति तोर, हो साइयां ॥करम०॥२॥ बुधजनकी विनती तुमहीसों, तुमसो प्रभु नहिं और, हो साइयां ॥करम० ॥३॥

३०३—राग-गारो कान्हरो।

थांका गुण गास्यांजी आदिजिनंदा ॥ थांका० ॥टेक॥ वचन सुण्या प्रभु मूनै, म्हारा निजगुण भास्यांजी ॥आदि० ॥१॥ म्हांका सुमन-कमलमें निसदिन, थांका चरन बसा-स्यांजी ॥आदि०॥२॥ याही मूनै लगन लगी छै, सुख द्यो दुःख नसास्यांजी ॥आदि० ॥३॥ बुधजन हरख हिये अधि-काई, शिवपुरवासा पास्यांजी ॥आदि० ॥४॥

३०४—दौलतरामजीकृत शास्त्रस्तुति।

जिनबैन सुनत, मोरी भूख भगी ॥ जिनबैन० ॥टेक॥ कर्मस्वभाव भाव चेतनको, भिन्नपिछानन सुमति जगी।

जिनवैन० ॥१॥ जिन अनुभूति सहज ज्ञायकता, सो चिर तुष-रुष-मैल-पगी। स्यादवाद-धुनि-निर्मल जलतैं, विमल भई समभाव लगी ॥ जिनबैन ॥२॥ संशय-मोह-भरमत विघटी, प्रगटी आतमसौंज सगी। दौल अपूरब मंगल पायो, शिवसुख लेन होंस उमगी ॥जिनबैन० ॥३॥

(३०५)

जय जय जग-भरमतिमर-हरन जिनधुनी ॥ जय जय० ॥ टेक ॥ या विन समुझे अजौं न सौंज-निज-मुनी। यह लखि हम निजपर अविवेकता लुनी ॥२॥ जय जय० ॥१॥ जाको गनराज अंग,—पूर्वमय चुनी। सोई कही है कुंदकुंद, प्रमुख बहुमुनी ॥ जय जय० ॥२॥ जे चर जड भए पीय, मोह वारुनी। तत्त्वपाय चेते जिन, थिर सुचित सुनी ॥ जय जय० ॥३॥ कर्ममल पखारनेहि, विमल सुरधुनी। तजि विलंब अब करो, दौल उरपुनी ॥ जय जय० ॥ ४ ॥

३०६—राग-मल्हार।

मेघघटासम श्रीजिनवानी। मेघघटा० ॥टेक॥ स्यात्पद चपला चमकत जामैं, बरसत ज्ञान सुपानी। मेघघटा० ॥१॥ धर्मसस्य जातैं बहु बाढै, शिवआनँदफलदानी ॥ मेघघटा० मोहनधूल दबी सब यातै, क्रोधानल सु बुझानी। मेघघ० ॥३॥ भागचंद बुधजन केकीकुल, लखि हरखे चितज्ञानी। ॥मेघघटा० ॥४॥

(३०७)

वे प्रानी सुज्ञानी जिन जानी जिनवानी ० ॥ टेक ॥

चंदसूर हू दूर करैं नहिं, अंतर तमकी हानी ।वे०॥ १॥ पच्छ सकल नय भच्छ करत हैं, स्यादवादमें सानी ॥ वे० ॥२॥ द्यानत तीन भवन मंदिरमें दीवट एक वखानी ॥ वे० ॥३॥

३०८—राग धनाश्री ।

जिनवानीको को नहिं तारे । जिनवानी० ॥ टेक ॥ मिथ्यादृष्टी जगत निवासी, लहि समकित निजकाज सुधारे । गौतम आदिक श्रुतके पाठी, सुनत शब्द अघ सकल निवारे जिनवानी० ॥१॥ परदेशी राजा छिनवादी, भेद सु तत्त्व भरम सव टारे । पंच महाव्रत धर तू भैया, मुक्तिपंथ मुनिराज सिधारे ॥ जिनवानी० ॥२॥

३ ९—राग-ठुमरी झिझोटी ।

जिनधुनि सुनि दुरमति नसि गईरे, नय स्यादवादमय आगममें ।टेक॥ विभ्रम सकल तत्त्व दरसावत, यह तौ भविजनके मन वशगईरे ॥ नय० ॥ चिर-भ्रम-ताप-निवारण-कारण, चंद्रकलासी दरसगईरे ॥ नय०॥२॥ अघमल पावनकारण 'मानिक' मेघघटासी वरसि गईरे ॥ नय० ॥३॥

३१०—रेखता ।

जिन रागरोप त्यागा वह सतगुरू हमारा ॥ जिन०॥टेक॥ तज राजरिद्ध तृणवत, निज काज संभारा । जिन० ॥ १ ॥ रहता वह वन खंडमें, धरि ध्यान कुठारा । जिन मोह महातरुको, जडमूल उखारा । जिन०॥२॥ सर्वांग तज परिग्रह, दिग अंवर धारा । अनंतज्ञान गुणसमुद्र, चारित्रभंडारा ।

जिन॰ ॥३॥ शुक्लाग्निको प्रजालकैं, वसुकर्मवन जारा। ऐसे गुरुको दौल है, नमोस्तु हमारा। जिन॰ ॥४॥

(३११)

घनि जिन यह, भाव पिछाना। घनि॰ ॥टेक॥ तनव्यय वांछित प्रापति मानी, पुण्य उदय दुख जाना। घनि॰ ॥१॥ एक विहारि सकल-ईश्वरता, त्याग महोत्सव माना। सब सुखकों परिहार सार सुख, जानि रागरुष भाना। धनि॰ चित्स्वभावको चिंत्य प्रान निज, विमल-ज्ञान-दृगसाना। दौल कौन सुख जान लह्यो तिन, कियो शांतिरस पाना॥ घनि॰ ॥३॥

३१२ भावन।

कबधों मिलै मोहि श्रीगुरु मुनिवर, करि हैं भवोदधि-पारा हो। कबधों॰ ॥टेक॥ भोगउदास जोग जिन लीनो, छांडि परिग्रह-भारा हो। इंद्रियदमन वमनमद कीनो, विषयकषायनिवारा हो। कबधों॰ ॥१॥ कंचन काच बराबर जिनकैं, निंदक बंदक सारा हो। दुद्धर तप तपि सम्यक निजधर, मनवचतनकर धारा हो। कबधों॰ ॥२॥ ग्रीषमगिरि हिम सरितातीरैं, पावस तरुतर ठारा हो। करुणा भीन चीन त्रसथावर, ईर्यापंथ समारा हो। कबधों॰ ॥ ३ ॥ मार-मार व्रतधार शीलदृढ, मोहमहामल टारा हो। मास मास उपवास वास बन, प्रासुक करत अहार हो। कबधों॰ ॥ ४ ॥ आरतरौद्रलेश नहिं जिनकैं, धर्म शुक्ल चितधारा हो। ध्याना-

रूढ गूढ निज आतम, शुधउपयोग विचारा हो। कबधों ॥५॥ आप तरहिं अवरनकों तारहिं, भवजलसिंधु अपारा हो। दौलत ऐसे जैनजतीको, नितप्रति ढोक हमारा हो॥ कबधों॰ ॥६॥

३१३—राग खमाच।

श्रीगुरु हैं उपगारी ऐसे, वीतराग गुनधारी वे। श्रीगुरु॰ ॥टेक॥ स्वानुभूति-रमनी सँग कीड़ै, ज्ञानसंपदा भारी वे॥ श्रीगुरु॰ ॥१॥ ध्यानपींजरामैं जिन रोक्यो, चितखग चंचल चारी वे ॥श्रीगुरु॰॥२॥ तिनके चरनसरोरुह ध्यावै, भागचंद अघटारी वे॥ श्रीगुरु॰ ॥३॥

३१४—राग मल्हार

झूमझूम बरसै बदरवा, मुनिवर ठाड़े तरुवरतरवा॥ झूमझूम॰ ॥ टेक॥ कारीघटा तसी बीज डरावैं, वे निधड़क मानों काठ पुतरवा ॥झूमझूम॰ ॥१॥ बाहरको निकसै ऐसेमैं बड़े बड़े घरहू गलि गिरवा। झंझावात बहै अति सियरी, वे न हिलैं निजबलके धरवा॥ झूमझूम॰ ॥२॥ देख उन्हें जो (कोई) आय सुनावैं, ताकीतो करहूं न्योछरवा। सफल होय शिर पांयपरसिकै, बुधजनके सब कारज सरवा ॥झूम॰

(३१५)

बनमैं नगन तन राजै, योगीश्वर महाराज ॥टेक॥ इक तो दिगंबर स्वामी, दूजो कोई नहिं साथ॥ बनमैं ॥१॥ पांचों महाव्रतधारी परिसह जीतै बहु भाँत॥ बनमैं॰ ॥२॥ जिनने

अतनमद मारचो, हिरदै धारचो वैराग ॥ वनमैं०॥३॥ (एजी) रजनी भयानक कारी, विचरै व्यंतर वैताल ॥ वनमैं०॥४॥ बरसै विकट घनमाला, दमकै दामिनि चालै, वाय ॥ वनमैं० ॥५॥ सरदी कपिन मद गालै, थरहर कांपै सब गात ॥ वनमैं० ॥६॥ रविकी किरन सर सोखै, गिरिपै ठाड़े मुनि-राज ॥ वनमैं ॥७॥ जिनके चरनकी सेवा, देवै शिवसुख साज ॥ वनमैं० ॥८॥ अरजी जिनेश्वर येही, प्रभुजी राखो मेरी लाज ॥ वनमैं० ॥९॥

(३१६) बधाई—पार्श्वनाथ भगवानकी

वामाघर वजत बधाई, चलि देखरी माई ॥ टेक ॥ सुगु-नरास जग-आस-भरन तिन, जने पार्श्वजिनराई । श्री ही धृति कीरति बुधि लछमी, हर्षित अंग न माई ॥ चलि देखरी० ॥ १ ॥ बरन बरन मनि चूर सची सब, पूरत चौक सुहाई । हा हा हू हू नारद तुंबर, गावत श्रुति सुखदाई ॥ चलि देखरी० ॥२॥ तांडव नृत्य नटत हरिनट तिन, नख नख सुरीं नचाई । किन्नर करधर बीन बजावत, दगमन-हर छवि छाई ॥ चल देखरी० ॥ ३ ॥ दौल तासु प्रभुकी महिमा सुर,—गुरुपै कहिय न जाई । जाके जन्मसमय नर-कनमैं, नारिकि साता पाई ॥ चलि देखरी माई० ॥४॥

३१७—राग ललित एकतालो ।

बधाई राजै हो आज राजै, बधाई राजै, नाभिरायके द्वार बधाई ॥ टेक ॥ इंद्र सचीसुर सब मिलि आए, सज

लाये गजराजै ॥ बधाई० ॥ जन्मसदनतैं सची ऋषभ ले, सौंप दिये सुरराजै । गजपै धार, गये सुरगिरिपै, न्हौन करनके काजै ॥ बधाई० ॥ सहस आठ शिर कलस जु ढारे, पुनि सिंगार समाजै । लाय धरयो मरुदेवी करमैं, हरि नाच्यो सुख साजै ॥ बधाई० ॥ लच्छन व्यंजन सहित सुभग तन, कंचन दुति रवि लाजै । या छवि बुधजनके उर निशिदिन, तीन ज्ञानजुत राजै । बधाई० ॥४॥

३१८—राग सोरठा

आज तो बधाई हो नाभिद्वार ॥ आज० ॥ टेक ॥ मरुदेवी माताके उरमें, जनमे रिषभ कुमार ॥ आज० ॥ १ ॥ सची इंद्र सुर सबमिलि आये, नाचत हैं सुखकार । हरषि हरषि पुरके नारनारी, गावत मंगलाचार । आज तो० ॥२॥ ऐसो बालक भयो जु ताकैं, गुनको नाहीं पार । तनमन वचतैं वंदत बुधजन, है भवतारनहार ॥ आज० ॥

(३१९)

भये आज अनंदा, जनमे चंदजिंनदा ॥ भये० ॥ टेक ॥ चतुरनिकाय देवमिलि आये, इंद्र भया है बंदा ॥ भए० ॥ महासेन घर मात लछमना, उपजाया सुखकंदा । जाके तनमें बढी जोति अति, मलिन लगै हैं चंदा ॥ भये० ॥२॥ अब भविजन मिलि सुख पावेंगे, कटि हैं कर्मके फंदा । याहीके उपदेश जगतमें, होगा ज्ञान अमंदा ॥ भये० ॥३॥ धन्य घरी धनि भाग हमारा, दूर भया दुखदंदा । बुधजन बारबार इम भाखै, चिरजीवी यह नंदा ॥ भये० ॥ ४ ॥

३२०—दादरा

दया करनेमें जियरा लगाया करोरे ॥टेक॥ भूमि निरख कर चालो सहजमें, जीवोंको पगसे बचाया करोरे ॥१॥ सब जीव जगके अपनेसे जानो, काहूंका मन ना दुखाया करोरे ॥२॥ हिंसा करनेसे दुरगति मिलैगी, नरकोंमें पड दुख न पाया करोरे ॥३॥ प्रभु परम धर्म भारी अहिंसा, जिन वैन मनमें बसाया करोरे ॥४॥

३२१—दादरा ठुमरी देश।

गिरनारियोंपै चलूंगी प्रभुजी थारे लार ॥ टेक ॥ सुन २ री सजनी यह संसार असार। नहीं २ यहां रहना जाऊंगी जहां भरतार॥सुन २ री सजनी भूषण देऊंगी उतार। नहीं२ री मुझको नीको लगेरी शृगांर ॥२॥ सुन २ री सजनी जपूं मंत्र नवकार। नहीं २ री जिससे नैया पडीरी मंझधार। सुन २ री सजनी तुर्रम हैरी हुस्यार। नहीं २ रे मेरे भक्ति सिवा कुछ कार ॥४॥

३२२—दादरा थिबेटर।

जागो चेतन पिया देखो कबकी खड़ी ॥टेक॥
मोहकी सेज अनर्थकी चादर, संगमें दासी सोवे पडी ॥१॥
जात पात न छुटत छुटाये, प्रीति लगाई थी कैसी घडी ॥२॥
ज्ञानकी बरषा रिमझिम बरसे, श्रीजिनधुनघन लागीझडी ॥३॥
ध्यान हिंडोले हम तुम झूले, पहरके रत्नोंकी मुक्ता लडी ॥४॥
सुमति पुकारे बोलो मंगत, अब नहिं बोलो तो गफलत पडी ॥

३२३—राग देश ताल दादरा ।

बारी उमर सैयां जोग धरो ना, जोग धरो ना ॥ टेक ॥
व्याहन आये भव हर्षाये, तोरि कंकन सिवतियको वरोना ॥
भावन भाये जिन कर्म खिपाये, समरथ हो तुम मौन धरोना॥
राजुल अर्ज करै सुन स्वामी, दोष कहां तुम हमसे लरोना॥
भविजन प्रभु तुम पार किये हैं, द्यानतके तुम दुखको हरोना॥

३२४—राग खेमटा दादरा ।

पहरा गये श्रीमुनिराज, हमको ज्ञान गजडा ॥ टेक ॥
ज्ञान गजडा सीताजीने पहरो, अग्निमें भई परवेश ॥ १ ॥
ज्ञान गजडा रानी सुभद्राने पहरो, चलनीमें भर लाई नीर ॥
ज्ञान गजडा गौतम स्वामीने पहरो, विपुलाचलके तीर ॥
ज्ञान गजडा सेठ सुदर्शनने पहरो, सूली होगई विमान ॥
ज्ञान गजडा राजा माणिकने पहरो, पायो अचलपुर थान ॥

३२५— दादरा कहरवा ।

प्रभुजीसे लग गई मोररी नजरिया ॥ टेक ॥
नांहि टरत घडी पल२ छिन२, छकितभई छविमाहिरेनजरिया
कहरे कहूं उन सरस वदनकी, निरख २ ललचायरे नजरिया ॥
चाह न कुछ दगन लखनकी, सहज हजारी पाईरे नजरिया ॥

३२६—दादरा कहरवा ।

गिरनारी पै जाय लियो जोग, हमे तज नेमी पिया ॥टेक॥
तोरनसे रथ फेरि दियो झट, समझाय रहे सब लोग ॥१॥
सुख साधनि माता परिजन हारी, त्याग दियो भव भोग ॥
पूरन राजुल चरन नेमिके, आवागमन मिटे रोग ॥३॥

३२६—देशी दादरा।

अरी तुम कौनकी हो प्यारी, फुलवा बीननहारी ॥ टेक ॥
ज्ञान ध्यानको बन्यों बगीचा, फूल रही फुलवारी।
जादोराय माली बन आये, काटत कर्म कुठारी ॥१॥
समुद्रविजयजी मेरे ससुर लगत हैं, उग्रसेन धिय प्यारी।
नेमनाथ मेरे पति कहीजे, हम हैं राजुल नारी ॥२॥
इत झूनागढ़ इते द्वारिका, बीच शिखर गिरनारी।
गिरवरलाल कहे करजोडी, चरण शरण बलहारी ॥३॥

३२८—झूलना दादरा।

झूलत सब जिनराय हिंडोला, झूलत सब जिनराय० ॥टेक॥
ज्ञान दरश दोऊ खंभ लगे हैं, डडा ध्यान सुखदाय ॥१॥
दान शील तप भावना डोरी, पाटी समझ सुभाय ॥२॥
शील सुंदरी संग हिलमिल बैठे, आगम धुन गुण गाय ॥३॥
रमता सुमति पेग देत हैं, पंचमगति पहुंचाय ॥४॥
चेतनता सुध होय जगतमें, आवागमन मिटाय ॥५॥

३२९—फाग होली।

जय बोलो ऋषभजिनेश्वरकी, जय बोलो० ॥ टेक ॥
जन्म अयोध्या माता मरुदेवी, नाभिनंदन जगतेश्वरकी ॥१॥
धनुष पांचसै काया जिनकी, लक्षण वृषभधरेश्वरकी ॥२॥
लख चौरासी पूरब आयु, कुल इक्ष्वाक करेश्वरकी ॥३॥
दास चुन्नी प्रभु सेवा चाहे, तारनतरन तारेश्वरकी ॥४॥

३३०—ठुमरी झंझोटी।

काहे गिरनारी गिर छायरे हमारे पिया, काहे गिर० ॥टेक॥

प्रभु वैरागी बडे अति भारी, दीनी पशू छुडाय रे ॥१॥
शिवरमनी सिद्धनकी नारी, ताही ने लये भरमाय रे ॥२॥
ना माने राजुल नेम प्रभु विन, मो चित्त ओर न सुहाय रे ॥

३३१—दादरा कहरवा।

नेमी पिया म्हारी लीन्हा न खबरिया ॥ टेक ॥ ब्याहन आये संग हलधर लाये, हर्ष भयोरे आज सारी री नगरिया ॥१॥ तुम्हरे कारन पशू घिरवाये, तोरि कंकन लई गिरकी डगरिया ॥२॥ नेमी वन धरि छप्पन केवल पाये, छेदी कहै हमारी छुटी रे भवरिया ॥३॥

३३२—ठुमरी दादरा।

चले हो सैय्यां किसपर छोड अकेली । टेक॥ भोगके जोगकी जोगके प्यारे, जोबन वैस नवेली ॥ १ ॥ तुम जिन सुखद भये सगरे, चंदन चंद नवेली ॥ २ ॥ चंचरीक जिम चंपक त्यों हम, परियन संग सहेली ॥३। पार उतारो वार सार जिम, मनु मझधार दहेली ॥४॥ राजुल तारो फंद विदारो, मंगत बूझ पहेली ॥ ५ ॥

३३३—दादरा।

प्यारा मोरा चढ़ा गिरनारी, प्यारा मोरा चढ़ा० ॥ टेक ॥ तीन ज्ञान जन्मतही पाये, इंद्र करे जिन सेवा चारी ॥ १ ॥ मोर मुकुट कंकन तोरे, पशुवनपै प्रभु करुणाधारी ॥ २ ॥ परसादी कहै विनवें राजुल, देउ दिक्षा हम जाचनहारी॥३॥

३३४—दादरा थियेटर।

अम्मा मुझे चल करके दिक्षा दिला दे, दिक्षा दिला दे

शिक्षा दिला दे ॥टेक॥ हांरी मुझे मुक्तीके मारग लगा दे, अम्मा मुझे चल करके दिक्षा दिला दे ॥ टेक । कंकनको तोडो, बेसरको मोडो, हांरी मुझै वैराग्य सारी रंगा दे ॥१॥ बस जगका नाता झूठा है माता, मुझे गिरनारीकी रस्ता बतादे ॥२॥ न्यामत निहारो दिलमें विचारो, वेगी जिन-चरणोंमें जिया लगा दे ॥३॥

३३५—ठुमरी झंझोटी।

गिरनारीकी डगर बतादोरे, गिरनारीकी डगर बतादोरे ॥
हिरदेका हार बाजू बंध दूंगी, हो पियासे कोई मिलादोरे।
नेवरु अरु मेरे करकी मुदरी हो, जो मांगे सो दिलादोरे ॥
मेरा पिया मेरा प्राणपियारा. चलके कोई समझादोरे।
नवभवकी मै चेरी उनकी, मनकी आंट मिटादोरे ॥
·पूरव भव हम भील भीलनी, इतनी बात जतादोरे ॥३॥

(३३६)

सुनो जननी हमारी, मै तो जाऊँ गिरनारी, मोरी नेमीसे लागी नजरिया जान। मैंने लीना है जोग, नहीं तुमसे संयोग, मत रोकोरी मेरी डगरिया जान। सुनो माता भ्रात, क्षमो मुझको हे तात, मुझे जाने दो शिवकी नगरिया जान। अजी छोड़ो यह हाथ, मुझे जाना प्रभात, 'मौजी' मानू न बात अजी वाह वाह वाह।

३३७—दादरा

अंबार मोरे स्वामी ! भवदधिसे कर मुझको पार ॥टेक॥

चहुँगतिमें रुलता फिरा मोरे स्वामी ! दुखड़े सहे हैं अपार ॥१॥ मिथ्या अंधेरा मगर मोहने घेरा, करमोंके विकट पहार ॥२॥ सातों विषय क्रोध मद लोभ माया, आये लुटेरे दहार ॥ सम्पतिकी वेड़ी भंवर पडी है, वेगीसे लेनाउवार॥

३३८—गजल

चाहे तारो या न तारो चरणोंमें आ पड़ा हूं ॥ टेक ॥ तेरे दरशको आया मनमें तुही समाया, अति दीन हो खड़ा हूँ ॥ १ ॥ सब जगतमें फिरके आया, शरना कहीं न पाया, तेरी शरन गिरा हूँ ॥ २ ॥ निज दास जान लीजे, शिवमग बताय दीजे, वन २ भटक फिरा हूँ ॥३॥

३३९—दादरा केहरवा

तुही २ याद मोहि आवे दरदमें ॥टेक॥ सुख सम्पतिमें सब कोई साथी, भीर पड़े भग जावें दरदमें ॥१॥ भाई वन्धु और कुटुम्ब कबीला, तो संग मन ललचावे दरदमें ॥२॥ प्रेम दिवाना है मस्ताना, सदा जिनंद गुण गावे दरदमें ॥३॥

(३४०)

तेरी शांति छवी मेरे मन बस गई, नहीं रुचे और छवि नैननमें ॥टेक॥ निर्विकार निर्ग्रंथ दिगम्बर, देखत कुमति विनश गई ॥१॥ चिर मिथ्या तम दूर करनको, चन्द्रकलासी दरस रही ॥२॥ 'मानिक' मन मयूर हरषनको मेघघटासी दरस रही ॥३॥

(३४१)

कभी करके दया जिनराज मुझे छवि अपनी जो आप

दिखा देते। मेरे ज्ञानका सूर्य उदित करते भ्रम तमकी घटा-को हटा देते ॥१॥ छविकी प्रभुता क्या गान करूं जाने इन्द्र विभूतिको छार किया। दिखलाके अनुपम दर्श मुझे मुक्ति-के मग पै लगा देते ॥२॥ सभी जलते यह अघ समकित मिलता भव पावन भावन हो जाता। प्रभु विनय करत कर जोर प्रभु अब मोक्ष इसे भी मिला देते ॥३॥

(३४२)

चंद्रप्रभु जिनचंद तुमारी, चरन शरन हम आन गही है ॥टेक॥ चंद्रपुरी महासेन नृपति धनि, मात सुलक्षण धन्य भई है ॥ १ ॥ त्रिभुवन चंद २ लक्षण तन, तुम गुण अप-रंपार सही है ॥३॥ 'बलदेव' कू भव २ में तुमरी, सेवा दो अरदास यही है ॥ ४ ॥

(३४३)

कब मिलि हैं साधु वनोवासी रसिया ॥टेक॥ निर्विकार निर्ग्रन्थ दिगम्बर, तोर दई ममता फाँसी ॥१॥ ये प्रभु सब जीवनके रक्षक, मिथ्या तम हर सुख रासी ॥ २ ॥ राज बाज गज परिजन छोड़े, जिन छाँड़ि दई राजुल नारी ॥३॥ 'मानिक'के उर वसो जगत गुरु, धन्य भाग जब मिल जासी ॥

(३४४)

महावीर महाराज ! दया कर कष्ट हरो ॥प्रभुजी०॥टेक॥ सीता सती द्रोपदा रानी, लज्जा राखी चीर बढ्यो ॥ १ ॥ बेड़ा हमारो पार लगैयो, भवसागर मँझधार पर्यो ॥ २ ॥

श्रीपालको उदधिसे उबारौ, रैनमंजूषाको शील खरो ॥३॥
संकट है अब दास छबीले, दुःख हरो भव पार करो ॥४॥

(३४५)

राजा जोग मत धारो २ गिरवरजीके तीर ॥ टेक॥
काहेकी कमनिंया बनाय लई २ काहेके दोनों तीर ॥ १ ॥
ध्यानकी कमनिया बनाय लई २ ज्ञानके दोनों तीर ॥२॥
बारह जो भावन भावें २ उपजौ ज्ञान शरीर ॥ ३ ॥
'विधि चन्द्र' दोउ कर जोरें २ मेटो कर्म जँजीर ॥ ४ ॥

(३४६)

बिन देखे रह्यो नहिं जाय, बिना प्रभु पारसकी छविके रे ॥टेक॥ आननकी द्युति कोटिके आगे, चन्दा सूरज लजाय ॥ १ ॥ नेत्र हजार किये सुरपतिने, तऊ न त्रपति अघाय ॥ २ ॥ आनन्द सों प्रभुके गुन गाऊँ, रोम २ हरषाय ॥३॥

(३४७)

जिनवरजी मोहिदेव दरशनवा ॥ टेक ॥ विरद तिहारो मैं सुन आयो अब मो मन तुम करो परसनवा ॥१॥ मोह तिमिरके दूर करनको नाहिं दिवाकर तुम सम अनवा ॥२॥ अब सेवक हितकर गुण गावे उमंग २ परसे चरननवा ॥३॥

३४८ – दादरा

जिया जिनजीसे ध्यान लगाना रे ॥टेक॥ प्रभु सुमरेसे पाप कटत हैं, मन वांछित फल पाना रे ॥१॥ पद्मप्रभुजीसे प्रीति करे नर, शिव रमनी सुख पाना रे ॥२॥ परमोदयकी यही अरज है, जामन मरन मिटाना रे ॥३॥

(३४९)

थारो भरोसो भारी मुझे जिन ॥टेक॥ भवसागरमें डूबत प्रभुजी लीन्ही शरण तुम्हारी ॥१॥ तुम प्रभु दीनदयाल दयानिधि, मैं दुखिया संसारी ॥२॥ तुम जग जीव अनंत उबारे अबकी बार हमारी ॥३॥ नैनसुख प्रभु हमारी नैया अटक रही मझधारी ॥४॥

(३५०)

प्रभूकी भक्ति काफी है, शिवा सुन्दर मिलानेको ॥टेक॥ छुड़ा दामन कुमतसे जो, तू शिव सुन्दरको चाहै है । तुझे आई है रे चेतन, सखी सुमता बुलानेको ॥प्रभू० १॥ जगा मत मोह राजाको, पड़ा है ख्वाब गफलतमें। बना ले ध्यानकी नौका, भवोदधि पार जानेको ॥ प्रभू० ॥२॥ तुझे अय 'न्यामत' कोई, अगर रहवर नहीं मिलता॥ तो ले चल संग जिनवानी, तुझे रस्ता बतानेको ॥ प्रभु० ॥३॥

३५१-शांतिसागर आचार्य स्तुति।

शांतीसागर आचारज नमोस्तु तुम्हे ॥ टेक ॥ संघका नेतापना शोभे विविधि विधि आपको। दे सुशिक्षा विज्ञ कीना नाथ तूने संघको। दीनी शिक्षा यहां भी सुधारा हम्हे ॥ शांतिसागर० ॥ शांतिता लखि आपकी आनंद जो दिलमें हुआ। प्रमुदित हृदय-अम्बुज हुआ रविरूप तू परगट हुआ। तेरी सुँदर सुमुर्त्ति सुहावे हम्हें ॥ शांतीसागर० ॥१॥ सर्व जनता शिर झुकावै चरण परसकर आपके। धन्य

समझै आपनेको दर्श करके आपके। भारी नींदसे तूने जगायां हम्हें ॥ शांतिसागर०॥३॥ चारित्र तेरा विमल है आदर्श है सुमनोज्ञ है। है तृप्तिकर अरु असरकारक सब तरहसे योग्य है। धरते चरणोंमें शीश उवारो हम्हे ॥शांतीसागर० ॥४॥ बहुत दिनकी आश पूरी जन्म मम सार्थक हुआ। देखा स्वरूप अनूप तेरा 'कुंज' दिल प्रमुदित हुआ। अपने चरणोंका दास बनालो हम्हे ॥ शांतिसागर० ॥ ५ ॥

३५२-महावीर

तुझे वीर स्वामी मैं आदि मनाऊं। हरो विघ्नबाधा मैं शीश झुकाऊं ॥टेक॥ तेरी वीर शिक्षा बनाती सुकर्मी। उसी सीखसे आज भवको नशाऊं ॥तुझे०॥१॥ गया जीव कोई शरण वीर तेरी। उवारा उसे याते शीस नवाऊं ॥तुझे०॥२॥ दया धर्म हे नाथ! तुमने बताया। उसी धर्मका आज डंका बजाऊं ॥तुझे०॥३॥ दिखाया सुपथ वीर स्वामी तुम्हींने। चलूँ मैं उसी राह करतब निभाऊं ॥तुझे० ॥४॥ कहै 'कुंज' स्वामी हरो दुःख मेरा। धरूं जन्म जब धर्म तेराही पाऊं ॥तुझे॥

३५३—धर्मप्रशंसा

परलोक मांही धर्म चलेगा तेरे साथ रे ॥टेक॥ चलेगी नाहीं माता। चलेगा नहीं तात। चलेगा प्यारे धर्म अकेला तेरे साथ रे ॥परलोक०॥ चलेगी नहीं औरत। चलेगी नहीं दौलत। चलेगी चेतन सुमति तुम्हारे इक साथ रे॥परलोक०॥ चलेगा दीया दान। चलेगा पर कल्याण। नहीं चालें प्यारे

रत्न जवाहर साथरे ॥ परलोक० ॥ चलेगा सम्यग्ज्ञान । चलेगी जिनवर आन । चलेगा प्रेमी निजगुण ही तेरे साथ रे ॥ परलोक० ॥ पात्रोंको दे दो दान । हो निज परका कल्यान । सुन सज्जन लक्ष्मी जावे किसी के साथ रे ॥पर०॥ जग इन्द्रजालका खेल । दुःखोंकी रेलम्पेल । प्रभु भव दुख नाशो 'कुंज' नवावे निज माथ रे ॥परलोक०॥

३५४–मुनिसंघस्तवन

मुनिसघ तुझे हम नमन करें, भवदुःख जलधिसे तारो हमें । निष्कारण बंधु तुम्हीं जगके करि कृपा पधारि सुधारि हमें ॥टेक॥ बहुतोंको तारि दिया तुमने अब आकर श्री गुरु तारि हमें । थी आश सुखद शुभ दर्शनकी लखि नेत्र तृप्ति भये आज तुम्हें ॥मु०॥ तेरे पग पड़िगये जहां २ सब सुधरि गये भवि वहां २ । तप तेज देखि मुनिवर तुमको सब जीव भक्तिवश होय नमें ॥मु०॥ है आगमोक्त आचरण सभी जिनमें नहिं आता दोष कभी । सद्गुणथानक मुनिसंघ तुझे कर जोर होय नत भाल नमें ॥मु०॥ जिसने तुमको इक देख लिया उसने अपना कल्याण किया । अब 'कुंज' दास तुव चरणनमें नमि चहै मुक्ति दो नाथ हमें॥मु०॥

३५५-ऋषभजिनेन्द्रस्तुति ।

ऋषभ तुम वेगि हरो मम पीर ॥ टेक ॥ दावानल सम जगके मांही है संतप्त शरीर । प्रभुके शांति निकेतन मांही शीतल वहति समीर ॥ऋषभ०॥ विष सम विषय विभुंजे मैने

पाया दुख गंभीर। क्या तुम जानत नांहिं जिनेश्वर मैं जु सही भवपीर ॥ऋषभ०॥ मिथ्यादेव कुगुरुकी सेवा करि हूआ दिलगीर। भाग्य उदय अब जानो मेरा प्रभु देखी तसवीर॥ऋषभ०॥ शांत हुआ लखि ऋषभ सुमुद्रा कर्म कटी जंजीर। तारि सुनिश्चय 'कुंज' इसीसे शरण गही तुव वीर॥ऋ०

३५६-शांतिनाथस्तवन

श्रीशांति सुखकरा प्रभु शान्ति जिनवरा, देउ शांति मोय स्वामी अर्ज सुन जरा ॥टेक॥ श्रीजिनके चरणारविंद में जल अरपूं भवनाशन काज। चंदन भव आताप मिटावन घसि अरपों निज सुखके काज। शांति शुभकरा ॥श्री०॥ अक्षत प्रभु चरणोंपर खेऊं अक्षय निजपद पावन सार। पुष्प काम विध्वंसकरन हित श्रीजिन अग्र धरों सुखकार। मोद मन धरा ॥ श्री शांति० ॥२॥ क्षुधारोगनाशनके कारण चरु नित धरूं जिनेश्वर पांय। दीप चढाऊं प्रभुके आगे ज्ञान-ज्योति याते प्रगटाय। मोहतम हरा॥ श्री०॥ धूप कर्म वसु कर्म नाश हित फल अरपूं इच्छित फलदाय। अर्घ मिलाय धरों जिन आगे यातें 'कुंज' मुकति पद पाय॥ सर्व दुखहरा ॥श्री शांति० ॥४॥

३५७-प्रभुदर्शावसर।

प्रभू तोइ लखि पायौ रे, अबकी बार ॥ टेक॥ देखि सुमूरति, हे त्रिभुवन पति, क्रोध मोह विछुटायौ रे ॥अबकी बार०॥ भाव दरशका, श्री जिनवरका। दिल विच आज

समायौ रे ॥अबकी बार०॥२॥ त्रस थावरकी, हालत दुखकी। धरि धरि काल गमायौ रे ॥अबकी बार०॥३॥ आज मनुज भव, श्रीजिनवरं रव । प्रभु संयोग मिलायौ रे ॥ अबकी बार० ॥४॥ 'कुंज' स्वपद गहि, कर्म पुंज दहि । आज समय शुभ पायौ रे ॥ अबकी बार० ॥५॥

२५८—दानोपदेश सवैया ।

दान करो भवि मोह हरो धन खर्च भरो निधि पुण्य कमाई ।
आज सुवक्त मिला तुमको गहि चेतन क्यों न बडी प्रभुताई
बैठि यहां किमि सोच करै करि सोच२ दिन रात विताई
'कुंज' कहैं शुभभाव धरो प्रभु पुष्पमाल गहि मन हरषाई ॥

२५९—वस्तुक्षणभंगुरता सवैया ।

गेह पुरी धन धान्य कुटुम्ब सभी विनशै बिजुली सम भाई ।
पुत्र कलत्र सुमित्र सभी जन छोडि भगे न रहें दुखदाई ॥
चंचल द्रव्य समान रहै नहिं चन्द्र समान घटै बढ़िजाई ।
'कुंज' कहै शुभ भाव धरो हिये पुष्पमाल प्रभुकी सुखदाई ।

२६०—द्रव्यकार्य सवैया ।

द्रव्य घनी अघहेतु कही पण पुण्यमयी जिन पुण्य लगाई ।
चंचल द्रव्यसे पुण्य कमैं थिर, क्यों न गहै तू यह प्रभुताई ॥
वक्त गये पछितायगा चेतन भावओ वक्त मिलै न मिलाई ।
'कुंज' कहै शुभभाव धरो जु गहो जिन माल बडी सुखदाई ॥

२६१—पात्रदानफल सवैया ।

उत्तम मध्यम और जघन्य सुपात्रन दान दियो जिन भाई ।

भोग मिले उनको मन माफिक मोक्ष गये फिर कर्म नशाई।
आज मुझे परमोत्तम पात्र मिला करि दान जु है सुखदाई॥
'कुंज' कहै शुभ भाव धरो प्रभु फूलमाल गहि मन हरषाई।

३६२ सर्वसाधु (मुनि) स्तुति।

श्री सर्वसाधु पग लाग, भव्य अब मोह नींदसे जाग ॥टेक॥ बहुत कालसे जगमें भटका, मिटा न दिलका अबतक खटका। मिथ्या मति अब त्याग ॥ भव्य० ॥१॥ है गुरुवर ये दीनदयाला, पी इनसे धर्मामृत प्याला। हितके मारग लाग ॥ भव्य० ॥२॥ सुनि उपदेश मुनिनका भविजन, करो भला भटको न जगत वन। निज रसमें निज पाग ॥भव्य० मुनि रवि किरण प्रकाशी दश दिशि, भव्य हृदाम्बुज खिलन अहर्निशि। अबतो चेतन जाग ॥ भव्य०॥४॥ शासन सुखद अजेय तुम्हारा, रहै अनादि निधन सुखकारी। 'कुंज' कुमसे भाग ॥ भव्य० ॥५॥

३६३—मोहनींद त्यागोपदेश।

मोहकी नींद छुड़ावो प्रभूजी ॥ टेक ॥ काल अनंत निगोद मंझारी, सहा बहुत दुख भार प्रभूजी ॥ मोहकी० ॥१॥ तहं संचय था चर तन धर मर जनम दुःख बहु पाया प्रभूजी। भोग और उपभोग वस्तुकी, करि करि इच्छा लुभायो प्रभूजी ॥ मोहकी ॥३॥ आतम तत्व नहीं पहिचाना। व्यर्थ ही काल गमायो प्रभूजी ॥ मोहकी० ॥५॥

३६४—देह स्वरूप।

जीव मोह्यो पराये तनमें ॥टेक॥ पुद्गलनिर्मित हाड़

पींजरा घृणित सप्तधा तनमें ॥जीव०॥१॥भीतर या सम घिन नहिं अनमें निकसै मल अंगनमें ॥ जीव० ॥२॥ भेदाभेद नहीं पहिचाना। उलक्ष्या पर रूपनमें ॥ जीव०॥३॥ विनाशीक दुखदाई ये तन। दीखै साफ दृगनमें ॥ जीव ॥४॥ तो भी नादि मोहका प्रेरया। मानें सुख विषयनमें ॥जीव॥ यातें 'कुंज' मोह तन छोड़ो। करि सरधा तत्त्वनमें ॥जीव॥

(३६५)

श्रीवीर जिनवरा तुव चरण आ पड़ा दुःख नाशि सुक्ख देउ मोय भव हरा ॥ टेक ॥ श्रीजिनराज भवन बिच राजैं प्रतिमा सरल शांति सुखदाय। भक्ति भाव धरि उरमें भविजन पूजा करें सुरस गुण गाय ॥ प्रेमरस भरा ॥श्रीवीर०॥ श्री जिनभवन गमन मनुभव अरु जिन बचनामृत श्रवण सुपाय। करे न निज कल्यान आपना तिनका जन्म अकारथ जाय। व्यर्थ अवतरा ॥श्रीवीर० ॥२॥ श्री जिन पूजन करो भव्य जन हरो पाप भव भव दुखदाय। क्यों भटको भव 'कुंज' सयाने जिन सम क्यों न मुकतिपद पाय ॥ दुःख क्यों भरा ॥ श्रीवीर० ॥३॥

(३६६)

भज मन नेम चरण दिनराती ॥टेक॥ रसना रसना भज जदुपतिको, भजन करत अघ घाती ॥ १ ॥ जाके भजे कटै दुख दारुण, सुर्गादिक सुख पाती ॥२॥ जाके जन्म कल्यानक माहीं, इंद्रशची गुण गाती ॥३॥ आप तरण तारणको

समरथ, नाशक तम मिथ्याती ॥ ४ ॥ सेवककों तारो प्रभु हितकर, अपनो विरद निभाती ॥५॥

(३६७)

क्या हट माड़ी जदुवंशी पलटजा ॥टेक॥ व्याहन आये अति उमगाये, श्रीजिनराज मनाये झपटआ ॥१॥ सज वजके जादों संग आये, यश पुकार सुनाये अटकजा ॥ २ ॥ भूषण वसन सबै तज दीने, गिरनारी तपधारो झपटजा ॥३॥ प्रभु संग राजुलने तपलीना, सेवकको प्रभु तारो लटकजा ॥४॥

३६८—पद परजमें ।

येजी प्राणी प्रीत जगतकी झूठी ॥टेक॥ मित्र कलित्र पुत्र कुटंब संग, बंधु गरजकी मूटी (मूठी) ॥१॥ जा छिन गरज सरे ना जाकी, तुरत मिताई टूटी ॥२॥ प्राण छुटे कोऊ ना छीवे, जैसी पातर जूठी ॥३॥ प्रीति करो जिनराज चरणसे, छाडों कुमति कलूटी ॥४॥ सेवकको रत्नत्रय दीजे, मुकति महलकी खूंटी ॥५॥

३६९—राग-भैरवी ।

मन लागा हो जिन चरननसों ॥ टेक ॥

और कुदेव मनाहिं न भावे, जिन चरचा सुन कर्ननसों ॥१॥
प्रभुजी ऐसी किरपा कीजे, पाउं विजय अरि कर्मनसों ॥२॥
तुमही स्वामी वैद्य धानंतर, लेव बचा भव मर्णनसों ॥३॥
तुम गुण गणधर कह न सकत ही, पार न पाऊं वर्णनसों ॥४॥
सेवक अर्ज करत कर जोरे, राख लेहु भव भर्मनसों ॥५॥

३७०—सोरठ।

मै तो जांऊछैगढ गिरिनार,सहेली मारी रोको न डागरिया॥टेक
कौन चूक मोरी प्रभु लख ली, पाडी न भांवरिया॥ १॥
नेम नवल बिल कौन उबारे, डूबै छै नावरिया॥ २॥
गृहतजके राजुल तपलीनो, जहँ प्रभु सावरिया॥ ३॥
सेवकको भवदधि सों तारो, कर गह जा विरिया॥ ४॥

३७१—राग झझोटी।

क्या भूलमें है श्रीजिन भजले,तेरी दो दिनकी है आवरिया॥टेक
नरभव कुल श्रावगको पायो, धरम साथ लेया बिरियां॥१॥
वृद्धापन तेरी देह थकेगी, तब क्या पालोगे किरियां॥२॥
रिपुकाल आयुनिधि लूटकरे,तब काको शरणा वा धरियां॥३॥
याते अरजी जिनराज सुनो, सेवकको तारो गह बहियां॥४॥

३७२—लावनी सोरठ।

सुनो सुनो मेरी सुमति जिनेश, मुझ दीजे सुमति हमेशा॥टेक॥
जबतें वा बिछुरी स्यानी, तबतें कुमता अगवानी।
सुधि मोखपंथको रोका, मुह भूलत राह न टोका॥
अब अरज करों प्रभु पासा॥मुझ०॥ टेक॥

३७४—कजली।

आतम आपको निहारे, खुटे मोह कजली॥ टेक॥
चिरदासीसों भये उदासी, मीतिकरी राधा लजली॥ १॥
मिथ्या बुध भोरीकी डोरी, टोरी निज परणति भजली॥ २॥
देह नेह धन मित्र बंधु तिय, अथिर लखे ज्यों गति बिजली॥३॥

शुद्धपयोग दशागह लीनी, रागद्वेष विकलप तजली ॥ ४ ॥
धन्न घरी सेवक जब पावे, या विध अनुभव मुक्तिगली ॥५॥

३७५—राग-जंगला ।

मैं नमों प्रभुकर सीसधार, भव जलधि क्षार सों तार तार॥टेक॥
तुवचरण कमल नख दुति अपार, लख सुरनर पूजित वारवार ॥
हर मिस मुख उचरों नामसार, मेरे वसु अरि चिर जार जार ॥
नहिं फ़ुरतशक्तिगति भ्रमतचार, भवभवविध डोलत लारलार ॥
तुम विन नहिं दीसत शरणदार, गदरागमहारिपु मारमार ॥
लीजे सेवकको अब उवार, ज्यों तारे जनप्रण धार धार ॥

३७६—दादरा ।

सुनो मेरे प्रभुजी अरजी हमार ॥ टेक ॥
तुमको भूल भवोदधि भटको जामन मरण अपार ॥ १ ॥
भागउदय मानुष गति पाई जिन चरनन चित धार ॥ २ ॥
सेवकको शिवसुख अब दीजे षट द्रूय दुष्टन टार ॥ ३ ॥

(३७७)

कोउ कछू कहे मन लागा जी ॥टेक॥ जब लागा विषयनतै भागा अनुभव रसमें पागाजी ॥१॥ व्याधि तो मोहसमाधिसी दीसे भासा दुख सुख रागाजी ॥२॥ सोता नादि कालका भ्रममें मोह नींद तज जागाजी ॥३॥ चिर अरि विधको नाश देव जिन सेवकको शिव जागाजी ॥४॥

(३७८)

प्रभु विनको मोरी लेय खबरियां ॥टेक॥ देव हरो जन्मत प्रदुमनको रक्षक कौन हतो वा विरियां ॥१॥ कौन सहाय

करी वाही छिन पवनपूत पाथरपर गिरियां ॥२॥ अग्नि-कुंड महिं सिय जब पैठी फूले कमल तहां जल भरियां ॥३॥ तुम शरणा बिन भवबन भटको नंतानंत जनम धर मरियां यौंही सेवकपर किरपा कर मेंट देहु भव भवहिं भँवरियां ॥

(३७६)

श्रीजी तौ आज देखो भाई, जाकी सुन्दरताई ॥ श्रीजी० ॥टेर॥ कंचन मणिमय अंगतन राजे, पद्मासन छवि अधिकाई ॥श्रीजी० ॥ तीन छत्र शिर ऊपर जिनके, चौसठि चमर ढुरै भाई ॥ श्रीजी० ॥२॥ वृत्त अशोक शोक सब नाशै, भामंडल छवि अधिकाई ॥श्रीजी०॥३॥ धुनि जिनवर-की अतिशय गाजै, सुरनर पशुके मन भाई ॥श्रीजी० ॥४॥ पुष्पवृष्टि सुर दुन्दुभि बाजै, देख 'जिनेश्वर' रुचि आई॥श्री०

(३८०)

सुनिये सुपारस अरज हमारी ॥ सुनिये० ॥ टेर ॥ लख चौरासी जोन फिर्‌यौ मैं, पायो दुख अधिकारी । सुनिये०॥ वडे पुण्यतै नर-भव पायो. शरन गही अब थारी ।सुनिये०॥ रत्नत्रय निधि निजकी दीजै, कीजे विधि निरवारी। सुनिये० ॥३॥ अधम उधारक देव जिनेश्वर, आज हमारी वारी । सुनिये०॥४॥

(३८१)

घड़ी दो घड़ी मंदिरजीमें जाया करो, २ एजी जाया करो, जी मन लगाया करो, घडी० ॥टेर॥ सब दिन घर धंधामें खोया, कछु तो धर्ममें विताया करो । घड़ी० ॥१॥

पूजा सुनकर शास्त्र भी सुणल्यो, आध घड़ी तौ जापमें विताया करो ॥घड़ी०॥२॥ कहत 'जिनेश्वर' सुन भविप्रानी जावत मनको लगाया करो। घड़ी° ॥३॥

(३८२)

कर्म बड़ा देखो भाई, जाकी चंचलताई ॥कर्म वड़ा॥टेक॥ राजा छिनमैं रंक होत हैं, भिक्षुक पावै प्रभुताई। जाकी०॥ निर्धन धनिक होय सुख पावै, धनविन होय निधनताई ॥ जाकी° ॥२॥ शत्रु मित्र सम सब सुख देवै मित्र करै फिर कुटिलाई ॥ जाकी० ॥३॥ सुत त्रिय बंधवको निज जानै, सो निज अहित करै भाई ॥ जाकी० ॥४॥ सुख दुखमैं पर-दोष न दीज, यही 'जिनेश्वर' बतलाई ॥जाकी०॥५॥

३८३—माधवी।

हमरी वेरियाँ काहे करत अवारजी ॥ टेक ॥ इह दरवार दीनपर करुना, होत सदा चलि आईजी ॥ हमारी० ॥१॥ मेरी विथा विलोकि रमामति, काहे सुधि विसराई जी ॥ हमारी० ॥ २ ॥ मैं तो चरनकमलको किंकर, चाहूं पद-सेवकाईजी। हमारी०॥३॥ हे भण नाथ तजो नहि कबहूं, तुमसों लगन लगाईजी ॥ हमारी० ॥ ४ ॥ अपनो विरद निवाहो दयानिधि, दै सुख वृंद वढ़ाईजी ॥ हमारी° ॥५॥

३८४—राग जंतवा बनारसी बोलीमें।

तुम त्रिभुवनपति तारनतरन हो, हमारी खबरिया किमि विसरावल होजी ॥ टेक ॥ हमहिं शरन तुव चरन

कमलकी हो, करहु कृपा बहु दुखपावल हो जी। तुम० ॥१ अगम अतट भव उदधि उधारन हो, तुमरी विरदियां हम सुन पावल हो जी । तुम० ॥ २ ॥ जप तप संजम दान दयानिधि हो, हमसों कछू न अब बनि आवल हो। तुम० ॥ ३ ॥ अपनि विरद लखि तारो जगपतिजी हो, भविकवृंद तुव गुनगावल हो जी। तुम० ॥ ४ ॥

३८५–राग होली।

भविजन चले हैं जजन जिनधाम। भवि० ॥ टेक ॥ आठ दरब अनुपम सब सजि सजि, भूषन वसनललाम। भवि० ॥१॥ बाजत तालमृदंग झांझ डफ, गावत जिनगुनग्राम। भवि० ॥ २ ॥ भावसहित जिनचंद वृंद जजि, वरनेंको शिववाम। भवि० ॥ ३ ॥

३८६—जिनवाणी-स्तुति मनहरण।

कुमति कुरंगनिको केहरि समान मानी, माते इभ माथें अष्टापद हहरात है। दारिद निदाघ दार प्रावृट प्रचंड धार कुनै गिरि-गंड खंड विज्जु घहरात है ॥ आतमरसीको है सुधारसको कुंड वृन्द, सम्यक्त महीरुहको मूल छहरात है। सकल समाज शिवराजको अजज्ज जामें, ऐसो जैन वैनको पताका फहरात है ॥

३८७—दिगंबरस्तुति।

आतमज्ञान-सुधारस-रंजित, संजुत दर्वित भावित संवर। शुद्ध अहार विहार धरै, परिहारु करैं भविभाव अडंबर ॥ मूल गुणोत्तरमें लवलीन, प्रवीन जिनागममाहिं नरंवर।

वृन्द नमैं कर जोर सदा नित, सो जगमें जयवंत दिगंवर ॥

३८८—दादरा ठुमरी।

विनदेखे रह्यो नहिं जाय, विना प्रभु पार्श्वकी छविकेरे ॥ टेक ॥ आननकी दुति कोटिके लागे, चंदा सूरज लजाय ॥ नेत्र हजार किये सुरपतिने तऊ न त्रिपति अघाय ॥२ ॥ आनन्द सों प्रभुके गुण गाऊं रोम २ हरषाय ॥ ३ ॥

३८९—राग खेमटा।

वनि आई सकल सुरनार पारस पूजनको ॥ टेक ॥ काशी देश वनारसि नगरी अश्वसेन दरबार ॥१॥ इन्द्र सची मिल करत आरती संचिय पुण्य भंडार ॥२॥ केई ताल मृदंग वजावत कोई करत जैकार ॥३॥ कोई भाव वतावत गावत जिनगुण वृन्द अपार ॥ ४ ॥ वनि॰ ॥

३९०—केहरवा।

सुफल भई मेरी आज नगरिया ॥ टेक ॥ वहुत दिननसे भटकत २ आज मिली सुरपुरकी डगरिया ॥ १ ॥ पारसनाथ प्रभुके नह्वन करनको भर २ लायो जल क्षीर गगरिया ॥२॥ दृग सुख नैन दोउ कर जोड़ें मैटो प्रभु भव भवकी भवरिया ॥ ३ ॥

३९१—गजल।

खयाल कर दिल मझार चेतन, अजब करमने झकाई गतियाँ ॥ टेक ॥ निगोद बस कर सुवोध खोया, त्रिजग व नारक वानस्पतियाँ । कभी मनुष वा कभी सुरग वा, अनादिसे दिन बिताई रतियाँ ॥१॥ यह दुःख भर २ यतीम

हूआ, न गौरकी कहुँ सुनाई बतियाँ। पड़ा हूँ अब तो उसीके दरपे, लगें 'हजारी, न यमको पतियाँ ॥ २ ॥

३९२—दादरा।

निरखत छवि नाथ नैना, चकित रस है गये ॥टेक॥ रवि कोट द्युति लज जात है नख दीप्त अपार ॥१॥ एक तो परम वैराग है दूजे शांति स्वरूप ॥२॥ उपमा "हजारी" से ना बने अनुपम जगचन्द्र ॥३॥

३९३—दादरा बुंदेलखंडी।

सामलिया पारसनाथ! हमारे सघन विघन घन नासियो ॥ टेक ॥ स्वामी चार घातिया घातके फिर केवलज्ञान प्रकाशियो ॥१॥ भव्य भवोदधि तारिके फिर कीनो शिवपुर राज ॥२॥ स्वामीसे 'मानिक' यह विनती मेरा आवागमन निवारियो ॥३॥

चौदहवां अध्याय।

फुटकरसंग्रह।

३९४—समाधिमरण भाषा छोटा।

गौतम स्वामी बन्दों नामी मरण समाधि भला है। मै कब पाऊं निसदिन ध्याऊं गाऊं वचन कला है॥ देव धरम गुरु प्रीति महा दृढ़ सात व्यसन नहिं जाने। त्यागि बाइस अभक्ष संयमी बारह व्रत नित ठाने॥ १॥ चक्की उखरी चूलि बुहारी पानी त्रस न विरोधे। बनिज करे पर द्रव्य हरे नहिं छहो करम इमि साधे॥ पूजा शास्त्र गुरनकी

सेवा संयम तप चहुंदानी। परउपकारी अल्प अहारी सामायक विधि ज्ञानी॥ जाप जपे तिहूं योग धरे दृग तनकी ममता टारै। अन्त समय वैराग्य सम्हारे ध्यान समाधि विचारै॥ आग लगे अरु नाव डूवे जब धर्म विघन जब आवे। चार प्रकार अहार त्यागिके मन्त्र सुमनमें ध्यावे ॥ ३ ॥ रोग असाध्य जहां वहु देखे कारण और निहारे। वात वड़ी है जो वनि आवे भार भवनको डारे॥ जो न बने तो घरमें रह करि सबसों होय निराला। मात पिता सुत त्रियको सौंपे निज परिग्रह इहि काला ॥४॥ कछु चैत्यालय कछु श्रावक जन कछु दुखिया धन देई। क्षमा क्षमा सबहीसों कहिके मनकी शल्य हरेई॥ शत्रुन सों मिलि निज कर जोरे मै वहु करी है बुराई। तुमसे प्रीतमको दुख दीने ते सब बकसो भाई ॥५॥ धन धरती जो मुखसो मांगे सो सब दे संतोषे। छहों कायके प्राणी ऊपर करुणा भाव विशेषे॥ ऊंच नीच घर बैठ जगह इक कछु भोजन कछु पैले। दूधा धारी क्रम क्रम तजिके छाछ अहार पहेले॥ ६ ॥ छाछ त्यागिके पानी राखे पानी तजि संथारा। भूमिमांहि फिर आसन माड़े साधर्मी ढिग प्यारा॥ जब तुम जानो यह न जपै है तब जिनवाणी पढ़िये। यों कहि मौन लियो संन्यासी पंच परम पद गहिये॥ ७॥ चौ आराधन मनमें ध्यावे वारह भावन भावे। दशलक्षण मन धर्म विचारे रत्नत्रय मन लावे॥ पैंतिस सोलह षट पन चौ दुइ

इक बरन विचारे। काया तेरी दुखकी ढेरी ज्ञानमई तू सारे॥८॥ अजर अमर निज गुण सो पूरे परमानंद सुभावै। आनन्दकन्द चिदानन्द साहब तीन जगतपति ध्यावे॥ क्षुधा तृषादिक होइ परीषह सहै भाव सम राखै। अतीचार पांचों सब त्यागे ज्ञान सुधारस चाखै॥९॥ हाड़ मांस सब सूखि जाय जब धर्म लीन तन त्यागे। अद्भुत पुण्य उपाय सुरगमें सेज उठे ज्यों जागे। तहंते आवै शिवपद पावे विलसे सुख अनन्तो। द्यानत यह गति होय हमारी जैनधरम जयवन्तो॥१०॥

३९५-समाधिमरण भाषा बडा।

पं० सूरजचन्दजी रचित। नरेन्द्रछन्द।

वंदों श्री अरहंत परमगुरु, जो सबको सुखदाई। इस जगमें दुख जो मै भुगते, सो तुम जानो राई॥ अब मै अरज करूं प्रभु तुमसे, करसमाधि उरमाहीं। अंतसमयमें यह वर मागूं, सो दीजे जगराई॥१॥ भवभवमें तनधार नये मैं, भव भव शुभ संग पायो। भवभवमें नृपरिद्धि लई मैं, मात पिता सुत थायो॥ भवभवमें तन पुरुषतनों धर, नारी हू तन लीनों। भवभवमें मैं भयो नपुंसक, आतमगुण नहिं चीनो॥ भवभव मैं सुरपदवीपाई, ताके सुख अति भोगे। भवभव मै गति नरकतनी धर, दुख पाये विधि योगे॥ भवभव मै तिर्यंच योनिधर, पायो दुख अति भारी। भवभवमें साधर्मीजनको, संगमिल्यो हितकारी॥३॥ भवभवमें जिनपूजन कीनी, दान

सुपात्रहिं दीनो। भवभवमें मैं समवसरणमें, देख्यो जिन-गुण भीनो॥ एती वस्तु मिली भवभवमें सम्यकगुण नहिं पायो। ना समाधियुत मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो ॥४॥काल अनादि भयो जग भ्रमते-सदा कुमरणहिं कीनो। एकबार हू सम्यकयुत मैं, निज आतम नहिं चीनो॥ जो निजपरको ज्ञान होय तो, मरण समय दुख कांई। देह विनासी मै निजभासी, जोतिस्वरूप सदाई ॥५॥ विषयकषायनके वश होकर, देह आपनो जान्यो। कर मिथ्यासरधान हियेविच, आतम नाहिं पिछान्यो॥ यों क्लेश हियधार मरणकर, चारों गति भरमायो। सम्यकदर्शन-ज्ञान-चरन ये, हिरदेमें नहिं लायो ॥६॥ अब या अरज करूं प्रभु सुनिये, मरण समय यह मांगों। रोगजनित पीडा मत होवो, अरु कषाय मत जागो॥ ये मुझ मरणसमय दुखदाता, इन हर साता कीजै। जो समाधियुत मरण होय मुझ, अरु मिथ्यागद छीजै ॥७॥ यह तन सात कुधातमई है, देखत ही घिन आवै। चर्मलपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावै॥ अतिदुर्गंध अपावनसों यह, मूरख प्रीति वढावै। देह विनासी जिय अविनासी नित्यस्वरूप कहावै ॥८॥ यह तन जीर्ण कुटीसम आतम, यातैं प्रीति न कीजै। नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामैं क्या छीजै। मृत्युहोनसे हानि कौन है, याको भय मत लावो। समतासे जो देह तजोगे, तो शुभतन तुम पावो ॥९॥ मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसरके माहीं। जीर-

नतनसे देत नयो यह, या सम साहू नाहीं ॥ या सेती इस मृत्युसमयपर, उत्सव अति ही कीजै । क्लेशभावको त्याग सयाने समताभाव धरीजै ॥१०॥ जो तुम पूरव पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई । मृत्युमित्र बिन कौन दिखावै, स्वर्गसंपदा भाई ॥ रागरोषको छोड सयाने, सात व्यसन दुखदाई । अंतसमयमें समता धारो, परभवपंथ सहाई ॥११॥ कर्म महादुठ बैरी मेरो, तासेती दुख पावै । तन पिंजरमें बंध कियो मोहि, यासों कौन छुडावै ॥ भूख तृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तनमें गाढै । मृत्युराज अब आय दयाकर, तनपिंजरसोंकाढै ॥ १२ ॥ नाना वस्त्राभूषण मैने, इस तनको पहराये । गंधसुगंधित अतर लगाये, षटरस असन कराये ॥ रात दिना मै दास होयकर, सेव करी तनकेरी । सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी ॥१३॥ मृत्युरायको शरन पाय तन, नूतन ऐसो पाऊं । जामै सम्यकरतन तीन लहि आठों कर्म खपाऊं ॥ देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाहीं । मृत्युसमयमें ये ही परिजन, सब ही हैं दुखदाई॥१४॥ यह सब मोह बढावनहारे, जियको दुर्गति दाता । इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता ॥ मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, मांगों इच्छा जेती । समता धरकर मृत्यु करो तो पावो संपति तेती ॥१५॥ चौआराधन सहित प्राण तज, तौ ये पदवी पावो । हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग-

मुकतिमें जावो ॥ मृत्युकल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मझारे। ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे ॥१६॥ इस तनमैं क्या राचे जियरा, दिन दिन जीरन हो है ॥ तेजकांति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है। पांचों इंद्री शिथिल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवै। तापर भी ममता नहिं छोडै, समता उर नहिं लावै ॥१७॥ मृत्युराज उपकारी जियको, तनसों तोहि छुड़ावै। नातर या तनबंदीग्रहमैं, परयो परयो बिललावै॥ पुदगलके परमाणू मिलकै, पिंडरूप तन भासी। याही मूरतमैं अमूरती, ज्ञानजोति गुणखासी ॥१८॥ रोगशोक आदिक जो वेदन, ते सब पुदगललारैं। मै तो चेतन व्याधि विना नित, हैं सो भाव हमारे ॥ या तनसों इस छेत्र संबंधी, कारण आन बन्यो है। खानपान दे याको पोष्यो, अब सम भाव ठन्यो है॥१९॥ मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान विन, यह तन अपनो जान्यो। इंद्रीभोग गिने सुख मैने, आपो नाहिं पिछान्यो ॥ तन विनशनतैं नाश जानि निज, यह अयान दुखदाई। कुटुम आदिको अपनो जान्यो, भूल अनादी छाई ॥२०॥ अब निजभेद जथारथ समझ्यो, मैं हूं ज्योतिस्वरूपी। उपजै विनसै सो यह पुदगल, जान्यो याको रूपी ॥ इष्टऽनिष्ट जेते सुख दुख हैं, सो सब पुदगल सागै। मै जब अपनो रूप विचारों, तब वे सब दुख भागैं ॥ २१ ॥ विन समता तनऽनंत धरे मै, तिनमैं ये दुख पायो। शस्त्रघाततैंऽनन्त बार

मर, नाना योनि भ्रमायो ॥ बारअनंत हि अग्नि माहिं जर, मूवो सुमति न लायो । सिंह व्याघ्र अहिनन्त बार मुझ, नाना दुःख दिखायो ॥ २२ ॥ विन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई । मृत्युराजको भय नहिं मानो, देवै तन सुखदाई ॥ यातैं जब लग मृत्यु न आवै, तबलग जपतप कीजे । जपतपबिन इस जगके माहीं, कोई भी ना सीजै ॥ स्वर्गसंपदा तपसों पावै, तपसों कर्म खिपावै । तपहीसों शिवकामिनिपति ह्वै, यासों तप चित लावै ॥ अब मैं जानी समता विन मुझ कोऊ नाहिं सहाई । मात पिता सुत बांधव तिरिया ये सब हैं दुःखदाई ॥२४॥ मृत्यु समयमै मोह करै ये, तातैं आरत हो है । आरततै गति नीची पावै, यों लख मोह तज्यो है ॥ और परिग्रह जेते जग मैं तिनसों प्रीत न कीजे । परभवमैं ये संग न चालैं, नाहक आरत कीजे ॥२५॥ जे जे वस्तु लखत हैं ते पर, तिनसों नेह निवारो । परगति-मैं ये, साथ न चालै, ऐसो भाव विचारो ॥ जो परभवमैं संग चलै तुझ, तिनसों प्रीत सु कीजै । पंच पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजे ॥२६॥ दशलक्षणमयधर्म धरो उर अनुकंपा उर लावो । षोडशकारण नित्य विचारो, द्वादश भावन भावो ॥ चारों परवी प्रोषध कीजै, अशन रात-को त्यागो । समता धर दुरभाव निवारो, संयमसों अनुरागो ॥ २७ ॥ अंतसमयमै यह शुभ भावहि, होवैं आनि सहाई । स्वर्गमोक्षफल तोहि दिखावै, ऋद्धि देहिं अधिकाई । खोटेभाव

सकल जिय त्यागो, उरमैं समता लाकैं। जासेती गतिचार दूरकर, वसहु मोक्षपुर जाकैं ॥ २८॥ मनथिरताकरकै तुम चिंतो, चौ आराधन भाई। येही तोकों सुखकी दाता, और हितू कोउ नाहीं ॥ आगैं वहु मुनिराज भये हैं तिन गहि थिरता भारी। वहु उपसर्ग सहे शुभपावन, आराधन उर-धारी ॥२९॥ तिनमैं कछुइक नाम कहूं मैं, सो सुन जिय चित लाकै। भावसहित अनुमोदे तासों, दुर्गति होय न ताकै ॥ अरु समता निज उरमें आवें, भाव अधीरज जावें। यों निशदिन जो उन मुनिवरको, ध्यान हिये विच लावै ॥ धन्य धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसैं धीरज धारी। एक श्या-लनी जुगवच्चाजुत, पांव भख्यो दुखकारी ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी। तो तुमरे जिय कौन दुःख हैं ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३१॥ धन्य धन्य जु सुकौ-शल स्वामी, व्याघ्रीने तन खायो। तौ भी श्रीमुनि नेक डिगे नहिं, आतम सों हित लायो ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौं तुमरे० ॥ ३२ ॥ देखो गजमुनिके शिर ऊपर, विप्र अगिनि वहु वारी। शीश जलैं जिम लकडी तिनको, तो भी नाहिं चिगारी ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी। तौं तुमरे० ॥३३॥ सनतकुमार मुनीके तनमें, कुष्ट वेदना व्यापी। छिन्न भिन्न तन तासों हूवो, तव चिंत्यो गुण आपी ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी। तौं तुमरे० ॥३४॥ श्रेणिक

सुत गंगामैं डूबयो, तब जिननाम चितारयो। धर सलेखना परिग्रह छोडयो, शुद्ध भाव उर धारयो॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे० ॥३५॥ समंतभद्रमुनिवरके तनमैं, छुधावेदना आई। तौ दुखमै मुनि नेक न डिगियो, चिंत्यो निजगुण भाई॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, अराधन चितधारी। तौ तुमरे० ॥३६॥ ललितघटादिक तीस दोय मुनि, कौशांबीतट जानो। नदीमें मुनि बहकर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी। तौ तुमरे० ॥३७॥ धर्मघोष मुनि चंपानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाढ़ो। एक मासकी कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढ़ो॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी। तौ तुमरे० ॥३८॥ श्रीदत्तमुनिको पूर्वजन्मको, वैरी देव सु आके। विक्रय कर दुख शीततनोसो, सह्यो साध मन लाके॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी। तौ तुमरे० ॥३९॥ वृषभसेन मुनि उष्णशिलापर, ध्यान धरयो मनलाई। सूर्य घाम अरु उष्ण पवनकी, वेदन सहि अधिकाई॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी। तौ तुमरे० ॥४०॥ अभयघोषमुनि काकंदीपुर, महावेदना पाई। वैरी चंडने सब तन छेद्यो, दुख दीनो अधिकाई॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी। तौ तुमरे० ॥४१॥ विद्युतचरने बहु दुख पायो, तौ भी धीर न त्यागी। शुभभाव-

नसों प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी। तौ तुमरे० ॥४२॥ पुत्र चिलाती नामा मुनिको, वैरीने तन घाता। मोटे मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण राता ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चितधारी। तौ तुमरे० ॥४३॥ दंडक-नामा मुनिकी देही, बाणन कर अरि भेदी। तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधनचितधारी। तौ तुमरे० ॥४४॥ अभि-नंदन मुनि आदि पांचसौ, घानी पेलि जु मारे। तौ भी श्रीमुनि समता धारी, पूरबकर्म विचारे ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता अराधन, चितधारी। तौ तुमरे० ॥४५॥ चाणक मुनि गौघरके माहीं, मूंद अगिनि परजाल्यो। श्रीगुरु उर समभाव धारके, अपनो रूप सम्हाल्यो ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चितधारी। तौ तुमरे० ॥४६॥ सातशतक मुनिवर दुख पायो, हथनापुरमैं जानो। बलिब्राह्मणकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधनचितधारी। तौ तुमरे० ॥४७॥ लोहमयी आभूषण गढ़के, ताते कर पह-राये। पांचों पांडव मुनिके तनमैं, तौ भी नाहिं चिगाये ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी। तौ तुमरे० ॥४८॥ और अनेक भये इस जगमें, समता-रसके स्वादी। वे ही हमको हो सुखदाता, हर हैं टेव प्रमादी ॥ सम्यकद-

र्शन ज्ञान चरन तप, ये आराधन चारों। ये ही मोकों सुख-की दाता इन्हें सदा उर धारों ॥ ४९ ॥ यो समाधि उर-माहीं लावो, अपनो हित जो चाहो। तज ममता अरु आठों मदको, जोतिस्वरूपी ध्यावो ॥ जो कोई नित करत पयानो, ग्रामान्तरके काजै सो भी शकुन विचारै नीके, शुभके कारण साजै ॥ ५० ॥ मातापितादिक सर्व कुटुम सब, नीके शकुन बनावै। हलदी धनिया पुंगी अक्षत, दूब दही फल लावै ॥ एक ग्रामजानेके कारण, करै शुभाशुभ सारे। जब परगतिको करत पयानो, तब नहिं सोचो प्यारे ॥ ५१ ॥ सर्वकुटुम जब रोवन लागे, तोहिं रुलावे सारे। ये अपशकुन करैं सुन तोकों, तू यों क्यों न विचारै ॥ अब परगतिको चालत बिरियां, धर्मध्यान उर आनो। चारों अराधन आराधो, मोहतनो दुख हानो ॥५२॥ होय निःशल्य तजो सब दुविधा, आतमराम सुध्या-वो। जब परगतिको करहु पयानो, परम तत्त्व उर लावो ॥ मोह जालको काट पियारे, अपनो रूप विचारो। मृत्युमित्र उपकारी तेरो, यो उर निश्चय धारो ॥ ५३ ॥

दोहा-मृत्युमहोत्सव पाठको, पढ़ो सुनो बुधिवान। सरधा धर नित सुख लहो, सूरचंद शिवथान ॥ ५४ ॥ पंच उभय नव एक नभ, संवत सो सुखदाय। आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय ।।५५॥

इति श्रीसमाधिमरण पाठ भाषा समाप्त ॥

३१६—संक्षिप्त सूतकविधि।

सूतकमें देव शास्त्र गुरुकी पूजन प्रक्षालादिक करना, तथा मंदिरजीकी जाजम वस्त्रादिको स्पर्श नहीं करना चाहिये। सूतकका समय पूर्ण हुये वाद पूजनादि करके पात्रदानादि करना चाहिये।

१—जन्मका सूतक दश दिन तक माना जाता है।

२—यदि स्त्रीका गर्भपात (पांचवें छठे महीनेमें) हो तो जितने महीनेका गर्भपात हो उतने दिनका सूतक माना जाता है।

३—प्रसूति स्त्रीको ४५ दिनका सूतक होता है, कहीं कहीं चालीस दिनका भी माना जाता है। प्रसूतिस्थान एक मास तक अशुद्ध है।

४—रजस्वला स्त्री चौथे दिन पतिके, भोजनादिकके लिये शुद्ध होती है परन्तु देवपूजन, पात्रदानके लिये पांचवें दिन शुद्ध होती है। व्यभिचारिणी स्त्रीके सदा ही सूतक रहता है।

५—मृत्युका सूतक तीन पीढीतक १२ दिनका माना जता है। चौथी पीढ़ीमें छह दिनका, पांचवीं, छठ्ठी पीढ़ी तक चार दिनका सातवीं पीढीमें तीन, आंठवीं पीढीमे एक दिन रात, नवमी पीढीमें स्नानमात्रसे शुद्धता हो जाती है।

६—जन्म तथा मृत्युका सूतक गोत्रके मनुष्यको पांच दिनका होता है। तीन दिनके वालककी मृत्युका एक दिनका आठ वर्षके वालककी मृत्युका तीन दिन तकका मान जाता है। इसके आगे १२ दिनका।

७—अपने कुलके किसी गृहत्यागीका सन्यास मरण, वा किसी कुटुम्बीका संग्राममें मरण हो जाय तो एकदिनका सूतक माना जाता है।

८—यदि अपने कुलका कोई देशांतरमें मरण करै और १२ दिन पहले

खबर सुने तो शेष दिनोंका ही सूतक मानना चाहिये। यदि १२ दिन पूर्ण हो गये हों तो स्नानमात्र सूतक जानो।

९—गौ, भैंस, घोड़ी आदि पशु अपने घरमें जनै तो एक दिनका सूतक और घरके बाहर जनै तो सूतक नहीं होता। दासी दास तथा पुत्रीके घरमें प्रसूति होय तो एक दिन, मरण हो तो तीन दिनका सूतक होता है। यदि घरसे बाहर हो तो सूतक नहीं। जो कोई अपनेको अग्नि आदिकमें जलाकर वा बिष शस्त्रादिसे आत्महत्या करे तो छह महीने तकका सूतक होता है। इसीप्रकार और भी विचार हैं सो आदिपुराणसे जानना।

१०—बच्चा हुये बाद भैंसका दूध १५ दिन तक, गायका दूध १० दिन तक, बकरीका ८ दिन तक, अभक्ष्य (अशुद्ध) होता है। देशभेदसे सूतक विधानमें कुछ न्यूनाधिक भी होता है परन्तु शास्त्रकी पद्धति मिलाकर ही सूतक मानना चाहिये। ॐ समाप्त ॐ

पन्द्रहवां अध्याय

बारहमासादिसंग्रह।

३१७—सीताजीका बारहमासा।

सती सीता विनवै शिर नाय। नाथ करि कृपा हरो दुःख आय ॥ टेक ॥ महीना आषाढ़का आया। जनकगृह जन्म मैने पाया ॥ हरा सुर भ्रातन की दाया। मात पितुको दुःख उपजाया ॥ दोहा—तब रथनूपुर विजयार्द्धपर ता वनमें सुर जाय। रखा लखा सो भूप चन्द्रगति हितसे लिया उठाय ॥ पुत्र कर पालाप्रेम बढाय। नाथ कर कृपा हरो दुःख आय ॥ १ ॥ चढे श्रावण मलेच्छ भारी। पिता दुःख पायो अधि-

कारी ॥ बुलाये दशरथ हितकारी। राम तिनकी सेना मारी ॥ दोहा–तव रघुपतिको तातने करी सगाई मोर। विधिवश खगपति झगड़ा ठानो आने धनुष कठोर ॥ चढ़ा रघुवर परणी गृह ल्याय। नाथ कर कृपा हरो दुःख आय ॥२॥ भये भादोंमें ससुर वैराग। राज रघुवरको देने लाग। केकई मांगो वर दुर्भाग। भरतको राज लिया तिन मांग ॥ दोहा–तव पति चले विदेशको धनुष वाण ले हाथ। संग चले प्रिय लक्ष्मण देवर मैं भी चाली साथ ॥ चले दक्षिणको चरण उठाय। नाथ कर कृपा हरो दुःख आय ॥ ३ ॥ क्वार दंडक वन पहुंचे जाय। हना शंबूक लक्ष्मण असिपाय ॥ फेरि मारा खरदूषण धाय। तहां मैं हरी लंकपति आय ॥ दोहा–मार जटाऊ मोहि ले, दशमुख पहुंचो लंक। मित्र भये सुग्रीव रामके हनुमत वीर निशंक ॥ लैन सुधि पठये श्रीरघुराय। नाथ कर कृपा हरो दुःख आय ॥ ४ ॥ मिली कातिक में सुधि मेरी। राम लक्ष्मण लंका घेरी ॥ घोर रण भयो वहुत वेरी। लगीं वहु मृतकनकी ढेरी ॥ दोहा–तहां लंकपतिको हनो दियो विभीषणराज। मोहि साथ ले गृहको आये लिया राज रघुराज ॥ भरत तप धरा भये शिवराय। नाथ कर कृपा हरो दुःख आय ॥५॥ कियो अगहनमें गर्भाधान। तबै वटवायो किमिच्छा दान ॥ कर्मवश लोगों गिल्ला ठान। लगाया दूषण मोहि निदान ॥ दोहा–तव पति पठयी विपिनमें तीरथ कर मिसि ठान।

वज्रजंघ गृह रोवति देखी ले गयो वहिन बखान ॥ रखी पुर पुण्डरीकमें जाय। नाथ कर कृपा हरो दुख आय ॥६॥ पूष लवणांकुश जन्मे बाल। बढ़े क्रमसे सो भये विशाल ॥ गये बन क्रीडा दोनों लाल। मिले नारद बतलायो हाल ॥ दोहा—तब दोनोंको रिश बढ़ी भये पिता पर क्रुद्ध। समझाये सो एक न मानी चले करनको युद्ध ॥ चतुर्विधि सेना संग सजाय। नाथ कर कृपा हरो दुख आय॥७॥माघमें चले लड़न युगवीर। करे डेरा सरयूके तीर॥ सुनत आये लड़ने रघुबीर। चलाये खेंच विविध शर धीर॥ दोहा–प्रबल युद्ध पुत्रन किया हरि बल मुहरा फेरि। चक्र चलाया तब लक्ष्मणने विकल भयो सो हेरि॥ विचारा ये ही हरि बलराय। नाथ कर कृपा हरो दुख आय ॥८॥ फागमें भामण्डल हनुमान। कहिये सीता सुत बलवान॥ मिले तब हरि बल आनंद ठान। अवधमें बाढ़ो हर्ष महान॥ दोहा–तब सबने विनती करी सीता लेहु बुलाय। सो स्वीकार करी रघुवरने सब नृप लाये धाय॥ मिलनको चली सिया हर्षाय। नाथ करि कृपा हरो दुख आय॥९॥ चैत्रमें बोले राम रिसाय। धीज विन लिये न आवो धाय॥ तबे बोली सीता बिलखाय। कहो सो लेहु धीज दुखदाय॥ दोहा—विष खाऊं पावक जलूं करूँ जो आज्ञा होय। कही राम पावकमें पैठो सीता मानी सोय॥ दयो तब पावक कुंड जलाय। नाथ करि कृपा हरो दुख आय ॥१०॥ जपति वैशाखमें प्रभुका नाम।

अग्निमें पैठी रघुवर भाम ॥ शील महिमासे देव तमाम। अग्निका कीना जल तिस ठाम ॥ दोहा—कमलासनपर जानकी बैठारी सुर आप। बढ़ा नीर जन डूबन लागे करते भये विलाप ॥ करो रक्षा मम सीता माय। नाथ कर कृपा हरो दुख आय ॥११॥ जेठमें राम मिलन चाले। लुंचि कच सिय सन्मुख डाले ॥ लई दिक्षा अणुव्रत पाले। किया तप दुर्द्धर अन्न जाले ॥ दोहा—त्रिया लिंग हनि दिव भयो सोलमस्वर्ग मतेंद्र। अनुक्रमसे अब शिवपुर पैहैं भाषी एम जिनेंद्र ॥ कहें यों दयाराम गुण गाय। नाथ करि कृपा हरो दुख आय ॥१२॥

३९८—बारहमासा राजुल।

राग सोरठ।

पिय प्यारेने सुधि विसराई। अब कैसे जियों मेरी माई॥ ॥टेक॥ सखी आयो अगम अषाढा। तब क्यों न गये गिर-नारा ॥ मेरी रच संयोग बिसारी। मनमें क्या नाथ विचारी अब क्यों छोड़ी अकुलाई। अब० ॥ १ ॥ सावनमें व्याहन आये। सब यादव नृपति सुहाये ॥ पशु बनकी करुणा कीनी। मेरी ओर दृष्टि ना दीनी ॥ गिरगमन कियो यदु-राई। अब० ॥२॥ भादों बरसत गंभीरा। मेरे प्राण धरे ना धीरा ॥ मोहि मात पिता समझावे। मेरे मन एक न आवे॥ मो प्रभु बिन कछु न सुहाई। अब० ॥ ३ ॥ सखी आयो आस्विन मासा। पहुंची अपने पिय पासा ॥ क्यों छोडे भोग

विलासा। कर पूर्व जन्मकी आसा॥ तज वर्तमान सुख-दाई। अब० ॥४॥ अब लागो कातिक मासा। सब जन गृह करत हुलासा॥ सब गृह गृह मंगल गावें। हमरे पिय ध्यान लगावें॥ मेरी मान कही यदुराई। अब० ॥५॥ लागी अघ-हन मास सुहाई। जामें शीत पडे अधिकाई॥ सब जन कंपें जग केरे। कैसे ध्यान धरो प्रभु मेरे॥ थिरता मन नाहिं रहाई। अब० ॥ ६ ॥ सखी पूषमें परम तुषारा। चर शीत भई अधिकारा॥ कैसेके संयम मंडो। कैसे वसुकर्मन दंडो॥ घर चलके राज कराई। अब० ॥७॥ सखि माघ मास अब लागो। सब ही जन आनँद दागो॥ तुम लीनी जगत वंडाई मोहि त्याग दया ना आई॥ धृक मेरी पूर्व कमाई। अब० ॥८॥ फागुनमें सब जन होरी। खेलत केसर रंग बोरी॥ तुम गिरिपर ध्यान लगायो। मेरा कछु ध्यान न आयो॥ तुम शरणागतमें आई। अब० ॥९॥ सखी पहिले चैत जनायो। सब सालको आगम आयो॥ सब फूले वन अकुलाई। मोहिं तुम बिन कछु न सुहाई॥ मोहिं अधिक उदासी छाई। अब० ॥१०॥ वैसाख पवन झकझोरे। लूह लपट लगे चहुं ओरे॥ जे जड़ ते तपत पहारा। मो तन कोमल सुकुमारा॥ घर छोड़ चले यदुराई। अब० ॥ ११ ॥ सखी जेठ मास अब आयो। तब घामने जोर जनायो॥ कैसे भूख पियास सहोगे। कैसे संयम धारोगे॥ थिरता मनमें न रहाई। अब कैसे जियों मेरी माई ॥१२॥

३९९-बारहमासा श्री मुनिराजजीका।

राग मरहटी।

मैं बन्दूं साधु महन्त वड़े गुणवन्त सभी चित लाके। जिन अथिर लखा संसार वसे वन जाके ॥टेक॥ चित चैतमें व्याकुल रहे काम तन दहे न कुछ वन आवे। फूली वनराई देख मोह भ्रम छावे॥ जब शीतल चले समीर स्वच्छ हो नीर भवन सुख भावे। किस तरह योग योगीश्वरसे वन आवे॥ झड़-तिस अवसर श्री मुनि ज्ञानी, रहें अचल ध्यान में ध्यानी। जिन काया लखी पयानी, जगऋद्धि खाक सम जानी॥ उस समय धीर धर रहैं अमर पद लहैं ध्यान शुभ ध्याके। जिन अथिर० ॥ १ ॥ जब आवत है वैशाख होय तृण खाक तप्तसे जलके। सब करैं धाम विश्राम पवन झल झलके॥ ऋतु गर्मीमें संसार पहिने नर नार वस्त्र मलमलके। वे जलसे करते नेह जो हैं जी स्थलके॥ झड-जिस समय मुनी महराजे, तन नग्न शिखिर गिरि राजे। प्रभु अचल सिंहासन राजे, कहो क्यों न कर्म दल लाजे॥ जो घोर महा तप करें मोक्षपद धरें वसै शिव जाके। जिन अथिर लखा० ॥२॥ जब पड़े ज्येष्ठमें ज्वाला होय तन काला धूपको मारी। घर बाहर पग नहिं धरै कोई घरवारी॥ पानी से छिड़के धाम करें विश्राम सकल नर नारी। घर खसकी टटिया छिपै लूहकी मारी॥ झड़-मुनिराज शिखिर गिरि ठाढ़े, दिन रेन ऋद्धि अति बाढ़े। अति तृषा रोग मय बाढ़े,

तब रहैं ध्यानमें गाढ़े ॥ सब सूखे सरवर नीर जलैं शरीर रहैं समझाके। जिन अथिर लखा० ॥३॥ आषाढ़ मेघका जोर बोलते मोर गरजते बादल। चमके बिजुली कड़ कड़ै पड़ै धारा जल ॥ अति उमड़ें नदियां नीर नहर गम्भीर भरे जलसे थल। भोगीको ऐसे समय पड़ै कैसे कल ॥ झड–उस समय मुनी गुणवन्ते, तरवर तट ध्यान धरन्ते। अति काटें जीव अरु जन्ते, नहीं उनका शोच करन्ते ॥ वे काटे कर्म जंजीर नहीं दिलगीर रहैं शिव पाके। जिन अथिर लखा संसार बसे बन जाके ॥ ४ ॥ श्रावणमें है त्यौहार झूलती नार चढ़ी हिंडोले। वे गावै राग मल्हार पहन नये चोले। जग मोह तिमिर मन बसे सर्व तन कसे देत झकझोले। उस अवसर श्रीमुनिराज बनत हैं भोले ॥ झड़–वे जीतैं रिपुसे लरके, कर ज्ञान खड्ग लेकरके। शुभ शुक्ल ध्यानको धरके, परफुल्लित केवल बरके ॥ नहीं सहैं वो यमकी त्रास लहैं शिव बास अघात नाशके। जिन अथिर० ॥ ५ ॥ भादव अंधियारी रात सूझेना हाथ घुमड़ रहे बादर। बन मोर पपीहा कोयल बोलें दादुर ॥ अति मच्छर भिन भिन करें सांप फूंकरें पुकारें थलचर। बहु सिंह बघेरा गज घूमें बन अन्दर ॥ झड़–मुनिराज ध्यान गुण पूरे, तब काटें कर्म अंकूरे। तन लिपटत कान खजूरे, मधु मक्ष ततइयें भूरे ॥ चिटियों ने बिल तन करे आप मुन खड़े हाथ लटकाके। जिन० ॥६॥

आश्विनमें वर्षा गई समय नहीं रही दशहरा आया। नहीं रही वृष्टि अरु कामदेव लहराया॥ कामी नर करें किलोल वजावे ढोल करैं मन भाया। है धन्य साधु जिन आतम-ध्यान लगाया॥ झड़—वस याम योगमें भीने, मनि अष्ट अर्म क्षय कीने। उपदेश सबनको दीने, भविजनको नित्य नवीने॥ हैं धन्य धन्य मुनिराज ज्ञानके ताज नमूं शिर नाके। जिन अथिर लखा० ॥७॥ कार्तिकमें आया शीत भई विपरीत अधिक सरदाई। संसारी खेलें जुआ कर्म दुख-दाई॥ जग नर नारीका मेल मिथन सुख केल करैं मन भाई। शीतल ऋतु कामी जनकी है सुखदाई॥ झड़—जब कामी काम कमावें, मुनराज ध्यान शुभ ध्यावें। सरवर तट ध्यान लगावें, सो मोक्ष भवन सुख पावे॥ मुनि महि-मा अपरम्पार न पावे पार कोई नर गाके। जिन अथिर लखा० ॥ ८ ॥ अगहनमें टपके शीत यही जग रीत सेज मन भावे। अति सीतल चलै समीर देह थर्रावे॥ शृङ्गार करे कामिनी रूप रस ठनी साम्हने आवे। उस समय कुमति वस सबका मन ललचावे॥ झड़—योगीश्वर ध्यान धरें हैं, सरिताके निकट खरें हैं। जहां ओले अधिक परें हैं, मुनि कर्मका नाश करे हैं॥ जब पड़े वर्फ घनघोर करें नहीं शोर जयी दृढ़ताके। जिन अथिर लखा० ॥ ९ ॥ यह पौष महीना भला शीतमें घुला कांपती काया। वे धन्य गुरू जिन इस ऋतु ध्यान लगाया॥ घरबारी घरमें छिंप वस्त्र

तन लिपे रहैं जैड़ाया । तज वस्त्र दिगम्बर हो मुनि ध्यान लगाया ॥ झड़—जलके तट जग सुखदाई, महिमा सागर मुनिराई । धर धीर खड़े हैं भाई, निज आतमसे लवलाई ॥ है यह संसार असार वे तारणहार सकल वसुधाके । जिन अथिर लखा संसार० ॥१०॥ है माघ वसन्त वसन्त नार अरु कंथ युगल सुख पाते । वे पहिने वस्त्र वसन्त फिरे मदमाते ॥ जब चढैं मयनकी शयन पड़ें नहीं चैन कुमति उपजाते । हैं बड़े धीर जन बहुधा वे डिग जाते ॥ झड—तिस समय जु हैं मुनि ज्ञानी, जिन काया लखी पयानी । भवि डूबत बोधे प्रानी, जिन ये वसन्त जिय जानी ॥ चेतनसे खेलैं होरी ज्ञान पिचकारी योग जेल लाके । जिन अथिर लखा० ॥११॥ जब लगे महीना फाग करें अनुराग सभी नर नारी । लैं फिरे फैंटमें गुलाल कर पिचकारी ॥ जब श्री मुनिवर गुणखान अचल धर ध्यान करैं तप भारी । कर शील सुधारस कर्मन ऊपर डारी ॥ झड—कीर्ति कुमकुमें बनावें, कर्मोंसे फाग रचावें । जो बारामासा गावें, सो अजर अमर पद पावें ॥ यह भाषैं जीयालाल धर्म गुणमाल योग दरशाके । जिन अथिर लखा संसार बसे बन जाके ॥१२॥

४००—बारहमासा वज्रदंत चक्रवर्तीका

(यति नैनसुखदास कृत)

सवैया—बन्दूँ मैं जिनंद परमानंदके कंद जगचंद विमलेंदु जड़ता ताप हरन कूं । इन्द्र धरणेन्द्र गौतमादिक गणेंद्र

जाहि सेव राव रंक भवसागर तरन कूं॥ निर्वंध निर्द्वन्द दीनवन्धु दयासिन्धु करें उपदेश परमार्थ करन कूं। गावे नैनसुखदास वज्रदंत बारहमास मेटो भगवन्त मेरे जन्म मरन कूँ ॥ १ ॥ दोहा–वज्रदंत चक्रेशकी, कथा सुनो मन लाय। कर्म काट शिवपुर गये, बारह भावन भाय॥ २॥

सवैया–बैठे वज्रदंत नाथ अपनी सभा लगाय ताके पास बैठे राय बत्तीस हजार हैं। इन्द्र कैसे भोगसार राणी छाड़के हजार पुत्र एक सहस्र महान गुणगार हैं॥ जाके पुण्य प्रचण्डसे नये हैं वलवंड शत्रु हाथ जोड़ मान छोड़ सवें दरबार हैं। ऐसो काल पाय माली लायो एक डाली तामें देखो अलि अम्बुज मरण भयकार है ॥३॥ अहो यह भोग महापापको संयोग देखो डालीमें कमल तामें भोंरा प्राण हरे हैं। नासिकाके हेतु भयो भोगमें अचेत सारी रैनके कलापमें विलाप इन करे हैं। हम तो हैं पांचों हीके भोगी भये जोगी नाहिं विषयकषायनके जाल मांहि परे हैं। जो न अब हित करूँ न जावे कौन गति परूं सुतन बुलाके यों वच अनुसरे हैं ॥४॥ अहो सुत जग रीति देखके हमारी नीति भई है उदास वनोवास अनुसरेंगे। राजभार सीस धरो परजाका हित करो हम कर्म शत्रुनकी फौजन-सूं लरेंगे। सुनत वचन तब कहत कुमार सब हम तो उगाल-कूं न अंगीकार करेंगे। आप बुरो जान छोडो हमें जग जाल बोडो तुमरे ही संग पंच महाव्रत धरेंगे ॥५॥

चौपाई मिश्रित गीताछंद—सुत अषाढ़ आयो पावस काल, सिरपर गर्जत यम विकराल ॥ लेहु राज सुख करहु विनीत। हम वन जांय बड़नकी रीति ॥६॥ जांय तपके हेत वनको भोग तज संयम धरे। तज ग्रंथ सब निर्ग्रंथ हो संसारसागर-से तरें। यही हमारे मन वसी तुम रहो धीरत धारके। कुल आपनेकी रीति चालो राजनीति विचारके ॥७॥ पिता राज तुम कीनो बोन। ताहि ग्रहण हम समरथ हों न ॥ यह भौंरा भोगनकी व्यथा। प्रगट करत कर कंगन यथा ॥८॥ यथा करका कांगना सन्मुख प्रगट नजरायरे। त्यों ही पिता भौंरा निरषि भव भोगसे मन थरहरे॥ तुमने तो वनके वास-हीको सुख अंगीकृत किया। तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृप पद क्यों दिया ॥९॥ श्रावण पुत्र कठिन वनवास। जल थल सीत पवनके त्रास ॥ जो नहिं पले साधु आचार। जो मुनि भेष लगावे सार ॥१०॥ लाजे श्रीमुनि भेष तातैं देहका साधन करो। सम्यक्त युत व्रतपंचमें तुम देश व्रत मनमें धरो ॥ हिंसा असत् चोरी परिग्रह ब्रह्मचर्य सुधारके। कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के ॥११॥ पिता अंग यह हमरो नांहि। भूख प्यास पुद्गल परछांहि ॥ पाय परीषह कबहुँ न भजै। धर संन्यास मरण तन तजै ॥१२॥ सन्यास धर तनकूं तजें नहिं डंशमँसकतसे डरें। रहें नग्न तन वनखंडमें जहां मेघ मूसल जल परें। तुम धन्य हो बड़भाग तजके राज तप उद्यम किया। तुमरी समझ

सोई समझ हमरी हमें नृप पद क्यों दिया ॥१३॥ भादोंमें सुत उपजे रोग। आवें याद महलके भोग॥ जो प्रमादवस आसन टले। तो न दया व्रत तुमसे पले ॥१४॥ जब दया-व्रत नहिं पले तब उपहास जगमें विस्तरे। अरहन्त और निर्ग्रंथकी कहौ कौन फिर सरधा करे। तातैं करौ मुनिदान पूजा राज काज संभाल के। कुल आपने की० ॥१५॥ हम तजि भोग चलेंगे साथ। मिटें रोग भव भवके तात॥ समता मन्दिरमें पग धरें। अनुभव अमृत सेवन करें॥१६॥ करे अनुभव पान आतम ध्यान वीणा कर धरें। आलाप मेघ मल्हार सोहं सप्त भंगी स्वर भरे। धृग् धृग् पखावज भोगकूं सन्तोष मनमें कर लिया। तुमरी समझ सोई समझ० ॥१७॥ आसुज भोग तजे नहिं जांय। भोगी जीवन-की डसि खांय॥ मोह लहर जियकी सुधि हरे। ग्यारह गुण थानक चढ़ गिरे ॥१८॥ गिरे थानक ग्यारवेंसे आय मिथ्या भू परे। विन भानकी थिरता जगतमें चतुर्गतिके दुःख भरे। रहै द्रव्यलिंगी जगतमें विन ज्ञान पौरुष हार के। कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के॥१९॥ विषे विडार पिता तिन कसे। गिर कन्दर निर्जन वन बसें॥ महामंन्त्रको लखि परभाव। भोग भुजंगन चाले घाव ॥२०॥ घाले न भोग भुजंग तब क्यों मोहकी लहरा चढे। परमाद् तज परमात्मा प्रकाश जिन आगम पढ़ें। फिर काल लब्धि उद्योत होय सुहोय यों मन थिर किया॥ तुमरी

समझ० ॥२१॥ कातिकमें सुत करें विहार। कांटे कांकर चुभें अपार॥ मारें दुष्ट खेचके तीर। फाटे उर थरहरे शरीर ॥२२॥ थरहरे सगरी देह अपने हाथ काढ़त नहीं बने। नहिं औरकाहूसे कहें तब देहकी थिरता हनें॥ कोई खेंच बांधे थम्भसे कोई खाय आंत निकाल के॥ कुल०॥ पद पद पुण्य धरामें चलें। कांटे पाप सकल दल मलें॥ क्षमा ढाल तल धरे शरीर। विफल करै दुष्टनके तीर ॥२४॥ कर दुष्ट जनके तीर निरफल दया कुंजरपर चढें। तुम संग समता खड्ग लेकर अष्ट कर्मनसे लड़े। धन धन्य यह दिनवार प्रभु तुम योगका उद्यम किया॥ तुमरी०॥ अगहंन मुनि तटिनीतट रहें। ग्रीषम शैल शिखर दुख सहैं। पुनि जब आवत पावसकाल। रहैं साध जन वन विकराल ॥२६॥ रहें वन विकरालमें जहां सिंह स्यार सतावहीं। कानोंमें बीछी विलकरे और व्याल तन लिपटावहीं। दे कष्ट प्रेत पिशाच आन अंगार पाथर डारके। कुल आपनेकी रीति चालो राजनीति विचारके॥२७॥ हे प्रभु बहुत वार दुःख सहे। बिना केवली जाय न कहे॥ शीत उष्ण नर्कनके तात। करत याद कम्पे सब गात॥२८॥ गात कम्पे नर्कसे लहे शीत उष्ण अथाय ही। जहां लाख योजन लोह पिंड सुहोय जल गल जाय ही। असिपत्र वनके दुःख सहे परवश स्ववश तपना किया। तुमरी समझ हमरी हमें नृप पद क्यों दिया ॥२९॥ पौष अर्थ अरु लेहु गयंद। चौरासी लख लख सुखकंद॥ कोड़ि अठारह घोड़ा लेहु। लाख कोड़ि हल चलत गिनेहु ॥३०॥ लेहु हल लख

कोड़ि षटखंण्ड भूमि अरु नव विधि बड़ी। लो देशकी त्रिभूति हमरी राशि रत्ननकी पड़ी। अर देहुँ शिरपर छत्र तुमरे नगर घोख उचारके।कुल०॥अहो कृपानिधि तुम परशाद। भोगे भोग सबै मरयाद॥ अब न भोगकी हमकूं चाह। भोगनमें भूले शिव राह॥३२॥ राह भूले मुक्तिकी बहुवार सुरगति संचरे। जहां कल्पवृक्ष सुगन्ध सुन्दर अपसरा मनको हरे। उदधि पी नहिं भया तिरपत ओस पी कै दिन जिया। तुमरी०॥भाव सधै न सुरनतें सोय। भोग भूमियन तै नहिं होय। हर हरि अरु प्रति हरिसे वीर। संयम हेत धरे नहि धीर॥३४॥ संयम कूँ धीरज नहिं धरे नहिं टरें रणमें युद्धसूं। जो शत्रुगण गजराजकूं दलमले पकर विरुद्धसूं। पुनि कोट सिल मुग्दर समानी देय फैंक उपार के। कुल आपने की० ॥३५॥ बँध योग उद्यम नहिं करे। एतो तात कर्म फल भरें। बांधे पूर्व भव गति जिसी। भुगतें जीव जगतमें तिसी॥३६॥ जीव भुगते कर्मफल कहो कौन विधि संयम धरें। जिन बंध जैसा बांधियो तैसा ही सुख दुःख सो भरें। यों जान सबको बंधमें निर्बन्धका उद्यम किया। तुमरी समझ सोई हमरी समझ० ॥३७।

फाल्गुण चाले शीतल वायु। थर २ कम्पे सबकी काय॥ तब भव बन्ध विहारणहार। त्यागे मूढ़ महाव्रत सार॥३८॥ सार परिग्रह व्रत विसारें अग्नि चहुं दिशि जारही। करें मूढ़ सीत विनीत दुर्गति गहें हाथ पसार ही। सो होंय प्रेत पिशाच भूतरु ऊत शुभगति टारके॥ कुल०॥॥३९॥

हे मतिवन्त कहा तुम कही। प्रलय पवनकी वेदन सही॥ धारी मच्छ कच्छकी काय। सहे दुःख जलचर परजाय ॥४०॥ पाय पशु परजाय परवश रहे सिंग वधाँयके। जहां रोम रोम शरीर कम्पे मरे तन तरफायके। फिर गेर चाम उचेर स्वान सिवान मिल श्रोणित पिया। तुमरी०॥४१॥ चैत लता मदनोदय होय। ऋतु बसंतमें फूले सोय॥ तिनकी इष्ट गंधके जोर। जागे काम महाबल फोर ॥ ४२॥ फोर बलको काम जागे लेय मन पुरछी नहीं। फिर ज्ञान परमनिधान हरिके करे तेरा तीन ही। इतके न उतके तब रहे गये कुगति दोऊ कर झारके॥कुल०॥ऋतु वसन्त वनमें रहे। भूमि मसाण परीषह सहे॥ जहां नहिं हरति काय अंकूर। उडत निरन्तर अहनिशि धूर॥ ४४॥ उडे वनकी धूर निशि दिन लगें कांकर आयके। सुन शब्द प्रेत प्रचण्डके काम जांय पलायके। मत कहो अब कछु और प्रभु भव भोगमें मन कंपिया। तुमरी०॥ ४५॥ मास बैसाख सुनत अरदास। चक्री मन उपज्यो विश्वास। अब बालनको नाहीं ठौर। मैं कहूं और पुत्र कहें और॥ ४६॥ और अब कछु मैं कहूं नहीं रीति जगकी कीजिये। एकबार हमसे राज लेके चाहे जिसको दीजिये। पोता था एक पट् मासका अभिषेक कर राजा कियो।-पितुसंग सब जगजालसेती निकस वन मारग लियो॥ ४७॥ उठे वज्रदन्त चक्रेश। तीस सहस्र नृप तजि अलवेश। एक हजार पुत्र बड भाग। साठ सहस्र सती जग त्याग॥४८॥ त्याग जग

कूंये चले सब भोग तज ममता हरी। समभाव कर तिहुंलोक-के जीवोंसे यों विनती करी। अहो जेते हैं सब जीव जगमें क्षमा हमपर कीजियो। हम जैन दीक्षा लेत हैं तुम वैर सब तज दीजियो॥ ४९॥ वैर सबसे हम तजा अर्हतका शरणा लिया। श्रीसिद्ध साहूकी शरण सर्वज्ञके मत चित दिया॥ यों भाष पिहिताश्रव गुरुन ढिंग जैन दीक्षा आदरी। कर लौंच तजके सोच सबने ध्यानमें दृढ़ता धरी॥ ५०॥ जेठ मास लू ताती चलें। सूकै सर कपिगण मद गलें॥ ग्रीष्म काल शिखिरके सीस। धरो अतापन योग मुनीश॥५१॥ धरयोग आतापन सुगुरुने तब शुक्ल ध्यान लगाइयो। तिहुं लोक भानु समान केवल-ज्ञान तिन प्रगटाइयो॥ धन वज्र-दन्त मुनीश जग तज कर्मके सन्मुख भये। निज काज अरु परकाज करके समयमें शिवपुर गये॥ सम्यक्तादि सुगुण आधार। भये निरंजन निर आकार॥ आवागमन जलांजल दई। सब जीवनकी शुभगति भई।५३। भई शुभगति सबनकी जिन शरण निजपतिकी लई। पुरुषार्थसिद्धि उपायसे परमार्थकी सिद्धी भई। जो पढ़े बारामास भावन भाय चित्त हुलसायके तिनके हों मंगल नित नये अरु विघ्न जाय पलायके॥५४॥

दोहा—नित नित तव मंगल बढ़े, पढ़े जो यह गुणमाल।
सुर नरके सुख भोग कर, पावें मोक्ष रिसाल॥ ५५॥

सवैया—दो हजार माहिंतें तिहत्तर घटाय अब विक्रमको संवत् विचार कै धरत हूं। अगहन असि त्रियोदशी मृगांक वार अर्ध निशामांहिं याहि पूर्ण करत हूं॥ इति श्रीवज्र-

दन्त चक्रवर्तिकी वृतान्त रचके पवित्र नैन आनन्द भरत हू। ज्ञानवन्त करी शुद्ध जान मेरी बाल बुद्धि दोषपै न रोष करो पायन परत हूं ॥ ५६ ॥ इति समाप्त ॥

६०१—नेमि व्याह, बिनोदीलाल कृत।

सवैया—मौर धरो शिर दूलहके कर कंकण बांध दई कस डोरी। कुंडल कानन में झलकें अति भालमें लाल विराजत रोरी ॥ मौतिनकी लड़ें शोभित हैं छबि देखि लजैं बनिता सब गोरी। लाल बिनोदीके साहिबको मुख देखन को दुनियां उठ दोरी ॥१॥ छत्र फिरै शिर दूलह के तब वारत रत्न शिवादेवी मैया। कृष्ण इतै बलभद्र उतै कर ढोरत चमर चले दोऊ भैया ॥ भूप समुद्र विजय सब संग चले वसुदेव उछाह करैया। लाल बिनोदीके साहिब की बनिता सब ही मिलि लेत बलैयां ॥२॥ गौंडे गये जब नेम प्रभू पशु पक्षिन खेंच पुकार करी है। नाथ अनाथनके प्रतिपाल दयाल सुनो विनती हमरी है ॥ बन्दि पड़े बिललाय सबै बिन कारण विपदा आनिपरी है। पूछत लाल विनोदी के साहिब सारथी क्यों इन बन्दि भरी है ॥३॥ सारथीने कर जोड़ कही सुन नाथ इन्हेंजु बिदारेंगे अब। यादव संग जुरे सवरे तिन कारण ये सब मारेंगे अब ॥ अब इनके बश बनमें बिलपें इनको वे आज संहारेंगे अब। तातें तुमसें फर्याद करें हमरी गति नाथ सुधारेंगे अब ॥४॥ बात सुनी उतरे रथसे पशु पंक्षिनका सब बन्दि छुड़ाई। जाओ सबे अपने थलको हमरो अपराध क्षमा करो भाई ॥ धृक है ऐसो जीनो जगमें तब ही प्रभु द्वादश भावना भाई। देव लौकान्तिक आय गये जिन धन्य कहैं सब यादव राई ॥५॥ प्रभु तो बिन ऐसी कौन करे औ को जगमें यह बात बिचारे कौन तजे सुत बन्धु बधू अरु को जगमें ममता निवारे ॥ को वसु कर्म-

नि जीत सके जनु आप तरे अरु औरन तारे। लाल विनोदीके साहिव ने यश जीत लयो जग जीतन हारे ॥ ६ ॥ नेम उदास भये जवसे कर जोड़ के सिद्धका नाम लयो है। अम्बर भूषण डार दिये शिर मौर उतारके डार दयो है। रूप धरो मुनिका जवही तवही चढ़िके गिरिनारि गयो है। लाल बिनोदीके साहिवने तहां पंच महाव्रत योगठयो है ॥७॥ नेम कुमारने योग लियो जब होनेको सिद्ध करो मन इच्छा। या भवके सुख जान अनित्य सो आदर एक उदंडकी भिक्षा॥ स्नेह तजो वरवार तजो नहीं भोग विलासनकी मन शिक्षा। लाल विनोदीके साहवके संग भूप सहस्र लई तव दिक्षा ॥८॥ काहून जाय कही सुन राजुल तेरो पिया गिरनारि चढ़ो है। इतनो सुन भूमि पछार लई मानो तन सेतो जीव कढ़ो है॥ सो उग्रसेनसे जाय कहो सुन तातविधाता अनर्थ गढ़ो है। लाज सवे सुध भूल गई पिय देखनको जु उमाह वढ़ो है ॥९॥ लाड़ली क्यों गिरनारि चढ़े उसही पति तुल्य सुधो वर लाऊं। प्रोहितको पठऊं अवही वहु भूपर के सव देशदुढ़ाऊं॥ न्याह रचों फिरके तुम्हरो महिमंडलके सब भूप वुलाऊं। लाल विनोदीके नाथ विना द्युतिवंत सो कंत तुम्हे परणांऊं ॥१०॥ काहे न बात सम्हाल कहो तुम जानत हो यह बात भली है। गालियां काढ़त हो हमको सुनो तात भली तुम जीभ चली है॥ मैं सबको तुम तुल्य गिनों तुम जानत ना यह बात रली है। या भवमे पति नेमि प्रभू यह लाल विनोदी को नाथ बली है ॥११॥ मेरो पिया गिरनारि चढ़ो सुन तात मैं भी गिरनारि चढ़ोंगी। संग रहों पियके वनमें तिनही पियको मुख नाम पढ़ोंगो॥ और न बात सुहाय कछू पियकों गुणमाल हिये में मढ़ोंगो। कंत हमारे रचें शिवसे शिव थानको मैं भी सिवान गढ़ोंगो ॥१२॥ इति समाप्त !